श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीसोमसेनभट्टारक-विरचित

त्रैवर्णिकाचार ।

श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी सोनी कृत

हिन्दी-अनुवाद-सहित ।

प्रकाशक—

जैनसाहित्य-प्रसारक कार्यालय,

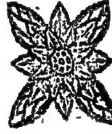
हीराबाग, गिरगाव—बम्बई ।

प्रथमावृत्ति 1000

कार्तिक शुक्ला
वीर नि० सं० २४५१

मूल्य—
छह रुपया ।

प्रकाशक—
बिहारीलाल कठनेरा जैन,
मालिक जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,
हीराबाग, गिरगांव-बम्बई ।



मुद्रक,
फॉर्म १-से २७ रा. विनायक बाळकृष्ण परांजपे,
नेटिव ओपिनियन प्रेस, आंग्रेवाडी, गिरगांव, मुंबई.
फॉर्म २८ से-५० रामचंद्र नारायण मंडलीक,
लोकमान्य प्रेस, गिरगांवरोड, मुंबई.
और शेष
रा. चिंतामण सखाराम देवळे,
मुंबईवैभव प्रेस, सँढर्स्ट रोड,
गिरगांव-मुंबई।

हमारे खुदके छपाये हुए जैन ग्रन्थ।

पाण्डवपुराण—श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत संस्कृत ग्रन्थका पंडित घनश्यामदासजीकृत नवीन हिन्दी अनुवाद। इसमें कौरव और पांडवोंका संसार-प्रसिद्ध प्राचीन इतिहास है। पाण्डवोंके देश-निकाले, द्रौपदीके चीरहरण, कौरव और पांडवोंके प्रसिद्ध युद्ध, दुःशासनकी कूटनीति आदि विषयोंका इसमें विस्तृत वर्णन है। इसे ही 'जैन महाभारत' कहते हैं। मूल्य कपड़ेकी सुन्दर पक्की जिल्दयुक्त ५॥)

रत्नकरंडश्रावकाचार—पं० सदासुखजीकृत भाषाटीका-सहित। यह श्रावकाचार सम्बन्धी सबसे ज्यादा बड़ा और प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें विस्तारके साथ श्रावकाचारका वर्णन है। प्रसंगानुसार इसमें बारह-भावना, दशलक्षणधर्म, षोड्शकारण-भावना आदिका भी खूब विस्तारके साथ और सरल वर्णन है। इसकी बहुत ही कम प्रतियां शिलक रही हैं। मूल्य ६)

त्रिलोकसार—स्वर्गीय पं० टोडरमल्लजीकृत भाषा-वचनिका-सहित। यह ग्रन्थ बड़े महत्त्वका है। जैनसमाजमें जैसा 'गोम्मटसार' सिद्धान्त ग्रंथका आदर है वैसा ही इस महान् ग्रंथका भी आदर है। इस महान् ग्रंथमें जैनधर्मके अनुसार त्रिलोककी रचनाका खुलासा और बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। इसका स्वाध्याय करनेवाले सहजहीमें इन बातोंको जान सकेंगे कि जैनधर्मके अनुसार पृथ्वी घूमती है या स्थिर है; सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र घूमते हैं या स्थिर हैं; उनकी गति किस तरह होती है, ग्रहण क्यों पड़ता है, स्वर्ग-नरक क्या है—उनकी रचना कैसी है, आदि। सुन्दर कपड़ेकी जिल्द बंधी हुई। मूल्य ५॥) रु०

क्रियाकोश—स्वर्गीय पं० दौलतरामजीकृत। इस ग्रंथमें विस्तारके साथ इन बातोंका वर्णन किया गया है कि हमें खान-पान कैसा रखना चाहिए, भले या बुरे खान-पानका मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, कौन वस्तु कब तक खाने योग्य रहती है और कब वह अभक्ष्य हो जाती है, अपने गृहोंकी चीज-वस्तुओंको हमें किस सिलसिलेसे उठानी-धरनी चाहिए, जिससे किसी जीवको कष्ट न हो; श्रावकोंको व्रत वगैरहका किस प्रकार पालन करना चाहिए आदि। इस ग्रंथको गृहस्थधर्मका 'दर्पण' कहना चाहिए। कपड़ेकी सुन्दर जिल्द-युक्तका मूल्य अढ़ाई रुपया।

पुण्यास्रव—इसमें मनोरंजक और धार्मिक भावोंसे परिपूर्ण कोई ५६ छोटी मोटी कथायें हैं। जिन जिन भव्य पुरुषोंने जिन भगवानकी पूजा, पंचनमस्कार मंत्रकी आराधना, शीलधर्मका पालन, उपवास, दान आदि द्वारा फल प्राप्त कर स्वर्गधाम प्राप्त किया है उन्हींकी कथायें इसमें लिखी गई हैं। खुले पत्र। मूल्य चार रुपया।

भक्तामरकथा—मंत्र-यंत्र-सहित। ब्रह्मचारी रायमल्ल रचित संस्कृत भक्तामरकथाके आधार पर बड़ी सीधी-साधी हिन्दी भाषामें स्व० पंडित उदयलालजी काशलीवाल द्वारा लिखित। इसमें पहले

भक्तामरके मूल श्लोक, फिर पं० गिरिधर शर्मांकृत सुन्दर हिन्दी-पद्यानुवाद, बाद मूलका खुलासा भावार्थ, फिर भक्तामरके मंत्रोंको सिद्ध करनेवालोंकी तेंतीस सुन्दर और अद्भुत कथाएं, और अन्तमें मंत्र, ऋद्धि और उनकी साधन-विधि तथा अड़तालीस ही श्लोकोंके अड़तालीस यंत्र दिये गये हैं। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका १॥≈) सादी जिल्दका १।)

चन्द्रप्रभचरित—महाकवि श्रीवीरनन्दि आचार्यकृत संस्कृत काव्यका सरल हिन्दी अनुवाद। इसमें आठवें तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभ भगवानका पवित्र चरित वर्णन किया गया है। इसकी कथा बड़ी सुन्दर और मनको मोहित करनेवाली है। प्रसंगानुसार इसमें श्रृंगार, वैराग्य, वीर, करुणा आदि सभी रसोंका विस्तृत वर्णन है। मूल्य कपड़ेकी जिल्द युक्तका १॥) सादी जिल्द १।)

नेमिपुराण—ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत ग्रंथका स्व०पं० उदयलालजी काशलीवाल कृत नया हिंदी अनुवाद। इसमें बावीसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भगवानका पवित्र चरित और राजकुमारी राजीमतीकी करुण कथा बड़ी सुन्दरतासे लिखी गई है। इसमें प्रसंगानुसार कंस और कृष्णके सम्बन्धकी अनेक अद्भुत घटनायें, कृष्णके द्वारा चाणूरमल्लकी मृत्यु, द्वारिका-निर्माण, कृष्ण तथा बलदेवकी दिग्विजययात्रा, नेमिप्रभुके गर्भ-जन्म-दीक्षा-केवल-निर्वाण कल्याण, देवकी, बलदेव और कृष्णके पूर्व भव, कृष्णकी पट्टरानियोंके भवान्तर, प्रद्युम्नका हरण और विद्यालाभ-सहित वापिस आगमन, कृष्णकी मृत्यु और पांडवोंका निर्वाणलाभ आदि विषयोंका विस्तृत वर्णन है। मूल्य कपड़ेकी जिल्द ३) सादी जिल्द २॥)

सुदर्शनचरित—भट्टारक सकलकीर्तिके संस्कृत ग्रंथका स्व० पं० उदयलालजी काशलीवाल कृत नया हिन्दी अनुवाद। सुदर्शन बड़े दृढ़ निश्चयी थे। शीलव्रतके पालनेवालोंमें सुदर्शनका नाम विशेष उल्लेख योग्य है। कामी स्त्रियोंने उनपर घोरसे घोर उपसर्ग किये, उनके साथ अनेक प्रकारकी बुरी चेष्टायें कीं, उन्हें शीलधर्मसे गिरानेका खूब ही प्रयत्न किया, परन्तु सुदर्शनका दृढ़ हृदय उनसे बिल्कुल चलायमान नहीं हुआ, वे अपने शीलधर्मपर सुमेरुसे अचल—अडिग बने रहे। यह उन्हीं महात्माका चरित है। मूल्य बारह आना।

पवनदूत काव्य—श्रीवादिचंद्रसूरिकृत संस्कृत काव्य और स्व० पं० उदयलाल काशलीवाल कृत नया हिन्दी अनुवाद। कीमत चार आना।

श्रेणिकचरितसार—ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत श्रेणिक कथासारका स्व० पं० उदयलाल काशलीवालकृत हिन्दी अनुवाद। मूल्य चार आने।

पंचास्तिकाय-समयसार—भगवान कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृतग्रंथकी स्व० पं० हीरानन्दजीने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदिमें यह छन्दोबद्ध टीका लिखी है। यह आध्यात्मिक विषयका ग्रन्थ है। इसमें पहले पञ्चास्तिकाय और षट्द्रव्यका वर्णन कर बाद व्यवहार और निश्चय-मोक्ष-मार्गका वर्णन किया गया है। संसार-भ्रमणके कारण राग-द्वेषादिक दोषोंके छुड़ानेका इसमें बड़ा अच्छा उपदेश दिया गया है। मू० १) रु०

छहढाला सार्थ—स्व० पं० दौलतरामजी रचित। श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकृत सरल अर्थ सहित। इस छोटेसे ग्रन्थमें जैनधर्मका मर्म कूट-कूट कर भर दिया गया है। इसे पढ़ कर थोड़ेमें जैनधर्मकी बहुतसी बातें जानी जा सकती हैं। विद्यार्थियोंके लिए तो यह अत्यन्त उपयोगी है। यह प्रत्येक पाठशालामें पढ़ाया जाता है। मूल्य सिर्फ चार आने।

छहढाला मूल—स्व० पं० दौलतरामजी रचित। मूल्य एक आना।

नियमपोथी—इसे ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने संग्रह किया है। श्रावकोंक जो प्रतिदिन करनेके सत्रह नियम हैं, उनका इसमें खुलासा है। मूल्य एक आना।

हिन्दी-कल्याण-मन्दिर—संस्कृत कल्याणमंदिरस्तोत्रका खड़ी बोलीकी कवितामें हिन्दीके प्रसिद्ध कविरत्न पं० गिरिधरशर्माकृत बड़ा ही सुन्दर अनुवाद है। मूल्य -)

चौसठऋद्धिपूजा—यति श्रीरूपचंदजी विरचित। इसीको बृहत्गुर्वावली पूजा कहते हैं। मूल्य बारह आना।

सुखसागर-भजनावली—ब्रह्मचारी शीतलप्रशादजी रचित २५१ आध्यात्मिक पद, भजन, गजल, होली, लावनी, बारहभावना, दोहावली और अष्टान्हिक पूजन तथा सजोतक्षेत्र स्थित श्रीशीतलनाथ जिनपूजनका संग्रह। दूसरी बार छपाई गई है। मूल्य १।)

हितैषी-गायन—अर्थात् बालक-भजन-संग्रह पंचम भाग। पं० भूरामलजी मुशरफ रचित सामाजिक उपदेशी भजनोंका संग्रह। आधुनिक कुरीतियां और फुजूलखर्चीके कार्योंको बंद करानेकी शिक्षाके कई भजन इसमें हैं। मूल्य =)

चौवीसठाणाचर्चा—गोम्मटसारके आधारपर लिखित। इसमें गति, इन्द्रिय, काय, योग आदि चौबीस स्थानोंको इनके उत्तर भेद चार गति, पांच इन्द्रिय, छह काय, पन्द्रह योग आदिमें पृथक् २ घटाया है। इसमें भाषा चौवीस-ठाणा और चौवीसदंडक भी शामिल कर दिये हैं। आरंभमें चर्चा वार्ता सीखनेके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसलिये विद्यार्थियोंके बड़े कामकी है। दो बार छपकर बिक चुकी है। इसलिये फिरसे तीसरी बार छप रही है। मूल्य॥=)

हिन्दी-भक्तामर और मरी-भावना—संस्कृत भक्तामर-स्तोत्रका खड़ी बोलीकी कवितामें हिन्दीके प्रसिद्ध कविरत्न पं० गिरिधर शर्माकृत सुन्दर अनुवाद। जिस छन्दमें मूल भक्तामर है उसी छन्दमें यह भी है। इसलिये पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता है। यह एक बार छप कर बिक चुका है। इसलिये पं० जुगलकिशोर मुख्तारकृत मेरी-भावनासहित फिरसे बढ़िया एंटिक कागज पर छपाया है। मूल्य डेढ़ आना।

नागकुमारचरित—षट्-भाषा-कवि-चक्रवर्ती मल्लिषेणसूरिके संस्कृत ग्रंथका हिन्दी-अनुवाद। खतम।

सम्यक्त्वकौमुदी—इसमें सम्यक्त्वको प्राप्त करने वाले राजा उदितोदय आदिकी आठ सुन्दर कथाएं हैं। इसमें जगह २ नीतिके श्लोक उद्धृत किये हैं। खतम।

यशोधरचरित—महाकवि वादिराज सूरिके संस्कृत काव्यका सरल हिन्दी अनुवाद । खतम ।

अकलंक-चरित—अकलंक-स्तोत्र और उसका भावार्थ तथा हिन्दी-पद्यानुवादसहित । खतम ।

सुकुमालचरित-सार—ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत ग्रन्थका सरल हिन्दी अनुवाद । खतम ।

बनवासिनी—विवाहका क्या उद्देश्य है, पति-पत्नीका आदर्श प्रेम कैसा होना चाहिये, उच्च-प्रेम किसे कहते हैं, आदि बातोंका इसमें बहुत अच्छा वर्णन है । बहुत थोड़ी प्रतियां रही हैं । मू० ।-)

कर्मदहन-विधान—इसमें कर्मदहन पूजा, कर्मदहनके उपवासोंकी विधि, जाप्य देनेकी विधि तथा जाप्यके मंत्र आदि सब छपे हैं । मूल्य ।≈)

त्रैवर्णिकाचार—यह आपके हाथमें है । मूल्य ६)

इनके सिवाय और सब जगहके छपे हुए सब तरहके जैन ग्रंथ, स्वदेशी पवित्र केशर, दशांग धूप, सूतकी जाप-मालाएं और फोटो नकशे भी विक्रयार्थ हमारे यहां हर समय तैयार रहते हैं ।

पता—बिहारीलाल कठनेरा जैन,
मालिक-जैन-साहित्यप्रसारक कार्यालय,
हीराबाग, गिरगांव-बम्बई ।

प्रस्तावना।

इस त्रिवर्णाचार ग्रंथके कर्ता श्रीसोमसेन सूरि हैं । इस ग्रंथमें मुख्यतासे तीन वर्णोंके आचारका वर्णन है। प्रसंगवश यतिधर्मका वर्णन भी इस ग्रंथमें किया गया है। बीच बीचमें शूद्रोंकी चर्याका उल्लेखभी इसमें पाया जाता है। शय्योत्थानसे लेकर शय्याशयन तककी प्रतिदिनकी क्रियाओंका समावेश भी बड़ी योग्यता और खूबीके साथ किया गया है। मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषामें है। उसीका यह हिंदी अनुवाद मूल-सहित पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है। आशा है कमसे कम धर्मप्रेमी सज्जन इससे थोड़ा-बहुत लाभ उठावेंगे।

ग्रन्थ प्रकाशक बाबू बिहारीलालजी कठनेराकी प्रेरणासे मैंने इस ग्रन्थका अनुवाद किया है। यद्यपि ग्रन्थका अनुवाद कई वर्षोंमें पूर्ण हुआ है तोभी इसके शुरू के १० अध्यायोंके अनुवादमें प्रकाशक महोदयकी शीघ्रताके कारण अत्यन्त ही शीघ्रता करनी पड़ी है। बाद बीचके वर्षों में धीरे धीरे जितना अंश अनुवादित हो चुका था वह मुद्रित होता रहा। जब वह खतम हो गया तब पुनः प्रकाशक महोदयका तकाजा प्रारंभ हुआ अतः शेष भागमेंभी शीघ्रता करनी पड़ी। अत एव एक तो शीघ्रतावश ग्रन्थके अनुवादमें कहीं कहीं त्रुटियां हो गई हैं तथा कुछ त्रुटियां अज्ञान-वशभी हो गई हैं। मैं चाहता था कि उन त्रुटियोंका मार्जन परिशिष्ट भागमें पूर्णतः करदूं पर फिरभी समयाभावके कारण पूर्णतया नहीं करसका हूं। अतः पाठकोंसे क्षमा प्रार्थना करता हूं कि वे त्रुटियोंके स्थलोंको जैनागमके अनुसार समझनेकी कोशिश करें।

इस ग्रन्थका अनुवाद मुद्रित प्रतिपरसे किया गया है जो कि मराठी अनुवादसहित कई वर्षों पहले मुद्रित हो चुकी है और कई स्थलोंमें अशुद्धभी मुद्रित हुई है। एकवार मुझे एक लिखित प्रति भी कितना ही अनुवाद हो चुकनेके बाद मिली थी, सो भी बहुत कम समयके लिए मेरे पास रह सकी थी जो प्रायः अशुद्ध है पर फिरभी उससे सरसरी तौर पर कई स्थल शुद्ध किये गये हैं और कई स्थल ग्रन्थान्तरोंसे शुद्ध किये गये हैं तो भी कितने ही स्थल ज्योंके त्यों अशुद्ध रह गये हैं। इसके लिए भी पाठकोंसे क्षमा प्रार्थना है।

ग्रन्थ-संशोधनके विषयमें भी मैं क्षमा प्रार्थना करना चाहता हूं। ग्रन्थका संशोधन कहीं किसीने और कहीं किसीने मन चाहा किया है। संशोधकोंनें ग्रन्थके संस्कृत मूल अवतरणोंको कहीं रहने दिया है और कहीं निकाल दिया है। इसतरह और भी इधर उधरका पाठ छोड़ दिया है कोई कोई वाक्य और श्लोक जो नीचे रखने चाहिए थे वे ऊपर और जो ऊपर रखने चाहिए थे वे नीचे रख दिये हैं। मुझे जहां तक खयाल है संशोधकोंने कई स्थलोंमें अनुवाद परिवर्तन भी कर डाला है। अस्तु, एक हाथसे संशोधन होता तो अच्छा रहता।

यद्यपि संहिता ग्रन्थोंपर मेरी पहलेसेही आस्था थी, ज्यों ज्यों इन ग्रन्थोंकी कूटता उड़ाना प्रारंभ किया त्यों त्यों मैं उनका विशेष विशेष आलोडन करने लगा। मुझे लोगोंकी छल--कपटके सिवा

उन ग्रन्थोंमें कोई अतथ्य विषय नहीं मिला। मुझे अफसोस हुआ और नमूना मिला कि लोग जिस विषयको नहीं चाहते हैं वे किस ढंगसे उन ग्रन्थोंकी कूटता उड़ाते हैं। खैर, कैसाभी हो उनकी कूटताने मेरी आस्थाको जैनागमपर औरभी दृढ़ बना दिया। मेरी रुचिवृद्धिमें खंडेलकुलभूषण पंडित धन्नालालजी काशलीवाल भी कारणीभूत हैं उनकी दयासे मुझे इस विषयका बहुतसा सद्बोध प्राप्त हुआ है अतः मैं इस कृतिको उन्हींके करकमलोंमें सादर समर्पण करता हूं।

ग्रन्थकर्ताका परिचय।

इस ग्रन्थके कर्ता पट्टाचार्य सोमसेन महाराज मूलसंघके अन्तर्गत पुष्करगच्छके अधिपति थे। उनके गुरुका नाम गुणभद्रसूरि था। उन्होंने अपने जन्मसे किस स्थानको सुशोभित किया था और वे कहांकी गद्दीके अधिपति थे इस विषयका उन्होंने कोई परिचय नहीं दिया है। सिर्फ इसके कि उन्होंने वि. स. १६६७ में इसग्रन्थ को लिखकर पूर्ण किया है। अतः सोमसेन सूरिका समय विक्रमकी १७ वीं शताब्दी समझना चाहिए। इसके अलावा हम उनका विशेष परिचय देनेमें असमर्थ हैं।

ग्रन्थकर्ताका ज्ञान और आचरण।

ग्रन्थ परिशीलनसे पता चलता है कि ग्रन्थकर्ता जैन शास्त्रोंके अच्छे ज्ञाता थे। मंत्रशास्त्र, ज्योतिःशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, निमित्तशास्त्र और शकुनशास्त्रोंके भी वे अच्छे ज्ञाता प्रतीत होते हैं। उनकी वर्णाचारमें भी असाधारण गति थी, वे वर्णाचारके आचरण करनेवालोंको ऊंची दृष्टि से देखते थे। इस विषयमें इस ग्रन्थके कई अध्यायोंके अन्तके श्लोक ही साक्षीभूत हैं। वे संयमीभी अद्वितीय थे। उन्होंने स्थान स्थानमें संयम पालनेकी खूबही प्रेरणा की है। यद्यपि वे भट्टारक थे पर आजकल जैसे भट्टारक नहीं थे वे अच्छे विद्वान् थे और संयमी थे। जो लोग भट्टारक नाम सुनते ही चिढ़ जाते हैं वे भारी भूल करते हैं।

ग्रन्थ—कर्ताकी धार्मिक श्रद्धा।

बहुतसे विषय ऐसे हैं जिनकी परंपरा उठ गई है, आज वे ग्रन्थोंके परिशीलनके अभावसे लोगोंको ऐसे मालूम पड़ने लगे हैं कि मानों वे जैनमतके हैं ही नहीं। अत एव लोग चट कह बैठते हैं कि यह बात तो जैनमत की प्रतीत नहीं होती। यह तो ग्रन्थकर्ताने परमतसे लेली है इत्यादि। इस विषयमें हमें इतना ही कहना है कि वे अभी अगाध जैन साहित्यसे अनभिज्ञ हैं ऋषिप्रणीत जैनसाहित्यमें ऐसी ऐसी बातें हैं जो उन्होंने न सुनी हैं और न देखी हैं। महापुराण जिसमें कि संस्कारोंका कथन है उसके विषयमें भी वे ऐसा कह देते हैं कि जिनसेनस्वामीने यह संस्कारका विषय ब्राह्मण-संप्रदायसे ले लिया है। जब उन पूज्य ऋषियोंके विषयमेंभी ऐसी ऐसी कल्पनाएं उठ खड़ी हुई हैं तब सोमसेनके विषयमें ऐसी कल्पनाएँ करलेना तो आसान बात है। परमतसे वही उन बातोंको ग्रहण करेगा जो परमतसे रुचि रखता होगा और जैनियोंको परमतावलंबी बनाना चाहता होगा। पर हम देखते हैं कि सोमसेनसूरिकी न परमतसे रुचि ही थी और न वे जैनों को परमतावलंबी ही बनाना चाहते थे वे तो एकदम परमतावलंबियोंसे मौन रहने तकका उपदेश देते हैं। ऐसी दशामें जैनोंको परमतकी शिक्षा ही कैसे दे सकते हैं। यथा—

मूर्खान् मूढांश्च गर्विष्ठान् जिनधर्मविवार्जितान् ।
कुवादिवादिनोऽत्यर्थं त्यजेन्मौनपरायणः ॥

ग्रन्थ कर्ताने अनेक स्थानोंमें देव, गुरु, शास्त्र, चैत्यालय आदिकी भक्तिपूर्ण स्तुतिएं की हैं। इससे उनकी जैनधर्म पर असाधारण भक्ति प्रकट होती है। जैनोंका उनके हृदयमें बेहद आदर था। यथा–

रोगिणो दुःखितान् जीवान् जैनधर्मसमाश्रितान् ।
संभाष्य वचनैर्मृष्टैः समाधानं समाचरेत् ॥

जब कि ग्रन्थकर्ता अन्यधर्मों से अप्रीति और जैनधर्मसे प्रीति दिखला रहे हैं तब मालूम नहीं पड़ता कि कौनसे स्वार्थवश उन पर उक्त लांछन लगाया जाता है। इससे तो यही साबित होता है कि यह ग्रन्थ उन लोगोंकी स्वार्थवासनाओंमें रोड़े अटकाता है अतः अपना मार्ग साफ करने के लिए पहले वे इन छलों द्वारा अपना मार्ग साफ करना चाहते हैं। हमें तो ग्रन्थ परिशीलन से यही मालूम हुआ कि ग्रन्थकर्ताकी जैन धर्मपर असीम भक्ति थी, अजैन विषयोंसे वे परहेज करते थे। लोग खामुखां अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए उन पर अवर्णवाद लगाते हैं।

ग्रन्थकी प्रमाणता।

ग्रन्थकी प्रमाणतामें भी हमें कुछ संदेह नहीं होता। प्रतिपादित विषय जैनमतके न हों और उनसे विपरीत शिक्षा मिलती हो तो प्रमाणतामें संदेह हो सकता है। ग्रन्थकी मूल भित्ति आदि पुराण परसे खड़ी हुई है। जिनका आधार उन्होंने लिया है उनके ग्रन्थोंमें भी वे विषय पाये जाते हैं। किंबहुना इस ग्रन्थके विषय ऋषिप्रणीत आगममें कहीं संक्षेपसे और कहीं विस्तारसे पाये जाते हैं। अत एव हमें तो इस ग्रन्थमें न अप्रमाणता ही प्रतीत होती है और न आगम विरुद्धता ही। परंतु जो लोग वर्णाचार जैसे विषयों से अनभिज्ञ हैं, उनके पालनमें असमर्थ हैं, उनकी परंपराका जिनमें लेशभी नहीं रहा है वे इसके विषयोंको देख कर एक वार अवश्य चौंकेंगे। जो वर्णाचारको निरा ढकोसला समझते हैं वे अवश्य इसे धूर्त और ढोंगी प्रणीत कहेंगे। जिनके मगजमें भट्टारक और त्रिवर्णाचार नाम ही शल्यवत् चुभते हैं वे अवश्य ही इसे अप्रमाणता और आगमविरुद्धताकी ओर खसीटेंगे। इसमें जरा भी संदेह नहीं। पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, महापुराण, यशस्तिलकचंपू जैसे पुराण और चरित ग्रन्थोंको, विद्यानुवाद, विद्यानुशासन, भैरवपद्मावतीकल्प, ज्वालामालिनीकल्प जैसे मंत्रशास्त्रोंको, इन्द्रनंदिप्रतिष्ठापाठ, वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ, आशाधरप्रतिष्ठापाठ, नेमिचंद्रप्रतिष्ठापाठ, अकलंकप्रतिष्ठापाठ जैसे पूजा शास्त्रोंको, रत्नकरंडक, मूलाचार, आचारसार धर्मामृत जैसे आचार ग्रन्थोंको, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार जैसे लोकव्यवस्थापक शास्त्रोंको एवं एक एक कर जैनमतके सभी विषयोंको अप्रमाण और अलीक (झूठा) मानते हैं वे इसग्रन्थको अप्रमाण और ढोंगी प्रणीत मानें इसमें आश्चर्य ही क्या है। जब कि जैनधर्म जैसे कल्याणकारी धर्मकोभी झूठा कहनेवाले अजैन ही नहीं जैननामधारीभी संसारमें मौजूद हैं तब इस सामान्य ग्रन्थकी अवहेलना करनेवाले इस संसारमें न पाये जांय यह हो नहीं सकता।

१–२ इनका अर्थ पृष्ट १७४ में श्लोकनं ९१–९२ में देखो।

जैनागममें परंपराको बहुतही ऊंचा स्थान दिया है, जो वचन परंपराके अनुकूल हैं वे ग्राह्य और प्रामाणिक माने जाते हैं। जिन वचनोंमें परंपराकी अवहेलना की जाती है वे उच्छृंखल वचन होनेसे कभी भी ग्राह्य नहीं होते और न प्रमाणही माने जाते हैं। सोमसेन महाराजने परंपराके सामने अपना सिर झुकाया है। यथा—

यत्प्रोक्तं जिनसेनयोग्यगणिभिः सामन्तभद्रैस्तथा
सिद्धान्ते गुणभद्रनाथमुनिभिर्भट्टाकलंकैः परैः।
श्रीसूरिद्विज नामधेयविबुधैराशाधरैर्वाग्वरै-
स्तद्दृष्ट्वा रचयामि धर्मरसिकं शास्त्रं त्रिवर्णात्मकं॥

यह ग्रन्थ एक संग्रह ग्रंथ हैं। ग्रन्थान्तरोंके प्राचीन श्लोक इसमें उद्धृत किये गये हैं। विषय प्रतिपादक सभी श्लोक ग्रन्थान्तरोंके कहे जांय तो अत्युक्ति न होगी। जैनमतसे समता रखने वाले मृत्तिका-शुद्धि जैसे व्यावहारिक श्लोकोंका संग्रह भी इसमें किया गया है। इस बातको ग्रंथ कर्ता स्वयं स्वीकार करते हैं। यथा—

श्लोका येऽत्र पुरातना विलिखिता अस्माभिरन्वर्थत-
स्ते दीपा इव सत्सु काव्यरचनामुद्दीपयन्ते परं।
नानाशास्त्रमतान्तरं यदि नवं प्रायोऽकरिष्यं त्वहं
ज्ञाशाऽमाऽस्य महो तदेति सुधियः केचित्प्रयोगंवदाः॥

जब कि इसमें ऐसे श्लोकोंका भी संग्रह है तब संभव है कि उन्होंने कोई विषय जैन धर्मके प्रतिकूल भी लिख दिये हों ऐसी आशंका करना भी निर्मूल है। क्योंकि वे भी स्वयं जैन थे, जैसा खयाल पद पद पर हम करते हैं वैसा वे भी करते थे, जैसी हमारी (वर्तमान समयके पुरुषोंकी) जैनमत के साथ हमदर्दी है वैसी उनकी भी थी, ऐसा नहीं है कि हमही जैनमतकी अनुकूलता-प्रतिकूलताका खयाल करते हों और उन्होंने न किया हो। केवल हमही (वर्तमानके पुरुषोंहीने) जैनत्वका ठेका ले लिया हो और वे इस ठेके से पराङ्मुख हों। सारांश, अपने मतका पक्ष जैसा हमें है वैसा उन्हें भी था। अत एव ऊपरकी आशंका किसी कामकी नहीं है।

कथन और आक्षेप।

इस ग्रन्थमें मुख्यतः पाक्षिक त्रैवर्णिकके आचारका कथन है। नैष्ठिक श्रावक और मुनिके आचारणका कथनभी संक्षेपतः इसमें पाया जाता है। कितने ही विषय ऐसे होते हैं जो अपने अपने स्थानमें ही पालन करने योग्य होते हैं कितने ही ऐसेभी हैं जो हैं तो नियमरूपसे ऊपरके दर्जेमें ही पालन करने योग्य परंतु अभ्यास रूपसे नीचेके दर्जेमें भी पालन किये जाते हैं और कितनेही विषय ऐसे भी हैं जो ऊपर और नीचे दोनोंही दर्जोंमें पालन किये जाते हैं पर स्वस्थानके मूलाचरणका त्याग नहीं किया जाता। कितनेही लोग जो विधि-निषेध मुनिके लिए है उसको नैष्ठिक और पाक्षिकके लिए और जो नैष्ठिकके लिए है उसको पाक्षिकके लिए भी समझ लेते हैं। वे इस खयालको बिलकुल भूल जाते हैं कि यह विधि-निषेध किसके लिए तो है और किसके लिए नहीं है अथवा यह अमुकके लिए है मैं अमुकके लिए इसकी योजना कैसे करता हूं। ऐसे लोग मनःकल्पित एक पक्षमें उतर

---

१ इसका अर्थ पृष्ठ ३ श्लोक नं. ९ में देखो।

जाते हैं और इधर–उधरका दशरा–मसरा करके मार्गको कंटकाकीर्ण बना देते हैं। कितनेही विषय ऐसे हैं जिनका विधान पाक्षिकके लिए है और नैष्ठिकके लिए उनका निषेध है फिरभी वे बेसमझीके कारण नैष्ठिकके निषेधका उपयोग पाक्षिकके लिए भी करने लगते हैं। दृष्टान्तके लिए शासनदेवोंकी सेवा–सुश्रूषाको लीजिये। नैष्ठिक आपत्तिके समय शासन देवोंकी सेवा-सुश्रूषा नहीं करता यह निषेध नैष्ठिकके लिए है न कि पाक्षिकके लिए क्योंकि पाक्षिक आपत्तिके समय शासन देवोंकी सेवा–सुश्रूषा करभी सकता है। ऐसा होते हुए भी वे लोग नैष्ठिकके इस कथनको पाक्षिकके साथ भी लगा लेते हैं। दूसरी बात यह है कि नैष्ठिकके लिए जो यह निषेध है वह आपत्तिके समय है न कि जिनेन्द्र देव की पूजा करते समय, फिर भी उसका उपयोग हर समय सभीके लिए कर दिया जाता है। यदि ऐसा करने वाले अपेक्षाओंके साथ साथ विधि–निषेध करें तो बड़ा अच्छा हो। अत एव पाठकोंसे निवेदन है कि वे ग्रन्थमें वर्णन किये गये विषयोंको समझनेमें यह खयाल रक्खें कि अन्यत्र इस बात का निषेध किसके लिए है और यहां पर उसका विधान किसके लिए है। अगर वे अपेक्षाओं को छोड़ देंगे तो वही गुटाला तदवस्थ बना रहेगा, बिना अपेक्षाके निश्चयनयसे सारा व्यावहारिक कियाकांडभी मिथ्या कहा जा सकता है। अत एव प्रत्येक व्यक्तिको ग्रन्थ पढ़ते समय अपेक्षा ओंको ध्यानमें रखना चाहिए।

इस ग्रन्थके कितनेही विषय आक्षेप्य बना दिये हैं जिन पर अत्यधिक आक्षेप किये जाते हैं। यदि जैनसिद्धान्तका गहरा आलोडन किया जाय और उस पर विश्वास रक्खा जाय तो वे सब आक्षेप सुलझ सकते हैं। जितने भरभी आक्षेप किये जाते हैं वे सब अपना पक्ष बढ़ानेके लिए विनाही समझे किये जाते हैं उनका यहां उत्तर देना व्यर्थ होगा।

विशेष–विवेचन।

यह शास्त्र–प्रसिद्ध है कि—

परस्पराविरोधेन त्रिवर्गो यदि सेव्यते।
अनर्गलमतः सौख्यमपवर्गोऽप्यनुक्रमात्॥

एक दूसरे वर्गको बाधा न पहुंचाते हुए यदि धर्म, अर्थ और कामका सेवन किया जाय तो उससे अनर्गल सुख और अनुक्रमसे मोक्षभी प्राप्त होता है। जब तीनोंके सेवनसे अनर्गल सुख और अनुक्रमसे मोक्ष बताया गया है तब तीनोंका स्वरूप और उनके सेवनका उपायभी अवश्य बताया जाना चाहिए। अत एव दुनियांमें धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र स्वतंत्र प्रसिद्ध हैं। कोई शास्त्र धर्मोपदेश देनेवाले हैं, कोई अर्थोपार्जनका उपाय बताते हैं और कोई काम सेवनकी विधि बताते हैं। कोई ऐसे भी हैं जिनमें धर्मका उपदेश मुख्य रहता है और अर्थ और कामका उपदेश गौण रहता है। यह त्रिवर्णाचार एक ऐसा ग्रन्थ है जो तीनों वर्णोंकी सुबहसे शाम तककी सारी क्रियाओंको बताता है। अत एव इन क्रियाओं अर्थोपार्जन और काम सेवनकी विधिभी आजाती है। यही कारण है कि इस ग्रन्थमें बीजरूपसे धनकमानेकी और कामसेवनकी विधिभी बताई गई है। उसे देख कर बहुतसे लोग चिढ़ जाते हैं कि धर्म शास्त्रोंमें कामका वर्णन क्यों? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यह ग्रन्थ केवल धर्मका उपदेश करनेवालाही

नहीं है किन्तु धर्माविरोधसे अर्थकमानेकी और कामसेवनकी विधिभी बीजरूपसे बताता है। क्योंकि यह त्रिवर्णाचार ग्रन्थ है। त्रिवर्णका आचार धर्म, अर्थ और काम तीनों हैं। इस लिए बीज रूपसे अर्थ और कामका वर्णन करना अनुचित नहीं है। उसका विशेष वर्णन उस विषयके शास्त्रोंमें जानना चाहिए। पर इतना खयाल अवश्य रखना चाहिए कि अर्थका उपार्जन और कामका सेवन धर्म-पूर्वक होना चाहिए। धर्मपूर्वक उपार्जन किया हुआ अर्थ और कामही अनर्गल सुखके कारण हो सकते हैं अन्यथा वे घोर नरकके कारण हैं। इस ग्रंथके प्रकाशक महोदयने काम शास्त्र संबंधी श्लोकोंको अश्लील समझकर उनपर अपनी तरफसे टिप्पणी जोड़ दी है वह ठीक नहीं है अश्लील बात और है और काम शास्त्रका वर्णन और बात है।

इस शास्त्रमें वैद्यक, ज्योतिष, शकुन, निमित्त, स्वास्थ्य रक्षा आदिकाभी थोड़ा थोड़ा कथन किया गया है। केवल सुपारी खाने, बुरे नामवाली कन्याके न विवाहने आदिके विषयमें जो भयानक कथन किया गया है वह उस उस विषयके शास्त्रोंसे अविरुद्ध है ऐसी बातों परसे जो लोग तुमुल युद्ध छेड़ देते हैं वे एकतो उस विषयके शास्त्रोंसे अनभिज्ञ हैं, दूसरे आज कल वे उन शास्त्रोंकी परतंत्रताभी नहीं चाहते। अत एव वे येन केन प्रकारेण अपना मार्ग साफ करना चाहते हैं। मुझे तो इस ग्रन्थका प्रायः कोई भी विषय शास्त्र विरुद्ध नहीं जान पड़ा। इस शास्त्रमें जो जो विषय बताये हैं उनका बीज ऋषिप्रणीत शास्त्रोंमें मिलता है। अत एव साहस नहीं होता कि साधारण समाजके कल्याणकारी इस ग्रन्थकी अवहेलना की जाय। इस बातका भी विश्वास है कि कितने ही सज्जन इस अनुवादको देखकर फड़कैंगे, कुढ़ेंगे, कोसेंगे बिजली की तरह टूटेंगे और अनेक जलीभुनी भी सुनावेंगे। परन्तु—

रूसउ तूसउ लोओ सच्चं अक्खंतयस्स साहुस्स।
किं जूयभए साडी विवज्जियव्वा णरिंदेण॥

—दर्शनसार।

अन्तमें पाठकोंसे निवेदन है कि ग्रन्थके अनुवाद में जहां कहीं त्रुटि रही हो उसे सुधार कर ठीक करेंगे और मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। क्योंकि—

गच्छतः स्खलनं चापि भवत्येव प्रमादतः।

—अनुवादक।

विषय-सूची ।

तीसरा अध्याय.

पांचवां अध्याय ।

छठा—अध्याय।

आठवां-अध्याय।

शुद्धाशुद्धि ।

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धियां ।	शुद्धियां ।
३	२४	तद्दृष्टा	तद्द्रष्टा
५	१८	गणघर	गणधर
६	३०	मोक्षमुख	मोक्षसुख
७	१९	जो बकरेके समान अतिशय कामी हैं वे बकरेके जैसे हैं।	जैसे बकरा अतिशय कामी होता है वैसेही जो प्राणि इननेमें अतिशय कामी हों वे बकरे जैसे हैं।
९	१०	यह	ये चारों
९	२०	माननसे	माननेसे
९	३०	ओ	जो
१३	१	शेय्या	शय्या
१४	१	गर्मा	गर्मी
१४	२१	कोटनवाला	काटनेवाला
१६	१९	शुद्ध	शुद्ध
१८	२०	राग	०
१८	२१	वर्णाश्च	वर्णाश्च
२३	२	चांद जैसा	चन्द्रकान्तमणि जैसा
२७	१९	सैवार	सेवार
२७	२५	गुरूपदश	गुरूपदेश
३१	१९	अग्नि, सूरज, चांद, दीपक, सूर्य, पानी और योगीश्वर-इनको देखता हुआ	अग्नि, सूरज, चाँद, गौ, सर्प, दीपक, संध्या, पानी और योगीश्वर-इनको देखता हुआ; तथा
३२	१	गर्दनके सहारेसे पीठ पीछे	पीठकी तरफसे गलेमें
३२	५	पेशावके समय	अथवा पेशावके समय
३२	२०	सामायिक करते समय	सामायिक, पूजा, जप आदि क्रियाएं करते समय
३२	२६	फल वगैरहसे	फल और कोयलेसे
३३	२७	शौच करे	शौच करे एवं तीन वार शौच करे और तीन ही वार हाथ धोवे।
३४	१९	कमरतक स्नान करके पैरोंको खूब अच्छी तरहसे धोवे	अवशिष्ट मिट्टीसे पैर धोकर कमरतक स्नान करे
३५	२५	गोलीसे	भागसे

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धियां ।	शुद्धियां ।
३५	२१	गोलियें	भाग
३५	२१	पहली गोली	पहला भाग
३५	२१	दूसरी इससे आधी	दूसरा इससे आधा
३५	२२	तीसरी इससे आधी	तीसरा इससे आधा
३८	५	खाशरश्च करिंजश्च	खादिरश्च करंजश्च
३९	१९	शुद्ध	शुद्ध
४०	१५	गुरुके	गृहस्थाचार्य गुरुके
४०	१६	माताको	माताका
४०	२५	नीरोरोता	नीरोगता
४३	१	शुद्धि	शुद्धि
४३	१८	शूद्रों द्वारा	धोबी कुम्हार आदि कारु शूद्रोंद्वारा
४४	६	यज्ञोपवनीतको	यज्ञोपवीतको
४४	१३	ओर	ओर
४४	१९	अशौचान्ते	आशौचान्ते
४४	२१	दूरान्तमरणे	दूरात्तन्मरणे
४४	२३	पत्र	पात्र
४४	२५	यंत्रे मंत्रे	यंत्रमंत्रैः
४५	२	टट्टी होकर आनेपर	सूतक शुद्धिके दिन
४५	२	मशान घाटके ऊपर जानेपर	मुर्दा जलानेको जानेपर
४५	३	किसीका मरण सुननेपर	जातीय या गोत्रजका मरण सुननेपर
४५	५	अपने कुटुंबीकी दूरसे या पास से मरणकी सुनावनी आनेपर	देशान्तरवर्ती ऋषियोंका मरण सुनने पर
४५	७	और जीमते समय पत्तल फट जानेपर	तथा उनके जूठे पात्रोंसे छू जानेपर
४७	१७	मुखकृत्	सुखकृत्
४७	२१	शूद्रोंको इस उपर्युक्त शौचाचार विधिका करना सुखकर नहीं है	शूद्रोंको इस उपर्युक्त संपूर्ण शौचाचार विधिका करना सुखकर नहीं है अर्थात् वे उपर्युक्त सम्पूर्ण शौचाचार विधि न कर अपने योग्य ही करें ।
४८	९	शुद्धाः	शुद्धाः
४९	५	ययोपवीत	यज्ञोपवीत
४९	१४	दाहिने हाथमें	दाहिने कंधेपर

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धियां।	शुद्धियां।
५०	१२	पुण्य-पापक	पुण्यपापका
५०	१६	मुक्तिका होना	मुक्तिका होना इत्यादि
५१	१	गौत	गौंत
५२	१	सहज	यह जल
५३	१७	कोई भी बात सत्य न ठहरेगी	ऐसे कितने ही विषय हैं जो समझमें नहीं आते हैं। ऐसी दशामें ये सब असत्य ही ठहरेंगे।
५४	२२	पांछ	पौंछ
५५	५	कछौटा लगानेवाला	कछौटा लगाने वाला, कछौटा न लगाने वाला
५६	२	नीले रंगका या लाल रंगका	नीले रंगका
५६	२१	शूद्रों द्वारा	कारु शूद्रों द्वारा
५६	२६	शूद्रों द्वारा	कारु शूद्रों द्वारा
६०	९	और मंत्रस्नान	और मानसस्नान
६०	१२	परातेंक	पैरोंतक
६२	९	या टेढ़ा-मेढ़ा होकर	या झुककर
६२	१७	आचमन करनेके बाद	(इतना पद नहीं होना चाहिए)
६४	२३	समुग्र	समुद्र
६६	१५	विदी	वदी
७२	११	चार्धमष्टाविंशतिकं	चार्धं सप्तविंशतिकं
७३	१	शब्दके	शब्दोंके
७७	२०	विद्याके कारण	विद्यासंबंधी
७८	३	ऊपरि	उपरि
८३	११	यक्षी	यक्ष
८३	१२	यक्ष	यक्षी
८३	२१	उनके तर्पण	ॐ ह्रीं अर्हं जयाद्यष्ट इत्यादि उनके तर्पण
८३	२२	यह उनको नमस्कार	ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ इत्यादि नमस्कार
८७	३	इन श्लोकोंमें ऊंच नीच दोनों तरहके मनुष्योंको न	इन श्लोकोंमें ऊंच जातिके मनुष्यों को भी न
८७	५	करना है।	करना है तथा जो छूने योग्य नहीं हैं उन्हें किसी भी हालतमें न छूवे।

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धियां।	शुद्धियां।
८७	१४	आदि दुष्ट	आदि उनके दुष्ट
८७	१५	जिससे केश	जिससे उनके केश
८८	१	आते जाते हों ऐसे	आते जाते हों अथवा जहांका आने जानेका रास्ता तंग हो ऐसे
८८	१६	बहुत मजबूत मकान चिनवावे	नीवको बहुत मजबूत भरे
९३	१६	इस तरह गर्भमंदिरमें	गर्भमंदिरमें
९४	१२	पादकाएं	पादुकाएं
९६	१९	स्तंभाकार	मानस्तंभाकार
९९	४	फाल	फल
१००	२५	इसके बाद आह्वान स्थापना और सन्निधिकरण कर उस जिनबिंब की सुगंधित जलसे प्रक्षाल करे।	इसके बाद जिनेन्द्रके चरणोंकी सुगंधित जलसे प्रक्षालकर आवाहन, स्थापना और सन्निधिकरण करे।
१०१	६	क्रमसे जलसे भरे हुए	सुगंधित जलसे, जलसे और इक्षु-रस आदिसे भरे हुए
१०१	१२	कलशस्थापन	कलशोन्द्धरण और अभिषेक
१०१	२२	चोद्धृत्य	चोद्धृत्य
१०१	२४	सर्वौषधि रससे भरे हुए कलशसे जिनदेवका अभिषेक करे।	सर्वौषधि रससे जिनदेवका उद्व-र्तन करे।
१०३	१२	बाईं ओर जलमंत्रादिके	बाईं ओर बनी हुई होमशालामें जल मंत्र आदिके
१०३	१३	चारों कोनों पर	ऊपर चौकोन
१०३	१८	देवभागोंपर छत्रत्रय	देवभागोंपर बनी हुई छोटी वेदि-कापर छत्रत्रय
१०३	२४	उनसे पूववर्ती जो भाग है उनपर	उनसे पूर्वमें अर्थात् दोनों ब्रह्म-भागोंके मध्यमें
१०४	१३	कुंडकी	कुंडोंकी
१०७	१७	गये थे	जाते हैं
११५	२५	व्रतोद्यापनके समय	यज्ञोपवीत संस्कारके समय
११६	१२	तध्रुवं	तद्ध्रुवं
११७	११	स रह	इस तरह
११८	९	श्रीजिनपूजन	श्रीजिनस्थापन
११८	२०	मध्य देशमें जिनदेवकी	मध्य भागमें वास्तुदेवोंकी
११८	२१	ब्रह्मदेवकी	ब्रह्म नामके यक्षकी
११८	२५	ग्रहबालि	गृहबलि

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धियां।	शुद्धियां।
१३७	२१	स्थापनाकी थी	स्थापना की जाती है
१३७	२५	की थी	की जाती है
१४२	२१	भद्रासन बैठे	भद्रासन पर बैठे
१९५	१३	अण्ये–पान	अपेय–पान
१९७	१९	भी दूषित है	भी रात्रिम दूषित
१९७	२७	कायसे अन्न	कायसे रात्रिमें अन्न
२००	११	अग्निसे पकाये	अग्निसे न पकाये
२०५	२४	चैत	चैत्य
२०८	१३	धर्में	घर्में
२२१	२३	भूखे रहने दे	भूखे न रहने दे
२२३	३२	बात भी न करे	बात भी न करे अर्थात् इनके साथ लेन–देन व्योहार न करे
२२६	१६	न्यायमाग	न्यायमार्ग
२३२	१६	ब्रह्मस्थानको छोड़	पहलेके ब्रह्मभागोंको छोड़
२३२	१७	किसी दूसरे स्थानमें	आगेके ब्रह्मभागोंकी पूर्व दिशावाले मनुष्यभाग और देवभागोंमें
२३२	२६	चतुथ	चतुर्थ
२३३	२	अग्निमंडलोंपर	उन मंडलोंपर
२५२	१२	दाहिनी ओरके	बाईं ओरके
२५३	१	चूलाकम	चूलाकर्म
२५३	१४	भेऽन्हि	शुभेऽह्नि
२५७	१०	जमादि	जयादि
२६५	१६	दाहिने पैरको	बायें पैरको
२७४	३	मृत्योश्व	मृत्योश्च
२७६	२३	घरपर अथवा शूद्रके घर पर रात्रिमें भोजन	घरपर अथवा रात्रिमें अथवा शूद्रके घरपर भोजन
२८६	१७	भत्ता	भत्ती
३०९	२०	याग्य	योग्य
३२०	२०	अर्घ्य चढ़ावे	उसके हाथमें अर्घ्य दे
३२१	१७	मधुपक	मधुपर्क
३२२	८	कन्याका मामा वरको हाथ पकड़कर वेदीके पास लावे	घरके दरवाजेपर वरके आजानेपर कन्याका मामा उसका हाथ पकड़कर घरके भीतर ले जाय।

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धियां।	शुद्धियां।
३२४	१३	वेदीके दोनों तरफ	उक्त धान्यके दोनों पुंजोंकी आजू–बाजू
३२४	१७	पूर्वोक्त दोनों धान्यके	उन दोनों धान्योंके
३२६	२०	पेन्त्रैः	मंत्रैः
३३९	१२	चेद्व्रतेदशम्	च व्रते दशम्
३३९	१३	विवाहमें भी	विवाहमें
३३९	१४	सोलह दिनके	दश दिनके
३६१	११	क कर	कह कर
३७२	३	मस्तकपर पुरोहितजी	मस्तकपर अमृतमंत्रद्वारा पुरोहितजी
३७४	२३	सूतक है	जननाशौच है मरणाशौच कुछ नहीं
३८४	१	ननँदका और	ननँदका और ननँद भावीका तथा
३८४	१	सालेका	सालेका और साला बहनोईका

* * * * *

इनके सिवाय कुछ श्लोकोंका अर्थ अशुद्ध हो गया है। उनका शुद्ध भाषांतर तथा भावार्थ हम नीचे लिखते हैं। पाठक यथास्थान ठीक करके ग्रंथका स्वाध्याय करें।

पृष्ठ ३३ में श्लोक नं० ३६:—

जलाशयमेंसे किसी पात्रमें प्रासुक जल ले, दोनों जाँघोंके बीचमें दोनों हाथ करके यथोचित बैठे और उस जलसे शौच करे।

पृष्ठ ३३ में श्लोक नं० ३७:—

जलाशयके भीतर गुद–प्रक्षालन न करे, किन्तु किसी पात्रमें छना हुआ पवित्र जल जुदा लेकर उससे शौच करे। यदि किसी पात्रमें जुदा जल न लेकर जलाशयमें ही शौच करे तो वह भी जलसे करीब एक हाथ दूर बैठकर शौच करे। यहां 'गालितेन पवित्रेण' के स्थानमें 'रत्निमात्रं जलं त्यक्त्वा' ऐसा भी पाठ है।

पृष्ठ ३७ में श्लोक नं० ६०:—

भावार्थ—यह उद्धृत श्लोक है। इसका जैन सिद्धान्तके अनुसार तात्पर्य इतना ही है कि कुरला करनेवाला अपने मुखके कुरले अपनी बाईं ओर फेंके; सामने या पीठकी तरफ या दाहिनी ओर न फेंके।

पृष्ठ ५२ में श्लोक नं० १३:—

भावार्थ—यह प्रकरण तर्पणका है। आगे पृष्ठ नं० ८१, ८२ और ८३ में ऋषितर्पण, पितृतर्पण और जयादिदेवतोंके तर्पण मंत्र हैं। इनके अलावा वस्त्र निचोड़कर पितरोंको जल देनेका कोई मंत्र नहीं है। और श्लोक नं० १२ में मंत्र–पूर्वक वस्त्र निचोड़ना लिखा है तथा तर्पणके अनन्तर वस्त्र–संप्रोक्षण और वस्त्र–परिधारण होता है। वस्त्र निचोड़नेका नंबर बादमें आता है। परंतु यहां बीचहीमें वस्त्र निचोड़ा हुआ जल देना लिखा हुआ है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद श्लोक नं० ११, १२, १३, प्रकरण पाकर किसीने क्षेपक तो नहीं मिला दिये हैं या किसीने

टिप्पणीमें लिखे हों और लेखकोंकी गलतीसे वे मूल ग्रन्थमें सामिल हो गये हों ? प्रायः इस ग्रन्थ की कोई कोई प्रतियोंमें विभिन्नता भी देखी जाती हैं। कितने ही श्लोक ऐसे हैं जो मुद्रित मराठी पुस्तकमें नहीं हैं और वे दूसरी प्रतियोंमें हैं। इसी तरह संभव है कि कोई ऐसी प्रति भी हो जिसमें ये श्लोक न भी हों। कदाचित् हों भी तो अपेक्षावश दोषाधायक नहीं हैं।

पृष्ठ ५३ में श्लोक नं० १७:—

भावार्थ—इस श्लोकका तात्पर्य सिर्फ वस्त्र—परिधारणके अनंतर शरीरको न पोंछनेका है। अतएव साधारण जनताको इस युक्ति द्वारा न पोंछनेका उपदेश—मात्र दिया है। अथवा श्लोक नं० १७–१८–१९ उद्धृत जान पड़ते हैं। अथवा प्रकरणानुसार या तो क्षेपक रूपसे किसीने मिला दिये हों या टिप्पणीमेंसे मूलमें शामिल हो गये हों। संभव है ऐसा ही हुआ हो। क्योंकि प्रायः देखा गया है कि टिप्पणीका पाठ भी लेखकोंकी गलतियोंसे मूलमें आ जाता है। अस्तु, कुछ भी हो इन श्लोकोंका सिर्फ तात्पर्यार्थ ही ग्रहण करना चाहिए। तात्पर्यार्थ इतना ही है कि स्नान कर वस्त्र पहन लेनेके बाद शरीरको न पोंछे।

पृष्ठ ५५ में श्लोक नं० २६:—

नीले रंगका कपड़ा दूरसे ही त्यागने योग्य है अर्थात् श्रावकोंको नीले रंगसे रंगा हुआ कपड़ा कभी नहीं पहनना चाहिए। परंतु सोते समय रतिकर्ममें स्त्रियां यदि नीला वस्त्र पहनें तो दोष नहीं है।

पृष्ठ ५७ में श्लोक नं० ५७:—

सूखी हुई लकड़ीपर कपड़ा सुखा देने पर दो वार आचमन करनेसे शुद्ध होता है। अतः पूर्व दिशामें या उत्तर दिशामें धोया हुआ वस्त्र सुखावे।

पृष्ठ ७१ में श्लोक नं० ११३, ११४:—

अपनेको जैसा अवकाश हो उसके अनुसार पंचनमस्कार मंत्रके एकसौ आठ या चौपन या सत्तावीस जाप देवे। पंचनमस्कार मंत्रके दो दो और एक पदपर विश्राम लेते हुए नौ वार जपने पर सत्ताईस उच्छ्वास होते हैं। भावार्थ—"अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः" इन दो पदोंको बोलकर थोड़ा विश्राम ले, फिर "आचार्येभ्यो नमः उपाध्यायेभ्यो नमः" इन दो पदोंका बोलकर थोड़ा विश्राम ले, बाद "साधुभ्यो नमः" इस एक पदको बोलकर विश्राम लेवे। एवं एक पंचनमस्कार मंत्रमें तीन उच्छ्वास, और नौ पंचनमस्कारोंमें सत्ताईस उच्छ्वास होते हैं। इस विधिके अनुसार पंचनमस्कार मंत्रके उपर्युक्त जाप देनेपर सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

पृष्ठ १०३ में श्लोक नं० १०९–११०:—

पहलेके ब्रह्मभागोंको छोड़कर आगेवाले ब्रह्मभागोंकी पूर्वदिशावर्ती मानुषभाग और देवभागोंमें तीन कुंड बनवावे। उन तीनों कुंडोंके बीचमें एक अरत्निप्रमाण लंबा, इतना ही चौड़ा और इतना ही गहरा चौकोन—जिसके चारों ओर तीन मेखला (कटनी) खिंची हुई हों ऐसा एक कुंड बनवावे।

—अनुवादक।

प्रकाशकीय वक्तव्य ।

खास करके जबसे श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार लिखित श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रंथोंके समालोचना विषयक लेख प्रकाशित हुए हैं, तबसे दिगम्बर जैन समाजमें त्रिवर्णाचार ग्रंथके कई प्रसंगोंको लेकर बहुत वादानुवाद चल रहा है।

लगभग चार वर्ष हुए हमारे इस कार्यालयके संचालक स्वर्गीय पं० उदयलालजी काशलीवालने यह विचार किया कि, " संस्कृत न जानने वाले स्वाध्याय प्रेमी भाई अवश्य ही इस बातके इच्छुक होंगे कि यदि त्रिवर्णाचार ग्रंथका भाषानुवाद होता तो हम भी उसकी स्वाध्याय कर उन विषयोंको विचार सकते। " अतः स्वर्गीय पंडितजीने हमारे साथ विचार करके इस ग्रंथको हिंदी-अनुवाद-सहित प्रकाशित करना निश्चय किया और अनुवादका कार्य श्रीयुक्त पंडित पन्नालालजी सोनीको सौंपा।

इस ग्रंथका छपना प्रारंभ होनेके कुछ ही दिनों बाद हम वहीं रहनेके विचारसे अपने देश हरदा चले गये और वहां खादी बनानेका कारखाना जारी कर दिया। पश्चात् ग्रंथके कुछ ही फार्म छपे थे कि मित्रवर्य पंडित उदयलालजी काशलीवालका स्वास्थ्य खराब हो चला और इसलिये हमने उन्हें वायुपरिवर्तनार्थ तथा औषधोपचारार्थ हरदा बुला लिया। वे वहां एक माह रहे। वहांसे औषधोपचारार्थ वर्धा और फिर नाशिक गये, पर आराम न हुआ। और दुःख है कि नाशिकमें ही उनका स्वर्गवास हो गया। उस महान साहित्य-सेवीके वियोगसे इस कार्यालयको जो क्षति पहुंची है वह इसके द्वारा उनके समयमें प्रकाशित अनेक ग्रंथोंके पाठकों से छिपी न होगी। खास आपके द्वारा अनुवादित श्रीनेमिपुराण, भक्तामरकथा (मंत्र-यंत्र-सहित), नागकुमारचरित, यशोधरचरित, पवनदूत (काव्य), सुदर्शनचरित, श्रेणिकचरितसार, और सुकुमालचरितसार ग्रंथ इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीपांडवपुराण, सम्यक्त्वकौमुदी और चन्द्रप्रभचरितके नवीन अनुवादोंका ऐसे अच्छे रूपमें प्रकाशित होना भी आपहीके उद्योगका फल है। इनके सिवाय उक्त स्वर्गीय पंडितजी द्वारा अनुवादित अथवा लिखित श्रीभद्रबाहुचरित, धन्यकुमारचरित धर्मसंग्रहश्रावकाचार, आराधनासारकथाकोष, नेमिचरित (काव्य), संशयतिमिरप्रदीप, वनवासिनी आदि कई जैन ग्रंथ भिन्न २ प्रकाशकों और व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित हुए हैं। अवश्य ही मित्रवर्य पं० उदयलालजी काशलीवालके उत्तर अवस्थाके विचारोंसे हम सहमत नहीं थे और उन विचारोंके परिणाम-स्वरूप उनकी उस कृतिसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था, तथापि इस कार्यालय द्वारा उन्होंने दि० जैनसाहित्य एवं दि० जैन समाजकी जो अमूल्य सेवा की है उसे हम कदापि नहीं भूल सकते और उसके लिये यह कार्यालय तथा दि० जैन समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

मित्रवर्य पं० उदयलालजीके स्वर्गवास होजाने और बादमें डेढ़वर्षतक हमारे यहां न रहनेके सबब इस ग्रंथके प्रकाशित होनेमें इतना ज्यादा विलम्ब हो गया। इसके लिये हम पाठकोंसे क्षमा प्रार्थी हैं।

उपर्युक्त वक्तव्यसे यह बात प्रगट है कि लगभग चार वर्षके दीर्घ कालमें यह ग्रंथ छपकर प्रकाशित हो रहा है। अतः समय २ पर भिन्न २ महाशयों द्वारा इसका प्रूफ संशोधन हुआ है। तथापि पूरा ग्रंथ छप जाने पर अनुवादक महाशयने इसका आदिसे अंततक अवलोकन कर जो २ अशुद्धियां थीं उनका शुद्धिपत्र तथा जिन श्लोकोंका अनुवाद ही गलत हुआ था उनका शुद्ध अनुवाद लिख दिया, जो साथमें प्रकाशित है। पाठक उसके अनुसार यथास्थान संशोधन करके फिर ग्रंथका स्वाध्याय करें।

इस ग्रंथके विषय और अनुवादके सम्बन्धमें हम और तो कुछ कह नहीं सकते हैं, पर इतना जरूर कहेंगे कि अनुवादक महाशयने बड़े परिश्रमके साथ सरल भाषामें इसका अनुवाद किया है। इसमें जन्मसे लेकर मृत्युपर्यंत तीनों वर्णोंका आचरण और क्रियाओंका बहुत विस्तारके साथ खुलाशा वर्णन किया है। अतः यदि विवादस्थ बातोंको, थोड़ी देरके लिये, हम एक तरफ रहने दें, तौभी यह ग्रंथ गृहस्थके लिये बहुत ही उपयोगी, एवं प्रत्येक जैनोंके पढ़ने योग्य है।

अंतमें हम अनुवादक महाशयको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर इस ग्रंथका अनुवाद कर दिया। बिना आपकी सहायताके हम इसे इस रूपमें प्रकाशित करनेमें असमर्थ रहते।

बम्बई
ता० २४-११-२४ ई०

निवेदक—
बिहारीलाल कठनेरा जैन।

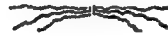


श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीसोमसेनभट्टारक-विरचित

त्रैवर्णिकाचार ।

पहला अध्याय ।



मङ्गलाचरण ।

श्रीचन्द्रप्रभदेवदेवचरणौ नत्वा सदा पावनौ,
संसारार्णवतारकौ शिवकरौ धर्मार्थकामप्रदौ ।
वर्णाचारविकासकं वसुकरं वक्ष्ये सुशास्त्रं परं,
यच्छ्रुत्वा सुचरान्ति भव्यमनुजाः स्वर्गादिसौख्यार्थिनः ॥ १ ॥

जो धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके कारण हैं, सुख देनेवाले हैं और भव्य-पुरुषोंको संसार-समुद्रसे तारनेवाले हैं उन श्रीचन्द्रप्रभदेवके कान्तिमान् पवित्र चरणोंको नमस्कार कर त्रिवर्णाचार नामके परम पवित्र शास्त्रको कहूँगा । यह शास्त्र पुण्यका करनेवाला है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंके नित्य-नैमित्तिक आचरणोंको प्रकट करनेवाला है । जिसे सुनकर स्वर्गादि सुखोंको चाहनेवाले भव्य पुरुष उत्तम मार्गमें लगेंगे ॥ १ ॥

यः श्रीमद्धरिवंशवंशजलजाल्हादैकसूर्योपमो,
ये के धर्मपरायणा गुणयुतास्तेषां सदा स्वाश्रयः ।
ज्ञानध्यानविकासको मुनिजनैः सेव्यो मुदा धार्मिकैः,
स श्रीमान्मुनिसुव्रतो जिनपतिर्दद्यान्मनोवाञ्छितम् ॥ २ ॥

सूर्य जैसे कमलोंका विकास करनेवाला है वैसे ही जो हरिवंशरूपी कमलोंका विकास करनेको एक अद्वितीय सूर्य हैं, जो कोई गुणोंसे युक्त धर्मात्मा पुरुष हैं उनके वे सदा आश्रय-स्थान हैं—उनकी रक्षा करनेवाले हैं, ज्ञान-ध्यानको बढ़ानेवाले हैं और जिनकी मुनिजन सेवा करते हैं वे श्रीमुनिसुव्रतनाथ मेरे मनोवांछित कार्योंकी सिद्धि करें ॥ २ ॥

वन्दे तं पार्श्वनाथं कमठमदहरं विश्वतत्त्वप्रदीपं,
कर्मारिघ्नं दयालुं मुदितशतमखैः सेव्यपादारविन्दम् ।
शेषेशो यस्य पादौ शिरसि विधृतवानातपत्रं च मूर्ध्नि,
मुक्तिश्रीर्यस्य वाञ्छां प्रतिदिनमतुलां वाञ्छति प्रीतियुक्ता ॥३॥

मैं उन पार्श्वनाथ भगवानकी वन्दना करता हूँ जो कमठासुरके मदको चूरचूर करनेवाले हैं, सम्पूर्ण तत्त्वोंको प्रकाश करनेके लिए दीपक हैं, कर्म-शत्रुओंको मारकर दूर फेंकनेवाले हैं, छोटे बड़े सब जीवों पर दया करनेवाले हैं, जिनके चरण-कमलोंकी बड़े बड़े इंद्र सेवा करते हैं, जिनके चरणोंको शेषनाग अपने शिरपर धारण करता है—उनके सिरपर छत्र धारण किये खड़ा है और जिनकी मोक्ष-लक्ष्मी प्रीतिपूर्वक प्रतिदिन अनुपम चाह करती रहती है ॥ ३ ॥

नौमि श्रीवर्द्धमानं मुनिगणसहितं सप्तभङ्गप्रयोगै,-
र्निर्दिष्टं येन तत्त्वं नवपदसहितं सप्तधाऽऽचारयुक्त्या ।
सुज्ञानक्ष्माजबीजं नवनयकलितं मोक्षलक्ष्मप्रदायं,
सुप्रामाण्यं परैकान्तमतविरहितं पश्चिमं तं जिनेन्द्रम् ॥ ४ ॥

जो मुनियोंके समूहसे युक्त हैं, जिन्होंने प्रखर युक्तियोंके साथ साथ अस्ति, नास्ति आदि सप्तभंगोंके द्वारा नव पदार्थ और सात तत्त्वोंका उपदेश दिया है, जैसे बीज वृक्षकी उत्पत्तिका कारण है वैसे ही जो परमात्मा केवलज्ञानकी उत्पत्तिमें कारणभूत हैं, नव प्रकारके नयोंसे युक्त हैं, प्रमाण रूप हैं, मोक्ष-लक्ष्मीके देनेवाले हैं और अनेकान्तरूप हैं उन श्रीवर्धमान अन्तिम तीर्थकरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

श्रीभारतीमखिललोकसुखावधारिणी,-
मानन्दकन्दजननीं जनजाड्यनाशिनीम् ।
तत्त्वावकाशकरिणीं वरबुद्धिदायिनीं,
वन्दे हितार्थसुखसाधनकार्यकारिणीम् ॥ ५ ॥

मैं सरस्वती-देवीकी अपने हृदयमें उपासना करता हूँ जो सम्पूर्ण संसारी जनोंके सुखका निश्चय करानेवाली है, उनको आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, उनके अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाली है, तत्त्वोंका प्रकाश करनेवाली है, सद्बुद्धि देनेवाली है और प्राणियोंके हितके अर्थ सुखका उपाय दिखानेवाली है ॥ ५ ॥

चारित्रोज्वलगन्धवासितजनं शिष्येषु कल्पद्रुमं,
वन्देऽहं परलोकसारसुखदं सिद्धान्तपारप्रदम्।
आचार्यं जिनसेनमात्मचिदुदैर्भव्यौघसस्यं घनं,
संसेव्यं प्रगुणैर्गरिष्ठपददं रत्नत्रयालङ्कृतम् ॥ ६ ॥

मैं उन आचार्य प्रवर जिनसेनको नमस्कार करता हूँ जिन्होंने अपने चारित्रकी निर्मल सुगन्धसे सबको सुगन्धित किया है, जो अपने शिष्योंके मनोरथोंको पूर्ण करनेमें कल्पवृक्ष हैं, परलोकमें सारभूत सुखका मार्ग दिखानेवाले हैं, सिद्धान्तके पार पहुँचे हुए हैं; और जैसे जल देनेसे धान्य हराभरा हो जाता है वैसे ही उनके ज्ञान-जलसे भव्यसमूह आल्हादित होता है, अच्छे अच्छे गुणीजन जिनकी सेवा करते हैं, उत्तम स्थानके देनेवाले हैं और रत्नत्रयसे भूषित हैं ॥ ६ ॥

कलियुगकलिहन्ता कुन्दकुन्दो यतीन्द्रो,
भवजलनिधिपोतः पूज्यपादो मुनीन्द्रः।
गुणनिधिगुणभद्रो योगिनां यो गरिष्ठो,
जयति नियमयुक्तः सिद्धसेनो विशुद्धः ॥ ७ ॥

कलिकाल-सम्बधी पापोंको नाश करनेवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्य, भव-समुद्रसे पार ले जानेवाले और सम्पूर्ण मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीपूज्यपादाचार्य, गुणोंकी खान श्रीगुणभद्र आचार्य और चारित्रसे युक्त निर्मल श्रीसिद्धसेन आचार्य जयवन्त रहें ॥ ७ ॥

महेन्द्रकीर्तेश्चरणद्वयं मे, स्वान्ते सदा तिष्ठतु सौख्यकारि।
सिध्दान्तपाथोनिधिपारगस्य, शिष्यादिवर्गेषु दयान्वितस्य ॥ ८ ॥

जो सिद्धान्त-समुद्रका पार पा चुके हैं और अपने शिष्यवर्गोंपर दया रखनेवाले हैं उन श्री महेन्द्रकीर्ति भट्टारकके सुख उपजानेवाले दोनों चरण मेरे अन्तःकरणमें सदैव निवास करें ॥ ८ ॥

यत्प्रोक्तं जिनसेनयोग्यगणिभिः सामन्तभद्रैस्तथा,
सिध्दान्ते गुणभद्रनाममुनिभिर्भट्टाकलङ्कैः परैः।
श्रीसूरिद्विजनामधेयविबुधैराशाधरैर्वाग्वरै,-
स्तदृष्ट्वा रचयामि धर्मरसिकं शास्त्रं त्रिवर्णात्मकम् ॥ ९ ॥

जिनसेन, समन्तभद्र, भट्टाकलङ्क, ब्रह्मसूरि और पंडित आशाधर आदि प्रौढ़ विद्वानोंने अपने अपने रचे हुए ग्रन्थोंमें जो कहा है उसीको देखकर तीनों वर्णोंके आचार-रूप इस धर्मरसिक शास्त्रकी रचना की जाती है ॥ ९ ॥

ब्रह्मज्ञानविकासका व्रततपोयुक्ताश्च ते ब्राह्मणा,-
स्त्रायन्ते शरणच्युतानपि नराँस्ते क्षत्रियाः सम्मताः।

धर्माधर्मविवेकचारचतुरा वैश्याः स्मृता भूतले,
ज्ञानाचारमहं पृथक्पृथगतो वक्ष्यामि तेषां परम् ॥ १० ॥

जो आत्म-ज्ञानका विकास करनेवाले हैं, व्रत और तप-सहित हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं। निराश्रय पुरुषोंकी भी जो रक्षा करते हैं वे क्षत्रिय माने गये हैं। और जो धर्म-अधर्मकी जाँच करनेमें प्रवीण हैं वे वैश्य होते हैं। अतः इनका ज्ञान और आचरण जुदा जुदा कहा जाता है ॥ १० ॥

सज्जनदुर्जनवर्णन।

सन्तो जना न गणयन्ति सदा स्वभावात्, क्षुद्रैः प्रकल्पितमुपद्रवमल्पवत्कौ,
दाह्यं तृणाग्निशिखया भुवि तूलमेकं, तापोऽपि नैव किल यत्पुरतोदकानाम् ॥ ११ ॥

दुर्जनोंका यह स्वभाव है कि वे पृथिवीपर सज्जनोंके ऊपर कुछ न कुछ उपद्रव करते ही रहते हैं, किन्तु सज्जनोंका भी स्वभाव है कि वे उनकी जरा भी पर्वाह नहीं करते; प्रत्युत दुर्जनोंको ही शर्मिंदा होना पड़ता है। सो ठीक ही है जो तृणोंकी अग्निकी ज्वाला रुईको जलाती है वही जलके सामने लापता हो जाती है। सारांश यह कि यदि कोई दुष्ट हमारी इस रचनामें दोष दे तो भी हमें कोई पर्वाह नहीं है। दुष्टोंके थोड़े भी उपद्रवसे क्षुद्र पुरुष ही ऊब कर अपने कर्तव्य-पथसे हाथ संकोच लेते हैं, पर महापुरुष तो अपने प्रारम्भ किये हुएको पूर्ण करके ही छोड़ते हैं, चाहे दुष्ट कितना ही उपद्रव क्यों न करें ॥ ११ ॥

गुणानुपादाय सदा परेषां, गुणैर्युतानां गुणिनो भवन्तु,
सन्तोऽथ दोषानपि दुर्जनाश्च, सर्वे स्वदोषाः परिकल्पनीयाः ॥१२ ॥

सज्जन पुरुष तो उन गुणी पुरुषोंके गुणोंको ग्रहण कर स्वयं गुणवान् बन जाते हैं और दुर्जन पुरुष उनके दोषोंको ग्रहण कर दोषी ही बने रहते हैं ॥ १२ ॥

गृह्णातु दोषं स्वयमेव दुर्जनो, धनं स्वकीयं न निषिध्यते मया,
गुणान्मदीयानपि याचितो मुहुः, सर्वत्र नाङ्गीकुरुताद्धटेन सः ॥१३॥

वह दुर्जन मनुष्य मेरे दोषोंको स्वयं अपना ले। वे दोष उसका धन है, अतः मैं उसको अपने धनको अपनाते हुए मना नहीं करता; क्योंकि वह वार वार प्रार्थना करने पर भी मेरे गुणोंको कभी स्वीकार ही नहीं करेगा ॥ १३ ॥

कविर्वेत्ति काव्यश्रमं सत्कवेर्हि, स्फुटं नाकविः काव्यकर्तृत्वहीनः,
यथा बालकोत्पत्तिपीडां प्रसूतौ, न वन्ध्या विजानाति जानाति सूता ॥ १४ ॥

कवि ही सत्कविके काव्यके परिश्रमको पहचानता है। जो अकवि है—कविता करना ही नहीं जानता है—कविके श्रमको वह क्या पहचानेगा। जैसे प्रसूतिके समय बालककी उत्पत्तिसे होनेवाली पीड़ाका अनुभव बाँझ स्त्री नहीं कर सकती, किन्तु जो स्त्री पुत्र जनती है वही उस पीड़ाको जानती है॥ १४॥

गुणेषु दोषेषु न यस्य चातुरी, निन्दा स्तुतिर्वा न हि तेन कीर्त्यते ।
जात्यन्धकस्येव हि धृष्टकस्य वै, रूपेऽत्र हासाय परं विचारणा ॥ १५ ॥

जैसे जन्मान्ध पुरुषका रूपके विषयमें विचार जाहिर करना हास्यास्पद है वैसे ही जिस खल पुरुषमें गुण-दोषोंकी पहचान करनेकी चतुराई नहीं है, जो निन्दा और स्तुति करना भी नहीं जानता है फिर भी यदि वह उनके सम्बन्धमें बोले तो केवल उसकी हँसी ही होगी ॥ १५ ॥

काव्यं सूते कविरिह कलौ तद्गुणं सन्त एव,
तन्वन्त्याराद्गुणगणतया स्वं गुणं ख्यापयन्तः ।
अम्भः सूते कमलवनकं सौरभं वायुरेव,
देशं देशं गमयति यथा द्रव्यजोऽयं स्वभावः ॥ १६ ॥

लोकमें कवि तो केवल कविता करनेवाले होते हैं, किन्तु सज्जनगण उसके गुणोंको चारों ओर फैलाते हैं—ऐसा करते हुए वे एक प्रकारसे अपने ही गुणोंकी प्रख्याति करते हैं। सो ठीक ही है, जो दूसरोंके गुणोंका बखान करते हैं उनके गुणोंका बखान पहले होता है। जैसे कि जल कमलोंको उत्पन्न करता है और उसकी सौरभको वायु देश देशमें ले जाता है; और वह वायु स्वयं उनकी सुगंधसे सुगन्धित होता है। द्रव्योंका स्वभाव ही प्रायः ऐसा होता है जो एक पुरुष किसी कार्यको कर देता है और उससे दूसरे पुरुष फायदा उठाते हैं ॥ १६ ॥

गुरुरूपये भव्यजना वदन्ते, जिनेश्वरैरुक्तमुपाश्रिताय ।
शब्दास्तदर्थाः सकलाः पुराणा, निन्दा न कार्या कविभिस्तु तेषाम् ॥ १७ ॥

जिस धर्मके स्वरूपको गणधरोंके लिए श्री जिनदेवने कहा था उसीको भव्यजन—गणधर, आचार्य—अपने भक्तोंको कहते हैं। सारे शब्द भी प्राचीन हैं और उनके वाच्य पदार्थ भी प्राचीन ही हैं। इस लिए जिन वाच्य अर्थोंके लिए जिन वाचक शब्दोंका प्रयोग जैसा जिनदेवने किया था वैसा ही आचार्य करते हैं। इस विषयमें कवियोंको उनकी निन्दा नहीं करना चाहिए ॥ १७ ॥

छन्दोविरुद्धं यदलक्षणं वा, काव्यं भवेच्चेन्निविडं प्रमादात् ।
तदेव दूरीकुरुतात्र भव्यं, साध्वेव हि स्वीकुरुतात्र सन्तः ॥ १८ ॥

यदि प्रमाद-वश कोई रचना छन्दशास्त्रसे विरुद्ध अथवा व्याकरणसे विरुद्ध हो तो उसे सज्जन-गण छोड़ दें और जो भव्य—सुन्दर—हो, अच्छी हो उसे स्वीकार करें ॥ १८ ॥

परिहर्तव्यो दुर्जन इह लोके भूषितोऽपि गुणजालैः ।
मणिना भूषितमूर्धा फणी न किं भयङ्करो नृणाम् ॥ १९ ॥

दुर्जन यदि गुणोंसे अलंकृत भी हो तो भी उससे बचे रहना ही श्रेष्ठ है। क्या जिस सर्पके सिर-पर मणि है वह डरावना नहीं होता। सारांश—मणिसे विभूषित सर्पकी तरह गुणयुक्त दुर्जनसे दूर ही रहना चाहिए ॥ १९ ॥

वक्ताका लक्षण ।

सर्वेषां दर्शनानां मनसि परिगतज्ञानवेत्ता भवेद्धि,
वक्ता शास्त्रस्य धीमान्विमलशिवसुखार्थी सुतत्त्वावभासी ।
निर्लोभः शुद्धवाग्मी सकलजनहितं चिन्तकः क्रोधमुक्तो,
गर्वोन्मुक्तो यमाढ्यो भवभयचकितो लौकिकाचारयुक्तः ॥ २० ॥

वह उत्तम वक्ता है जो सब दर्शनोंका जाननेवाला है, बुद्धिमान् है, मोक्ष-सुखका चाहनेवाला है, तत्त्वोंके स्वरूपको स्पष्ट समझानेवाला है, लोभ-लालसा रहित है, जिसके वचन मिष्ट और स्पष्ट हैं, सभी श्रोताओंके हितकी कामना करता है, क्रोधसे रहित है, सब तरहके गर्वसे विनिर्मुक्त है—नम्र है, यम-नियमोंसे युक्त है, संसारके भयसे चकित—दुःखोंसे डरनेवाला—है और लौकिक सदाचारसे परिपूर्ण है ॥ २० ॥

ग्रंथ-लक्षण ।

यस्मिन् ग्रन्थे पदार्था नव दशविधको धर्म एकोऽप्यनेको,
जीवाजीवादितत्त्वानि सुशुभविनयो दर्शनज्ञानचर्याः ।
ध्यानं वैराग्यवृद्धिः सुजिनपतिकथा चाक्रिनारायणी वा,
सोऽयं ग्रन्थस्ततोऽन्या जनमुखजनिता वैकथाऽहो भवेत्सा ॥ २१ ॥

सच्चा शास्त्र वही है जिसमें पुण्य-पाप आदि नौ पदार्थोंका, उत्तम क्षमादि दस धर्मोंका, जीव-अजीव आदि सात तत्त्वोंका, शुभ विनयका, दर्शन-ज्ञान-चारित्रका और ध्यानका सांगोपांग कथन है, जो वैराग्यको बढ़ानेवाला है और तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण आदि तिरेसठ शलाकाके महापुरुषोंकी जिसमें जीवनी लिखी है । और इससे निराली, मनुष्योंके द्वारा कही गई केवल शृंगारादि-युक्त कथाएँ हैं वे सब विकथाएँ हैं ॥ २१ ॥

श्रोताओंके लक्षण ।

धर्मी ध्यानी दयाढ्यो व्रतगुणमणिभिर्भूषितोऽहो भवेत्सः,
श्रोता त्यागी च भोगी जिनवचनरतो ज्ञानविज्ञानयुक्तः ।
निन्दादोषादिमुक्तो गुरुपदकमले षट्पदः श्रीसमर्थः,
सच्छास्त्रार्थावधारी शिवसुखमतिमान् पण्डितः सद्विवेकी ॥ २२ ॥

श्रोता—शास्त्र सुननेका पात्र वही है जो धर्मात्मा है, प्रशस्त ध्यान करनेवाला है, दयालु है, अहिंसादि व्रत और सम्यक्त्वादि गुण अथवा अष्ट मूल गुणरूप महामणियोंसे विभूषित है, त्यागी—दान देनेवाला—है, भोगी—अपनी सम्पत्तिका योग्य उपभोग करनेवाला—है, जिसकी जैन शास्त्रोंमें अच्छी रुचि है, ज्ञान-विज्ञानसे सहित है, किसीकी निन्दा आदि नहीं करता है, गुरुके चरण-कमलोंमें भौंरेके मानिंद लवलीन है, विभव-सम्पन्न है, शास्त्रके सदुपदेशकी धारणा रखनेवाला है, मोक्षसुखका अभि-लाषी है, विद्वान् है और उत्तम विचारवान् है ॥ २२ ॥

चतुर्दशात्र वै सन्ति श्रोतारः शास्त्रहेतवः।
उत्तमा मध्यमा नीचास्त्रिविधा लोकवर्तिनः ॥ २३ ॥

संसारमें शास्त्र सुननेवाले श्रोतागण चौदह प्रकारके होते हैं। इनमें कोई उत्तम, कोई मध्यम और कोई जघन्य ऐसे तीन तरहके होते हैं ॥ २३ ॥

गोहंसमृच्छुकाजाहिमहिषाश्चालिनी शिला।
कङ्कच्छिद्रघटौ दंशमार्जारसजलौकसः ॥ २४ ॥

गाय, हंस, मृत्तिका, तोता, बकरी, सर्प, भैंस, चलनी, सिला, कंगी, सछिद्र घड़ा, डाँस, बिल्ली और जौंक ये ऊपर कहे गये चौदह प्रकारके श्रोताओंके चौदह नाम है ॥ २४ ॥

गोहंसमृच्छुकाः श्रेष्ठा मध्याश्चाजाशिलाघटाः।
शेषा नीचाः परिप्रोक्ता धर्मशास्त्रविवर्जिताः ॥ २५ ॥

गाय, हंस, मिट्टी और तोतेके जैसे ये चार उत्तम श्रोता हैं। बकरी, सिला और कलशके जैसे ये तीन मध्यम श्रोता हैं और बाकी बचे हुए सात जघन्य श्रोता हैं, जो कि धर्मशास्त्रके ज्ञानसे निरे शून्य होते हैं। भावार्थ—इन चौदह वस्तुओंके स्वभावके जैसे चौदह तरहके श्रोतागण होते हैं। इनका खुलासा इस प्रकार है—जैसे गायें जैसा मिला वैसा खाकर दूध देती हैं वैसे ही जो जैसा जैनवाक्य हो वैसा सुनकर अपना और दूसरेका भला करते हैं वे श्रोता गायके समान हैं। जो सारभूत वस्तुको ग्रहण करें वे हंसके समान हैं। जैसे मिट्टी पानीको अपना कर गीली हो जाती है वैसे ही जिनवाक्योंके सुननेसे जिनके परिणाम कोमल हो जाते हैं वे मिट्टीके जैसे हैं। जैसे तोतेको एक बार समझा देनेसे वह उसकी अच्छी तरह धारणा रखता है वैसे ही जो श्रोता एक बार जिनवाक्योंको सुनकर उसकी दृढ़ धारणा करते हैं वे तोतेके जैसे हैं। ये चार उत्तम श्रोता हैं। जो बकरेके समान अतिशय कामी हैं वे बकरेके जैसे हैं। जो श्रोता चुपचाप बैठे रहें शास्त्र-श्रवणमें कुछ विघ्न न डालें वे सिला समान हैं। जैसे फूटे घड़ेमें जल नहीं ठहरता वैसे ही जिनके हृदयमें जिनवाक्य तो ठहरते नहीं हैं, किन्तु शास्त्रमें कुछ उपद्रव नहीं मचाते हैं वे फूटे घड़ेके बराबर हैं। ये तीनों प्रकारके श्रोता मध्यम हैं। यद्यपि इनसे कुछ होता जाता नहीं है तथापि ये शास्त्र, व्याख्यान आदिमें गड़बड़ नहीं मचाते हैं, इसलिए ये मध्यम श्रोता है। इनसे जो पहलेके उत्तम श्रोता हैं वे शास्त्र, व्याख्यान आदि सुनकर उसका उपयोग धारणा आदि करते हैं इसलिए उन्हें उत्तम कहा है। जैसे साँपको दूध पिलानेसे उल्टा वह जहर उलगता है वैसे ही जो हितकर जैनवाक्यको अहित कर समझते हैं, सारको असार समझते हैं और सीधेको उल्टा जानते हैं वे सर्पके जैसे श्रोता होते हैं। जैसे भैंसा सारे पानीको गंदला कर देता है वैसे ही जो शास्त्रसभामें बैठ कर शास्त्रोंमें गदला पन मचा दें वे श्रोता भैंसेके मानिंद होते हैं। जैसे चलनी सारभूत आटेको नीचे गिरा देती है, असारभूत तुषोंको ग्रहण करती है वैसे ही जो श्रोता शास्त्र-संबंधी सार बातको छोड़कर असार ग्रहण करते हैं वे चलनीके जैसे हैं। जैसे कंघी सिरके केसोंको ग्रहण करती है वैसे ही जो वक्ताके दोषोंको उकेलता रहता है वह कंघीके मानिंद है। जैसे मच्छर जहाँ पानी देखता है वहीं रमण करता है वैसे ही जो वक्ताकी भूल हुई कि उसे चट पकड़कर आनंद मनावे वह

डाँसके बराबर है। जैसे बिल्ली अपने सजातीयसे द्वेष करती है वैसे ही जो दूसरे श्रोताओंसे जो द्वेष करें वे बिल्लीके जैसे श्रोता हैं। जैसे जौंकको खून ही अच्छा लगता है वैसे ही जिनको अच्छी बात तो न रुचे और खराब बातकी ओर ही जिनकी परणति हो वे जौंकके जैसे श्रोता हैं। ये सब जघन्य श्रोता हैं। सारांश उत्तम श्रोता तो शास्त्र सुनकर स्व और परका उपकार करते हैं; मध्यम श्रोता यद्यपि स्व-परका उपकार नहीं करते, परन्तु दूसरोंके धर्मसेवनमें भी कुछ बाधा नहीं देते। और तीसरे जघन्य श्रोता उपकार तो दूर रहे प्रत्युत अपना और परका अपकार करते हैं। अतः ये जघन्य दर्जेके श्रोता शास्त्र पढ़ने, शास्त्र-व्याख्यान सुनने आदिके बिलकुल पात्र नहीं हैं ॥ २५ ॥

उपोद्घात।

श्रीसामायिकशौचसान्ध्यविधिसत्पूजासुमन्त्राशनं,
द्रव्योपार्जनगर्भधाप्रभृतयस्त्रिंशत्क्रियाः सत्रिकाः।
मौञ्जीबन्धनसद्व्रतोपदिशनं पाणिग्रहर्षिव्रते,
ग्रन्थे सूतककं त्रयोदशतयाध्यायान् विधास्याम्यहम् ॥ २६ ॥

सामायिक, शौच, सन्ध्याविधि, पूजा, मंत्र, भोजन, धन कमानेकी विधि, गर्भाधानादि तेतीस क्रियाएँ, यज्ञोपवीत, व्रतोंका उपदेश, विवाह, मुनिव्रत और सूतक ये तेरह विषय जुदे जुदे तेरह अध्यायों द्वारा इस ग्रन्थमें कहे जावेंगे ॥ २६ ॥

गुणान् ग्रन्थस्य वक्तुश्च श्रोतॄणां क्रमशः स्फुटम्।
विधायाध्यायकानेव कथयामोऽधुनाऽद्रतान् ॥ २७ ॥

वक्ताके गुण, शास्त्रके गुण और श्रोताओंके गुण ये तो क्रमसे पीछे स्पष्ट कह चुके हैं। अब वे तेरह विषय, जिनके कि ऊपरके श्लोकमें कहनेकी प्रतिज्ञा की है, क्रमसे कहे जाते हैं ॥ २७ ॥

सामायिक।

ध्यानं तावदहं वदामि विदुषां ज्ञानार्णवे यन्मत,-
मार्तं रौद्रसधर्म्यशुक्लचरमं दुःखादिसौख्यप्रदम्।
पिण्डस्थं च पदस्थरूपरहितं रूपस्थनामा परं,
तेषां भिन्नचतुश्चतुर्विषयजा भेदाः परे सन्ति वै ॥ २८ ॥

ज्ञानार्णव शास्त्रमें जिस ध्यानका विस्तारसे कथन किया गया है उसीका यहाँ पर संक्षेपमें किया जाता है। वह ध्यान आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल इस प्रकार चार तरहका है। इनमेंसे आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो दुःखके करनेवाले हैं तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दो ध्यान सुखके देनेवाले हैं। तथा पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ऐसे भी ध्यानके चार भेद हैं। तथा ऊपरके आर्तध्यान आदिमेंसे प्रत्येक ध्यानके चार-चार पदार्थ ध्येय हैं, अतः हर एकके अपने अपने विषयके अनुसार चार चार भेद होते हैं ॥ २८ ॥

आर्तध्यानके भेद।

आर्तध्यानं चतुर्भेदमिष्टवस्तुवियोगजम्।
अनिष्टवस्तुयोगोत्थं किञ्चिद्दृष्ट्वा निदानजम्॥ २९॥
किञ्चित्पीडादिके जाते चिन्तां कुर्वन्ति चेज्जडाः।
तस्मात्त्याज्यं तु पापस्य मूलमार्तं सुदूरतः॥ ३०॥

अपने पुत्र, स्त्री आदि इष्ट वस्तुओंका वियोग हो जाने पर ऐसा चिन्तवन करना कि ये मुझे किस तरह प्राप्त हों, यह पहला इष्टवियोगआर्तध्यान है। विष, कण्टक, शत्रु आदि अनिष्ट वस्तुओंका संयोग होने पर उनके वियोग होनेका चिन्तवन करना यह दूसरा अनिष्टसंयोगआर्तध्यान है। आगामी भोगोंका चिन्तवन करना यह तीसरा निदानजन्य आर्तध्यान है। शारीरिक पीड़ाके हो जाने पर उसका चिन्तवन करना चौथा वेदनाजन्य आर्तध्यान है। यह आर्तध्यान पापके कारण हैं और इनसे तिर्यग्गति होती है; अतः इनका दूरसे ही त्याग करना अच्छा है॥ २९–३०॥

रौद्रध्यानके भेद।

प्राणिनां रोदनाद्रौद्रः क्रूरः सत्त्वेषु निर्घृणः।
पुमाँस्तत्र भवं रौद्रं विद्धि ध्यानं चतुर्विधम्॥ ३१॥

जो पुरुष संसारके दुःखोंसे खेदखिन्न हुए जीवोंको देखकर उनपर दया भाव न कर प्रत्युत क्रूरता धारण करता है उसे प्राणियोंको पीड़ा पहुँचानेके कारण रुद्र कहते हैं। इस रुद्र—क्रूर—मनुष्यके ध्यानको रौद्रध्यान कहते हैं। वह चार प्रकारका है॥ ३१॥

हिंसानन्दान्मृषानन्दात्स्तेयानन्दात्प्रजायते।
परिग्रहाणामानन्दात्त्याज्यं रौद्रं च दूरतः॥ ३२॥

हिंसामें आनंद माननेसे, झूठमें आनंद माननेसे, चोरी करनेमें आनंद माननसे और परिग्रहकी रक्षामें आनन्द माननेसे चार प्रकारका रौद्रध्यान होता है, अतः यह ध्यान दूरसे ही त्यागने योग्य है॥ ३२॥

धर्मध्यानके भेद।

आज्ञापायविपाकसंस्थानादिविचयान्तकाः।
धर्मध्यानस्य भेदाः स्युश्चत्वारः शुभदायकाः॥ ३३॥

आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चार धर्मध्यानके भेद हैं। ये चारों ही ध्यान शुभ हैं और प्राणियोंका भला करनेवाले हैं॥ ३३॥

यत्प्रोक्तं जिनदेवेन सत्यं तदिति निश्चयः।
मिथ्यामतपरित्यक्तं तदाज्ञाविचयं मतम्॥ ३४॥

जो पदार्थका स्वरूप जिनभगवान द्वारा कहा गया है वह सत्य है ऐसा निश्चय करना वह मिथ्या वासनाओंसे रहित आज्ञाविचय नामका धर्मध्यान है। भावार्थ—इस कलियुगमें उपदेश करने-

वाले केवली, श्रुतकेवली तो हैं नहीं और पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उनके जाननेको हमारे पास पूरे साधन भी नहीं हैं। बुद्धि भी अत्यन्त मन्द हैं। ऐसे समयमें सर्वज्ञकी आज्ञाको ही प्रमाण मानकर उन गहन पदार्थोंका निश्चय करना आज्ञाविचयधर्म्मध्यान है॥ ३४॥

येन केन प्रकारेण जैनो धर्मः प्रवर्धते।
तदेव क्रियते पुम्भिरपायविचयं मतम्॥ ३५॥

जिस किसी तरह जैनधर्म बढ़ता रहे ऐसा विचार करना अपायविचयधर्म्मध्यान है। भावार्थ—यह प्राणी मिथ्यादृष्टियोंके पंजेमें फँसकर इस भव-समुद्रमें अनेकों गोते खा रहा है; तथा कई लोग विषयोंकी वासनाओंसे लालायित होकर प्राणियोंको उल्टा समझा रहे हैं—स्वयं सन्मार्गसे पिछड़े हुए हैं और साथ साथमें उन बे-समझ भोले जीवोंको भी अपने मोहजालमें जकड़कर हटा रहे हैं। इनको कब सुबुद्धि प्राप्त होगी और अपने भुज-पंजरमें फाँसकर दुःख-रूपी दहकती हुई अग्निमें लोगोंको डालनेवाले ये लोग कुमार्गसे कैसे हटेंगे; और कैसे परम शान्त और सुख देनेवाले सन्मार्गमें लगेंगे, ऐसा चिन्तवन करना अपायविचयधर्म्मध्यान है॥ ३५॥

शुभाशुभं च यत्कार्यं क्रियते कर्मशत्रुभिः।
तदेव भुज्यते जीवैर्विपाकविचयं मतम्॥ ३६॥

ये कर्म-शत्रु बुरा-भला फल उत्पन्न करते रहते हैं और उसी फलको बिचारे ये जीव रात-दिन भोगते रहते हैं, इस प्रकार कर्मोंके शुभ-अशुभ फलका चिन्तवन करना विपाकविचय-धर्म्मध्यान है॥ ३६॥

श्वभ्रे दुःखं सुखं स्वर्गे मध्यलोकेऽपि तद्द्वयम्।
लोकोऽयं त्रिविधो ज्ञेयः संस्थानविचयं परम्॥ ३७॥

लोकके तीन भेद हैं; अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोकमें नारकियोंका निवास है। वहाँ पर उन जीवोंको बड़ा ही कष्ट है—पल भर भी उन्हें सुख नहीं है। सारांश यह कि उनको दिनरात दुःख ही दुःख सहन करना पड़ता है। ऊर्ध्वलोकमें देव रहते हैं। वहाँ पर उनको कई प्रकारकी सुख-सामग्री अपने अपने भाग्यके अनुसार मिली हुई है, जिसका वे यथेष्ट उपभोग करते रहते है। तात्पर्य यह कि उन स्वर्गीय जीवोंका जिवन एक तरहसे सुखमय ही है। और मध्यलोकमें सुख-दुःख दोनों हैं। इस तरह लोकके आकारका चिन्तवन करना संस्थानविचयधर्मध्यान है॥ ३७॥

शुक्लध्यानके भेद।

शुक्लध्यानं चतुर्भेदं साक्षान्मोक्षपदप्रदम्।
पृथक्त्वादिवितर्काख्यवीचारं प्रथमं मतम्॥ ३८॥
एकत्वादिवितर्काख्यवीचारं च द्वितीयकम्।
सूक्ष्मक्रियाप्रतीपाति तृतीयं शुक्लमुत्तमम्॥ ३९॥

व्युपरतक्रियानिवृत्तिस्तुर्यं शुक्लमुच्यते ।
एतेषां नामतोऽर्थश्च ज्ञायते गुणवत्तया ॥ ४० ॥

शुक्लध्यानके चार भेद हैं और यह साक्षात् मोक्षके कारण हैं। पहला पृथक्त्ववितर्कवीचार, दूसरा एकत्ववितर्कअवीचार तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और चौथा व्युपरतिक्रियानिवृत्ति है। इनका अर्थ इनके नामसे ही भले प्रकार स्पष्ट है ॥ ३८–३९–४० ॥

पृथक्त्वेन वितर्कस्य वीचारो यत्र तद्विदुः ।
सवितर्कं सवीचारं पृथक्त्वादिपदाह्वयम् ॥ ४१ ॥

जिस ध्यानमें जुदा जुदा वितर्क—श्रुत—का वीचार—संक्रमण—होता रहता है उसे पृथक्त्वसावितर्कसवीचार ध्यान कहते हैं। भावार्थ—जिसमें जुदा जुदा श्रुतज्ञान बदलता रहे उसे सवितर्कसवीचार–सपृथक्त्वध्यान कहते हैं ॥ ४१ ॥

एकत्त्वेन वितर्कस्य स्याद्यत्राविचारिणुता ।
सवितर्कमवीचारमेकत्वादिपदाभिधम् ॥ ४२ ॥

जिस ध्यानमें श्रुतज्ञानका संक्रमण न होता हो और जो एक रूपसे स्थिर हो उसे सवितर्क-अवीचारएकत्वध्यान कहते हैं ॥ ४२ ॥

मनोवचनकायाँश्च सूक्ष्मीकृत्य च सूक्ष्मिकाम् ।
क्रियां ध्यायेत्परं ध्यानं प्रतिपातपराङ्मुखम् ॥ ४३ ॥

जिसमें मन वचन और कायको सूक्ष्म करके सूक्ष्म क्रियाका ध्यान किया जाय उसे सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति ध्यान कहते हैं। भावार्थ—यह ध्यान तेरहवें गुणस्थानवर्ती परमात्माके होता है। जब उनकी आयु एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रह जाती है तब इस ध्यानके योग्य वे होते हैं। जिस समय आयुकर्मकी स्थिति तो कम रह जाय और नाम, गोत्र और वेदनीयकी स्थिति अधिक हो उस समय उनकी आयुकर्मके समान स्थिति करनेके लिए वे दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण ऐसे चार समयोंमें चार समुद्घात करते हैं। लोकपूरण समुद्घातमें उन कर्मोंकी स्थितिको वे आयुकर्मके बराबर कर देते हैं। इसके पश्चात् वे पुनः चार ही समयमें अपने आत्म-प्रदेशोंको शरीर-प्रमाण करके बादरकाययोगमें स्थित होते हैं और बादरमनोयोग और वचनयोगको सूक्ष्म करते हैं, पुनः काययोगको छोड़कर मनोयोग और वचन-योगमें स्थिति करते हैं और बादरकाययोगको सूक्ष्म करते हैं। पश्चात् सूक्ष्मकामयोगमें स्थिति कर मनोयोग और वचनयोगका निरोध करते हैं। इसके बाद वे साक्षात् सूक्ष्मक्रियध्यानका ध्यान करनेके योग्य होते हैं। बस यही सूक्ष्मकाययोगमें स्थिर होना तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान है ॥ ४३ ॥

ततो निरुद्धयोगः सन्नयोगी विगतास्रवः ।
समुच्छिन्नक्रियाध्यानमनिवृत्ति तदा भवेत् ॥ ४४ ॥

इसके बाद सम्पूर्ण योगोंसे रहित होकर और सर्व कर्मोंके आस्रवसे रहित होकर अयोगकेवली परमात्मा समुच्छिन्नक्रियव्युपरतिध्यानको ध्याते हैं। भावार्थ—चौहदवें गुणस्थानमें यह ध्यान होता है।

इस गुणस्थानका काल अ ई उ ऋ ऌ इन पाँच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतना है। यहाँ पर उस सूक्ष्मकाययोगका निरोध हो जाता है, इस लिए ये निरुद्धयोग कहे जाते हैं; इनके किसी भी कर्मका आस्रव नहीं होता, अतः विगतास्रव कहे गये हैं। इस गुणस्थानके उपांत्य समयमें—चरम समयसे एक समय पहले—७२ कर्मोंका नाश होता है उसी क्षणमें समुच्छिन्नक्रियध्यान होता है। इसके बाद चरम समयमें तेरह प्रकृतियोंका नाश कर वे परमात्मा मुक्ति-प्रासादमें पहुँच जाते हैं ॥ ४४ ॥

आर्तरौद्रसुधर्माख्यशुक्लध्यानानि चागमे।
ज्ञेयानि विस्तरेणैव कारणं सुखदुःखयोः ॥ ४५ ॥

यहाँ संक्षेपमें चारों ध्यानोंका स्वरूप दिखाया गया है। इनका विशेष विस्तार आगमसे जानना चाहिए। इनमेंसे आर्त-रौद्र तो दुःखके कारण हैं और धर्म्य-शुक्लध्यान सुखके कारण हैं ॥ ४५ ॥

यत्किञ्चिद्विद्यते लोके तत्सर्वं देहमध्यगम्।
इति चिन्तयते यत्तु पिण्डस्थं ध्यानमुच्यते ॥ ४६ ॥

इस लोकमें जो कुछ भी पदार्थ मोजूद हैं उन सबका अपने शरीरमें चिन्तवन करना पिण्डस्थ ध्यान है ॥ ४६ ॥

एकद्वित्रिचतुःपञ्चषडष्टौ षोडशादिकाः।
अक्षरात्स्यपरा मन्त्राः शराग्निसंख्यकास्तथा ॥ ४७ ॥
एवं मन्त्रात्मकं ध्यानं पदस्थं परमं कलौ।
शरीरजीवयोर्भेदो यत्र रूपस्थमस्तु तत् ॥ ४८ ॥

एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, आठ, सोलह और पैंतीस अक्षरोंके मंत्रोंका ध्यान करनेको पदस्थ ध्यान कहते हैं। और जिसमें शरीर और जीवका भेद चिन्तवन किया जाय उसे रूपस्थ ध्यान कहते हैं। भावार्थ—विभूति-युक्त अर्हन्त देवके गुणोंका चिन्तवन करना रूपस्थ ध्यान है ॥४७–४८॥

अष्टकर्मविनिर्मुक्तमष्टाभिर्भूषितं गुणैः।
यत्र चिन्तयते जीवो रूपातीतं तदुच्यते ॥ ४९ ॥

आठ कर्मोंसे रहित और आठ गुणोंकर सहित अमूर्तिक सिद्ध परमात्माके ध्यान करनेको रूपातीत ध्यान कहते हैं। यहाँ इन चारों ध्यानोंका केवल अक्षरार्थ लिखा गया है, विशेष कथन ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थोंसे समझना चाहिए ॥ ४९ ॥

प्रातःकाल-संबंधी क्रियाएँ।

प्रातश्चोत्थाय पुम्भिर्जिनचरणयुगे धार्यते चित्तवृत्ति,—
रार्तं रौद्रं विहाय प्रतिसमगमियं चिन्त्यते सप्ततत्त्वी।
ध्यानं धर्म्यं च शुक्लं विगतकलिमलं शुद्धसामायिकं च,
कुत्रत्योऽयं मदात्मा विविधगुणमयः कर्मभारः कुतो मे ॥ ५० ॥

सवेरे ही शैय्यासे उठकर जिनेन्द्र देवके चरणोंमें अपनी लौ लगावे; आर्त-रौद्र ध्यानको छोड़कर हर समय सप्त तत्त्वोंका चिन्तवन करे; धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानका चिन्तवन करे और पापोंसे छुड़ानेवाले सामायिकको करे। तथा यह भी विचार करे कि यह नाना गुणोंका पुंज मेरा आत्मा कहाँसे आया और यह दुःखदेनेवाला कर्मभार मेरे कैसे लगा ॥ ५० ॥

संसारे बहुदुःखभारजटिले दुष्कर्मयोगात्परं,
जीवोऽयं नरजन्म पुण्यवशतः प्राप्तः कदाचित्कचित् ।
दुष्प्रापं जिनधर्ममूर्जितगुणं सम्प्राप्य सन्धीयते,
नाना दुष्कृतनाशनं सुखकरं ध्येयं परं योगिभिः ॥ ५१ ॥

इन दुष्ट कर्मोंके कारण यह संसार अनेक प्रकारके दुःखभारसे जटिल है। इसमें किसी शुभकर्मके उदयसे इस जीवने मनुष्य जन्म पाया है। इसे जैनधर्म बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुआ है। जैनधर्म अनेक पापोंको क्षणभरमें नाश कर देनेवाला है, अचिन्त्य सुखका करनेवाला है। बड़े बड़े योगीश्वर इसका ध्यान करते हैं। यह उत्कृष्ट गुणोंका भंडार है ॥ ५१ ॥

आहारसाध्वसपरिग्रहमैथुनाख्याः, सञ्ज्ञाश्चतस्र इति ताभिरुपद्रुतोऽङ्गी ।
कुत्रापि नो स लभते भुवनत्रयेऽस्मिन्, सौख्यस्य लेशमपि चिन्त्यमिति प्रभाते ॥५२॥

आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार प्रकारकी अभिलाषाएँ इस जीवको खूब सता रही हैं। इसे तीनों भुवनोंमें कहीं पर भी सुखका लेश भी नहीं मिलता। इस तरह सुबह ही सुबह उठकर चिंतवन करे। तथा—॥ ५२ ॥

दुःखं श्वभ्रेषु शीतं बहुलमतितरामुष्णमेवं क्षुदादि-,
च्छेदो भेदश्च घर्षः क्रकचविधितया पीलनं यन्त्रमध्ये ।
शारीरं चान्त्रनिष्कासनमपि बहुधा ताडनं मुद्गराद्यै-,
रग्निज्वालानुषङ्गः प्रचुरदुरिततो वर्तते श्रूयमाणं ॥ ५३ ॥

नरकमें शीत-उष्णकी बड़ी ही बहुलता है। तीन लोकका अन्न और पानी पीने पर भी भूख-प्यास नहीं मिटती, परन्तु वहाँ एक कण भी अन्नका नहीं मिलता और न पानीकी एक बूँद ही मिलती है। वहाँ पर नारकी इसके हाथ-पैर-नाक-कान आदिको शस्त्रों द्वारा छेदते हैं, भेदते हैं, करोतसे चीरते हैं, यंत्रोंसे पेलते हैं, इसके शरीरकी आँतें पकड़कर खींचते हैं, मुद्गरोंसे पीटते हैं, और दहकती हुई अग्निमें उठाकर फेंकते हैं। इस तरह यह जीव अपने किये हुए पापकर्मोंके कारण नरकोंमें खूब कष्ट उठाता है ॥ ५३ ॥

तिर्यक्ष्वातपशीतवर्षजनितं दुःखं भयं कानने,
सिंहादेरतिभारकर्मवहनं सन्ताडनं छेदनम् ।
क्षुत्तृष्णादि च कीटनामभशकैर्दंशस्तथा माक्षिकैः,
स्वाधीनत्वपराङ्मुखं विधिवशाद्बन्धादिकं वर्तते ॥ ५४ ॥

कर्मयोगसे तिर्यग्गतिमें यदि यह जन्म धारण करता है तो वहाँ पर भी तीव्र गर्मी, ठंढ और वर्षाके निमित्तसे उत्पन्न हुए दुःखोंको भोगता है; जंगलोंमें सिंहादि क्रूर जानवरोंके भयसे दुःखी होता है; अपनी पीठ पर खूब भार लादता है; लकड़ी, कोड़े, चाबुक आदिसे पिटता है। वहाँ इसके नाक-कान छेदे जाते हैं; भूख-प्यासकी तीव्र वेदनाको सहता है; डाँस, मच्छर, मक्खिएँ अत्यन्त काटती रहती हैं; स्वाधीनताका जहाँ पर लेश भी नहीं है और रस्सी आदिसे एक जगह बन्धे हुए रहना पड़ता है। सारांश यह कि तिर्यग्गतिमें भी दुःख ही दुःख भरे हुए हैं; सुखका नामनिशान भी नहीं है ॥ ५४ ॥

मर्त्येष्विष्टवियोगजं दुरिततो दुःखं तथा मानसं,
शारीरं सहजं चतुर्विधमिदं चागन्तुकं श्रूयते ।
दारिद्र्यानुभवः प्रतापहरणं कीर्तिक्षयः सर्वथा,
रौद्रार्तिप्रभवं तथा व्यसनजं वन्धादिकं चापरम् ॥ ५५ ॥

मनुष्य-गतिमें भी अपने हृदयके भूषण स्त्री, पुत्र आदिके वियोगसे अत्यन्त कष्ट होता है। मानसिक क्लेश, शारीरिक क्लेश, स्वाभाविक क्लेश और आगन्तुक क्लेश यह चार प्रकारका क्लेश भी इसी मनुष्य-गतिमें सुना जाता है। दरिद्रताका अनुभव करना पड़ता है, अपमानित होना पड़ता है, बदनामी उठानी पड़ती है, इस कारण इसे अत्यन्त घोर दुःख होता है। रौद्रध्यान, आर्तध्यानके करनेसे, व्यसनोंके सेवनसे तथा और भी वध-बंधनादिके कारण अनेक दुःख इस मनुष्य-गतिमें प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

देवेष्वेव च मानसं बहुतरं दुःखं सुखच्छेदकं,
देवीनां विरहात्प्रजायत इति प्रायः स्वपुण्यच्युतेः ।
इन्द्रस्यैव सुवाहनादिभवनं दासत्वमङ्गीकृतं,
नानैश्वर्यपराङ्मुखं मरणतो भीतिस्तस्था दुस्तरा ॥ ५६ ॥

देवगतिमें यद्यपि शारीरिक कष्ट नहीं है तो भी देवी आदिके वियोग हो जानेके कारण बड़ा भारी मानसिक कष्ट होता है, जो सुखकी जड़ काटनवाला है। तथा पुण्यकर्मके अभावसे कितने ही देवगण इन्द्रके वाहन आदि बनकर रहते हैं। कितनोंको दासत्व स्वीकार करना पड़ता है। कितने ऐश्वर्यसे कोसों दूर हैं। ये बड़े बड़े ऋद्धि-सम्पन्न देवोंका ऐश्वर्य देख देखकर मन ही मनमें झुलसते रहते हैं। वे मरनेसे बड़े ही डरते रहते हैं। इस प्रकार वहाँ भी कई तरहके दुःख भरे पड़े हैं ॥ ५६ ॥

लोकोऽयं नाट्यशाला रचितसुरचना प्रेक्षको विश्वनाथो,
जीवोऽयं नृत्यकारी विविधतनुधरो नाटकाचार्यकर्म ।
तस्माद्रक्तं च पीतं हरितसुधवलं कृष्णमेवात्र वर्णं,
धृत्वा स्थूलं च सूक्ष्मं नटति सुनटवत् नीचकोच्चैः कुलेषु ॥ ५७ ॥

यह संसार एक खूबसूरत बनी हुई नाट्यशाला (थिएटर) है; सिद्ध परमात्मा दर्शक हैं; अनेक प्रकार देहधारी यह जीव नर्तक है और ये कर्म नाटकाचार्य हैं। अतः यह जीव इस नाट्यशालामें

लाल, पीले, हरे, श्वेत, काले और छोटे बड़े देहको धारण कर ऊँच नीच कुलोंमें, उत्तम नटके समान नृत्य करता है ॥ ५७ ॥

क्वचित्कान्ताश्लेषात्सुखमनुभवत्येष मनुजः,
क्वचिद्गीतं श्राव्यं विविधवररागैश्च श्रृणुयात् ।
क्वचिन्नृत्यं पश्यन्नखिलतनुयष्टीविलसितं,
रतिं मन्येताहो उचितविषयो धर्मविमुखः ॥ ५८ ॥

यह जीव कहीं पर युवतियोंके गाढ़ आलिंगन करनेसे उत्पन्न हुए सुखका अनुभव करता है, कहीं पर नाना राग-रागिनियोंसे रसीले मधुर गीत सुनता है, कहीं पर सारे शरीरसे नाना प्रकारके विलासोंको करती हुई विलासनियोंके नृत्यको प्रेमभरी दृष्टिसे देखता हुआ उनके मोहफाँसमें फँसता है, और धर्मसे विमुख होकर विषय-वासनाओंमें सराबोर हो रहा है। यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ ५८ ॥

क्वचित्कांता कमलवदना हावभावं करोति,
क्वचित् दुःखं नरककुहरे पंचधा प्राणघातात् ।
क्वचिच्छत्रं चमरसहितं दासपुम्भिः प्रयुक्तं,
क्वचित्कीटो मृतभवितनौ प्राणिनां कर्मयोगात् ॥ ५९ ॥

कहीं पर कमलके सदृश मुखवाली कान्ताएँ अपना हाव-भाव दिखला रही हैं । कहीं पर कितने ही प्राणी पाँच प्रकारके प्राणोंके घातसे उत्पन्न हुए दुःखको नरकमें पड़े पड़े भोग रहे हैं। किन्हीं पर नौकर-चाकर छत्ते लगाए हुए खड़े हैं। कोई चमर ढोर रहे हैं। और कोई प्राणी अपने अपने कर्मके उदयसे मरे हुए प्राणियोंके मुर्दा शरीरके कीड़े बन रहे हैं। इस प्रकार सवेरे ही शैय्यासे उठकर संसारकी दशाका चिन्तवन करे ॥ ५९ ॥

सामायिकः—

महाव्रतं दुर्धरमेव लोके, धर्तुं न शक्तोऽहमपि क्षणं वा ।
संसारपाथोनिधिमत्र केनो,—पायेन चापीह तरामि दीनः ॥ ६० ॥
इत्यादिकं चेतसि धार्यमाणः, पल्यङ्कदेशात्सुमुनीन्द्रबुध्या ।
पवित्रवस्त्रः सुपवित्रदेशे, सामायिकं मौनयुतश्च कुर्यात् ॥ ६१ ॥

ये पंच महाव्रत इस लोकमें बड़े ही दुर्धर हैं। इनका धारण करना बड़ा ही कठिन है। मैं तो क्षणभर भी इन्हें धारण नहीं कर सकता। किस उपायसे इस संसार-समुद्रसे तैरकर मैं पार होऊँ इत्यादि बातोंका अपने चित्तमें शैय्यासे उठते ही चिन्तवन करे। इसके बाद शैय्याको छोड़कर मैं मुनिव्रत अङ्गीकार करूँ इस आशयसे, पवित्र स्थानमें बैठकर, साफ कपड़े पहन, मौन-पूर्वक, सामायिक करे ॥ ६०–६१ ॥

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम् ॥ ६२ ॥

सब संसारी जीवोंमें समता भाव करना, संयमके पालन करनेमें हमेशा शुभ-भावना करना और आर्त्त-रौद्र ध्यानका त्याग करना सामायिक है ॥ ६२ ॥

योग्यकालासनस्थानमुद्राऽऽवर्तशिरोनतिः ।
विनयेन यथाजातकृतिकर्मामलं भजेत् ॥ ६३ ॥

योग्य काल, आसन, स्थान, मुद्रा, आवर्त और शिरोनति करता हुआ विनय-पूर्वक मुनियोंकी तरह निर्मल कृतिकर्म—आवश्यक क्रिया—को करे ॥ ६३ ॥

जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये ।
बन्धावरौ सुखे दुःखे सर्वदा समता मम ॥ ६४ ॥

जीने-मरनेमें, लाभ-अलाभमें, संयोग-वियोगमें, शत्रु-मित्रमें और सुख-दुःखमें मेरे सर्वदा समता भाव है—किसीमें राग-द्वेष नहीं है ॥ ६४ ॥

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥ ६५ ॥

पापी, दुरात्मा, जड़बुद्धि, मायावी, लोभी और राग-द्वेषसे मलीन इस दुष्ट मनने जिन खोटे कर्मोंका उपार्जन किया है उनको, हे तीन लोकके स्वामी जिनेन्द्र देव ! आपके चरणोंमें इस वक्त धिक्कारता हुआ त्यागता हूँ और सन्मार्गमें लगे रहनेकी कामना करता हूँ ॥ ६५ ॥

षडावश्यकसत्कर्म कुर्याद्विधिवदञ्जसा,
तदभावे जपः शुद्धः कर्त्तव्यः स्वात्मशुद्धये ॥ ६६ ॥

श्रावकोंको विविध-पूर्वक निरन्तर षडावश्यक क्रियाएँ करनी चाहिए; तथा इनके अभावमें अपनी आत्माको निर्मल बनानेके लिए शुद्ध जप करना चाहिए ॥ ६६ ॥

सिद्धचक्रप्रसादेन मन्त्राः सिद्ध्यन्ति साधवः ।
तस्मात्तदग्रतो मन्त्रान्समाराध्य ततोऽर्चयेत् ॥ ६७ ॥

सिद्धचक्रके प्रसादसे मंत्र भले प्रकार सिद्ध होते हैं, इस लिए सिद्धचक्रके सन्मुख मंत्रोंकी आराधना करे और उसके बाद अर्चन-पूजन करे ॥ ६७ ॥

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं,
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सान्धितत्त्वान्वितम् ।
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं,
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः ॥ ६८ ॥

जिसके ऊपर-नीचे रेफ है और जो शून्य-सहित हकारसे युक्त (र्ह्रं) है, ब्रह्मस्वर (ॐ) से विशिष्ट है, जिस पर कमलके पत्तोंके सन्धिभागमें तत्त्वाक्षर लिखे हुए हैं, प्रत्येक पत्रके अन्तमें अनाहत मंत्र लिखा हुआ है और जो ह्रींकारसे वेष्टित है; तथा स्वर, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग और शवर्ग ये आठ वर्ग जिसके हर पत्ते पर लिखे हुए हैं ऐसे परमदेव—सिद्धचक्र—का जो पुरुष ध्यान करता है वह मुक्तिके प्यारका पात्र बन जाता है और वैरीरूपी हाथीको वश करनेके लिए सिंहके समान हो जाता है ॥ ६८ ॥

उर्ध्वाधो रेफसंयुक्तं सपरं बिन्दुलाञ्छितम् ।
अनाहतयुतं तत्त्वं मन्त्रराजं प्रचक्षते ॥ ६९ ॥ र्ह्रं ॥

ऊपर-नीचे जिसके रेफ है और जो शून्यसे युक्त है ऐसे अनाहत युक्त हकारको मंत्रराज कहते हैं ॥ ६९ ॥

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥ ७० ॥ ॐ नमः ॥

जो ओंकार अक्षर बिंदुसे सहित है, जिसका मुनिगण ध्यान करते हैं उस सब मनोरथोंके पूरनेवाले और मोक्षको देनेवाले ॐको नमस्कार है ॥ ७० ॥

अवर्णस्य सहस्रार्धं जपन्नानन्दसम्भृतः ।
प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरां निर्जितास्रवः ॥ ७१ ॥

जो प्रीतिपूर्वक इस ओंकारके पाँचसौ जप करता है वह नवीन कर्मोंके आस्रवको रोकता है और एक उपवासकी निर्जरा करता है। भावार्थ—एक उपवासके करनेसे जो फल मिलता है वह इस ओंकारके पाँचसौ जप करनेसे प्राप्त हो जाता है ॥ ७१ ॥

हवर्णान्तः पार्श्वजिनोऽधो रेफस्तलगतः स धरेन्द्रः ।
तुर्यस्वरः सबिन्दुः स भवेत्पद्मावतीसञ्ज्ञः ॥ ७२ ॥

ह्रीं इस मंत्रमें जो हकार है वह पार्श्वजिनका वाचक है, नीचेकी तरफ जो रेफ है वह धरणेन्द्रका वाचक है और जो इसमें बिन्दु सहित ईकार है वह पद्मावती—शासन देवी—का वाचक है। भावार्थ—ह्रीं यह मंत्र पद्मावती, धरणेन्द्र सहित पार्श्वजिनका द्योतक है ॥ ७२ ॥

त्रिभुवनजनमोहकरी विद्येयं प्रणवपूर्वनमनान्ता । ॐ ह्रीं नमः ।
एकाक्षरीति सञ्ज्ञा जपतः फलदायिनी नित्यम् ॥ ७३ ॥

प्रणव--ओँ--जिसकी आदिमें है, नमः जिसके अन्तमें है ऐसी यह तीनों भुवनोंको मोहित करनेवाली एकाक्षरी नामकी विद्या है। यह जप करनेवालेको हमेशा उत्तम उत्तम फल देती है। भावार्थ-"ओँ ऱ्हीं नमः" इस मंत्रको जपनेवालेके इष्टकी सिद्धि होती है ॥ ७३ ॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ७४ ॥ अर्हं ॥

अर्हं यह ब्रह्माक्षर है जो परमेष्ठीका वाचक है, और सिद्धचक्रका मुख्य बीज है। उसको मन, वचन और कायसे नमस्कार करता हूँ ॥ ७४ ॥

चतुर्वर्णमयं मन्त्रं चतुर्वर्णफलप्रदम्।
चतूरात्रं जपेद्योगी चतुर्थस्य फलं भवेत् ॥ ७५ ॥ अरिहंत ॥

"अरिहन्त" यह चार वर्णका मंत्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों वर्गोकी सिद्धि करने-वाला है। यदि योगीश्वर इस मंत्रका चार रात्रिपर्यन्त जप करे तो उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ७५॥

विद्यां षड्वर्णसम्भूतामजय्यां पुण्यशालिनीम्।
जपन् प्रागुक्तमभ्येति फलं ध्यानी शतत्रयम् ॥ ७६ ॥ अरिहंत सिद्ध ॥

जो ध्यानी पुरुष, अजेय और पुण्यमय "अरिहन्त सिद्ध" इस छह अक्षरके मंत्रके तीनसौ जप करता है वह मुक्तिका स्वामी बनता है ॥ ७६ ॥

चतुर्दशाक्षरं मन्त्रं चतुर्दशसहस्रकम्।
यो जपेदेकचित्तेन स रागी रागवर्जितः ॥ ७७ ॥

जो लोग एकाग्रचित्तसे, "श्रीमद्वृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो नमः" इस चौदह अक्षरवाले मंत्रके चौदह हजार जप करते हैं वे रागी होते हुए भी राग रागरहित हैं ॥ ७७॥

पञ्चत्रिंशद्भिरेवात्र वर्णैश्च परमेष्ठिनाम्।
मन्त्रैः प्राकृतरूपैश्च न कस्यापि कृतो व्ययः ॥ ७८ ॥
स्मर्तव्यः सानुरागेण विषयेष्वपरागिणा।
वीरनाथप्रसादेन धर्मं विदधता परम् ॥ ७९ ॥
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनम्।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥ ८० ॥

"णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" यह पंच परमेष्ठीका वाचक, प्राकृत भाषामें पैंतीस अक्षरोंका एक मंत्र है। इसके जपनेसे बड़े बड़े कार्योंकी सिद्धि होती है। इससे किसीका भी अनिष्ट नहीं होता। इस मंत्रका महात्म्य बड़ा ही अचिन्त्य है। अतः वीर भगवान्‌के प्रसादसे उनके बताये हुए धर्मका सेवन करते हुए, विषयोंसे ममत्व-भाव छोड़, भक्तिपूर्वक इस महामंत्रका सदैव स्मरण करना चाहिए। इस मंत्रराजका नाम अपराजित मंत्र है जो सर्व तरहके विघ्नोंको क्षणभरमें नाश कर देता है और सब प्रकारके मंगलोंमें यह सबसे पहला मंगल है॥ ७८-७९-८०॥

स्मर मन्त्रपदोद्भूतां महाविद्यां जगत्स्तुताम्।
गुरुपञ्चकनामोत्थां षोडशाक्षरराजिताम्॥ ८१॥

जो सोलह अक्षरोंसे सुशोभित है, पंच गुरुओंके नामसे बनी हुई है, संसारका भला करनेवाली है और जिसका दूसरा नाम मंत्र है, ऐसी महाविद्याका निरन्तर स्मरण करना चाहिए। भावार्थ— "अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः" इस सोलह अक्षरोंके मंत्रका हमेशा ध्यान करना चाहिए॥ ८१॥

ॐ नमः सिद्धमित्येतन्मन्त्रं सर्वसुखप्रदम्।
जपतां फलतीहेष्टं स्वयं स्वगुणजृम्भितम्॥ ८२॥

"ॐ नमः सिद्धं" यह पाँच अक्षरोंका मंत्र है जो सर्व तरहके सुखोंका देनेवाला है और जप करनेवालेको अपने नामके अनुसार ही फल देता है। इन उपर्युक्त मंत्रोंके सिवा और भी कई मंत्र हैं। जैसे—"णमो अरिहंताणं" यह सात अक्षरोंका, "अरिहंतसिद्धं नमः" यह आठ अक्षरोंका, "अरिहन्तसिद्धसाधुभ्यो नमः" यह ग्यारह अक्षरोंका, "अरिहंतसिद्धसर्वसाधुभ्यो नमः" यह तेरह अक्षरोंका और "ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः असि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः" यह सत्ताईस अक्षरोंका इत्यादि॥ ८२॥

इत्थं मन्त्रं स्मरति सुगुणं यो नरः सर्वकालं,
पापारिघ्नं सुगतिसुखदं सर्वकल्याणबीजम्।
मार्गे दुर्गे जलगिरिगहने सङ्कटे दुर्घटे वा,
सिंहव्याघ्रादिजाते भवभयकदते रक्षकं प्राणभाजाम्॥ ८३॥

जो पुरुष उपर्युक्त रीतिसे किसी भी मंत्रका हमेशा स्मरण करता रहता है उसके सभी पाप-शत्रुओंको वह नाश करता है, उत्तम गतिके सुखोंको देता है, सभी कल्याणोंका कारण है, मार्गमें, दुर्गमें, जलमें, पर्वतमें, गुफाओंमें, वनोंमें, सिंह आदिके द्वारा उत्पन्न हुए कठिनसे कठिन संकटोंमें सहायक होता है और संसारके सभी भयोंसे प्राणियोंकी रक्षा करता है॥ ८३॥

अयं मन्त्रो महामन्त्रः सर्वपापविनाशकः ।
अष्टोत्तरशतं जप्तो धत्ते कार्याणि सर्वशः ॥ ८४ ॥

इस अपराजित मंत्रको महामंत्र कहते हैं। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है और उसके एकसौ आठ जप करनेसे सब तरहके कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ८४ ॥

हिंसानृतान्यदारेच्छाचुराश्चातिपरिग्रहः ।
अमूनि पञ्च पापानि दुःखदायीनि संसृतौ ॥ ८५ ॥
अष्टोत्तरशतं भेदास्तेषां पृथगुदाहृताः ।
हिंसा तत्र कृता पूर्वं करोति च करिष्यति ॥ ८६ ॥
मनोवचनकायैश्च ते तु त्रिगुणिता नव ।
पुनः स्वयं कृतकारितानुमोदैर्गुणाहतिः ॥ ८७ ॥
सप्तविंशतिस्ते भेदाः कषायैर्गुणयेच तान् ।
अष्टोत्तरशतं ज्ञेयमसत्यादिषु तादृशम् ॥ ८८ ॥

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पाँच पाप हैं जो संसारमें अत्यन्त ही दुःखके देनेवाले हैं। इन पाँचोंमेंसे एक एकके एकसौ आठ आठ भेद होते हैं। जैसे–पहले हिंसा की; इस समय हिंसा करता है और आगे करेगा इस तरह हिंसाके तीन भेद हुए। पुनः इन तीनोंको मन, वचन, कायसे गुणा करने पर नौ भेद, कृतकारित अनुमोदनासे गुणा करने पर सत्ताईस भेद और क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंसे गुणा करने पर एकसौ आठ भेद हिंसाके हो जाते हैं। इसी तरह झूठके एकसौ आठ, चोरीके एकसौ आठ, कुशील सेवनके एकसौ आठ और परिग्रहके एकसौ आठ, एवं पाँच पापोंके उत्तर भेद पाँचसौ चालीस हो जाते हैं ॥ ८५–८६–८७–८८॥

उक्तंच तत्त्वार्थे–

समरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ।

समरंभ, समारंभ और आरंभ इन तीनोंको मन, वचन और कायसे गुणने पर नव भेद; कृत, कारित और अनुमोदना इन तीनोंसे गुणने पर सत्ताईस भेद और फिर क्रोध, मान, माया लोभसे गुणने पर एकसौ आठ भेद हो जाते हैं। इन एकसौ आठको पंच पापोंसे गुणनेसे पाँचसौ चालीस भेद हो जाते हैं।

दूसरी तरहसे एकसौ आठ भेद बताते हैं:–

पृथ्वीपानीयतेजःपवनसुतरवः स्थावराः पञ्चकायाः,
नित्यानित्यौ निगोदौ युगलशिखिचतुःसञ्ज्यसञ्ज्ञित्रसाः स्युः ।

एते प्रोक्ता जिनैर्द्वादश परिगुणिता वाङ्मनःकायभेदै-,
स्ते चान्यैः कारिताद्यैस्त्रिभिरपि गुणिताश्चाष्टशून्यैकसंख्याः ॥ ८९ ॥

पृथिवी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति, नित्यनिगोद, चतुर्गति निगोद, दो इन्द्री, ते इन्द्री, चौ इन्द्री, असंज्ञी और संज्ञी इन बारह भेदोंको मन, वचन और कायसे गुणा करने पर छत्तीस भेद और कृत, कारित, अनुमोदनासे गुणा करने पर एकसौ आठ भेद इस तरह भी हिंसाके एकसौ आठ भेद होते हैं ॥ ८९ ॥

वश्यकर्मणि पूर्वाह्णः कालश्च स्वतिकासनम्।
उत्तरा दिक् सरोजाख्या मुद्रा विद्रुममालिका ॥ ९० ॥
जपाकुसुमवर्णो च वषट् पल्लव एव च।

वशीकरण मंत्रके जप करते समय पूर्वाह्ण (नौ बजेसे पहलेका) काल होना चाहिए, उत्तर दिशामें मुँह करके स्वस्तिकासनसे बैठना चाहिए, कमल-मुद्रा, जपाकुसुमके रंग जैसा वर्ण, मूँगोंकी माला और अन्तमें वषट् यह पल्लव[1] होना चाहिए ॥ ९० ॥

आकृष्टिकर्मणि ज्ञेयं दण्डासनमतः परम् ॥ ९१ ॥
अङ्कुशाख्या सदा मुद्रा पूर्वाह्णः काल एव च।
दक्षिणा दिक् प्रवालानां माला वौषट् च पल्लवः ॥ ९२ ॥
उदयार्कनिभो वर्णः स्फुटमेतन्मतान्तरम्।

दण्ड आसन, अंकुश नामकी मुद्रा, पूर्वाह्ण काल, दक्षिण दिशा, प्रवाल मणिकी माला, उगते हुए सूर्यके जैसा वर्ण और वौषट् पल्लव, ये आकर्षण करनेवाले मंत्रके जपते समय होना चाहिए ॥ ९१-९२ ॥

स्तम्भकर्मणि पूर्वा दिक् पूर्वाह्णः काल उच्यते ॥ ९३ ॥
शुम्भुमुद्रा च पीताभो वर्णो वज्रासनं मतम्।
ठठेति पल्लवो नाम माला स्वर्णमणिश्रिता ॥ ९४ ॥

स्तम्भन करनेवाले मंत्रके जपते समय पूर्वदिशा, पूर्वाह्ण काल, शुम्भु मुद्रा, पीत वर्ण, वज्रासन, सुवर्णमणियोंकी माला और ठठ यह पल्लव होना चाहिए ॥ ९३-९४ ॥

निषेधकर्मणीशानादिक् सन्ध्या समयोऽपि च।
भद्रपीठासनं प्रोक्तं वज्रमुद्रा विशेषतः ॥ ९५ ॥

१ मंत्रके अन्तमें उच्चारण किये जानेवाले शब्दको पल्लव कहते हैं।

कृष्णो वर्णश्च वै घे घे इति पल्लव उच्यते ।
पुत्रजीवकृता माला विज्ञेया विविधैर्गुणैः ९६ ॥

निषेधक मंत्रके जपते समय ईशान दिशा, संध्या समय, भद्रपीठासन, वज्र-मुद्रा, काला वर्ण, पुत्रजीव (?) मणिकी माला और अन्तमें घे घे यह पल्लव होता है ॥ ९५–९६ ॥

विद्वेषकर्मणि प्रायो मध्याह्नः काल इष्यते ।
अग्निदिक्चापि धूम्राभो वर्णो हूमिति पल्लवः ॥ ९७ ॥
प्रवालाख्या मता मुद्रा कुर्कुटासनमुत्तमम् ।
पुत्रजीवकृता माला जपने तत्र शस्यते ॥ ९८ ॥

विद्वेष-कर्म मंत्रके जपते समय मध्यान्ह काल, आग्नेय दिशा, धूम्र वर्ण, प्रवाल-मुद्रा, कुर्कुटासन, पुत्रजीव मणिकी माला और अन्तमें "हूं" यह पल्लव होता है ॥ ९७–९८ ॥

उच्चाटकर्मणि प्रोक्तमासनं कुर्कुटाभिधम् ।
वायव्यदिक् चापराह्णः कालो मुद्रा प्रवालजा ॥ ९९ ॥
धूम्रवर्णो मतो वर्णो फडित्येव हि पल्लवः ।

उच्चाटनकर्म मंत्रकी सिद्धि करते समय कुर्कुटासन, वायव्य दिशा, अपराह्ण (दो पहर बादका) काल, प्रवाल-मुद्रा, धूम्रवर्ण, और अन्तमें "फट्" यह पल्लव माना गया है ॥ ९९ ॥

शान्तिकर्मणि विज्ञेयं पङ्कजासनमुत्तमम् ॥ १०० ॥
समयश्चार्धरात्रश्च वारुणी दिक्प्रशस्यते ।
ज्ञानमुद्रा मौक्तिकानां माला स्वाहेति पल्लवः ॥ १०१ ॥
चन्द्रकान्तसमो वर्णः श्वेतवासोऽपि पुष्पकम् ।

शान्तिकर्म मंत्रको सिद्ध करते समय कमल-आसन, अर्धरात्रि काल, पश्चिम दिशा, ज्ञानमुद्रा, मोतियोंकी माला, चाँद जैसा रंग, श्वेतवस्त्र, श्वेत ही पुष्प और अन्तमें "स्वाहा" यह पल्लव उत्तम माना है ॥ १००–१०१ ॥

पौष्टिके कर्मणि प्रातः कालो नैर्ऋत्यदिङ्मता ॥ १०२ ॥
पङ्कजासनमेतद्धि ज्ञानमुद्रा विधानतः ।
स्वधेति पल्लवो वर्णश्चन्द्रकान्तसमो मतः ॥ १०३ ॥
मौक्तिकी नाममालेति पुष्पं श्वेतं च चीवरम् ।
द्वादशाङ्गुलपर्वाणि दक्षिणावर्ततो जपेत् ॥ १०४ ॥

नववारान्यतो नाशः पापस्य प्रविजायते।

पौष्टिक कर्ममें प्रातःकालीन समय, नैर्ऋत्य दिशा, कमलासन, ज्ञानमुद्रा, चाँद जैसा वर्ण, मोतियोंकी माला, सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र और अन्तमें "स्वधा" यह पल्लव होना चाहिए। हर एक मंत्रका जप दक्षिण-आवर्तसे एकसौ आठ वार करे। इस तरह मंत्रोंके जपनेसे पापोंका नाश होता है। भावार्थ—इन मंत्रोंमें जो जो समय बताया गया है उस उस समयमें मंत्रका जप करना चाहिए और जो दिशाएँ कही गई हैं उन दिशाओंमें मुख करना चाहिए, जो आसन लिखे गये हैं उन आसनोंसे बैठना चाहिए इत्यादि ॥ १०२–१०३–१०४ ॥

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन विद्वेषोच्चाटने जपः ॥ १०५ ॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठकाभ्यां तु कर्म शत्रुविनाशने।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु जपेदुत्तमकर्मणि ॥ १०६ ॥
अंगुष्टमध्यमाभ्यां तु जपेदाकृष्टकर्मणि।

विद्वेष-उच्चाटन करना हो तो तर्जनी और अँगूठेसे माला पकड़ कर जप करे। यदि शत्रुका विनाश करना हो तो कनिष्ठा और अँगूठेसे माला पकड़ कर जाप देवे। यदि उत्तम कार्य करना हो तो अनामिका और अंगुष्ठसे जाप करे। और आकर्षण कर्ममें अँगूठे और बीचकी उँगलीसे जाप करे ॥ १०५–१०६ ॥

माला सुपञ्चवर्णानां रत्नानां सर्वकार्यदा ॥ १०७ ॥
स्तम्भने दुष्टसन्नाशे जपेत् प्रस्तरकर्करान्।
शत्रूच्चाटे च रुद्राक्षा विद्वेषेऽरिष्टबीजजा ॥ १०८ ॥
स्फाटिकी सूत्रजा माला मोक्षार्थिनां तु निर्मला।

पाँच रंगके रत्नोंकी माला सभी तरहके कार्योंको सिद्ध करती है। कंकड़ोंकी माला स्तम्भन-कर्म और शत्रुके वशीकरणमें काम देती है। रुद्राक्षकी मालासे शत्रुका उच्चाटन होता है। विद्वेष-कर्ममें अरीठेके बीजोंकी माला मानी गई है। तथा मोक्षार्थियोंके लिए स्फटिक मणियोंकी और सूतकी माला उत्तम कही है। भावार्थ—कोई कार्य करना हो तो उसमें जिस जिस प्रकारकी माला बताई गई है उसके द्वारा जप करे ॥ १०७–१०८ ॥

धर्मार्थकाममोक्षार्थी जपेद्वै पुत्रजीवजाम् ॥ १०९ ॥
शान्तये पुत्रलाभाय जपेदुत्पलमालिकाम्।
षट् कर्माणि तु प्रोक्तानि पल्लवा अत उच्यते ॥ ११० ॥

---

१ अँगूठेके पासकी उँगली। २ अन्तकी चिट्टी उँगली। चिट्टीके पासकी उँगली।

यदि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी चाहना हो तो पुत्रजीव मणियोंकी मालासे और यदि शान्ति या पुत्र-प्राप्तिकी वांच्छा हो तो कमल-गट्टोंकी मालासे जप करे। यहाँ तक षट्कर्म कहे। अब पल्लवोंका कथन करते हैं ॥ १०९–११० ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो नमः। ॐ ह्रीँ सिद्धेभ्यो नमः। ॐ ह्रूँ आचार्येभ्यो नमः। ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः। ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः। इति मुक्त्यर्थिनामाराधनमन्त्रः ॥ १ ॥

यह मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंके आराधन करनेका मंत्र है ॥ १ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रूँ आचार्येभ्यः स्वाहा। इत्यादिर्होममंत्रः[1] ॥ २ ॥

यह होम मंत्र है॥ २ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यः स्वधा। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वधा। इत्यादिः शान्तिकपौष्टिकमन्त्रः ॥ ३ ॥

यह शान्ति और पौष्टिक मंत्र है ॥ ३ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो हूं फट्। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो हूं फट्। इत्यादिर्विद्वेषमंत्रः॥४॥

यह विद्वेष मंत्र है ॥ ४ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो हूँ वषट्। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो हूँ वषट्। इत्याद्याकर्षणमन्त्रः॥५॥

यह आकर्षण मंत्र है ॥ ५ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो वषट्। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो वषट्। इत्यादिर्वशीकरणमंत्रः ॥६॥

यह वशीकरण मंत्र है ॥ ६ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यः ठ ठ। इत्यादिः स्तम्भनमन्त्रः ॥ ७ ॥

यह स्तम्भन मंत्र है ॥ ७ ॥

ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो घे घे। इति मारणमन्त्रः ॥ ८ ॥

यह मारण मंत्र है ॥ ८ ॥

---

[1] ॐ ह्रौं पाठकेभ्यः स्वाहा, ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा इत्यादि नीचे लिखे सभी मंत्रोंमें जोड़ लेना चाहिए। परंतु जिनके अंतमें स्वधा हो उनके अंतमें स्वधा और जिनके अन्तमें हूं फट् हूं वषट् इत्यादि हो वे सब लगा लेने चाहिए।

अब मंत्रोंके जपने योग्य स्थान बताये जाते हैं—

एकान्तस्थानके मन्त्रं मुक्त्यर्थं तु जपेच्छुचौ।
स्मशाने दुष्टकार्यार्थं शान्त्याद्यर्थी जिनालये ॥ १११ ॥

मुक्तिके अर्थ पवित्र एकान्त स्थानमें, दुष्ट कार्योंके लिए स्मशानमें और शान्तिके लिए जिनालयमें बैठकर मंत्रोंका जप करे ॥ १११ ॥

श्रीसद्गुरूपदेशेन मन्त्रोऽयं सत्फलप्रदः।
तस्मात्सामायिकं कार्यं नोचेन्मन्त्रमिमं जपेत् ॥ ११२ ॥

श्रीसद्गुरुके परमोपदेशसे यह उत्तम फल देनेवाले मंत्र कहे गये हैं, इस लिए सामायिक करना चाहिए; नहीं तो पंच नमस्कार मंत्रका जाप देना चाहिए ॥ ११२ ॥

आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधती मुक्तिश्रियो वश्यता-,
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रतिदिनं मोहस्य संमोहनं,
पायात्पञ्चनमस्क्रियाऽक्षरमयी साऽऽराधना देवता ॥ ११३ ॥

यह अक्षरात्मक पंच नमस्कार रूप आराधन देवता हमारी रक्षा करे; जो स्वर्गीय सम्पदाका आकर्षण करती है, मोक्षलक्ष्मीको वशमें करती है, चारों गतियोंमें होनेवाली विपत्तिका उच्चाटन—नाश करती है, पापोंका विनाश करनेवाली है, दुर्गतिसे रोकती है और प्रतिदिन मोहको जीतती है। भावार्थ—पंचनमस्कार मंत्रके जपनेसे उपर्युक्त फलोंकी प्राप्ति होती है। अतः हमेशा प्रातःकाल उठकर इस मंत्रको जपना चाहिए ॥ ११३ ॥

ततः समुत्थाय जिनेन्द्रबिम्बं, पश्येत्परं मङ्गलदानदक्षम्।
पापप्रणाशं परपुण्यहेतुं, सुरासुरैः सेवितपादपद्मम् ॥ ११४ ॥

जब प्रथम ही शय्यासे उठकर सामायिक या इस मंत्रका जप कर चुके, उसके बाद चैत्यालयमें जाकर सर्व तरहके मंगल करनेवाले, पापोंका क्षय करनेवाले, उत्तम पुण्यके करनेवाले और सुर, असुरों द्वारा वन्दनीय श्रीजिनबिंबका दर्शन करे ॥ ११४ ॥

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय, द्रष्टव्यमस्ति यदि मङ्गलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं, त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयम् ॥ ११५ ॥

और इस प्रकार स्तुति पढ़े कि हे नाथ, प्रातःकाल ही सोकर उठे हुए पुरुषको अपना सब दिन अमन-चैनसे बीतनेके लिए यदि कोई मंगल-वस्तु द्रष्टव्य है तो इस लोकमें यह तीन लोकके मंगलोंका खजाना तुम्हारा मुख ही है। ऐसी हालतमें अन्य चीजोंके देखनेसे प्रयोजन ही क्या है ॥ ११५ ॥

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं,
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत् ।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनांघ्रिद्वयम् ॥ ११६ ॥

जो पुरुष प्रातःकाल उठकर मनचाहे फलोंको देनेवाले, कल्पवृक्षोंके पत्तों जैसी लाल कांतिवाले जिनदेवके दोनों चरणोंका अवलोकन करता है वह पुरुष लक्ष्मीके क्रीड़ा करनेका स्थान, पृथिवी पर वंशपरम्पराके रहनेका घर, कीर्ति और आनन्दका स्थान, सरस्वतीका क्रीड़ा-गृह, जयलक्ष्मीके रमण करनेका स्थान और सम्पूर्ण महोत्सवोंका भवन बन जाता है। भावार्थ—जो जिनेन्द्रके चरणोंका प्रातःकाल उठकर दर्शन करता है उसे ये सब सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, मनचाही लक्ष्मी मिलती है, उसे सभी जन प्यारकी दृष्टिसे देखते हैं, उसकी वंशपरम्परा इस पृथवीका उपभोग करती है ॥ ११६ ॥

धन्यः स एव पुरुषः समतायुतो यः, प्रातः प्रपश्यति जिनेन्द्रमुखारविन्दम् ।
पूजासुदानतपसि स्पृहणीयचित्तः सेव्यः सदस्सु नृसुरैर्मुनिसोमसेनैः ॥११७॥

जो पुरुष समताभावोंसे सवेरे ही जिन भगवानके मुख-कमलका दर्शन करता है और उत्तम, दान-तप-पूजादिमें जिसका चित्त लगा हुआ है वह पुरुष धन्य है। वह सभामें मनुष्यों और देवों द्वारा सेवा किया जाता है। वह सोमसेनमुनि द्वारा भी सेवनीय है ॥ ११७ ॥

प्रातःक्रियेति निर्दिष्टा संक्षेपेण यथागमम् ।
श्रुता मया गुरोरास्यात्करणीया मनीषिभिः ॥ ११८ ॥

इस अध्यायमें मैंने प्रातःकाल संबंधी क्रियाओंका आगमके अनुसार संक्षेपसे कथन किया है। यह क्रियाएँ मैंने अपने गुरुके मुखसे सुनी हैं। बुद्धिमानोंको प्रातःकाल उठ कर ये क्रियाएँ करनी चाहिए ॥ ११८ ॥

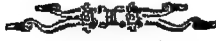
" ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय इति कर्तव्यतायां समाधिमुपेयात् ॥

अर्थात् सूर्योदयसे दो घड़ी प्रथम उठकर इति कर्तव्यतामें मन लगावे। श्रीसोमदेवविराचित नीतिवाक्यामृतकी यह नीति है। इसीका स्पष्टीकरण इस अध्यायमें किया गया है जो सर्वथा आर्षमार्गके अनुकूल है।

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारनिरूपणे भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते सामायिकाध्यायः प्रथमः ॥

पहला अध्याय ।

दूसरा अध्याय ।



शान्तिनाथं जिनं नत्वा पापशान्तिविधायकम् ।
वक्ष्येऽधुना त्रिवर्णानां शौचाचारक्रियाक्रमम् ॥ १ ॥

अब पापोंको शान्त करनेवाले शान्तिनाथ तीर्थंकरको नमस्कार कर तीनों वर्ण-सम्बन्धी शौचाचार क्रियाका क्रम कहा जाता है ॥ १ ॥

शौचेन सँस्कृतो देहः संयमार्थं भवेत्परम् ।
विना शौचं तपो नास्ति विशिष्टान्वयजे नरि ॥ २ ॥

जिस शरीरकी शौच द्वारा शुद्धि की गई है, वही शरीर संयम, व्रत, तपश्चरणके योग्य होता है। विना शारीरिक शुद्धिके, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ भी मनुष्य तपश्चरणके योग्य नहीं है ॥ २ ॥

संस्कृता शोभना भूमिर्बीजानां सत्फलप्रदा ।
कारणे सति कार्यं स्यात्कारणस्यानुसारतः ॥ ३ ॥

हल वगैरह जोतकर साफ की हुई जमीन ही उत्तम फलोंको फलती है, सो ठीक ही है, क्योंकि कारणोंके मिलनेपर उनके अनुसार ही कार्य पैदा होता है ॥ ३ ॥

उप्तं बीजं शुभं भूमौ सहस्रगुणितं फलम् ।
ऊषरेऽसंस्कृते देशे बीजमुप्तं विनश्यति ॥ ४ ॥

जो बीज साफ की हुई जमीनमें बोया जाता है उसके हजारों फल लगते हैं। और यदि वही बीज विना साफ की गई ऊषर जमीनमें बोया जाता है तो फल होना तो दूर रहा वह स्वयं नष्ट हो जाता है। सारांश इन दोनों श्लोकोंका यह है कि यह शरीर मानिन्द जमीनके है, जैसे जिस जमीनमें अधिक खाद दिया जाता है; दो-चार वार हल चलाकर सैवार दी जाती है तो उसमें अनाज वगैरहकी उपज भी अच्छी होने लगती है। इसके अलावा जो ऊषर जमीन होती है उसमें पैदा होना तो दूर रहा बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है। वैसे ही जिस शरीरका विधिपूर्वक संस्कार किया जाता है वह शरीर संयम, व्रत, नियम आदि अच्छे अच्छे आचरणोंके धारण करनेका पात्र बन जाता है। और जिसका संस्कार नहीं किया जाता वह कभी उन संयम, तप आदिके धारण करनेके योग्य नहीं होता। अतः शरीरका संस्कार करना बहुत जरूरी है ॥ ४ ॥

गुरूपदशतो लोके निर्ग्रन्थपदधारणम् ।
संयमः कथ्यते सद्भिः शरीरे सँस्कृतेऽस्ति सः ॥ ५ ॥

गुरुके उपदेशानुसार निर्ग्रंथ पदके धारण करनेको संयम कहते हैं। वह संयम संस्कारसे शुद्ध किये हुए शरीरके होने पर ही होता है ॥ ५ ॥

पापवृक्षस्य मूलघ्नं संसारार्णवशोषणम् ।
शिवसौख्यकरं धर्म्मं साधकः साधयेत्तपः ॥६॥

तपश्चरणके साधन करनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य उस तपकी अवश्य साधना करे, जो पाप-वृक्षको जड़मूलसे उखाड़नेवाला है, संसार-समुद्रको सुखानेवाला है, मोक्ष-सुखकी देनेवाला है और धर्मरूप है ॥ ६ ॥

सुखं वाञ्छन्ति सर्वेऽपि जीवा दुःखं न जातुचित् ।
तस्मात्सुखैषिणो जीवाः संस्कारायाभिसम्मताः ॥ ७ ॥

संसारके सब प्राणी सुखकी चाह करते हैं। कोई संसारमें ऐसा जीव नहीं जो दुःखकी चाह करता हो। इसलिए ये सुखके चाहनेवाले जीव संस्कारके योग्य माने गये हैं ॥ ७ ॥

कालादिलब्धितः पुंसामन्तःशुद्धिः प्रजायते ।
मुख्याऽपेक्ष्या तु संस्कारो बाह्यशुद्धिमपेक्षते ॥ ८ ॥

मनुष्योंकी अन्तरंग शुद्धि तो यद्यपि काललब्धि, कर्मस्थिति काललब्धि, जातिस्मरण आदिके निमित्तसे होती है, तथापि यह मुख्य शुद्धि शरीर-शुद्धिकी अपेक्षा रखती है। और शरीर-शुद्धि बाह्य-संस्कारों (शुद्धि) की अपेक्षा रखती है ॥ ८ ॥

अङ्कुरशक्तिर्बीजस्य विद्यमाना तथापि च ।
वृष्टिः सुभूमिर्वातादिर्बाह्यकारणमिष्यते ॥ ९ ॥

इसीको दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं। यद्यपि बीजमें उगनेकी शक्ति मौजूद है तो भी वह अपने उगनमें अच्छी वृष्टि, उपजाऊ जमीन, अनुकूल हवा, योग्य सूर्यका प्रकाश आदि बाह्य कारणोंकी अपेक्षा रखता है। भावार्थ—बीजमें उगनेकी शक्ति होते हुए भी वह इन बाह्य कारणोंके बिना नहीं उगता। ऐसे ही जीवोंमें यद्यपि सम्यक्त्व आदिके उत्पन्न होनेकी शक्ति है तो भी वह शक्ति बिना बाह्य कारणोंके व्यक्त नहीं होती। वे बाह्य कारण अनेक हैं, उनमें यह शरिर-संस्कार भी एक कारण है ॥ ९ ॥

बाह्यशुद्धि।

स्नानाचमनवस्त्राणि देहशुद्धिकराणि वै ।
सूतकाद्यघशुद्धिश्च बाह्यशुद्धिरिति स्मृता ॥ १० ॥

निरन्तर स्वच्छ जलसे स्नान करना, आचमन करना और धुले हुए साफ कपड़े पहनना यह शरीरकी शुद्धि है। तथा सूतक आदि पापोंकी शुद्धि करना बाह्यशुद्धि है। सारांश स्नान, आचमन आदि शरीरकी बाह्यशुद्धि है ॥ १० ॥

आचारः प्रथमो धर्मः सर्वेषां धर्मिणां मते।
गर्भाधानादिभेदैश्च बहुधा स समुच्यते ॥ ११ ॥

यदि देखा जाय तो सभी आस्तिक धर्मोंमें आचरण सबसे श्रेष्ठ धर्म माना गया है। वह धर्म गर्भाधान आदिके भेदसे अनेक प्रकारका कहा गया है ॥ ११ ॥

पूर्वोक्तविधिना कृत्वा सामायिकादिसत्क्रियाम्।
गृहकार्यं तथा चित्ते चिन्तनीयं गृहस्थकैः ॥ १२ ॥

पहले अध्यायमें जो सामायिक आदि प्रशस्त क्रियाएँ कही गई हैं, उनको पूर्वोक्त विधिके अनुसार करके, गृहस्थोंको घरके सब कामोंका मनमें विचार करना चाहिए कि आज हमें दिनभरमें क्या क्या कार्य करने हैं ॥ १२ ॥

कालं देहं स्थितिं देशं शत्रुं मित्रं परिग्रहम्।
आयं व्ययं धनं वृत्तिं धर्मं दानादिकं स्मरेत् ॥ १३ ॥

कालका, शरीरका, स्थितिका, देशका, शत्रुका, मित्रका, कुटुम्बका, आमदका, खर्चका, धनका, आजीविकाका, धर्मका और दानका हृदयमें चिन्तवन करे। भावार्थ—यह समय अमुक कार्य करनेके योग्य है या नहीं। मैं इस शरीरके द्वारा यह कार्य कर सकूँगा या नहीं, इत्यादिका विचार भी उसी वक्त करे ॥ १३ ॥

तथाऽपराह्लपर्यन्तं प्राह्लादारभ्य तद्दिने।
यत्कर्तव्यं विशेषेण तदधीत हृदि स्फुटम् ॥ १४ ॥

तथा उसी दिन सुबहसे लेकर शाम तकके कर्तव्योंका हृदयमें और भी स्पष्ट रीतिसे विचार करे ॥ १४ ॥

बहिर्दिशागमन।

समतास्थानकं त्यक्त्वा गृहीत्वा पूर्ववस्त्रकम्।
सर्ववस्त्रं विना वस्त्रे धातव्ये चाधरोत्तरे ॥ १५ ॥

जब अपने हृदय पटल पर उपर्युक्त कर्तव्योंकी भले प्रकार अंकित कर चुके उसके बाद उस सामायिककी जगहसे उठ खड़ा होवे और पहले जिन कपड़ोंको पहने था उनको पहन ले अथवा उन कपड़ोंको वहीं रहने देकर एक धोती पहन कर दुपट्टा ओढ़ ले ॥ १५ ॥

नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा नासास्वरानुसारतः ।
अग्रपादं पुरो दत्वा शनैर्गच्छेज्जिनं स्मरन् ॥१६॥

इसके बाद "नमः सिद्धेभ्य" ऐसा मुखसे उच्चारण कर नाकका जो सुर चलता हो उसी सुर तरफके पैरको पहले आगे बढ़ावे और जिनेन्द्रदेवका स्मरण करता हुआ धीरे धीरे मल-मूत्रके त्यागने योग्य स्थानकी ओर गमन करे ॥ १६ ॥

ग्राहयित्वा गृहीत्वा वा कर्पूरं कुंकुमं तथा ।
उशीरं चन्दनं दूर्वादर्भाक्षततिलाँस्तथा ॥ १७ ॥
पश्यन्नीर्यापथं मार्गे व्रजेदेवाप्रमत्तकः ।
चाण्डालशूकरादीनां स्पर्शनं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

तथा कपूर, केसर, आसन, चन्दन, दूब, काँस, अक्षत और तिल इन चीजोंको साथमें स्वयं ले लेवे या नौकर वगैरहके हाथमें देकर उसे साथमें ले चले। रास्तेमें चलते समय बड़ी ही सावधानीके साथ चार हाथ आगेकी जमीनको देखता हुआ चले। और भंगी, चमार, सूअर आदि अस्पर्श्य प्राणियों तथा अन्य चीजोंको रास्तेमें न छूवे ॥ १७–१८ ॥

मलमूत्रोत्सर्गस्थान ।

दूरदेशे महागूढे जीवकीटविवर्जिते ।
प्रासुके चापि विस्तीर्णे लोकदर्शनदूरगे ॥ १९ ॥
भूतप्रेतपिशाचादियक्षलौकिकदेवता- ।
पूजास्थानं परित्यज्य तूत्सृजेन्मलमूत्रकम् ॥ २० ॥

जो शहरसे दूर हो, गुप्त हो, जीव-जन्तुओंसे रहित हो, प्रासुक हो, खूब अच्छा लम्बा चौड़ा हो, जिसमें स्त्री-पुरुष गाय-भैंस आदिका आवागमन न हो और भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, लौकिक देवता आदिका पूजास्थान न हो, ऐसे स्थानमें बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे ॥ १९–२० ॥

दशहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशये ।
शतहस्तं पुरीषं तु नदीतीरे चतुर्गुणम् ॥ २१ ॥

जिस स्थानमें जलाशय, तालाब हो वहाँसे दस हाथ जमीन छोड़ कर तो पेशाब करनेको बैठना चाहिए और सौ हाथ जमीन छोड़ कर टट्टी बैठना चाहिए। यदि नदी हो तो इससे चौगुनी[1] जमीन छोड़ कर टट्टी-पैशाबके लिए बैठना चाहिए ॥ २१ ॥

१ चालीस हाथ और चारसौ हाथ।

शौचनिषिद्धस्थान ।

फलकृष्टे जले चित्यां वल्मीके गिरिमस्तके ।
देवालये नदीतीरे दर्भपुष्पेषु शाद्वले ॥ २२ ॥
कूलच्छायासु वृक्षेषु मार्गे गोष्ठाम्बुभस्मसु ।
अग्नौ च गच्छन् तिष्ठंश्च विष्ठां मूत्रं च नोत्सृजेत् ॥ २३ ॥

जो जमीन हल वगैरह जोतकर साफ की गई हो, जिसमें जल भरा हो, स्मशान हो, चूहे वगैरहके बिल हो, पहाड़की चोटी हो, देवस्थान हो, नदीका किनारा हो, जहाँपर काँस पुष्प खड़े हो, घास वगैरह उगी हुई हो, नदीके किनारे पर या पास दरारोंमें छायादार स्थान हो, जहाँ वृक्षोंकी मूल जड़ वगैरह हो, आनेजानेका रास्ता हो, जहाँपर पशु-पक्षी वगैरह एक साथ रहते हों, जहाँपर भस्म (राख, कूड़ा, कचरा वगैरह) फैली हुई हो और अग्नि रक्खी हो, तो ऐसे स्थानोंमें कभी टट्टी-पेशाबके लिए न बैठे। तथा रास्तेमें चलता या खड़ा टट्टी-पेशाब न करे ॥ २२-२३ ॥

अनुदके धौतवस्त्रे अक्षरलिपिसान्निधौ ।
स्नात्वा कच्छान्वितो भुक्त्वा मलमूत्रे च नोत्सृजेत् ॥ २४ ॥

यदि आसपासमें कहींपर जल न हो, धुले हुए साफ वस्त्र पहने हुए हो, पुस्तक वगैरह पासमें हो, स्नान करके धोती वगैरह पहन चुका हो तो टट्टी-पेशाब न करे। तथा भोजन करनेके बाद भी इन कामोंको न करे ॥ २४ ॥

अग्न्यर्कविधुगोसर्पदीपसन्ध्याम्बुयोगिनः ।
पश्यन्नभिमुखश्चैतान् विष्ठां मूत्रं च नोत्सृजेत् ॥ २५ ॥

अग्नि, सूरज, चाँद, दीपक, सूर्य, पानी और योगीश्वर इनको देखता हुआ इनके सामने मुँह करके टट्टी-पेशाब करनेके लिए न बैठे ॥ २५॥

अरण्येऽनुदके रात्रौ चोरव्याघ्राकुले पथि ।
सकृच्छ्मूत्रपुरीषे द्रव्यहस्तो न दुष्यति ॥ २६ ॥

जिस जंगलमें पानी न हो वहाँ यद्यपि टट्टी-पेशाब न करे, परन्तु रात्रिका समय हो, मार्ग चोर, सिंह आदि भयानक मनुष्य-पशुओंके आवागमनसे पूर्ण हो, और पेशाबकी बाधा खूब ही सता रही हो; ऐसी दशामें यदि टट्टी-पेशाबके लिए बैठ जाय तो हाथमें कुछ होते हुए भी वह दोषका भागी नहीं है ॥ २६ ॥

कृत्वा यज्ञोपवीतं च पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् ।
विण्मूत्रे तु गृही कुर्याद्वामकर्णे व्रतान्वितः ॥ २७ ॥

गृहस्थ जन अपने यज्ञोपवीत (जनेऊ) को गर्दनके सहारेसे पीठ पीछे लटकाकर टट्टी-पेशाब करे और वृती श्रावक बायें कानमें लगाकर टट्टी-पेशाब करे। दोनों ही उसे गलेसे न निकालें ॥ २७ ॥

मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णके।
धारयेद्ब्रह्मसूत्रं तु मैथुने मस्तके तथा ॥ २८ ॥

पेशाबके समय उस यज्ञोपवीतको दाहिने कानमें और टट्टीके समय बायें कानमें टाँगना चाहिए। तथा संभोग करते समय मस्तक पर टाँगना चाहिए ॥ २८ ॥

अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा।
वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥ २९ ॥
कृत्वा समौ पादपृष्ठौ मलमूत्रे समुत्सृजेत्।
अन्यथा कुरुते यस्तु यमं यास्यति सद्गृही ॥ ३० ॥

मल-मूत्र करते समय जिस जगह मल-मूत्र करना हो उस जगहको तृण (घास) से ढक दे, अपना सिर कपड़ेसे ढक ले, किसीसे बोले नहीं अर्थात् मौन रहे, थूके नहीं, जोर जोरसे साँस न ले, दोनों पैरोंको बराबर रक्खे, और पीठको न झुकावे। जो गृहस्थ इस तरहकी क्रिया न करके अपनी मनमानी करता है वह मरणको प्राप्त होता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जमीन पर घास बिछाकर टट्टी-पेशाब क्यों किया जाय। इसका समाधान यह है कि टट्टी और जमीनका संयोग मिलने पर जीवोंके अधिक उत्पन्न होनेकी संभावना है और वह जमीन पर जल्दी शुष्क भी नहीं होगी, घास पर वह जल्दी सूख जायगी और जीवोंकी उत्पत्ति भी अधिक न होगी ॥ २९-३० ॥

प्रभाते मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
स्नाने च भोजने वान्त्यां सप्त मौनं विधीयते ॥ ३१ ॥

समायिक करते समय, मैथुन करते समय, टट्टी-पेशाब करते समय, दतौन करते समय, स्नान करते समय, भोजन करते समय और उल्टीके समय इस प्रकार इन सात स्थानों पर मौन धारण करना चाहिए ॥ ३१ ॥

काष्ठादिनाऽप्यपानस्थममेध्यं निर्मृजीत च।
कन्दमूलफलाङ्गारैर्नामेध्यं निर्मृजीत च ॥ ३२ ॥

टट्टी हो चुकनेके बाद, गुदस्थानको प्रथम लकड़ीके टुकड़ेसे या पत्थर वगैरहसे साफ कर ले। परन्तु कन्द-मूल, फल वगैरहसे साफ न करे ॥ ३२ ॥

शौच बैठते समय वहाँके क्षेत्रपालसे क्षमा करावे। उसका मंत्र यह है:—

ओं ह्रीं अत्रस्थ क्षेत्रपाल क्षमस्व, मां मनुजं जानीहि, स्थानादस्मात्प्रयाहि, अहं पुरीषोत्सर्गं करोमीति स्वाहा ॥

यह मंत्र बोलकर टट्टीके लिए बैठे। इस मंत्रका भाव यह है कि हे इस क्षेत्रमें रहनेवाले क्षेत्र-पाल क्षमा कीजिये, मुझे अल्प शक्तिधारी मनुष्य समझिये, आप इस स्थानसे हट जाइए—मैं यहाँपर मल क्षेपण करता हूँ ॥ ३२ ॥

क्षेत्रपालाज्ञया क्षेत्रे पूर्वास्योवोत्तरामुखः।
शिरःप्रदेशे कर्णे वा धृतयज्ञोपवीतकः ॥ ३३ ॥
पूर्वादिदिक्षु निक्षिप्तदृष्टिरूर्ध्वमधोऽपि वा।
मन्दतालोभतृष्णासु चित्तंस्मरन्मलं सृजेत् ॥ ३४ ॥+

इस तरह क्षेत्रपालसे आज्ञा लेकर पूर्व, दिशाकी ओर या उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके टट्टीके लिए बैठे, यज्ञोपवीतको सिरपर अथवा कानमें टाँगले। टट्टी करते समय अपनी नजर चारों दिशा-ओंमें या ऊपरको या नीचेको रक्खे। तथा उस समय न तो अधिक देर करे, न शीघ्रता करे और न अपने चित्तको इधर उधर डुलावे ॥ ३३–३४ ॥

ततो वामकराङ्गुष्ठान्नङ्गुलिद्वितयेन वै।
शिश्नस्याग्रं गृहीत्वैवं किञ्चद्दूरं व्रजेद्गृही ॥ ३५ ॥

इसके बाद, बायें हाथके अँगूठे और अँगूठेके पासकी दो उँगलियोंसे लिंगके अग्रभागको ग्रहण-कर जलाशय तक जावे ॥ ३५ ॥

प्रासुकं जलमादाय चोपविश्य यथोचितम्।
जानुद्वयस्य मध्ये तु करौ न्यस्याचरेच्छुचिम् ॥ ३६ ॥

वहाँ, जलाशयके किनारे पर ठीक रीतिसे बैठकर, दोनों घुटनोंके बीचमें दोनों हाथोंको रखकर प्रासुक जलसे गुदप्रक्षालन करे ॥ ३६ ॥

तीर्थे शौचं न कर्तव्यं कुर्वीतोद्धृतवारिणा।
गालितेन पवित्रेण कुर्याच्छौचमनुद्धतः ॥ ३७ ॥

तीर्थस्थानके जलाशयोंमें गुद-प्रक्षालन न करे। लोटे वगैरहसे निकाल कर छने हुए पवित्र जलसे शौच करे ॥ ३७ ॥

जलपात्रं ज्येष्ठहस्ते वामहस्तेन शौचकम्।
पुनः प्रक्षाल्य हस्तं तं पुनः शौचं विधीयते ॥ ३८ ॥

पानीके लोटेको दाहिने हाथमें पकड़े और बायें हाथसे शौच करे। एक बार ऐसा कर चुके इसके बाद हाथ धोवे और फिर दूसरी बार शौच करे ॥ ३८ ॥

+ मन्दतागानिरागस्थमन्दाधिचित्तमुत्सृजेत्,—इति पाठः साधीयान् ॥

शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुध्या तथाऽन्तरम् ॥ ३९ ॥

शौच दो प्रकारका है। एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर। मिट्टी और जलसे जो शौच किया जाता है वह बाह्य शौच है और अपने परिणामोंकी शुद्धि रखनेसे आभ्यन्तर शौच होता है॥ ३९ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४० ॥

मनुष्य चाहे अपवित्र हो, चाहे पवित्र हो, चाहे अच्छी हालतमें हो, और चाहे खराब हालतमें हो वह पंचनमस्कारके ध्यान करनेसे सर्व तरहके पापोंसे निर्मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥ ४१ ॥

तथा मनुष्य, अपवित्र हो या पवित्र हो अथवा किसी भी हालतमें क्यों न हो, परन्तु जो परमात्माका स्मरण करता है वह अन्तरंगसे और बाहिरसे पवित्र है ॥ ४१ ॥

चुलकं वारिणा पूर्णं मृत्स्नांशकैः सप्तभिः ।
हस्तेनैकेन हस्तस्यैकस्य शौचं पुनः पुनः ॥ ४२ ॥

शौच (गुद-प्रक्षालन) कर चुकनेके बाद, मिट्टीके सात भाग कर ले और दाहिने हाथके चुल्लूमें पानी लेकर बायें हाथको बार बार-तीन बार धोवे ॥ ४२ ॥

त्रिवारमेवमाशौच्य द्वौ करौ क्षालयेत्ततः ।
कटिस्नानं जलैः कृत्वा पादौ प्रक्षालयेत्ततः ॥ ४३ ॥

इस तरह बायें हाथको धो लेनेपर तीन बार दोनों हाथोंको एक साथ धोवे। इसके बाद कमर तक स्नान करके पैरोंको खूब अच्छी तरहसे धोवे ॥ ४३ ॥

मृच्छुभ्रवर्णा विप्रस्य क्षत्रिये रक्तमृत्तिका ।
वैश्यस्य पीतवर्णा तु शूद्रस्य कृष्णमृत्तिका ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणोंको सफेद, और क्षत्रियोंको लाल मिट्टी लेनी चाहिए; तथा वैश्योंको पीली और शूद्रोंको काली मिट्टी शौचके समय काममें लेनी चाहिए ॥ ४४ ॥

निषिद्धमृत्तिका।

अन्तर्गृहे देवगृहे वल्मीके मूषकस्थले ।
कृतशौचावशेषे च न ग्राह्याः पञ्चमृत्तिकाः ॥ ४५ ॥

घरके बीचके आँगनकी, देवगृहकी, बिलोंकी, चूहोंके बिलोंकी मिट्टी और शौच करनेसे बाकी बची हुई मिट्टी ऐसे पाँच स्थानोंकी मिट्टी न ले ॥ ४५ ॥

मलमूत्रसमीपे च वृक्षमूलस्थिता च या।
वापीकूपतडागस्था न ग्राह्याः पञ्च मृत्तिकाः ॥ ४६ ॥

तथा गिरस्तोंको मल-मूत्र करनेकी जगहकी, वृक्षोंकी जड़की, बावड़ी, कुआ और तालाबकी इन पाँच स्थानोंकी भी मिट्टी शौचके लिए काममें न लेनी चाहिए ॥ ४६ ॥

मार्गोपरस्मशानस्थां पांसुलां मतिमाँस्त्यजेत्।
कीटाङ्गारास्थिसंयुक्ता नाहरेत्कर्करान्विताः ॥ ४७ ॥

तथा रास्तेकी मिट्टी, ऊपर जमीनकी मिट्टी, मशानकी मिट्टी तथा धूलमिट्टी, कीड़े, अंगार, हड्डी और कंकड़ आदिसे मिली हुई मिट्टी भी न लेना चाहिए ॥ ४७ ॥

आहरेन्मृत्तिकां गेही स्थलीसरित्कूलयोः।
शुध्दक्षेत्रस्य मध्यस्थां तथा प्रासुकखानिजाम् ॥ ४८ ॥

किन्तु साफ की हुई जमीनकी, नदीके किनारेकी, जोते हुए खेतकी और प्रासुक खानकी मिट्टी काममें लेवे ॥ ४८ ॥

अलाभे मृदस्तूक्ताया यस्मिन्देशे तु या भवेत्।
तया शौचं प्रकुर्वीत गृही मृत्तिकयाऽपि च ॥ ४९ ॥

ऊपर चारों वर्णोंके योग्य जो मिट्टी बताई गई है यदि वह न मिल सके तो जिस देशमें जैसी मिट्टी मिलती हो उसीसे गृहस्थजन शौच कर सकते हैं ॥ ४९ ॥

अर्धविल्वफलमात्रा प्रथमा मृत्तिका स्मृता।
द्वितीया तु तृतीया तु तदर्धार्धा प्रकीर्तिता ॥ ५० ॥

उस मिट्टीकी कई गोलियें बनावे। पहली गोली बिल्वफलके बराबर बनावे; दूसरी इससे आधी और तीसरी इससे आधी इस तरह आधी आधी बनावे ॥ ५० ॥

एका लिङ्गे करे तिस्र उभयं पादयुग्मके।
पञ्चापाने नखे सप्त सर्वाङ्गे ह्येक एव च ॥ ५१ ॥

एक गोलीसे लिंगकी, तीनसे हाथोंकी, दोसे दोनों पैरोंकी, पाँचसे गुदस्थानकी, सातसे नखोंकी और एकसे सारे शरीरकी शुद्धि करे ॥ ५१ ॥

यद्दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्।
तदर्धमातुरे प्रोक्तं आतुरस्यार्धमध्वनि ॥ ५२ ॥

दिनमें जो यह शौचका विधान बताया गया है उससे रात्रिमें आधा कहा गया है। रोगीके लिए इससे भी आधा समझना और मार्ग चलते हुए रोगीके लिए इससे भी आधा जानना ॥ ५२ ॥

स्त्रीशूद्रादेरशक्तानां बालानां चोपवीतिनाम् ।
गन्धलेपादिकं कार्यं शौचं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ५३ ॥

स्त्रियोंकी, शूद्रोंकी, असमर्थ बालकोंकी और जिनका यज्ञोपवीत हो चुका ऐसे बालकोंकी शरीरशुद्धि चन्दनके लेप आदिके करनेसे ही हो जाती है ॥ ५३ ॥

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो गृही स्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ ५४ ॥

गृहस्थोंको अपनी शारीरिक शुद्धिके करनेमें निरन्तर यत्नशील रहना चाहिए। शारीरिक शुद्धि ही उनकी सब क्रियाओंकी मूल जड़ है। जो गृहस्थी शारीरिक शुद्धि नहीं करता है उसकी सभी क्रियाएँ प्रायः निष्फल हैं ॥ ५४ ॥

हदने द्विगुणं सूत्रान्मैथुने त्रिगुणं भवेत् ।
निद्रायां वीर्यपाते च यथायोग्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥

पेशाब करने पर जो शारीरिक शुद्धि की जाती है उससे दूनी टट्टीके समय और तिगुनी मैथुनके समय करनी चाहिए। तथा सोते सोते वीर्यपात हो जाय तो यथायोग्य अपनी शुद्धि करे ॥ ५५ ॥

पादपृष्ठे पादतले तिस्रस्तिस्रश्च मृत्तिकाः ।
एकैकया मृदा पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्तदा ॥ ५६ ॥

पेशाब आदिके समय पैरोंके ऊपर और नीचे (पगतली पर) तीन तीन बार मिट्टी चुपड़े। इसके बाद एक एक मिट्टीकी गोलीसे हाथ पैर धोवे ॥ ५६ ॥

वामं प्रक्षालयेत्पादं शूद्रादेर्वा कथञ्चन ।
शौचादृते वामपादं पश्चाद्दक्षिणमेव च ॥ ५७ ॥

बायें पैरको प्रथम धोवें, बाद दाहिने पैरको धोवे। शूद्र आदि जैसा चाहे वैसा करें; परंतु वे भी शौचके बिना कार्योंमें बायें पैरको पहले धोवे बाद दाहिने पैरको धोवे ॥ ५७ ॥

इति शौचविधिः ।

कियद्दूरं ततो गत्वा वसित्वा निर्मले स्थले ।
कृतशौपादौ च प्रक्षाल्य मुखप्रावनमाचरेत् ॥ ५८ ॥

शौचस्थानसे कुछ दूर चल कर, निर्मल साफ स्थानमें बैठ कर, हाथ पैरोंको धोकर छने हुए जलसे दन्तवन करना प्रारंभ करे ॥ ५८ ॥

ॐ नमोऽर्हते भगवते सुरेन्द्रमुकुटरत्नप्रभाप्रक्षालितपादपद्माय अहमेवं शुद्धोदकेन पादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ॥ १ ॥ अनेनावशिष्टेन मृदंशेन पादौ प्रक्षालयेत् ॥

यह मंत्र बोलकर बाकी बची हुई मिट्टीसे पैरोंका प्रक्षालन करना चाहिए ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं ह्रौं असुझुर असुझुर सुकुरु भव तथा हस्तशुद्धिं करोमि स्वाहा ॥२॥ अनेन जलेन हस्तप्रक्षालनम् ॥

इस मंत्रको पढ़कर हाथोंका प्रक्षालन करना चाहिए ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं क्ष्वीं ह्वीं मुखप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ॥ ३ ॥ अनेन मुखप्रक्षालनम् ॥

इस मंत्रको पढ़कर मुँह धोवे ॥ ३ ॥

ॐ परमपवित्राय दन्तधावनं करोमि स्वाहा ॥ ४ ॥ अनेन दन्तधावनं दन्तानां कुर्यात् ॥

इस मंत्रको पढ़कर दाँतोंको जलसे साफ करे ॥ ४ ॥

कुरले करना:—

चतुरष्टद्विषड्द्व्यष्टगण्डूषैः शुध्यते क्रमात् ।
मूत्रे पुरीषे भुक्त्यन्ते मैथुने वान्तिसम्भवे ॥ ५९ ॥

पेशाब करनेके बाद चार कुरले करनेसे और टट्टीके बाद आठ कुरले करनेसे मुखकी शुद्धि होती है। भोजनके बाद दोसे, मैथुनके बाद छहसे और उल्टीके बाद सोलह कुरलोंसे मुख सफा होता है ॥ ५९ ॥

पुरतः सर्वदेवाश्च दक्षिणे व्यन्तराः स्थिताः ।
ऋषयः पृष्ठतः सर्वे वामे गण्डूषमुत्सृजेत् ॥ ६० ॥

पूर्वकी तरफ प्रायः सब देवोंका निवास रहता है, दक्षिण तरफ व्यंतरोका निवास हैं और सब ऋषि प्रायः पश्चिमकी ओर निवास करते है, अतः इन तीन दिशाओंमें कुरला न फेंके, किन्तु अपनी बाईं ओर फेंके ॥ ६० ॥

पुनःपुनश्च गण्डूषनिष्ठीवं दूरतस्त्यजेत् ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वा हि द्विराचम्य ततः परम् ॥ ६१ ॥
मौनतः पुण्यकाष्ठेन दन्तधावनमाचरेत् ।
मुखे पर्युषिते यस्मात्भवेदशुचिभाङ्नरः ॥ ६२ ॥

कुरलोंको बारबार अपनी जगहसे कुछ दूर फेंके जिससे कि अपने ऊपर पुनः छींटें न आवें। इसके बाद पूर्वकी या उत्तरकी ओर मुँह करके दो बार आचमन करे। पश्चात् मौनपूर्वक योग्य दतौनसे दन्तवन करे। जो इस तरह मुखशुद्धि न कर बासी मुँह रहता है वह मनुष्य महा अशुद्ध होता है ॥ ६१-६२ ॥

करने योग्य दतौन।

खदिरश्च करिञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा।
तित्तिणी वेणुवृक्षश्च निम्ब आम्रस्तथैव च ॥ ६३ ॥
अपामार्गश्च बिल्वश्च ह्यर्क आमलकस्तथा।
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मसु ॥ ६४ ॥

खदिर, करंज, कदंब, बड़, इमली, वेणुवृक्ष, नीम, आम, अपामार्ग, विल्व, अर्क और आवलेकी दतौन दाँतोंके साफ करनेके लिए प्रशस्त कही गई है ॥ ६३-६४

समिधां क्षीरवृक्षस्य प्रमाणं द्वादशाङ्गुलम्।
कनिष्ठियासमस्थूलं पूर्वार्द्धेन त्रिरक्षिते (?) ॥ ६५ ॥

क्षीर वृक्षोंकी दतौन बारह अंगुल लंबी और कनिष्ठा उँगलीके जितनी मोटी होनी चाहिए ॥ ६५ ॥

न करने योग्य दतौनः—

गुवाकतालहिन्तालकेतक्यश्च महावटः।
खर्जूरी नालिकेरश्च सप्तैते तृणराजकाः ॥ ६६ ॥
तृणराजसमोपेतो यः कुर्याद्दन्तधावनम्।
निर्दयः पापभागी स्यादनन्तकायिकं त्यजेत् ॥ ६७ ॥

सुपारी, ताड़, हिंताल, केतकी, महावट, खजूर, और नारियल ये सात वृक्ष तृणराज माने गये हैं। इन तृणराजोंकी दतौनसे जो पुरुष दतौन करता है वह निर्दयी और पापी होता है। क्योंकि इनकी दतौनके भीतर अनन्त जीव रहते हैं, अतः इनकी दतौनका त्याग करे ॥ ६६-६७ ॥

द्वितीया पञ्चमी चैव ह्यष्टम्येकादशी तथा।
चतुर्दशी तथैतासु दन्तधावं च नाचरेत् ॥ ६८ ॥
अर्कवारे व्यतीपाते संक्रान्तौ जन्मवासरे।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु व्रतादीनां दिनेषु च ॥ ६९ ॥

दौज, पंचमी, अष्टमी, ग्यारस और चौदस इन पाँचों पर्वोंमें काष्ठकी दतौनसे दन्तवन न करे। तथा रविवार, अशुभ दिन, संक्रान्ति, अपना जन्मदिन और दशलक्षण, रत्नत्रय, अष्टान्हिका आदि व्रतोंके दिन भी न करें ॥ ६८-६९ ॥

तृणपर्णैः सदा कुर्यादेकां चतुर्दशीं विना।
तस्यामपि च कर्तव्यं शुष्ककाष्ठैर्जिनार्चने ॥ ७० ॥

एक चतुर्दशीको छोड़कर बाकीके सभी दिनोंमें तिनके और पत्तोंसे दाँत साफ करे। चतुर्दशीके दिन यदि जिन भगवानकी पूजा करनी हो तो सूखी हुई दतौनसे दाँत साफ करे ॥ ७० ॥

सहस्रांशावनुदिते यः कुर्याद्दन्तधावनम्।
स पापी मरणं याति सर्वजीवदयातिगः ॥ ७१ ॥

सूर्यके उगनेके पहले जो दतौन करता है वह पापी है, जीवोंकी दयासे परांमुख है और मरणको प्राप्त होता है। भावार्थ—यह भयप्रदर्शक वाक्य है, इसका सारांश इतना ही है कि सूर्योदयसे पहले दतौन करना हानिकारक है ॥ ७१ ॥

अङ्गारवालुकाभिश्च भस्मादिनखरैस्तथा।
इष्टकालोष्ठपाषाणैर्न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ ७२ ॥

कोयला, बालू, राख, नख, ईंट, मिट्टीका ढेला और पत्थरसें दाँत न घिसे ॥ ७२ ॥

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथावपि।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिः प्रजायते ॥ ७३ ॥

यदि लकड़ीकी दतौन न मिले तो जलके बारह कुरले करनेसे ही मुखशुद्धि हो जाती है। और निषिद्ध तिथियोंमें भी ऐसा करनेसे मुखशुद्धि होती है ॥ ७३ ॥

नेत्रयोर्नासिकायाश्च कर्णयोर्विवराणि च।
नखान् स्कन्धौ च कक्षादि शोधयेदम्भसा नरः ॥ ७४ ॥

नेत्र, नाक, कान, नख, कन्धे और बगल आदिको भी जलसे शुद्ध करे ॥ ७४ ॥

जलाशये न कर्तव्यं निष्ठीवं मुखधावनम्।
किञ्चिद्दूरेऽपि तीरस्य पुनर्नायाति तद्यथा ॥ ७५ ॥

जलाशयके भीतर न तो थूँके और न मुँह धोवे। तीरसे कुछ हटकर कुरला वगैरह फेंके जिससे कि वह वापिस लौटकर जलाशयमें न आवे ॥ ७५ ॥

तोयेन देहद्वाराणि सर्वतः शोधयेत्पुनः।
आचमनं ततः कार्यं त्रिवारं प्राणशुद्धये ॥ ७६ ॥

शरीरके सभी छिद्रोंको एक एक करके जलसे साफ करे। इसके बाद प्राणशुद्धिके लिए तीन बार आचमन करे ॥ ७६ ॥

आचमनं सदा कार्यं स्नानेन रहितेऽपि च ।
आचमनयुतो देही जिनेन शौचवान्मतः ॥ ७७ ॥

स्नान न करने पर भी आचमन अवश्य करे। क्योंकि आचमनयुक्त प्राणीको श्रीजिनदेवने शुद्ध माना है ॥ ७७ ॥

सन्ध्याया लक्षणं मुद्रा आचमस्यापि लक्षणम् ।
कथयिष्यामि चाग्रेऽहं स्नानस्य विधिरुच्यते ॥ ७८ ॥

संध्या और आचमनका लक्षण तथा मुद्राओंको आगे चलकर कहेंगे। यहाँ अब स्नानकी विधि बताते हैं ॥ ७८ ॥

तैलस्य मर्दनं चादौ कर्तव्यमन्यहस्तकैः ।
यथा सर्वाङ्गशुद्धिः स्यात्पुष्टिश्चापि विशेषतः ॥ ७९ ॥

स्नानके पहले दूसरेसे तैलका मालिश करावे। इससे सारे शरीरकी शुद्धि होती है तथा शरीर भी पुष्ट होता है ॥ ७९ ॥

पात्रदानं स्वहस्तेन परहस्तेन मर्दनम् ।
तिलकं गुरुहस्तेन मातृहस्तेन भोजनम् ॥ ८० ॥

पात्रोंको दान हमेशा अपने हाथसे दे, दूसरेके हाथसे तैलकी मालिश करावे, गुरुके हाथसे तिलक करावे और माताको परोसा भोजन करे ॥ ८० ॥

तैलमर्दन विधि ।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पञ्चम्यामर्कवासरे ।
व्रतादीनां दिनेष्वेव न कुर्यात्तैलमर्दनम् ॥ ८१ ॥

अष्टमी, चतुर्दशी, पंचमी, रविवार और व्रतके दिनोंमें तैलकी मालिश न करे ॥ ८१ ॥

चरे विलग्ने शशिजीवभौमे,
रिक्तातिथौ स्यादुभये च पक्षे ।
तैलावलेपं तु मृदाविधूत्यं (?)
स्नानं नराणां विरुजत्वकारि ॥ ८२ ॥

चरलग्न, सोमवार, बृहस्पति वार, दोनों पक्षोंकी रिक्त तिथि इन दिनोंमें तैल मालिश करके स्नान करना नीरोगताका कारण है ॥ ८२ ॥

हस्ते ऐन्द्रे च रेवत्यां सौम्ये चार्द्रापुनर्वसौ ।
स्नातो व्रतान्वितो जीवो व्याधिना नैव बाध्यते ॥ ८३ ॥

जो हस्त, धनिष्ठा, रेवती, मृग, आर्द्रा और पुनर्वसु इन नक्षत्रोंमें तेल मालिश करके स्नान करता है, व्रत पालता है उसे कभी रोग नहीं सताते ॥ ८३ ॥

सोमे कीर्तिः प्रसरति वरा रौहिणेये हिरण्यं,
देवाचार्ये तरणितनये वर्धते नित्यमायुः ।
तैलाभ्यङ्गात्तनुजमरणं दृश्यते सूर्यवारे,
भौमे मृत्युर्भवति नितरां भार्गवे वित्तनाशः ॥ ८४ ॥

सोमवारके दिन तेल लगाकर स्नान करनेसे कीर्ति फैलती है, बुधवारके दिन सुवर्णकी प्राप्ति होती है, गुरुवार और शनिवारको आयु बढ़ती है, रविवारको पुत्रका मरण और मंगलवारको खुदका मरण होता है, तथा शुक्रवारके दिन तेल लगाकर स्नान करनेसे धन-क्षय होता है ॥ ८४ ॥

विवाहे यदि सम्पत्तौ सूतकान्ते महोत्सवे ।
रजसि मित्रकार्येषु स्नापयेत्सर्ववासरे ॥ ८५ ॥

विवाहमें, सूतकके आखिरी दिन होनेवाले उत्सवमें और मित्रके कार्योंमें जब चाहे तब तेल लगाकर स्नान करे । तथा रजस्वला स्त्री भी जब चाहे तब तेल लगाकर स्नान करे ॥ ८५ ॥

घृतं च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
न दोषः पक्वतैलेषु नाभ्यङ्गे नत्वनित्यशः ॥ ८६ ॥

घी, सरसोंका तेल और सुगंधित तेल मालिशके लिए योग्य है । तथा पकाया हुआ तेलका मालिश स्नानके दिवसोंमें योग्य है; अन्य दिनमें नहीं ॥ ८६ ॥

दश दिशासु सन्दद्याद्बलिं तैलस्य बिन्दुना ।
नखेषु लेपयेदादौ पूरयेत्कर्णचक्षुषी ॥ ८७ ॥

मालिश करनेके पेश्तर दशों दिशामें तेलके छींटे देवे और पहले नखों पर तेल चुपड़े, इसके बाद कानोंमें और नेत्रोंमें डाले ॥ ८७ ॥

अन्योच्छिष्टं च जन्तूनां मृतानां च कलेवरैः ।
मिश्रितं चर्मपात्रस्थं वर्जयेत्तैलमर्दनम् ॥ ८८ ॥

जो दूसरोंके लगाये हुए तेलमेंसे बचा हुआ हो, जिसमें जीव-जन्तु पड़कर मर गये हों और जो चमड़ेकी कुप्पी वगैरहमें रक्खा हुआ तो उस तेलका मालिश न करे ॥ ८८ ॥

मृत्तिकाभिस्त्यजेत्तैलं सुगन्धान्यैश्च वस्तुभिः ।
खलेनाम्रफलेनापि नान्यथा शुचितां व्रजेत् ॥ ८९ ॥

मिट्टी मिले हुए, धान्य मिले हुए, खटाई वगैरहसे मिले हुए तेलसे मालिश न करना चाहिए अन्यथा इससे अपवित्रता ही होगी ॥ ८९ ॥

स्नानविधि ।

उष्णोदकेन पश्चात्तु प्रासुके निर्मले स्थले ।
स्नानं कुर्याद्यथा श्राद्धो जीवबाधा न जायते ॥ ९० ॥

तेल मालिशके बाद, जीव-जन्तु रहित साफ शिला वगैरहपर बैठकर गर्म-जलसे स्नान करे। स्नान बड़ी सावधानीसे करे कि जिससे जीवोंको पीड़ा न पहुँचे ॥ ९० ॥

कषायद्रव्यमिश्रेण सुवस्त्रशोधितेन वा ।
नातिस्तोकेन नीरेण स्नायाद्वा नातिभूरिणा ॥ ९१ ॥

ऐसे जलसे स्नान करे जो न तो बहुत ही थोड़ा हो और न बहुत ही जियादा हो । वह छना हुआ हो या उसमें कुछ कसैला पदार्थ मिला हुआ हो ॥ ९१ ॥

पाषाणस्फालितं तोयं सन्तप्तं सूर्यरश्मिभिः ।
पशुभिर्घातितं पादैः प्रासुकं निर्झरागतम् ॥ ९२ ॥

रेणुकायन्त्रिभिर्जातं तथा गन्धकवासितम् ।
प्रासुकं स्नानशौचाय न तु पानाय शस्यते ॥ ९३ ॥

पत्थरोंसे टकराया हुआ, सूर्यकी धूपसे संतप्त हुआ, पशुओंके पैरोंसे मथा हुआ, निर्झरोंका बहा हुआ, रेणु और यंत्रके द्वारा प्रासुक किया हुआ तथा सुगंधि आदिके द्वारा प्रासुक किया हुआ जल स्नान और शौचके लिए प्रासुक माना गया है । पीनेके लिए यह जल प्रासुक नहीं है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

मिथ्यादृष्टिभिरज्ञानैः कृततीर्थानि यानि वै ।
तेषु स्नानं न कर्तव्यं भूरिजीवनिपातिषु ॥ ९४ ॥

अज्ञानी मिथ्यादृष्टियोंने जिन्हें तीर्थस्थान बना रक्खे हैं बहुतसे जीवोंके नाशके कारण ऐसे तीर्थोंमें कभी स्नान न करे ॥ ९४ ॥

यदि तत्रैव गन्तव्यं कुसङ्गासङ्गदोषतः ।
तस्माद्धृत्वा जलैः स्नायाद्भिन्नदेशे सुशोधिते ॥ ९५ ॥

यदि कदाचित् खोटी संगतिमें फँसकर उन तीर्थस्थानोंमें स्नान करनेके लिए चला जाय तो वहाँसे किसी पात्रमें जल लेकर दूसरे जीव-जन्तु रहित पवित्र स्थानमें बैठकर स्नान करे ॥ ९५ ॥

पञ्चेन्द्रियशवस्पर्शे विना तैलं न शुध्यति ।
ब्रह्मचारियतीनां तु न योग्यं तैलमर्दनम् ॥ ९६ ॥

पंचेंद्रिय जीवोंके मुर्दा शरीरके स्पर्श हो जानेपर बिना तेल लगाये शुद्धि नहीं होती परंतु ब्रह्मचारियों और यतिओंको तेल मर्दन करना योग्य नहीं है ॥ ९६ ॥

सप्ताहान्यम्भसास्नायी गृही शूद्रत्वमाप्नुयात् ।
तस्मात्स्नानं प्रकर्तव्यं रविवारे तु वर्जयेत् ॥ ९७ ॥

यदि गृहस्थ लगातार सात दिन तक स्नान न करे तो शूद्र तुल्य हो जाता है । इसलिए रविवारको छोड़कर स्नान अवश्य करना चाहिए ॥ ९७ ॥

अत्यन्तं मलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येव दिवा रात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ॥ ९८ ॥

यह शरीर अत्यन्त ही महा मलिन है, बड़े बड़े नौ छिद्रोंसे युक्त है जिनमेंसे रात-दिन घिनावने दुर्गन्ध युक्त मल, मूत्र, नाक, लार, खँखार आदि झरते रहते हैं । इस लिए प्रातः स्नानके द्वारा इसे शुद्ध करनेका उपदेश है ॥ ९८ ॥

प्रातः स्नातुमशक्तश्चेन्मध्यान्हे स्नानमाचरेत् ।
स्वयं स्त्रियाऽथवा शिष्यैः पुत्रैरुद्धृतवारिभिः ॥ ९९ ॥

जो पुरुष प्रातःकाल स्नान करनेमें असमर्थ है वह, स्वयं अपने द्वारा, या अपनी स्त्री द्वारा, या अपने शिष्यों द्वारा, या अपने पुत्रों द्वारा लाये हुए जलसे मध्याह्नमें स्नान करे ॥ ९९ ॥

न स्नायाच्छूद्रहस्तेन नैकहस्तेन वा तथा ।
नागालितजलेनापि न दुर्गन्धेन वारिणा ॥ १०० ॥

शूद्रों द्वारा लाये हुए जलसे स्नान न करे, एक हाथसे भी न करे और अनछने तथा दुर्गन्धित जलसे भी स्नान न करे ॥ १०० ॥

कराभ्यां धारयेद्दर्भं शिखाबन्धं विधाय च ।
प्राणायामं ततः कुर्यात्सङ्कल्पं च समुच्चरेत् ॥ १०१ ॥

अपनी चोटीके गाँठ लगा ले और दोनों हाथोंमें दूब पकड़ ले, इसके बाद प्राणायाम और संकल्प करे ॥ १०१ ॥

द्विराचम्य निमज्याथ पुनरेवं द्विराचमेत् ।
मन्त्रेणैव शिखां बध्वा प्राणायामं च वै पुनः ॥ १०२ ॥

स्नात्वाऽथ देहं प्रक्षाल्य पुनः स्नात्वा द्विराचमेत् ।
पंचपरमेष्ठिपदैर्नवभिर्मार्जयेदथ ॥ १०३ ॥

साङ्गुष्ठयज्ञसूत्रेण त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ।
याः प्रवर्तन्त इति जले इदं मेऽत्र प्रवर्तनम् (१) ॥ १०४ ॥

दो वार आचमन करके स्नान करे, फिर दो वार आचमन करे, पुनः मंत्रोच्चारण पूर्वक चोटी-के गाँठ लगाकर प्राणायाम करे । इसके वाद स्नान कर शरीरको पोंछे, पुनः स्नान कर दो वार आचमन करे । इसके बाद नो वार पंचपरमेष्ठी पदको उच्चारण कर मार्जन करे । और अँगूठेके साथ साथ यज्ञोपवनीतको तीन दक्षिणाकार फिरा ले ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

सङ्कल्पं सूत्रपठनं मार्जनं चाघमर्षणम् ।
देवादितर्पणं चैव पंचागं स्नानमाचरेत् ॥ १०५ ॥

संकल्प करना, मंत्र पढ़ना, मार्जन करना, अघमर्षण करना और देवोंका तर्पण करना ये पाँच स्नानके अंग हैं ॥ १०५ ॥

गृहस्याभिमुखं स्नायान्मार्जनं चाघमर्षणम् ।
अन्यत्रार्कमुखो रात्रौ प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥ १०६ ॥

यदि घरपर ही स्नान करना हो तो घरकी ओर मुँह करके स्नान, मार्जन और अघमर्षण करे । यदि और और ठौर स्नान करना हो तो पूर्वकी ओर मुखकरके स्नानादि करे । तथा रात्रिके समय स्नान करनेका मौका आवे तो पूर्व या उत्तरको मुख करके स्नानादि क्रिया करे ॥ १०६ ॥

सन्ध्याकालेऽर्चनाकाले संक्रान्तौ ग्रहणे तथा ।
वमने मद्यमांसास्थिचर्मस्पर्शेऽङ्गनारतौ ॥ १०७ ॥

अशौचान्ते च रोगान्ते स्मशाने मरणश्रुतौ ।
दुःस्वप्ने च शवस्पर्शे स्पर्शनेऽन्त्यजनेऽपि वा ॥ १०८ ॥

स्पृष्टे विण्मूत्रकाकोलूकश्वानग्रामसूकरे ।
ऋषीणां मरणे जाते दूरान्तमरणे श्रुते ॥ १०९ ॥

उच्छिष्टास्पृश्यवान्तादिरजस्वलादिसंश्रये ।
अस्पृश्यस्पृष्टवस्त्रान्नभुक्तपत्रविभाजने ॥ ११० ॥

शुद्धे वारिणि पूर्वोक्तं यन्त्रे मन्त्रे (१) सचेलकः ।
कुर्यात्स्नानत्रयं जिह्वादन्तधावनपूर्वकम् ॥ १११ ॥

अर्घं च तर्पणं मन्त्रजपदानार्चनं चरेत् ।
बहिरन्तर्गता शुद्धिरेवं स्याद्गृहमेधिनाम् ॥ ११२ ॥

सन्ध्याके समय, पूजाके समय, संक्रान्तिके दिन, ग्रहणके दिन, उल्टी हो जानेपर, मदिरा, मांस हड्डी, चर्म, इनका स्पर्श हो जानेपर, मैथुन करनेपर, टट्टी होकर आने पर, बीमारीसे उठने पर, मशान घाटके ऊपर जानेपर, किसीका मरण सुनने पर, खराब स्वप्नके आनेपर, मुर्देसे छू जानेपर, चांडालादिका स्पर्श हो जानेपर, विष्ठा-मूत्र, कौआ, उल्लू, स्वान, ग्राम-शूकरोंसे छू जानेपर, ऋषियोंकी मृत्यु हो जानेपर, अपने कुटुंबीकी दूरसे या पाससे मरणकी सुनावनी आनेपर, उच्छिष्ठ, अस्पर्श, वमन, रजस्वला आदिका संसर्ग हो जानेपर, अस्पर्श मनुष्योंके छुए हुए वस्त्र, अन्न, भोजन, आदिसे छू जाने पर और जीमते समय पत्तल फट जानेपर, दतौनके साथ साथ पूर्वोक्त मंत्र-यंत्रे पूर्वक शुद्ध जलसे तीन वार स्नान करे, अपने पहने हुए सब कपड़ोंको धोवे तथा अर्घ, तर्पण, मंत्र, जप, दान, पूजा वगैरह सब कार्य करे। इस तरह करनेसे गृहस्थियोंकी बाह्य अभ्यन्तर शुद्धि होती है॥ १०७॥ ११२॥

इत्येवं गृहमेधिनां शुचिकरः स्वाचारधर्मो मया,
प्रोक्तो जैनमतानुसारसकलं शास्त्रं समालोक्य वै,
शौचाचारवृषं विना तनुभृतां नास्त्यत्र धर्मः क्वचित्,
मन्त्राँस्तस्य विधानतो भवभिदः संक्षेपतः कथ्यते॥ ११३॥

जैनमतके कितने ही शास्त्रोंका अवलोकन कर यह उपर्युक्त गृहस्थोंकी बाह्यशुद्धि करनेवाले आचरका कथन किया गया। क्योंकि गिरस्तोंका बिना शौचाचारके इस संसारमें कहींपर और कोई धर्म नहीं है। अब संसार नाशके कारण शौचाचार-सम्बन्धी मंत्रोंका विधिपूर्वक संक्षिपसे कथन किया जाता है॥ ११३॥

ॐ ह्रीं क्ष्वीं स्नानस्थानभूः शुद्ध्यतु स्वाहा।
इति स्नानस्थानं शुचिजलेन सिञ्चयेत्।

यह मंत्र पढ़कर स्नान करनेकी जगहको पवित्र जलसे सींचे।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा इदं
समस्तं गंगासिंध्वादिनदीनदतीर्थजलं भवतु स्वाहा।
इत्यनेन स्नानजलं हस्ताग्रेण स्पृशेत्।

इस मंत्रको बोल कर अपने हाथसे स्नानके जलको छूवे।

क्षं ठं स्वरावृतं योज्यं मण्डलद्वयवेष्टितम्।
तोये न्यस्याग्रतर्जन्या तेनानुस्नानमावहेत्॥ ११४॥
इत्युक्तं यंत्रं जलमध्ये लिखित्वा मंत्रयेत्ततः॥

एक गोल मण्डल खींचे, उसके बीचमें झं और ठं इन दो बीजाक्षरोंको लिखे और उसके बाहर चारों ओर अ आ आदि सोलह स्वर लिखे तथा उनके चारों ओर एक मंडल और खींचे। इस प्रकारका यंत्र अपने स्नान-जलमें तर्जनीके अग्रभागसे बनावे, पीछे उस जलसे स्नान करे। इस कहे हुए यंत्रको जलमें लिखकर इस नीचे लिखे मंत्रसे उसे मंत्रित करे ॥ ११४ ॥

ततः इँवी क्ष्वीं हं सः।

इति बीजाक्षरप्रयुक्तसुरभिमुद्रां प्रदर्शयन्मन्त्रमिमं पठेत् ॥

इस तरह बीजाक्षरोंसे युक्त सुरभिमुद्राको दिखाता हुआ इस मंत्रको पढ़े।

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा सर्वमिदममृतं भवतु स्वाहा। इति मन्त्रेण स्नानजलममृतीकृत्य तत्र त्रिः पञ्चकृत्वो वा—

इस मंत्र द्वारा स्नानजलमें अमृतकी कल्पना कर तीन वार या पाँच वार

ॐ ह्रीं अर्हं नमः मम सर्वकर्ममलं प्रक्षालय प्रक्षालय स्वाहा। इति मंत्रेण कुण्डलजलमध्ये प्लावनं कुर्यात्।

इस मंत्रद्वारा उस जलमें डुबकी लगावे।

तत उत्थाय पूर्ववदाचम्य—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा जलमार्जनं करोमि स्वाहा। मम समस्तदुरितसन्तापापनोदोऽस्तु स्वाहा। इति त्रिरुच्चार्य हस्ताग्रेण मार्जनं कृत्वा तदन्ते चुलकोदकेन त्रिः परिषेचनं एकवारं कुर्यात्।

इसके बाद उठकर पहलेके मानिंद आचमन कर इस मंत्रका तीन वार उच्चारण करे और हाथोंसे अपने शरीरको मले। इसके बाद चुल्लूमें जल लेकर अपने चारों ओर एकवार तीन परिषेचन करे।

भूयः स्नात्वा आचम्य च तत्र जलतर्पणं कुर्यात्। तद्यथा—

इसके बाद पुनः स्नान कर और आचमन कर वहीं पर तर्पण करे। सो ही दिखाते हैं।

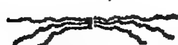
ॐ ह्रां अर्हद्भ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ ह्रूं सूरिभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ ह्रौं पाठकेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ ह्रां जिनधर्मेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ ह्रां जिनागमेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ ह्रां जिनचैत्येभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ ह्रां जिनालयेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ ह्रां सम्यग्दर्शनेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥ ॐ ह्रां सम्यग्ज्ञानेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ ॐ ह्रां सम्यक्चारित्रेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥ ॐ ह्रां सम्यक्तपोभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥ ॐ ह्रां अस्मद्गुरुभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ ॐ ह्रां ॥ असद्विद्यागुरुभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥ इति पञ्चदश तर्पणमंत्राः। एतैस्तर्पणं कुर्यात् ॥ ततो जलान्निर्गमनक्रिया अग्रे वक्ष्यते।

ये पंद्रह तर्पण मंत्र हैं, इनसे तर्पण करे। इसके बाद जलसे निकल कर क्या क्या क्रिया करे इसका जिकर आगेके अध्यायमें किया जायगा।

शौचाचारविधिः शुचित्वजनकः प्रोक्तो विधानागमे,
पुंसां सद्व्रतधारिणां गुणवतां योग्यो युगेऽस्मिन्कलौ।
श्रीभट्टारकसोमसेनमुनिभिः स्तोकोऽपि विस्तारतः,
प्रायः क्षत्रियवैश्यविप्रसुखकृत् सर्वत्र शूद्रोऽप्रियः ॥ ११५ ॥

क्रियाशास्त्रोंमें शरीरको पवित्र बनानेवाली यह शौचाचारविधि कही गई है जो इस कलियुगमें गुणी, व्रती गृहस्थोंके योग्य है। यह विधि शास्त्रोंमें बहुत ही संक्षेपसे कही गई है। वही कुछ विस्तार लिए हुए सोमसेन भट्टारकके द्वारा यहाँ कही गई है। यह विधि प्रायः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंको सुखी बनानेको कही है। शूद्रोंको इस उपर्युक्त शौचाचारविधिका करना सुखकर नहीं है ॥ ११५ ॥

तीसरा अध्याय ।



वीरनाथं प्रणम्यादौ सर्वपापविनाशकम् ।
जलान्निर्गमनं पश्चात्किं कर्तव्यं तदुच्यते ॥ १ ॥

आरंभमें सम्पूर्ण पापोंके विनाश करनेवाले वीर भगवानको नमस्कार कर, जलसे बाहर निकले बाद क्या करना चाहिये, यह बताया जाता है ॥ १ ॥

नीरान्निर्गमनं जलाशयतटे वस्त्रादिकप्रोक्षणं,
वस्त्राणां परिधारणं समतले भूमेश्च शुद्धे ततः ।
सुश्रोत्राचमनं च मार्जनविधिं सन्ध्याविधिं चोत्तमं,
वक्ष्यामि क्रमशः क्रियाविधिमतां शुद्धाः क्रियाः षड्विधाः ॥ २ ॥

जलसे बाहर जलाशयके तट पर आना, वस्त्र आदिका संप्रोक्षण करना, सपाट और शुद्ध भूमि पर खड़ा रहकर वस्त्र धारण करना, श्रोत्राचमन, मार्जनविधि, और सन्ध्याविधि ये छह परम पवित्र क्रियाएँ क्रमसे कही जाती हैं ॥ २ ॥

जलान्निसृत्य प्राक्स्थाने निर्मले जन्तुवर्जते ।
अन्तरङ्गविशुध्द्यर्थं स्थित्वाऽर्हत्स्नानमाचरेत् ॥ ३ ॥

जलसे बाहर निकल कर पवित्र जीव-जन्तु रहित स्थानमें बैठकर, अंतरंग शुद्धिके लिए आगे लिखे अनुसार अर्हंत स्नान करे ॥ ३ ॥

हस्ताभ्यां जलमादाय सकृदेवाभिमन्त्रितम् ।
मस्तके च मुखे बाह्वोर्हृदये पृष्ठदेशके ॥ ४ ॥
अभिषिञ्चेत्स्वमात्मानं मन्त्रैः सुरभिमुद्रया ।
एकवृत्त्या जपेच्छक्त्या भक्त्या पंचनमस्क्रियाम् ॥ ५ ॥

दोनो हाथोंमें जल लेकर उसे मंत्रद्वारा मंत्रित कर, मंत्रोच्चारण पूर्वक मस्तक, मुख, दोनों भुजा, हृदय, पीठ आदि स्थानोंमें अपनी आत्माका अभिषेचन करे । पश्चात् सुरभिमुद्रा द्वारा एकाचित्त हो कर, अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिभावसे पंच नमस्कार मंत्रका जाप करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

शास्त्रोक्तविधिना स्नात्वा द्विराचम्य ततः परम् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा सङ्कल्प्य तर्पयेदथ ॥ ६ ॥

इस प्रकार शास्त्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार स्नान कर दो बार आचमन करे। पश्चात् प्राणायाम कर संकल्प करे। इसके बाद तर्पण करे ॥ ६ ॥

अक्षतोदकपूर्णेन देवतीर्थेन तर्पयेत् ।
जयादिदेवताः सर्वाः प्राङ्मुखश्चोपवीत्यथ ॥ ७ ॥

पूर्व दिशाकी तरफ मुख कर यज्ञोपवीत-युक्त होकर, अर्थात् बायें हाथमें जनेऊ डालकर और हाथमें अक्षत और जल लेकर देवतीर्थसे सम्पूर्ण जयादि देवतोंका तर्पण करे। उँगलियोंके अग्रभागकी देवतीर्थ संज्ञा है ॥ ७ ॥

उदङ्मुखो निवीती तु यवसम्मिश्रितोदकैः ।
गौतमादिमहर्षीणां तर्पयेद्दृषितीर्थतः ॥ ८ ॥

उत्तर दिशाकी ओर मुख कर यज्ञोपवीतको गलेमें मालाकी तरह लटका कर जव और जलके द्वारा ऋषितीर्थसे गौतमादि महर्षियोंका तर्पण करे। उँगलियोंके भागको ऋषितीर्थ कहते हैं ॥ ८ ॥

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्राचीनावीत्यनातपम् (१) ।
तिलैः सन्तर्पयेत्तीर्थपितरो वृषभादयः ॥ ९ ॥

दक्षिण दिशाकी तरफ मुख कर, प्राचीनावीति अर्थात् दाहिने हाथमें यज्ञोपवीत डाल कर, तिलों द्वारा ऋषभादि तीर्थपितरोंका पितृतीर्थसे संतर्पण करे। अँगूठा और अँगूठेके पासकी उँगली इन दोनोंके मध्यभागका नाम पितृतीर्थ है ॥ ९ ॥

यन्मया दुष्कृतं पापं शारीरमलसम्भवम् ।
तत्पापस्य विशुध्द्यर्थं देवानां तर्पयाम्यहम् ॥ १० ॥

जो मैंने शारीरिक मल द्वारा पाप किया है उस पापकी शुद्धिके लिए मैं देवोंका तर्पण करता हूँ। भावार्थ—देहशुद्धिके लिए आचमन, तर्पण, प्राणायाम आदि विषय शास्त्रोंमें स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि वे सब हिंदूधर्मसे ही लाये गये हैं। यदि ऐसा ही मान लिया जाय कि ये सब विषय हिंदूधर्मके ही हैं, जैनोंके नहीं हैं तो यह बात किस आधारसे कही जाती है। यदि बिना शास्त्रोंके प्रमाणके मनमानी युक्तियों द्वारा कही जाती है तो वह युक्ति शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण युक्ति नहीं है, किन्तु युक्त्याभास है। जो लोग इस विषयको हेय बतलाते हैं वे तो पूजा, प्रतिष्ठा, मूर्तिपूजन आदिको भी हिंदूधर्मसे आया बतलाते हैं तो क्या पूजा, प्रतिष्ठा, मूर्तिपूजा संबंधी ऋषिप्रणीत सैकड़ों शास्त्रोंको छोड़कर उनकी बात मान ली जावे? खैर, कल्पना करो कि परीक्षित बातको मान लेनेमें क्या हर्ज है तो कहना पड़ेगा कि इसका नाम

१ इस श्लोकको रचना खटकती है।

परीक्षा नहीं है जो अपने मतलबकी बातको मान लेना और बाकीको छोड़ देना। यह कहाँका न्याय है? मानी भी वह बात जा सकती है जो निश्चित हो। पहले जो लोग कुछ ही कहते थे, अब वे कुछ ही कहते हैं तो क्या पूर्वापर विरुद्ध वचन अथवा उस वचनका लिखने बोलनेवाला प्रमाणभूत हो सकता है, कभी नहीं। जिनने गुरुमुखसे शास्त्र ही नहीं देखे हैं, न उनका मनन ही किया है, न उस भाषाकी योग्यता ही रखते हैं, जिनके वचनोंको पढ़कर अथवा सुनकर जनता हँसी उड़ाती है और उनकी गलतियों पर खेद जाहिर करती है ऐसे पुरुष भी प्रमाण रूप माने जायँ और उनकी बातोंमें कुछ तथ्य समझा जाय तो गलीकूचोंमें फिरनेवाले मनमाना चिल्लानेवाले पुरुष भी क्यों न अच्छे माने जायँ और क्यों न उनकी बातोंमें सार समझा जाय। इस लिए कहना पड़ेगा कि जिस परीक्षामें अमूल्य रत्न फेंक कर निःसार काचका टुकड़ा ग्रहण करना पड़े यह परीक्षा किसी कामकी नहीं है। यदि जो जो विषय हिंदूधर्मसे मिलते हैं वे वे हिंदुओंके हैं तो जैनोंके घरका क्या है? जैनोंके पास ऐसा कोई विषय नहीं है जो जैनधर्मसे बाह्य लोगोंके पास न पाया जाय। जैनोंके हर एक विषय किसी न किसी रूपमें सभी मतोंमें पाये जायँगे। जैसे वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था, स्नान करना, खाना, पीना, सोना, बैठना, पूजा करना, प्रतिष्ठा करना, स्वर्ग-नरककी व्यवस्था, पुण्य-पापक संपादन, व्रतधारण, संन्यासधारण, तीर्थयात्रा, हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, कुशील सेवन न करना, ईश्वरकी स्तुति करना, जीवका अस्तित्व स्वीकार करना, कर्मोंके निमित्तसे संसारमें पड़ा रहना, कर्मोंके अभावमें मुक्तिका होना। तब कहना पड़ेगा कि इनमें जैनोंका कुछ भी नहीं है। ये सब बाहरसे ही आये हैं। अब न मालूम जैनोंके पास अपने घरकी पूँजी क्या रह जाती है। इस लिए ऐसे मनुष्योंकी बातों पर श्रद्धान नहीं करना चाहिए। जो लोग शासनदेवोंके नामसे ही चिढ़ते हैं और निरी मनमानी ऊटपटांग शंकायें ही उठाया करते हैं वे भी ऋषिप्रणीत मार्गकी अवहेलना करते हैं। श्रावकोंके कई दर्जे हैं। जिस दर्जेका जो श्रावक है उस दर्जेके श्रावकको वैसा करना अनुचित नहीं है। यह तर्पण आदिका विधान जैनधर्मसे बाहरका नहीं है। किन्तु जैनधर्मका ही है। ऋषिप्रणीत प्रतिष्ठापाठोंमें ये सब विषय स्पष्ट रीतिसे विस्तारपूर्वक लिखे हुए हैं ॥ १० ॥

असंस्काराश्च ये केचिज्जलाशाः पितरः सुराः।
तेषां सन्तोषतृप्त्यर्थं दीयते सलिलं मया ॥ ११ ॥

जिनका उपनयन आदि संस्कार नहीं हुआ है ऐसे कोई हमारे कुलके पुरुष मरकर पितर-सुर (व्यन्तर जातिके देव) हुए हों और जलकी आशा रखते हों तो उनके सन्तोषके लिए मैं जल समर्पण करता हूँ। भावार्थ—इस श्लोकमें असंस्कार पद पड़ा है। इससे मालूम होता है कि जिन पुरुषोंका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता है वे प्रायः मरकर व्यन्तर होते हैं। तथा ऐसा आर्षवाक्य भी है। यह बात सिद्धान्तसे निश्चित है कि व्यन्तरोंका निवास मध्यलोककी सम्पूर्ण पृथिवीपर है। कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ कि व्यन्तर न रहते हों। उनका विचित्र स्वभाव है। यद्यपि वे स्वयं न कुछ खाते हैं और न पीते हैं, परन्तु फिर भी लोकमें वे ऐसी क्रियायें करते हैं जिनसे मालूम पड़ता है कि मानों ऐसा कार्य करते हों। इसी लिए अज्ञानी लोग यह कहा करते हैं कि

देवोंको मांस खाते, गायका गौत (पेशाब) पीते हमने देखा है। यह हम कह चुके हैं कि वे स्वयं कुछ खाते पीते नहीं हैं। परंतु उनका स्वभाव है कि वे मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते हैं और मनुष्योंसे हर एक प्रकारके कार्य करा कर नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं। वे ऐसी क्रीड़ा करते हैं इस विषयमें किसीको सन्देह हो तो स्वामी अकलंकदेवका बनाया हुआ राजवार्तिक ग्रन्थ देख लें। उसमें लिखा है कि उनकी प्रवृत्ति प्रायः क्रीड़ानिमित्तक है। अतः यह बात सिद्ध है कि वे ऐसी क्रीड़ायें करते हैं। यह बात केवल आनुमानिक और आगमसे ही प्रसिद्ध नहीं, किन्तु प्रत्यक्षमें इस समय भी अनेक व्यन्तर इस प्रकारकी क्रीड़ा करते हुए देखे जाते हैं। देव-देवियोंके ऊपर जो अनगिनतीके बकरे आदि चढ़ाये जाते हैं यह भी पूर्व समयमें उनके द्वारा किये हुए उपद्रवोंका फल है। तथा शास्त्रोंमें यह बात भी पाई जाती है कि जो जीव मरकर व्यन्तर होते हैं वे ही प्रायः उपद्रव करा करते हैं और उनसे कुछ कियायें करा कर शान्त हो जाते हैं। यह सब महापुराणादि शास्त्रोंमें व्यन्तर देवोंकृत बाधा बताई गई है। तथा यह भी बताया गया है कि इस तरह करने पर वह उपद्रव शान्त हुआ। जैसे होलिका आदिकी कथामें प्रसिद्ध है। सारांश ऐसा है कि व्यन्तरोंका अनेक प्रकारका स्वभाव होता है। अतः किसी किसीका स्वभाव जल ग्रहण करनेका है। किसी किसीका वस्त्र निचोड़ा हुआ जल लेनेका है। ये सब उनकी स्वभाविकी क्रियायें हैं। वर्तमानमें भी ये देव ऐसा करते हुए देखे जाते हैं। इससे यह बात तो स्पष्ट हो चुकी कि व्यन्तरोंका सर्वत्र निवास है और वे नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं। अतः यह लिखना कि जैनसिद्धान्तके अनुसार न तो देव पितरगण पानीके लिए भटकते या मारे मारे फिरते हैं और न तर्पणके जलकी इच्छा रखते हैं या उसको पाकर तृप्त और सन्तुष्ट होते हैं कितना अयुक्त है। जैनशास्त्रोंमें साफ लिखा हुआ है कि व्यन्तरोंका ऐसा स्वभाव है और वे क्रीड़ानिमित्त ऐसा करते हैं—ऐसी क्रियायें कराकर वे शान्त होते हैं। जो बाते जैनशास्त्रोंमें साफ साफ पाई जाती है उनके ऊपर भी पानी फेरा जाता है। यद्यपि वे वस्त्र निचोड़ा जल पीते नहीं हैं, परंतु उनका स्वभाव है कि वे ऐसा कराते हैं और करानेसे खुश होते हैं। अतः इस विषयमें और भी जितना लिखते हैं वह भी सब ऊटपटांग ही है। लेखकको विश्वास जब हो कि वे लेखकोंके पास आवें और उनको अपना कर्तव्य दिखलावें। लेखकोंको जैनशास्त्रोंमें विश्वास न होनेके कारण या उसकी पूरी पूरी जानकारी न होनेके कारण या भोले भाले लोगोंको बहकाकर अपनी प्रतिष्ठा आदि चाहनेके कारण मजबूर होकर ऐसा लिखना पड़ा है। ऐसा लिखनेसे तो यही जाहिर होता है कि जो विषय लेखकोंकी आँखोंके सामने नहीं हैं वे हैं ही नहीं और न कभी ऐसे कोई कार्य होते थे। अब प्रश्न यह है कि क्या श्रावकोंको ऐसा करना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि श्रावकोंके अनेक दर्जे हैं, यद्यपि वे संख्या रूपमें भी गिनाये गये हैं, परन्तु फिर भी उनमें भी ऐसे बहुतसे सूक्ष्म सूक्ष्म अंश होते हैं जैसे मिथ्यात्व कर्मके अनेक अंश हैं। किसीके मिथ्यात्व किसी प्रकारका है और किसीके किसी प्रकारका है—सबके एक सरीखा नहीं है, परन्तु फिर भी वह मिथ्यात्व ही है। इसी तरह श्रावकोंके कुछ अंश ऐसे भी हैं जो अपने दर्जेमें ऐसा करते हैं और उस दर्जेमें वे ऐसा कर सकते हैं। ऐसा करनेसे उनका व्यवहारसम्यक्त्व नष्ट नहीं होता। व्यंतरोंको जल किसी उद्देश्यसे नहीं दिया जाता है। क्योंकि यह बात श्लोक ही साफ कह रहा है कि कोई बिना संस्कार किये हुए मर गये हों, मरकर व्यन्तर हुए हों और मेरे हाथसे जल लेनेकी वांछा

रखते हों तो उनको मैं सहज देता हूँ। इसमें कहीं भी किसी विषयका उद्देश्य नहीं है। और न उनकी इच्छापूर्तिके निमित्त जल देनेसे मिथ्यादृष्टि ही हो जाता है। क्योंकि सच्चे देव, गुरु, शास्त्रसे द्वेष करना और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रसे रति करनेका नाम मिथ्यात्व है। देव शब्दका अर्थ यहाँ पर आप्त है। कुदेव शब्दसे देवगति-संबन्धी देवोंसे तात्पर्य नहीं है। इस विषयको अन्यत्र किसी प्रकरणमें लिखेंगे। सारांश इतना ही है कि व्यंतरदेव जलकी आशा रखते हैं और वे तृप्त भी होते हैं॥ ११॥

हस्ताभ्यां विक्षिपेत्तोयं तत्तीरे सलिलाद्बहिः।
उत्तार्य पीडयेद्वस्त्रं मन्त्रतो दक्षिणे ततः॥ १२॥

यह उपर्युक्त श्लोक पढ़कर, हाथमें जल लेकर, उस जलाशयके तीरपर, जलसे बाहर जलकी अंजली छोड़े। इसके बाद वस्त्र उतारकर मंत्रपूर्वक दक्षिण दिशाकी तरफ निचोड़े॥ १२॥

केचिदस्मत्कुले जाता अपूर्वव्यन्तरासुराः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥ १३॥

और कहे कि कोई हमारे कुलमें उत्पन्न हुए पुरुष मरकर व्यन्तर या असुर जातिके देव हुए हों तो वे मेरे द्वारा वस्त्र निचोड़ कर दिया हुआ जल ग्रहण करे॥ १३॥

दर्भान्विसृज्य तत्तीरे ह्युपवीती द्विराचमेत्।
अक्लिन्नवस्त्रं सम्प्रोक्ष्य शुचीव इति मन्त्रतः॥ १४॥

परिधाय सुवस्त्रं वै युग्मवस्त्रस्य मन्त्रतः।
प्रागेव निमृजेद्देहं शिरोऽङ्गान्यथवा द्वयम्॥ १५॥

उस जलाशयके तीरपर दर्भोंको छोड़कर यज्ञोपवीतको मालाकी तरह गलेमें लटका कर दो बार आचमन करे। "शुचीव" ऐसा मंत्र पढ़कर पहननेके लिए जो शुष्क वस्त्र पासमें है उसका प्रोक्षण करे। अर्थात् उसे जलके छींटे डालकर पवित्र करे। पश्चात् युग्मवस्त्रके मंत्रको पढ़कर कपड़े पहने। और कपड़े पहननेके पहले ही अपने शरीरको अथवा सिरको पोंछ ले॥ १४॥ १५॥

तस्मात् कायं न मृजीत ह्यम्बरेण करेण वा।
श्वानलेह्येन साम्यं च पुनः स्नानेन शुध्यति॥ १६॥

कपड़े पहननेके बाद कपड़ेसे अथवा हाथसे शरीरको न पोंछे। क्योंकि बादमें शरीर पोंछनेसे वह कुत्तेके चाटनेके बराबर हो जाता है। और फिर स्नान करनेसे पवित्र होता है। यह भी एक वस्तुका स्वभाव है, तर्क करनेकी कोई बात नहीं है कि ऐसा क्यों हो जाता है। वस्तुके स्वभावमें क्यों काम नहीं देता है। कोई कहे कि अग्नि गर्म क्यों होती है तो कहना पड़ेगा कि उसका स्वभाव है॥ १६॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यावद्रोमाणि मानुषे।
वसान्ति तावत्तीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत् ॥ १७ ॥

मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोम होते हैं। और जितने रोम शरीरमें हैं उतने ही शरीरमें पवित्र स्थान हैं। इसलिए शरीरको पोंछकर अपवित्र न करे ॥ १७ ॥

पिबन्ति शिरसो देवाः पिबन्ति पितरो मुखात्।
मध्याच्च यक्षगन्धर्वा अधस्तात्सर्वजन्तवाः ॥ १८ ॥

सिरसे टपकते हुए जलको देव, मुखसे टपकते हुएको पितर, मध्यभागसे टपकते हुएको सारे जीव पीते हैं। भावार्थ—स्नान कर कपड़े न पहननेके पेश्तर ही शरीरके अंग-उपांगोंको पोंछ लेना चाहिये। कपड़े पहननेके बाद शरीरको किसी वस्तुसे न पोंछे। क्योंकि धोतीके पहन लेने पर जो पानी शरीरमें लगा रहता है वह उक्त प्रकारसे जूँठा हो जाता है। अतः उससे शरीरको पोंछ लेनेसे वह अवश्य ही अपवित्र कुत्ते चाटने जैसा हो जाता है। यद्यपि देवोंमें मानसिक आहार है, पितृगण कितने ही मुक्तिस्थानको पहुँच गये हैं इसलिए इनका पानी पीना असंभव जान पड़ता है। इसी तरह यक्ष, गंधर्वों और सारे जीवोंका भी शरीरके जलका पानी असंभव है, पर फिर भी ऐसा जो लिखा गया है उसमें कुछ न कुछ तात्पर्य अवश्य छुपा हुआ है। यद्यपि इस समय इन बातोंके जाननेका हमारे पास कोई काफी साधन नहीं है, क्योंकि इस समय इस विषयके उपदेशका अभाव है तो भी यह विषय अलीक नहीं है। यदि हमारे न जानने मात्रसे ही हर एक विषय अलीक समझ लिये जायँ तो कोई भी बात सत्य न ठहरेगी। यदि सभी बातें हम लोग ही जानते तो सर्वज्ञकी भी कोई आवश्यकता न होती। बहुतसे विषय ऐसे होते हैं कि वे हमें मालूम नहीं हैं, परन्तु खोज करनेसे शास्त्रान्तरोंमें मिल जाते हैं। और कोई ऐसे हैं जो नहीं मिलते हैं। ऋषियोंको जितना स्मरण रहा है उतना भी वे अपने जीवन समयमें नहीं लिख सके हैं। अत एव बहुतसे विषयोंके उत्तर शास्त्रोंमें भी नहीं पाये जाते हैं। जिनका उत्तर न पाया जाय और वह हमारी समझमें न आता हो एतावता उसे अलीक कह देना उचित नहीं है। यद्यपि इस श्लोकका विषय असंभवसा मालूम पड़ता है, परंतु फिर भी वह पाया जाता है। अतः इसका कुछ न कुछ तात्पर्य अवश्य है। व्यर्थ बातें भी कुछ न कुछ अपना तात्पर्य ज्ञापन करा कर सार्थक हो जाती हैं। यदि कोई ऐसा कहे कि ऐसी बातोंको झूठ ही क्यों न मान लिया जाय, इसमें कौनसा परमार्थ बिगड़ता है तो इसका उत्तर इतना ही ठीक रहेगा कि शास्त्रोंके विषयको इस तरह अलीक कह दिया जायगा तो हर एक मनुष्य हर एक बातको जो कि उसको अनिष्ट होगी, फौरन अलीक कह देगा तब शास्त्रकी कोई मर्यादा ही न रहेगी। अलीक विषय वे कहे जा सकते हैं जो पूर्वापरविरुद्ध हों, परमार्थमें जिनसे बाधा आती हो, जो वाक्य बिलकुल बे-सिरपैरके हों, जिनमें परमागमसे बाधा आती हो, जो कुमार्गकी ओर लेजानेवाले हों और प्राणियोंका अहित करनेवाले हों। पर इन श्लोकोंमें कोई भी इस तरहकी बातें नहीं हैं जो कि अप्रमाण कही जायँ। "सर्वत्राविश्वस्ते नास्ति काचित् क्रिया।"

अर्थात् सभी विषयोंमें अविश्वास किया जायगा तो कोई भी क्रिया न बनेगी। इस नीतिके अनुसार यदि इस तरहके विषय जिनको कि जिस तरह कितने ही लोग असार समझते हैं उसी तरह और और विषयोंको और और पुरुष अपनी निरी कुतर्कों द्वारा असार ठहरावेंगे तो ऐसा होते होते सर्वत्र हर एकके कहे अनुसार अविश्वास ही होता आयगा तो कोई भी क्रियायें ठीक ठीक न बन सकेंगी। जिनका फल यह होगा कि लोग मनमानी क्रियाओंको करते हुए कुमार्गकी ओर ही झुकेंगे। इससे बेहत्तर है कि शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन न किया जाय। और इस विश्वासको अपने दिलसे हटा देना चाहिए कि पीछेके लोगोंने ये विषय हिंदूधर्मसे लेकर अपनेमें मिला लिये हैं ॥ १८ ॥

सुरापानसमं तोयं पृष्ठतः केशबिन्दवः।
दक्षिणे जान्हवीतोयं वामे तु रुधिरं भवेत् ॥ १९ ॥

सिरके केशोंमें लगा हुआ जल जो कि पीठ पर टपकता है वह मदिरापानके समान माना गया है और जो दाहिनी ओर गिरता है वह गंगाजलके समान कहा गया है, तथा जो बाई तरफ झरता रहता है वह रुधिरके समान गिना गया है। भावार्थ—यहाँ पर कोई यह तर्क करे कि जिस सिरके जलको देव पीते हैं वह जल मदिरा और रुधिरके तुल्य कहा गया है यह कैसे ठीक माना जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि जैसे किसीने कहा कि गुरुका हर एक अंग-उपांग पूज्य है तो किसीने तर्क कर दिया कि क्या उसका गुदस्थान व लिंग आदि भी पूज्य है। बस जिस तरह इस विषयमें यह तर्क है वैसा ही उपर्युक्त तर्कको समझना चाहिये। तथा यह भी नहीं है कि मदिरा व रुधिरके तुल्य कह देनेसे वह मदिरा या रुधिर ही हो गया हो। जैसे किसीने कहा कि यह भोजन मांस जैसा लगता है तो क्या वह बिल्कुल पंचेन्द्रिय मुर्देका मांस ही हो गया, कभी नहीं। किन्तु इसमें मांसकी कल्पना हो जानेके कारण वह मांस जैसा कहा गया है। अतः जो जिस विषयमें जिसकी समानता धारण कर लेता है वह उसीके अनुसार हेय और उपादेय रूप हो जाता है। सारांश तो इन श्लोकोंका यह है कि इन इन कारणोंसे यह जल ऐसा ऐसा हो जाता है अतः उससे शरीरको न पोंछना चाहिए, किन्तु कपड़े पहननेके पहले ही अच्छी तरह पोंछ लेना उचित है। यही बात इस नीचेके श्लोकसे दिखाते हैं ॥ १९ ॥

स्नानं कृत्वा धृते वस्त्रे पतन्ति केशबिन्दवः।
तत्स्नानं निष्फलं विद्यात् पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ २० ॥

स्नान कर वस्त्र पहन लेनेपर जो जल केसोंमें उलझा हुआ रह जाता है, उसकी जो बूँदें गिरती रहती हैं उससे वह किया हुआ स्नान निष्फल हो जाता है। वह पुरुष पुनः स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २१ ॥

अपवित्रपटो नग्नो नग्नश्चार्धपटः स्मृतः।
नग्नश्च मलिनोद्वासी नग्नः कौपीनवानपि ॥ २१ ॥

कषायवाससा नग्नो नग्नश्चानुत्तरीयभाग् ।
अन्तःकच्छो बहिःकच्छो मुक्तकच्छस्तथैव च ॥ २२ ॥

अपवित्र कपड़े पहननेवाला, आधा वस्त्र पहननेवाला, मैले कुचैले कपड़े पहननेवाला, कौपीन-लँगोटी लगानेवाला, भगवाँ वस्त्र पहननेवाला, धोतीके सिवा दूसरा कपड़ा—दुपट्टा वगैरह—न रखनेवाला, केवल भीतरकी तरफ कछौटा कसनेवाला, बाहरकी तरफ कछौटा लगानेवाला, और बिलकुल ही कपड़े न पहननेवाला इस तरह ये दश पुरुष नग्न माने गये हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

साक्षान्नग्नः स विज्ञेयो दश नग्नाः प्रकीर्तिताः ।
द्व्यंगुलं चतुरङ्गुलं चोत्तरीयं विनिर्मितम् ॥ २३ ॥

कषायधूम्रवर्णं च केशजं केशभूषितम् ।
छिन्नाग्रं चोपवस्त्रं च कुत्सितं नाचरेन्नरः ॥ २४ ॥

जो वस्त्र दो या चार अंगुल चौड़ा हो, भगवाँ हो, धूएँ जैसे रंगवाला हो, ऊनी हो, जिसपर ऊन या अन्य केशोंके बेलबूटे वगैरह निकले हुए हों, जिसके कौने वगैरह कटे हुए हों, और जो बिलकुल खराब हो, इस तरहके कपड़े त्रैवर्णिक श्रावकोंको न पहनना चाहिए ॥ २३ ॥ २४ ॥

दग्धं जीर्णं च मलिनं मूषकोपहतं तथा ।
खादितं गोमहिष्याद्यैस्तत्त्याज्यं सर्वथा द्विजैः ॥ २५ ॥

तथा ऐसे कपड़े जो अग्निसे जल गये हों, जीर्ण हो गये हो, मलिन हो गये हों, चूहों द्वारा कुतर लिये गये हों, और गाय भैंस आदिके द्वारा जो खाये गये हों उनका त्रैवर्णिक श्रावक दूरसे ही त्याग करें; ऐसे कपड़े कभी न पहनें ॥ २५ ॥

नीलं रक्तं तु यद्वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत् ।
स्त्रीणां स्फीतार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति ॥ २६ (?)

जो वस्त्र नीले रंगसे रंगा गया हो अथवा लाल रंगसे रंगा गया हो तो उसका श्रावकवर्ग दूरहीसे त्याग करें। यदि नीला रंग या लाल रंग और और पदार्थों—रंगों—से मिले हुए हों तो स्त्रियोंके लिये दूषित नहीं है। और उनके लिये सोते समय भी इस रंगका कपड़ा पहनना दोष नहीं है ॥२६॥

रक्षणाद्विक्रयाच्चैव तद्वृत्तेरुपजीवनात् ।
अपवित्रो भवेद्देही त्रिभिः पक्षैर्विशुध्यति ॥ २७ ॥

ऐसे कपड़ोंको हिफाजतके साथ रखनेसे, बेचनसे तथा इनका व्यापार कर आजीविका करनेसे गिरस्त अपवित्र हो जाता है। वह अपने इस धंदेको छोड़ देनेके बाद डेढ़ महीनेमें जाकर पवित्र, शुद्ध होता है ॥ २७ ॥

नीलरक्तं यदा वस्त्रं श्राद्धः स्वाङ्गेषु धारयेत् ।
जन्तुसन्ततिसंवाह्यो वसेद्यमपुरे ध्रुवम् ॥ २८ ॥

जो श्रावक, नीले रंगका या लाल रंगका कपड़ा अपने शरीरमें धारण करता है वह प्राणियोंके शरीरमें कीड़ा उत्पन्न होकर यमपुरमें चिरकाल तक निवास करता है। भावार्थ–वह मरकर प्राणियोंके शरीरमें कीड़ा होता है। वर्णन कई प्रकारके होते हैं, कोई बीभत्स्य होते हैं जो जीवोंको पर पदार्थोंसे अरुचि करानेवाले होते हैं। कोई भयानक होते हैं। यहाँ पर यह वर्णन भयानक मालूम पड़ता है। इससे नीले या लाल रंगका कपड़ा न पहननेका भय दिखाया गया है। इसका सारांश यही है कि इस तरहके कपड़े नुकसान करनेवाले होते हैं, इस लिए ऐसे कपड़ोंको न पहनना चाहिए ॥ २८ ॥

कौशिके पट्टसूत्रे च नीलीदोषो न विद्यते ।
स्त्रियो वस्त्रं सदा त्याज्यं परवस्त्रं च वर्जयेत् ॥ २९ ॥

रेशमी वस्त्र तथा पट्ट सूत्रमें नीलापन हो तो उसमें कोई हानि नहीं है। तथा श्रावकोंको स्त्रियोंके पहननेके कपड़े और औरोंके पहने हुए कपड़े कभी नहीं पहनना चाहिए ॥ २९ ॥

उक्तंच–परान्नं परवस्त्रं च परशैय्या परास्त्रियः ।
परस्य च गृहे वासः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३० ॥

अधिक तो क्या कहा जाय पर पराया अन्न खाना, पराये कपड़े पहनना, पराई शैया पर सोना, पराई स्त्रीका सेवन करना और पराये घरमें रहना इंद्रकी भी शोभा नष्ट कर देते हैं अर्थात् इन कामोंके करनेसे औरोंकी बात तो दूर रहे पर भारी सामर्थ्यशाली इंद्रकी भी शोभा नष्ट हो जाती है ॥ ३० ॥

अधौतं कारुधौतं वा पूर्वेद्युर्धौतमेव च ।
त्रयमेतदसम्बन्धं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ ३१ ॥

जो कपड़ा धोया हुआ न हो, शूद्रों द्वारा धोया गया हो, पहले दिनका धोया हुआ हो ये तीनों ही प्रकारके कपड़े पहननेके काबिल नहीं हैं। अतः ऐसे कपड़ोंको पहन कर कोई क्रियायें न करें ॥ ३१ ॥

ईषद्धौतं स्त्रिया धौतं शूद्रधौतं च चेटकैः ।
बालकैर्धौतमज्ञानैरधौतमिति भाष्यते ॥ ३२ ॥

जो कपड़ा कम धुला हो, स्त्रियों द्वारा धोया गया हो, शूद्रों द्वारा धोया गया हो, नोकरों द्वारा धोया गया हो और अज्ञानी बालकोंके द्वारा धोया गया हो तो वह न धोये हुए सरीखा कहा गया है ॥ ३२ ॥

अप्सु नोत्पीडयेद्वस्त्रं सर्वथा श्रावको द्विजः।
शुष्कं चोपरि खट्वायास्तद्वस्त्रं च न धारयेत् ॥ ३३ ॥

द्विज श्रावकोंको जलके भीतर कभी भी कपड़े नहीं निचोड़ना चाहिए। तथा सूखे हुए कपड़ोंको खटियाके ऊपर न रखना चाहिए ॥ ३३ ॥

शुष्ककाष्ठेषु निक्षिप्य द्विराचम्य विशुद्ध्यति।
प्रागग्रमुदगग्रं वा धौतवस्त्रं प्रसारयेत् ॥ ३४ ॥

शुष्क लकड़ीके ऊपर कपड़ेको रख देनेपर दो बार आचमन करनेसे शुद्ध होता है। किसी अच्छे स्थानमें जहाँपर पैर वगैरह न पड़ते हों या ऊँचे स्थानमें उन धोई हुई धोती आदि कपड़ोंको सुखावे ॥ ३४ ॥

नवम्यां पञ्चदश्यां तु संक्रान्तौ श्राद्धवासरे।
वस्त्रं निष्पीडयेन्नैव न च क्षारे नियोजयेत् ॥ ३५ ॥

नवमीके दिन, पूर्णिमाके दिन, संक्रान्तिके रोज और श्राद्धके दिनोंमें कपड़ा निचोड़ना नहीं चाहिए। तथा इन दिनोंमें खारमें भी कपड़ा न दे ॥ ३५ ॥

स्नानं कृत्वाऽऽर्द्रवस्त्रं तु मूर्ध्नो नोत्तारयेद्गृही।
आर्द्रवस्त्रमधस्ताच्च पुनः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥

स्नान करके, पहने हुए कपड़ेको जो कि स्नान करनेसे गीला हो गया है, सिर पर होकर न उतारे। उसे नीचेका नीचे ही होकर उतार ले, नहीं तो पुनः स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३६ ॥

प्रत्यग्दक्षिणयोः कृत्वा पुनः शौचं विधीयते।
एकवस्त्रो न भुञ्जीत न कुर्याद्देवपूजनम् ॥ ३७ ॥

न कुर्यात्पितृकर्माणि दानहोमजपादिकम्।
खण्डवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धप्रावृतस्तथा ॥ ३८ ॥

उस गीले कपड़ेको पश्चिम और दक्षिण दिशाकी तरफ न उतारे, नहीं तो पुनः स्नान करना चाहिए। एक कपड़ा पहन कर भोजन और देव-पूजन न करे। पितृकर्म और दान, होम जप, आदि न करे। और फाड़ कर दो टुकड़े किया हुआ वस्त्र पहन कर, तथा आधा पहन कर और आधा सिर पर बाँधकर भी कोई क्रिया न करे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

उक्तंच—स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।
नैकवस्त्रो गृही कुर्याच्छ्राद्धभोजनसत्क्रियाम् ॥ ३९ ॥

त्रैवर्णिक श्रावकगण एक वस्त्र अर्थात् सिर्फ धोती पहनकर स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, वृषभादि पितरोंका तर्पण, श्राद्ध और भोजन इत्यादि कार्य न करें । अर्थात् ये कार्य एक धोती पहनकर तथा एक दुपट्टा ओढ़कर करे ॥ ३९ ॥

धार्यमुत्तरीयमादौ ततोऽन्तरीयकं तथा ।
चतुष्कोणं भवेद्वस्त्रमन्तरीयं च निर्मलम् ॥ ४० ॥

पहले दुपट्टा ओढ़ना चाहिए, पश्चात् धोती पहननी चाहिए । दोनों वस्त्रोंके चारों पल्ले बराबर होने चाहिए—पल्ले फटे हुए नहीं होने चाहिए । तथा उनका साफ-सुथरा होना भी आवश्यक है ॥४०॥

त्रिहस्तं तु विशालं स्याद्द्व्यायतं पञ्चहस्तकम् ।
अधोवस्त्रं तु हस्ताष्टं द्विहस्तं विस्तरान्मतम् ॥ ४१ ॥

ओढ़नेका कपड़ा अर्थात् दुपट्टा तीन हाथ चौड़ा तो बहुत बड़ा हो जाता है इसलिए दो हाथ चौड़ा और पाँच हाथ लम्बा होना ठीक है और अधोवस्त्र धोती आठ हाथ लंबी और दो हाथ चौड़ी होनी चाहिए ॥ ४१ ॥

पट्टकूलं तथा सौत्रं शुभ्रं वा पीतमेव च ।
कदाचिद्रक्तवस्त्रं स्याच्छेषवस्त्रं तु वर्जयेत् ॥ ४२ ॥

रेशमी वस्त्र तथा सूती कपड़े सफेद वा पीले रंगके होने चाहिए । यदि लाल भी हों तो कोई हर्ज नहीं है । इसके सिवा और और रंगके कपड़े उपर्युक्त कामोंमें काम न लाने चाहिए ॥ ४२ ॥

रोमजं चर्मजं वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत् ।
नातिस्थूलं नातिसूक्ष्मं विकारपरिवर्जितम् ॥ ४३ ॥

ऊनका अथवा चमड़ेका वस्त्र दूरसे ही त्यागने योग्य है । तथा पहननेके कपड़े न तो बहुत मोटे ही होने चाहिए और न बहुत बारीक ही होने चाहिए । किन्तु जिनके पहनने ओढ़नेसे कोई तरहका विकार पैदा न हो ऐसे होना आवश्यक हैं ॥ ४३ ॥

लम्बयित्वा पुरा कोणद्वयं तेनैव वाससा ।
आवेष्टयेत्कटीदेशं वामेन पार्श्वबन्धनम् ॥ ४४ ॥

कोणद्वयं ततः पश्चात्समीचीनं प्रकच्छयेत् ।
कटीमेखलिकामन्तर्देशे गोप्यां प्रबन्धयेत् ॥ ४५ ॥

जब धोती पहनना शुरू करे तब एक तरफ थोड़ी और दूसरी तरफसे अधिक लंबी रक्खे। उसको कमरके चारों तरफ लपेटे। पहले बायें हाथकी कोण (काँछ) को दाहिने हाथकी तरफ लावे, बाद दाहिनेकी तरफसे बायें हाथकी तरफ ले जावे। बाद छोटी कोणको नीचेकी तरफसे खोंसे। पीछे जो बड़ी कोण है उसको कटीके चारों ओर करधोनीकी तरह लपेट कर उसे भीतरकी ओरसे खोंसे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

आजानुकं तथाऽऽजङ्घं चानलीकं गृहोत्तमैः।
धारयेदुत्तरीयं तु यथादेहं पिधापयेत् ॥ ४६ ॥

गृहस्थोंको जंघा पर्यंत, गौड़े पर्यंत, और मुरचे (पार्ष्णि) पर्यन्त धोती पहननी चाहिए। तथा ओढ़नेका दुपट्टा इस तरह ओढ़ना चाहिए जिससे सारी देह ढक जाय ॥ ४६ ॥

आजानुकं क्षत्रियाणामाजङ्घं वैश्यसम्मतम्।
आघौण्टं ब्रह्मपुत्राणां शूद्राणां शूद्रवन्मतम् ॥ ४७ ॥

क्षत्रिय जंघा पर्यंत, वैश्य गौड़े पर्यंत और ब्राह्मण घुटने पर्यन्त धोती पहने। और शूद्र लोग जैसा उनमें पहननेका रिवाज हो उसी माफिक पहने ॥ ४७ ॥

नोत्तरीयमधः कुर्यान्नोपर्यधस्स्थमम्बरम्।
अज्ञानाद्यदि कुर्वीत पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ ४८ ॥

ओढ़नेके दुपट्टेको धोतीके स्थानमें न पहने और धोतीको दुपट्टेके स्थानमें न ओढ़े। यदि कोई भूलसे ऐसा कर भी ले तो वह फिर स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ४८ ॥

अथोत्तरीयवस्त्रं तु पूर्ववद्धार्यते बुधैः।
एवं वस्त्रद्वयं धृत्वा धर्मकर्म समाचरेत् ॥ ४९ ॥

बुद्धिमान श्रावक लोग ऊपर बताये हुए क्रमके अनुसार धोतीको धोतीके स्थान पर पहनें और ओढ़नेके दुपट्टेको ओढ़ें। इस प्रकार दोनों वस्त्रोंको अच्छी तरह पहन ओढ़कर धार्मिक क्रियाएँ करना प्रारम्भ करें ॥ ४९ ॥

ये सन्ति द्रव्यसंयुक्तास्तेषां सर्वं निवेदितम्।
निस्स्पृहाणां दरिद्राणां यथाशक्ति विलोकयेत् ॥ ५० ॥

जो पुरुष अच्छे धनी हैं वे तो ऊपर कहे अनुसार नहा धोकर कपड़े आदि पहने-ओढ़ें। और जो पुरुष निस्पृह तथा दरिद्र हैं वे अपनी शक्तिके माफिक एकाध कपड़ा पहन कर ही अपना कार्य चलावें ॥ ५० ॥

वामहस्तेन सन्धार्य वस्त्रमार्द्रं निपीडयेत् ।
स्वहस्तेन स्वजातीयहस्तेन प्राणियत्नतः ॥ ५१ ॥

गीले कपड़ेको बायें हाथसे पकड़कर निचोड़े । और अपने हाथसे निचोड़े अथवा अपने किसी सजाति मनुष्यसे निचुड़वावे । कपड़ा ऐसे यत्नके साथ निचोड़ना चाहिए जिससे दूसरे प्राणियोंको बाधा न पहुँचे ॥ ५१ ॥

स्नानके भेद ।

मान्त्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥ ५२ ॥

मंत्रस्नानं, भूमिस्नान, अग्निस्नान, वायुस्नान, दिव्यस्नानं, जलस्नान और मन्त्रस्नान ऐसे सात तरहके स्नान होते हैं ॥ ५२ ॥

प्रातःस्नाने त्वशक्तश्चेन्मार्जयेदार्द्रवाससा ।
उत्तमाङ्गादिपादान्तं स भवेत्स्नानकृद्गृही ॥ ५३ ॥

यदि कोई सुबहके समय स्नान करनेको असमर्थ है तो वह गीले कपड़ेसे सिरसे परोंतक सर्व शरीरको पोंछ ले । इस तरह करनेवाला भी गिरस्त, स्नान किये सरीखा ही है ॥ ५३ ॥

आपः स्वभावतः शुद्धाः किं पुनर्वह्नितापिताः ।
अतः सन्तः प्रशंसन्ति स्नानमुष्णेन वारिणा ॥ ५४ ॥

जल स्वभावसे ही शुद्ध होता है । यदि वह गर्म कर लिया जाय तो और भी शुद्ध हो जाता है । अतः सज्जन लोग गर्म जलसे स्नान करना अच्छा समझते हैं ॥ ५४ ॥

अभ्यङ्गे चैव माङ्गल्ये गृहे चैव तु सर्वदा ।
शीतोदकेन न स्नायान्न धार्यं तिलकं तथा ॥ ५५ ॥

तेलकी मालिश की हो या कोई मांगलिक कार्य हो या घरहीमें स्नान करना हो तो कभी भी ठंडे जलसे न नहावे, तथा नहाये वगैरह तिलक न लगावे ॥ ५५ ॥

शीतास्वप्सु निक्षिपेन्न उष्णमुष्णासु शीतकम् ।
ताभिः स्नाने कृते प्रोक्तं प्रायश्चित्तं जिनागमे ॥ ५६ ॥

ठंडे जलमें गर्म जल और गर्म जलमें ठंडा जल मिलाकर स्नान न करे । कारण कि इस मिश्रित जलसे स्नान करनेवालेके लिए जैनशास्त्रोंमें प्रायश्चित्त बताया गया है ॥ ५६ ॥

स्वक्रियानिरतो गेही गृहे चापि विधानतः।
करोति पञ्चधाऽऽचारं नदीं गन्तुमशक्तकः॥ ५७॥

सङ्कल्पं सूत्रपठनं मार्जनं चाघमर्षणम्।
देवतातर्पणं चैव गृहे पञ्च विवर्जयेत्॥ ५८॥

जो गिरस्ती अपनी दर रोजकी क्रियाके करनेमें तत्पर है और नदीपर जानेके लिए समर्थ नहीं है तो वह अपने घरपर भी विधिपूर्वक पाँच प्रकारके आचरणको कर सकता है। तथा संकल्प, स्वाध्याय, मार्जन, अघमर्षण और देवता-तर्पण ये पाँच क्रियाएँ घर पर न करे॥५७॥५८॥

अन्त्यजैः खनिताः कूपा वापी पुष्करिणी सरः।
तेषां जलं न तु ग्राह्यं स्नानपानाय च क्वचित्॥ ५९॥

चाण्डाल आदिके द्वारा खोदे गये कुएँ, बावड़ी, पुष्करिणी और तालाबोंका जल नहाने और पीनेके लिए कभी काममें न ले॥ ५९॥

पानीसे बाहर निकलनेके मंत्र।

अथ जलान्निर्गमनमन्त्रः। ॐ नमोऽर्हते भगवते संसारसागर-निर्गताय अहं जलान्निर्गच्छामि स्वाहा। जलान्निर्गमनमन्त्रः।

यह मंत्र बोलकर पानीसे बाहर निकले।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं अर्हं हं सः परमपावनाय वस्त्रं पावनं करोमि स्वाहा। स्नानकाले सन्धौतवस्त्रप्रोक्षणम्।

इस मंत्रको पढ़कर स्नान करते समय जो कपड़े धोये थे उनका प्रोक्षण करे।

ॐ श्वेतवर्णे सर्वोपद्रवहारिणि सर्वमहाजनमनोरञ्जनि परिधानोत्तरीयधारिणि हं झं वं मं हं सं तं परिधानोत्तरीयं धारयामि स्वाहा। इत्यनेन पूर्वप्रक्षालितप्रोक्षितनिर्द्रव-वस्त्रद्वयेनान्तरीयोत्तरीयसन्धारणम्।

इस मंत्रको पढ़कर पहले धोए हुए तथा प्रोक्षण किये गये दोनों वस्त्रोंको पहने तथा ओढ़े।

आचमन करनेकी विधि।

उपस्थित्वा शुचौ देशे स्नात्वाऽस्नात्वा तथैव च।
आचमोऽवश्यं कर्तव्यस्ततोऽसौ शौचवान्मतः॥ ६०॥

स्नान करके या न करके भी साफ-सुथरी जमीन पर बैठकर आचमन अवश्य करे । क्योंकि आचमनके करनेसे गिरस्ती पवित्र माना गया है ॥ ६० ॥

देशं कालं वयो वंशं गोत्रं जातिं गुरुं तथा ।
संस्मृत्य प्राह्णसन्ध्यायां संकल्प्याचमनं चरेत् ॥ ६१ ॥

प्रातःकालीन सन्ध्याके समय अपना देश, काल, अवस्था, कुल, गोत्र, जाति तथा गुरुका स्मरण कर मंत्रपूर्वक आचमन करे ॥ ६१ ॥

पूर्ववद्वस्त्रमादाय कुर्यादाचमनं बुधः ।
न तिष्ठन्न स्थितो नम्रो नामन्त्रो नास्पृशन् जलम् ॥ ६२ ॥

स्नान कर चुकनेपर ऊपर बताये अनुसार वस्त्र पहनकर आचमन करे । खड़े खड़े या टेढ़ा-मेढ़ा होकर आचमन न करे तथा मंत्रका उच्चारण किये बिना या जलको छुए विना भी न करे ॥ ६२ ॥

सव्यहस्तेन त्र्यङ्गुल्या शङ्खीकृत्य पिबेत्पयः ।
माषमात्रं प्रमाणं स्याज्जलमाचमने शुभम् ॥ ६३ ॥

दाहिने हाथकी तीन अंगुलियोंको शंखके आकर बना कर उड़दके बराबर जल पीवे । क्योंकि आचमनमें इतना ही जल शुभ गिना जाता है ॥ ६३ ॥

सम्मृज्यात्तिर्यगास्यं त्रिः सँवृत्त्याङ्गुष्ठमूलतः ।
अधोवक्त्रमुपरिष्टाच्चलेन द्विः सम्मार्जयेत् ॥ ६४ ॥

आचमन करनेके बाद, दोनों ओठोंको मिलाकर अँगूठेके नीचले भागसे तीन बार टेढ़ा स्पर्शन करे । तथा हाथकी हतेलीसे नीचेकी ओठको ऊपरकी ओरसे दो बार स्पर्शन करे ॥ ६४॥

एकवारं स्पृशेदास्यं तर्जन्याद्यंगुलित्रिभिः ॥
घ्राणरन्ध्रद्वयं स्पृशेत्तर्जन्यङ्गुष्ठयुग्मतः ॥ ६५ ।

स्पृशेच्चाक्षिद्वयं साक्षादनामिकांगुष्ठतोऽपि च ।
श्रोत्रयोर्युगलं पश्चात्कनिष्ठिकाङ्गुष्ठयोगतः ॥ ६६ ॥

अंगुष्ठेन तु नाभिं च करतलेन वक्षसि ।
बाहुयुग्मं कराग्रेण सर्वाभिर्मस्तकं स्पृशेत् ॥ ६७ ॥

तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन तीन उँगलियोंसे मुखका, तर्जनी और अँगूठेसे नाकके दोनों छेदोंका, अनामिका और अँगूठेसे दोनों आँखोंका, कनिष्ठा और अँगूठेसे दोनों कानोंका,

अँगूठेसे नासिका, हथेलीसे छातीका, हाथके अग्रभागसे दोनों भुजाओंका और पूरे हाथसे मस्तकका स्पर्श करें ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

आचमनेऽङ्गभेदास्तु चैते द्वादशधा मताः ।
क्रियाभेदास्तथा ज्ञेयाः पञ्चदशेति संख्यया ॥ ६८ ॥

आचमन करनेमें ये नीचे लिखे बारह अंग माने गये हैं । तथा पन्द्रह तरहकी क्रियाएँ मानी गई हैं ॥ ६८ ॥

भुजद्वयशिरोनाभिमुखरन्ध्राणि सप्तधा ।
वक्षश्च द्वादशाङ्गानि प्रोक्तानि श्रीजिनागमे ॥ ६९ ॥

दोनों भुजाएँ, दोनों नाकके छेद, दोनों आँखें, दोनों कान, मुख, मस्तक, नाभि और छाती ये बारह अंग जिनागममें कहे गये हैं ॥ ६९ ॥

एतेष्वङ्गेषु प्रस्वेदो जायते श्रमयोगतः ।
विण्मूत्रोत्सर्जने भोगे भोजने गमनादिषु ॥ ७० ॥

टट्टी-पेशाब करते समय, स्त्री-संभोग करते समय, भोजन करते समय तथा सोने-उठने, चलने-फिरने आदि क्रियाओंके करते समय श्रम पड़नेसे इन अंगोंमें पसीना आदि उत्पन्न होता रहता है ॥ ७० ॥

श्रोत्रचक्षुर्मुखघ्राणकक्षाकुक्षिषु नाभिषु ।
स्रावो जातो यतस्तस्माचाचमनं क्रियते पुनः ॥ ७१ ॥

कान, आँख, मुख, नाक, पसवाड़े, कूख और नाभि इन स्थानोंसे पसीना आदि मल झरता रहता है इसलिए बार बार आचमन किया जाता है ॥ ७१ ॥

आचम्यैवं कुशं कृत्वाऽनामिकायां सुनिर्मलम् ।
नासाग्रं च तयाऽङ्गुष्ठकेन धृत्वा विधानतः ॥ ७२ ॥

कुम्भकः पूरकश्चैव रेचकश्च विधीयते ।
अन्तस्थं सकलं पापं रेचकात्क्षयमाप्नुयात् ॥ ७३ ॥

इस प्रकार आचमन कर, अनामिका उँगलीमें डाभकी मुद्रा पहन कर, उस अनामिका और अँगूठेसे विधिपूर्वक नाककी अनीको पकड़कर कुंभक, पूरक और रेचक करे । इसी कुंभक, पूरक और रेचकके करनेको प्राणायाम कहते हैं । तथा रेचकके करनेसे आत्मामें बैठे हुए सारे पाप नष्ट हो

जाते हैं। नाकके दाहिने छेद द्वारा हवाके भीतर लेजानेको पूरक कहते हैं। और बायें छेदसे भीतरकी हवाके बाहर निकालनेको रेचक कहते हैं। तथा पेटमें हवा दबाकर रखनेको कुंभक कहते हैं॥ ७२॥ ७३॥

दक्षिणे रेचकं कुर्याद्वामेनापूर्य चोदरम्।
कुम्भकेन जपं कुर्यात्प्राणायामः स उच्यते॥ ७४॥

नाकके बायें छेदसे उदरको हवासे भरकर पूरक करे। और दाहिने छेदसे रेचक करे। तथा कुंभकसे जप करे। इसे प्राणायाम कहते हैं॥ ७४॥

पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रपीडनं प्रणवाभिधा।
मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थगृहस्थयोः॥ ७५॥

हाथकी पाँचों उँगलियोंसे नाकके अग्रभागके पकड़नेको प्रणव मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा वानप्रस्थ और गिरस्तोंके सब पापोंका क्षय करनेवाली है॥ ७५॥

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासाग्रस्य प्रपीडयन्।
ओंकारमुद्रा सा प्रोक्ता यतेश्च ब्रह्मचारिणः॥ ७६॥

कनिष्ठा अनामिका और अँगूठेसे नाककी नोकके पकड़नेको ओंकार मुद्रा कहते हैं। इस मुद्राको यति और ब्रह्मचारी करते हैं॥ ७६॥

तीर्थतटे प्रकर्तव्यं प्राणायामं तथाऽऽचमम्।
सन्ध्या श्राद्धं च पिण्डस्य दानं गेहेऽथवा शुचौ॥ ७७॥

प्राणायाम, आचमन, सन्ध्यावंदन, और पिण्डदान ये नदी वगैरहके किनारे पर बैठ करे। अथवा अपने घरमें भी किसी पवित्र स्थानपर बैठ कर करे॥ ७७॥

सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः।
तासां तटे न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः॥ ७८॥

सिंह संक्रमण और कर्क संक्रमणमें सब नदियाँ प्रायः अशुद्ध रहती हैं इसलिये उन दिनों उनके किनारे पर उक्त क्रियाएँ न करें। और जो नदियाँ सीधी जाकर समुद्रमें मिल गई हैं उनके किनारे पर उक्त क्रियाओंके करनेमें कोई दोष नहीं हैं॥ ७८॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रातःस्नाने तथैव च।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥ ७९॥

उपाकर्म, उत्सर्ग, प्रातःकालीन स्नान, चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहण इन समयोंमें रजोदोष नहीं होता ॥ ७९ ॥

धनुस्सहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते।
न ता नद्यः समाख्याता गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ ८० ॥

जो नदियाँ आठ हजार धनुष लम्बी नहीं हैं वे नदियाँ नहीं हैं, उन्हें एक तरहका गढ़ा कहना चाहिए ॥ ८० ॥

दर्भविधि।

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च कुकुन्दराः।
गोधूमा व्रीहयो मुंजा दश दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥ ८१ ॥

कुश, कांश, जौ, दूब, उशीर (तृणविशेष) ककुंदर, गेहूँ, व्रीहि (शाल) और मूँज इस प्रकार दस तरहके दर्भ होते हैं ॥ ८१ ॥

नभोमासस्य दर्शे तु शुभ्रान् दर्भान् समाहरेत्।
अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याः सर्वकर्मसु ॥ ८२ ॥

सावन विदी अमावसके दिन स्वेत दर्भ लावे। और वे लाये हुए दर्भ ही सम्पूर्ण क्रियाओंमें ग्रहण किये जावें ॥ ८२ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामानेतव्या कुशा द्विजैः।
अकालिकास्तथा शुद्धा अत ऊर्ध्वं विगर्हिताः ॥ ८३ ॥

यदि अमावसके दिन न लाकर पहले लाने हों तो विदी चतुर्दशीको कुश—दर्भ लाने चाहिए। जो नियत समयमें लाये जाते हैं वे ही ठीक होते हैं, अन्य नहीं ॥ ८३ ॥

शुद्धिमन्त्रेण सम्मन्त्र्य सकृच्छित्वा समुद्धरेत्।
अच्छिन्नाग्रा अशुष्काग्राः पूजार्थं हरिताः कुशाः ॥ ८४ ॥

शुद्धिके मंत्रसे अभिमंत्रण कर दर्भोंको जमीनमेंसे उपाड़ना चाहिए। तथा जिनकी नोकें टूटी हुई और सूखी हुई नहीं हैं ऐसे हरे दर्भ ही पूजाके योग्य होते हैं ॥ ८४ ॥

कुशालाभे तु काशाः स्युः काशाः कुशमयाः स्मृताः।
काशाभावे गृहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचितम् ॥ ८५ ॥

कुश अर्थात् दर्भ यदि न मिलें तो कांशसे ही सब क्रिया करे। क्योंकि कांश भी कुशोंहीके तुल्य हैं। यदि कांश भी न मिले तो और जो दर्भ बताये गये हैं उनसे काम लिया जाय ॥८५॥

धर्मकृत्येषु सर्वेषु कुशा ग्राह्याः समाहिताः ।
दूर्वाः श्लक्ष्णाः सदा ग्राह्याः सर्वेषु शुभकर्मसु ॥ ८६ ॥

सभी धार्मिक कामोंमें कुश अवश्य ही ग्रहण किये जाने चाहिए। तथा सब तरहके शुभ कार्योंमें ताजा दूब ग्रहण की जाय ॥ ८६ ॥

निषिद्ध दर्भ।

ये त्वन्तर्गर्भिता दर्भा ये छेद्या नखरैस्तथा ।
कुथिताश्चाग्निदग्धाश्च कुशा यत्नेन वर्जिताः ॥ ८७ ॥

ऐसे दर्भ काममें न लिये जायँ जिनका भीतरी भाग खराब हो गया हो, जो नखादिसे छिन्न भिन्न किये गये हों, मसले हुए हों तथा जले हुए हों ॥ ८७ ॥

अमावास्यां न च छिंद्यात्कुशांश्च समिधस्तथा ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पंचम्यां धर्मपर्वसु ॥ ८८ ॥

अमावसके रोज कुश न उखाड़े और पीपल वगैरहकी लकड़ी भी न तोड़े। तथा अष्टमी, चतुर्दशी, पंचमी आदि पर्वदिनमें भी कुश वगैरह न उखाड़े। भावार्थ—सावन विदी १५ अथवा विदी चतुदर्शीको छोड़ कर अन्य पर्वोंमें दर्भ तथा समिधा तोड़कर न लावे ॥ ८८ ॥

समित्पुष्पकुशादीनि श्रोत्रियः स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्व्रजत्यधः ॥ ८९ ॥

समिधा, फूल, कुश आदि वस्तुओंको स्वयं जाकर लावे। शूद्रोंके द्वारा लाये हुए या पैसा देकर खरीदे हुए कुशादिकों द्वारा कर्म करनेवाला गिरस्ती नीच स्थानको प्राप्त होता है ॥८९॥

पवित्रकका लक्षण।

चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् ।
एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥ ९० ॥

ब्राह्मणोंका चार दर्भोंसे, क्षत्रियोंका तीन दर्भों और वैश्योंका दो दर्भोंसे पवित्रक होता है। दर्भोंके समूहको पवित्रक कहते हैं ॥ ९० ॥

सर्वेषां वा भवेत् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रथितं नवम् ।
त्रिभिश्च शान्तिके कार्ये पौष्टिके पञ्चभिस्तथा ॥ ९१ ॥

अथवा तीनों ही वर्णोंके लिए दो दर्भोंका भी नया गुँथा हुआ पवित्र होता है । तथा शान्ति-कर्ममें तीन और पौष्टिक कर्ममें पाँच दर्भोंका पवित्रक बनाना चाहिए ॥९१॥

चतुर्भिश्चाभिचारे तु निष्कामैरिति केचन ।
द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते सर्वदा नित्यकर्मणि ॥ ९२ ॥

जारण, मारण आदि कर्मोंमें चार दर्भोंका पवित्र बनाया जाता है । किसी किसी आचार्यका कहना है कि निष्काम मनुष्योंके लिए भी चार दर्भोंका पवित्र काममें लाया जाता है। तथा तीनों वर्णोंको प्रतिदिनके कृत्योंमें हमेशा दो दर्भका पवित्र दाहिने हाथमें रखना चाहिए ॥ ९२ ॥

पूजायां तु त्रयो ग्राह्याः साग्राः स्युः षोडशाङ्गुलाः ।
द्विमूलमेकतः कुर्यात्पवित्रं चाग्रमेकतः ॥ ९३ ॥

पूजाके समय तीन दर्भोंका पवित्र बनाया जाय। पवित्रके दर्भ सोलह अंगुल लम्बे होने चाहिए। उनकी नोकें टूटी हुई नहीं होनी चाहिए । तथा उन दर्भोंकी जड़ एक तरफ और नोकें एक तरफ होनी चाहिए। ऐसा नहीं कि किसीकी जड़ किधर ही हो और नोकें किधर ही हों ॥ ९३ ॥

द्व्यङ्गुलं मूलवलयं ग्रन्थिरेकाङ्गुला मता ।
चतुरङ्गुलमग्रं स्यात्पवित्रस्य प्रमाणकम् ॥ ९४ ॥

उँगलीमें पिरोनेके पवित्रकी गोलाई दो अंगुल और उसकी गाँठ एक अंगुल प्रमाण होनी चाहिए । तथा उसका अग्र भाग चार अंगुल होना चाहिए । यह पवित्रका प्रमाण है ॥ ९४ ॥

स्नाने दाने जपे यज्ञे स्वाध्याये नित्यकर्मणि ।
सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा ॥ ९५ ॥

स्नान, दान, जप, पूजा स्वाध्याय और नित्यकर्मके समय हाथमें पवित्र या दर्भ अवश्य रहने चाहिए । और और समयोंमें कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ९५ ॥

करयुग्मस्थितैर्दर्भैः समाचामति यो गृही ।
महत्पुण्यफलं तस्य भुक्ते चतुर्गुणं भवेत् ॥ ९६ ॥

जो गिरस्ती दोनों हाथोंसे दर्भ पकड़कर आचमन करते हैं उन्हें बड़ा पुण्य होता है । यदि पवित्र पहन कर भोजन किया जाय तो इससे चौगुना फल प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

दर्भं विना न कुर्वीत चाचमं जिनपूजनम् ।
जिनयज्ञे जपे होमे ब्रह्मग्रन्थिर्विधीयते ॥ ९७ ॥

आचमन, जिनपूजन वगैरह क्रियाएँ बिना दर्भोंके न करे । तथा जिनपूजा, जप और होमके समय पवित्रकमें ब्रह्मगाँठ लगावे ॥ ९७ ॥

सपवित्रः सदर्भो वा कर्माङ्गाचमनं चरेत् ।
नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्त्वोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥ ९८ ॥

पवित्रक या दर्भ हाथमें रखकर आचमन करना चाहिए । इस प्रकार आचमन करनेसे वह पवित्रक उच्छिष्ट नहीं होता ॥ तथा भोजनके बाद वह उच्छिष्ट हो जाता है अतः हाथसे निकालकर उसे एक तरफ डाल दे ॥ ९८ ॥

पवित्रकके भेद ।

दार्भं नागं च ताम्रं वा राजतं हैममेव च ।
विभूषा दक्षिणे पाणौ पवित्रं चोत्तरोत्तरम् ॥ ९९ ॥

दर्भ, सीसा, ताँबा, चाँदी और सोना इनमेंसे किसी एकका पवित्रक (छल्ला) बनवाकर दाहिने हाथमें अवश्य पहने रहना चाहिए । पवित्रक दर्भसे सीसेका, सीसेसे ताँबेका, ताँबेसे चाँदीका और चाँदीसे सुवर्णका उत्तम गिना जाता है ॥ ९९ ॥

अनामिक्यां धृतं हैमं तर्जन्यां रौप्यमेव च ।
कनिष्ठायां धृतं ताम्रं तेन पूतो भवेन्नरः ॥ १०० ॥

अनामिका-चिट्टीके पासवाली-उँगलीमें सोनेका, तर्जनी-अँगूठेके पासकी-उँगलीमें चाँदीका और कनिष्ठा-आखिरकी चिट्टी-उँगलीमें ताँबेका छल्ला पहननेवाला मनुष्य पवित्र होता है ॥ १०० ॥

कर्णयोः कुण्डले रम्ये कङ्कणं करभूषणम् ।
उत्तरीयं योगपट्टं पादुके रौप्यनिर्मिते ॥ १०१ ॥

श्रावकोंको दोनों कानोंमें सोनेके कुंडल, दोनों हाथोंमें सोनेके चूड़े (कड़े) और पैरोंमें चाँदीकी खडाऊँ पहननी चाहिए तथा एक दुपट्टा और एक साफा पासमें होना चाहिए ॥ १०१ ॥

न धार्यं पितरि ज्येष्ठे भ्रातरि सुखजीवति ।
योगपट्टं च तर्जन्यां मौंजं रौप्यं च पादुका ॥ १०२ ॥

अपने पिता या बड़े भाईके जीते हुए—मौजूद होते हुए—योगपट्ट (साफा) न बाँधे तथा तर्जनी—अँगूठेके पासकी—उँगलीमें मूँजका या चाँदीका पवित्रक (छल्ला) तथा पैरोंमें खड़ाऊँ न पहने ॥ १०२ ॥

सन्ध्याचमनमन्त्रः ।

पवित्रप्रदेशे उपविश्य सन्ध्या कार्या ।

पवित्र स्थानमें बैठकर सन्ध्या करना चाहिए ।

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽत्र सरस्तीरे तस्य प्रपौत्रः तस्य पुत्रः श्रीवत्सगोत्रजोऽहं देवदत्तनामा प्रातःसन्ध्यां करिष्य इति मुकुलितकरः संकल्पः ।

प्रथम हाथ जोड़ "ॐ अद्य भगवते" इत्यादि मंत्रका संकल्प करे । इस मंत्रका भाव यह है कि भगवान् महापुरुष श्रीआदिब्रह्माका मतानुयायी, गुरुदत्तका प्रपौत्र, यज्ञदत्तका पौत्र और जिनदत्तका पुत्र श्रीवत्सगोत्रोत्पन्न मैं देवदत्त आज इस नदीके किनारे पर प्रातःकालीन सन्ध्या करूँगा ।

ॐ ह्रीँ क्ष्वीँ क्ष्वीँ वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा इत्यनेनाचमनं कुर्यात् । शंखमुद्रितहस्तेन सर्वोऽप्यत्र पिबेज्जलम् ।

यह मंत्र पढ़कर आचमन करे । और अपने दाहिने हाथको शंखमुद्राके आकर बनाकर आचमनके जलको तीन बार पीवे ।

'ॐ ॐ ॐ' इत्येवं प्रत्येकमुच्चारयन् अंगुष्ठमूलेन त्रिधा वक्त्रं तिर्यक् सम्मार्जयेत् ।

ॐ ॐ ॐ इस तरह तीन बार उच्चारणकर अँगूठेके नीचले पैरेसे तीन बार मुखको टेढ़ा पोंछे ।

'ह्रीँ ह्रीँ ह्रीँ' इति हस्ततलेनोपरिष्टादधो द्विः सम्मार्जयेत् ।

ह्रीं ह्रीं ह्रीं इत सरह तीन बार बोलकर हाथकी हथेलीसे ऊपरसे नीचेको दो बार मुख पोंछे ।

'क्ष्वीँ क्ष्वीँ' इति तर्जन्यादित्रयेणास्यं स्पृशेत् ।

क्ष्वीं क्ष्वीं इस तरह दो बार बोलकर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन तीन उँगलियोंसे मुखका स्पर्शन करे ।

क्ष्वीँ इत्येकवारं मुखं, एवं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां दक्षिणं वामं च नासाविवरं वं मं। अंगुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी हं सं। कनीयस्यंगुष्ठयुग्मेन श्रोत्रयुग्मं तं पं। अंगुष्ठेन नाभिं द्रां। तलेन हृदयं द्रीँ। हस्ताग्रेण भुजशिखरयुगं हं सः। समस्तहस्तकेन मस्तकं स्पृशेदेकवारमेव स्वाहा इति।

इति श्रोत्राचमनविधिः क्रियाभेदात्पञ्चदशधा। अङ्गभेदात्पुनर्द्वादशधा।

क्ष्वीं बोलकर मुखका एक बार स्पर्शन करे। इसी तरह "वं मं" बोलकर तर्जनी और अँगूठेके द्वारा नाकके दो छेदोंका, "हं सं" उच्चार कर अँगूठे और अनामिका द्वारा दोनों आँखोंका, "तं पं" कहकर कनिष्ठा और अँगूठे द्वारा दोनों कानोंका, "द्रां" पढ़कर अँगूठेके द्वारा नाभिका, "द्रीं" बोलकर हस्ततलसे हृदयका, "हं सः" पढ़कर हाथके अग्रभाग द्वारा दोनों कन्धोंका, "स्वाहा" कहकर सब हाथके द्वारा संपूर्ण सिरका एक एक बार स्पर्शन करे। इस तरह यह श्रोत्राचमन-विधि की जाती है जो क्रियाभेदसे पंद्रह प्रकार और अंगोंके भेदसे बारह प्रकारकी है।

ततोऽनामिकायां दर्भं निधायानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां नासाग्रं गृहीत्वा ॐ भूर्भुवः स्वः अ सि आ उ सा प्राणायामं करोमि स्वाहा। इति त्रिरुच्चार्य कुम्भकपूरकरेचकान् कुर्वन् प्राणायामं कुर्यात्।

इसके बाद, अनामिकामें दर्भोंको पकड़े तथा अनामिका और अँगूठेसे नाकके अग्रभागको पकड़े। और "ॐ भूर्भुवः" इत्यादि मंत्रका तीन बार उच्चारण कर कुंभक, पूरक और रेचक इन तीनोंको करता हुआ प्राणायाम करे। इस तरह सन्ध्योपासन विधि की जाती है।

अर्घोपासन-विधि।

शुद्धां कृत्वा ततो भूमिं शोधितोदकसेचनैः।
उपविश्य नदीतीरे तत्र जन्तुविवर्जिते ॥ १०३ ॥

आचमनं ततः कृत्वाऽनामिकायां कुशं ततः।
निधाय मार्जनं कृत्वा मस्तकोपरि सेचयेत् ॥ १०४ ॥

सव्यहस्तेन देवेभ्यो दत्वा भूमौ जलाञ्जलिम् ।
पीत्वाऽऽचम्य च सम्मार्ज्य मस्तकोपरि सिञ्चयेत् ॥ १०५ ॥

इसके बाद जीवजन्तु रहित नदीके किनारे परकी भूमिको छने हुए प्रासुक जलसे सींचकर शुद्ध बनावे । इसके बाद उस पर बैठ कर आचमन करे । अनामिकामें कुश पकड़ कर और मार्जन कर मस्तकके ऊपर जलके छींटे डाले । दाहिने हाथसे देवोंके लिए जमीन पर जलकी अंजलि छोड़े फिर आचमन कर, जरासा जल पी, सम्मार्जन कर सिर पर थोड़ा सा जल सींचे ॥ १०३ ॥ १०५ ॥

षट् वा त्रीण्यथवाऽर्घाणि समुद्धार्य सुधीस्ततः ।
कुशाद्यासनसुस्थाने चोपविश्य समासतः ॥ १०६ ॥

ऊपरके श्लोंको द्वारा बताई गई क्रियाओंके कर चुकनेके बाद, दर्भ आदिके बने हुए उत्तम आसनों पर बैठ कर छह वार या तीन वार जलकी अंजली देवे ॥ १०६ ॥

बैठने योग्य आसन ।

वंशासने दरिद्रः स्यात्पाषाणे व्याधिपीडितः ।
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुकासने ॥ १०७ ॥

तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
आजिने ज्ञाननाशः स्यात्कम्बले पापवर्द्धनम् ॥ १०८ ॥

नीले वस्त्रे परं दुःखं हरिते मानभंगता ।
श्वेतवस्त्रे यशोवृद्धिर्हारिद्रे हर्षवर्धनम् ॥ १०९ ॥

रक्तं वस्त्रं परं श्रेष्ठं प्राणायामविधौ ततः ।
सर्वेषां धर्मसिध्यर्थं दर्भासनं तु चोत्तमम् ॥ ११० ॥

प्राणायाम करते समय बाँसके आसन पर बैठनेसे दरिद्री होता है, पत्थरके आसन पर बैठनेसे रोगी होता है, पृथिवी पर बैठनेसे दुःख उत्पन्न होता है, लकड़ीके आसनपर बैठनेसे दौर्भाग्य प्राप्त होता है, तृणोंके आसनपर बैठनेसे यशकी हानि होती है, पत्तोंके आसनपर बैठनेसे चित्त स्थिर नहीं रहता, चर्मके आसनपर बैठनेसे ज्ञानका नाश होता है, कंबल पर बैठनेसे पापकी वृद्धि होती है, नील वस्त्र पर बैठनेसे बड़ा भारी क्लेश उत्पन्न होता है, हरित आसन पर बैठनेसे अपमान होता है, सफेद वस्त्र पर बैठनेसे यश फैलता है, पीले वस्त्रपर बैठनेसे हर्ष बढ़ता है, और लाल कपड़े पर बैठना सबसे श्रेष्ठ है । तथा सभी धर्मकार्योंकी सिद्धिके लिए दर्भके बने हुए आसनपर बैठना सबसे श्रेष्ठ है ॥१०७॥१०८॥१०९॥११०॥

जप करनेकी विधि।

समं ध्याने मनः कृत्वा मध्यदेशेषु निश्चलम्।
ज्ञानमुद्राङ्कितो भूत्वा स्वाङ्के तु वामहस्तकम् ॥ १११ ॥

अंगुष्ठतर्जनीभ्यां तु सव्यहस्तेन निर्मलाम्।
जपमालां समादाय जपं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ११२ ॥

ध्यान करते समय सब पदार्थोंमें समताभाव रक्खे, अपने मनको रोककर निश्चल करे—उसे इधर उधरके विषयों न जाने दे। आप स्वयं ज्ञानमुद्रासे अंकित हो जाय और बायें हाथको नाभिके पास सीधा रख कर, दाहिने हाथके अँगूठे और तर्जनी उँगलीसे उस पवित्र जपमालाको पकड़ कर जप करे ॥ १११ ॥ ११२ ॥

नमस्कारपञ्चपदान् जपेद्यथावकाशकम्।
अष्टोत्तरशतं चार्द्धमष्टाविंशतिकं तथा ॥ ११३ ॥

द्विद्व्येकपदविश्राम उच्छ्वासाः सप्तविंशतिः।
सर्वपापं क्षयं याति जप्ते पञ्चनमस्कृते ॥ ११४ ॥

अपनेको जैसा अवकाश हो उसीके अनुसार पंचनमस्कार मंत्रके एकसौ आठ या चौपन या अठाईस जाप देवे। दो दो और एक पदका उच्चारण कर विश्राम लेता जाय—'अर्हद्भ्यो नमः, सिद्धेभ्यो नमः' इन दो पदोंको बोलकर थोड़ासा रुके। फिर 'आचार्येभ्यो नमः, उपाध्यायेभ्यो नमः' इन दो पदोंको बोलकर थोड़ासा रुके। बाद 'साधुभ्यो नमः' इस एक पदको बोलकर रुके। इसी प्रकार एक सौ आठ जाप करे। एक एक श्वासमें इसी तरह चार चार जाप देकर सत्ताईस श्वासोंमें एक सौ आठ जाप पूरे कर दे। इस विधिके अनुसार पंचनमस्कार मंत्रकी जाप करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

वाचिकाख्य उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः।
त्रयाणां जपमालानां स्याच्छ्रेष्ठो ह्युत्तरोत्तरः ॥ ११५ ॥

जपमालाके तीन भेद माने गये हैं। वाचिक, उपांशु और मानस। इन तीनों ही जपमालाओंमें वाचिकसे उपांशु और उपांशुसे मानसिक श्रेष्ठ गिना जाता है। इनके क्रमसे लक्षण कहे जाते हैं ॥ ११५ ॥

यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपो ज्ञेयः सः वाचिकः ॥ ११६ ॥

१ इसके आगे किसी किसी पुस्तकमें 'प्राप देवं तव नुति' इत्यादि एकीभाव स्तोत्रका श्लोक पाया जाता है

ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत शब्दके अक्षरोंसे बने हुए मंत्रका वाणी द्वारा स्पष्ट उच्चारण करना उसे वाचिक जप कहते हैं ॥ ११६ ॥

शनैरुच्चारयेन्मन्त्रं मन्दमोष्ठौ प्रचालयेत् ।
अपरैरश्रुतः किञ्चित्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ११७ ॥

मंत्रके अक्षरोंका बहुत ही धीरे धीरे उच्चारण करना, मन्द मन्द ओठोंको चलाना और जिसे दूसरे लोग जरा भी न सुन सकें उसे उपांशु जप कहते हैं ॥ ११७ ॥

विधाय चाक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥ ११८ ॥

वर्णसे वर्णको और पदसे पदको—जिस तरहका मंत्रके अक्षरों वा शब्दोंका क्रम है उसी क्रमसे—हृदयमें धारण कर शब्द-अर्थका बार बार चिन्तवन करना मानस जप कहा जाता है ॥ ११८ ॥

मानसः सिद्धिकाम्यानां पुत्रकाम्य उपांशुकः ।
वाचिको धनलाभाय प्रशस्तो जप ईरितः ॥ ११९ ॥

सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंके लिए मानस जप, पुत्र चाहनेवाले पुरुषोंके लिए उपांशु जप और धन कमानेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए वाचिक जप शुभ माना गया है ॥ ११९ ॥

वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शत उच्यते ।
सहस्रं मानसः प्रोक्तो जिनसेनादिसूरिभिः ॥ १२० ॥

एक बार किया हुआ वाचिक जप एक ही बारके बराबर होता है, उपांशु जप एक बार भी किया हुआ सौ बार किये हुएके बराबर होता है और मानासिक जप हजार बार किये हुएके बराबर होता है। ऐसा बड़े बड़े जिनसेन आदि प्रखर महर्षियोंका अभिमत है ॥ १२० ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
वानप्रस्थश्च भिक्षुश्च सहस्रादधिकं जपेत् ॥ १२१ ॥

ब्रह्मचारी और गृहस्थ एक सौ आठ बार जप करें। तथा वानप्रस्थ और यति एक हजार आठ बार जप करें १२१ ॥

अनध्यायेऽष्टोत्तरं स्याच्छातमन्यत्र चार्द्धकम् ।
पूजायां दशकं ज्ञेयं यथाशक्ति समाचरेत् ॥ १२२ ॥

अनध्यायके दिनोंमें एक सौ आठ, इसके सिवा अन्य दिनोंमें इससे आधे—चौवन और पूजाके समय दश जप अपनी शक्तिके अनुसार करे ॥ १२२ ॥

जप करनेका स्थान ।

गृहे जपफलं प्रोक्तं वने शतगुणं भवेत् ।
पुण्यारामे तथाऽरण्ये सहस्रगुणितं मतम् ॥ १२३ ॥

पर्वते दशसाहस्रं नद्यां लक्षमुदाहृतम् ।
कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं जिनसन्निधौ ॥ १२४ ॥

घरमें बैठ कर जप करनेसे जो फल होता है उससे सौ गुणा वनमें बैठ कर जप करनेसे होता है और वही पुण्यरूप बगीचे या जंगलमें बैठकर किया जाय तो सहस्र गुणा, पर्वतके शिखर पर दश हजार गुणा, नदीके किनारे पर एक लाख गुणा, देवालयमें एक करोड़ गुणा और जिन-प्रतिमाके सामने अनन्त गुणा फलता है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

व्रतच्युतान्त्यजादीनां दर्शने भाषणे श्रुतौ ।
क्षुतेऽधोवातगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥ १२५ ॥

जप करते करते व्रतच्युत पुरुषों और चाण्डाल आदिके देखनेपर, उनकी बोली सुनाई देनेपर अपनेको छींक आनेपर, अपान वायुका प्रसारण होने पर और जँभाई आनेपर जप करना बन्द कर दे ॥ १२५ ॥

प्राप्तावाचम्य चैतेषां प्राणायामं षडंगकम् ।
कृत्वा सम्यक् जपेच्छेषं यद्वा जिनादिदर्शनम् ॥ १२६ ॥

यदि जप करते समय उपर्युक्त बाधाएँ उपस्थित हो जायँ तो आचमन कर षडंग प्राणायाम करे अथवा उठ कर जिन भगवानका दर्शन करे । बाद बाकी बची हुई जाप पूर्ण करे ॥ १२६ ॥

एवं जपविधिं कृत्वा तत उत्थाय भक्तितः ।
हस्तौ द्वौ मुकुलीकृत्य पूर्वाभिमुखसंस्थितः ॥ १२७ ॥

वन्दनाकर्म सन्ध्याया निवर्त्यालसवर्जितः ।
उपविशेत्पुनस्तत्र शिष्टामाचरितुं क्रियाम् ॥ १२८ ॥

ऊपर कहे अनुसार जपविधिको करके आसनसे उठकर खड़ा होवे और पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर, दोनों हाथ जोड़ कर आलस्य रहित हो, भक्तिपूर्वक सन्ध्या-सम्बन्धी वंदना नामकी

क्रिया करे। इसके बाद अन्य बाकी बची हुई क्रियाको करनेके लिए उसी आसन पर पुनः बैठे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

सव्यजानुपुरो दर्भयुक्तहस्तद्वयस्तथा।
वामहस्तमधः कृत्वा मुकुलीकृत्य दक्षिणम् ॥ १२९ ॥

त्रिरुच्चार्य ततो मंत्रं प्राणायामोदितं पुरा।
आचमनं पुनः कुर्यान्मुक्तिमार्गप्रदायकम् ॥ १३० ॥

जिनेन्द्रादिमहर्षीणां दर्भदूर्वोदकैस्तथा।
वृषभादिसुपितॄणां तिलमिश्रोदकैः परम् ॥ १३१ ॥

जयादिदेवतानां च तर्पणं चाक्षतोदकैः।
एवं विधाय सन्ध्यायाः कर्म सान्ध्यं समापयेत् ॥ १३२ ॥

दाहिनी जंघाके ऊपर बायें हाथको नीचे और दाहिने हाथको ऊपर रक्खे, दोनोंमें दर्भ ले। इसके बाद पहले प्राणायाम करते समय कहे गये मंत्रका तीन बार उच्चारण कर पुनः उस मोक्षमार्गका प्रदान करनेवाले आचमनको करे। तथा दर्भ, दूब और जलसे जिनेन्द्रादि महर्षियोंका, तिल-मिश्र जलसे वृषभादि पितरोंका, अक्षत और जलसे जयादि देवतोंका तर्पण करे। इस तरह प्रातःकाल-सम्बन्धी सन्ध्या कर सन्ध्याविधि पूर्ण करे ॥ १२९ ॥ १३२ ॥

शौचान्ते रोगपीडान्ते मृतकानुगमे तथा।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव आचमादिक्रियां चरेत् ॥ १३३ ॥

शौच कर चुकने पर, रोगके दूर होने पर, मृतकके साथ स्मशान जानेपर और अस्पृश्य लोगोंका स्पर्श होजानेपर आचमनादि क्रियाओंको करे ॥ १३३ ॥

स्नानतर्पणके त्यक्त्वा शेषां चापि चरेत्क्रियाम्।
सर्वां मध्याह्नसायाह्नसन्ध्ययोर्द्विजसत्तमः ॥ १३४ ॥

त्रैवर्णिक श्रावक, दो पहरको और सायंकालको स्नान और तर्पणको छोड़कर बाकीकी सब क्रियाओंको करे ॥ १३४ ॥

संध्या करनेका समय।

सूर्योदयाच्च प्रागेव प्रातःसन्ध्यां समापयेत्।
तारकादर्शनात्सर्वं सन्ध्यां सायाह्निकीं चरेत् ॥ १३५ ॥

मध्यसन्ध्या तु मध्याह्ने काले कृत्यं फलप्रदम् ।
अकाले निर्मितं कार्यं स्वल्पं फलति वा न वा ॥ १३६ ॥

प्रातःकाल सम्बन्धी सन्ध्याको सूर्योदयसे पहले पहले समाप्त कर दे । सायंकाल सम्बन्धी सन्ध्या तारे देखनेसे पहले पहले करे। तथा दो पहर सम्बन्धी संध्याको दो पहरको करे। जो क्रिया अपने ठीक समयमें की जाती है वही उत्तम फलको देनेवाली होती है । और जो अपने ठीक समय पर नहीं की जाती वह बहुत ही स्वल्प फलको फलती है अथवा नहीं भी फलती ॥ १३५॥ १३६ ॥

घटिकाद्वितयं कालादतिक्रामति चेत्तदा ।
न दोषाय भवत्यत्र लोकास्याद्दूषणं स्मृतम् ॥ १३७ ॥

सन्ध्या करनेका जो समय है उससे यदि दो घड़ी समय अधिक हो जाय तो कोई दोष नहीं है। पर इस विषयमें लोगोंके मुखसे दूषण सुननेमें आते हैं ॥ १३७ ॥

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
अधमा सूर्यसंयुक्ता प्रातःसन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥ १३८ ॥

सुबह, दो पहर और सायंकाल इस तरह तीन समय सन्ध्या करना चाहिए। प्रातःकाल संबंधी संन्ध्याके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य । जो संध्या सुबहके समय तारे न छिपनेके पहले पहले की जाती है वह संध्या उत्तम मानी गई है। और जो तारोंके छिप जाने पर की जाती है वह संध्या मध्यम दर्जेकी संध्या है । तथा सूर्यके उग आने पर जो संध्या की जाती है वह जघन्य दर्जेकी है ॥ १३८ ॥

अह्नो रात्रेश्च यः सन्धिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः ।
सा तु सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १३९ ॥

सूर्योदय न होनेके पहले और नक्षत्रोंके छिप जाने पर जो दिन और रात्रिके सन्धिका समय है उसे तत्त्वदर्शी मुनि संध्या कहते हैं ॥ १३९ ॥

सन्ध्योत्तमा तृतीयांशे पञ्चमांशे दिनस्य तु ।
मध्याह्निकी तदूर्ध्वं वा पूर्वेव स्याद्विधा हि सा ॥ १४० ॥

दिनके तीसरे हिस्सेमें अथवा पाँचवें हिस्सेमें मध्याह्न संध्या करनी चाहिए। इसी समयमें मध्याह्न संध्या करना उत्तम है । इसके अलावा समयमें मध्याह्न संध्याका करना पहलेकी तरह निष्फल समझना चाहिए ॥ १४० ॥

सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते सन्ध्यां नैवमुपासते।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ १४१ ॥

सन्ध्या करनेके जो जो समय बताये गये हैं उन उन समयोंमें जो त्रैवर्णिक संध्या नहीं करता है वह इस भवमें जीता हुआ भी शूद्रके तुल्य है और मरकर परभवमें कुत्तेका जन्म धारण करता है। भावार्थ—यह भयानक वाक्य है, इसका सारांश यही है कि त्रैवर्णिकोंको सुबह, शाम और दो पहरको संध्या करना चाहिए। विना संध्या किये उनका यह लोक और परलोक दोनों ही व्यर्थ हैं। ग्रंथकारका तात्पर्य उन प्राणियोंको अच्छे पथपर लानेका है अत एव वे इतना भय दिखलाते हैं। केवल भय ही नहीं है, किन्तु उसका नतीजा भी बुरा ही है ॥ १४१ ॥

सन्ध्याकाले त्वतिक्रान्ते स्नात्वाऽऽचम्य यथाविधि।
जपेदष्टशतं जाप्यं ततः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ १४२ ॥

यदि संध्या करनेका समय कारणवश बीत चुका हो तो विधिपूर्वक स्नान और आचमन कर एक सौ आठ जाप करे और उसके बाद सन्ध्या करना प्रारंभ करे ॥ १४२ ॥

राष्ट्रभङ्गे नृपक्षोभे रोगार्तौ सूतकेऽपि च।
सन्ध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कदाचन ॥ १४३ ॥

राष्ट्रके विप्लवके समय, राजाके क्षोभके समय, रोगसे पीड़ित हो जानेके समय और जन्म-मरण संबंधी सूतकके समय, सन्ध्यावंदनका विच्छेद हो जाय—सन्ध्या न कर सके—तो कोई दोष नहीं है ॥ १४३ ॥

देवाग्निद्विजविद्यानां कार्ये महति सम्भवे।
सन्ध्याहीने न दोषोऽस्ति यत्तत्सत्कर्मसाधनात् ॥ १४४ ॥

देव, द्विज, अग्नि और विद्याके कारण यदि कोई बड़ा भारी पुण्य कार्य आ उपस्थित हो और उस समय सन्ध्या न की जा सके तो भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि उस समयमें और पुण्य कार्य साधन किये जाते हैं ॥ १४४ ॥

अथार्घ्यवितरणमन्त्रः।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं उपवेशनभूः शुद्ध्यतु स्वाहा।
दर्भादिना उपवेशनभूमिं मार्जयेत्।

"ॐ ह्रीं क्ष्वीं" इत्यादि मंत्र पढ़कर दर्भ आदिके द्वारा बैठनेकी जगहका मार्जन करे।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा मार्जनं शिर ऊपरि सेचनं करोमि स्वाहा। मार्जनान्ते शिरःपरिषेचनम्।

"ॐ ह्रीं अमृते" इत्यादि मंत्र पढ़कर मार्जनके पश्चात् सिरपर पानीके छींटे छोड़े।

ॐ ह्रीं लाँ वः पः क्ष्मीं क्ष्वीं हं सः चुलकोदकधारणं करोमि स्वाहा। ततः सव्यचुलकेनोदकमुद्धृत्य—

"ॐ ह्रीं लाँ" इत्यादि मंत्र पढ़कर दाहिने हाथके चुल्लूमें जल ले।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधवो मम दुष्कृतनिष्कृतं अन्तःशुद्धिं कुर्वन्तु। हं झं ह्वीं क्ष्वीं चुलकामृतं पिबामि स्वाहा। जलपानं कृत्वाऽऽचम्य—

पश्चात् यह मंत्र पढ़कर, उस चुल्लूके जलको पीकर आचमन करे।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्ममहापद्म-तिगंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीकगङ्गासिन्ध्वादिनदनद्याद्युदकेन कनकघटपरिपूरितेन वररत्नगन्धपुष्पाक्षताद्यैरभ्यर्चितामोदितेन जगद्वन्द्यार्हत्परमेश्वराभिषवपवित्रीकृतेन मार्जनं करोमि स्वाहा। इति जलं संस्पृश्याऽभिमन्त्र्य—

इस तरह यह मंत्र पढ़कर जलका स्पर्श कर उसे मंत्रित करे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषाय दिव्यतेजो-मूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः द्रां द्रीं वं शं मं हं सं तं पं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

पश्चात् 'ॐ नमोऽर्हते' इत्यादि मंत्र पढ़कर उससे मार्जन करे और सिरपर सींच कर नीचे लिखे अनुसार छह अर्घ देवे।

मार्जनं कृत्वा शिरः परिषिच्य षडर्घ्याणि समुद्धरेत्।

ॐ ह्रीं सर्वभवनेन्द्रार्चितसमस्ताकृत्रिमचैत्यचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥१॥
ॐ ह्रीं व्यन्तरेन्द्रार्चितसमस्ताकृत्रिमचैत्यचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥ २॥
ॐ ह्रीं ज्योतिष्केन्द्रार्चितसमस्ताकृत्रिमचैत्यचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥३॥
ॐ ह्रीं कल्पेन्द्रार्चितसमस्ताकृत्रिमचैत्यचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं सर्वाहमिन्द्रार्चितसमस्ताकृत्रिमचैत्यचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥५॥
ॐ ह्रीं विश्वेन्द्रार्चितमध्यलोकास्थितसमस्तकृत्रिमाकृत्रिमचैत्यचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥ षडर्घ्यमन्त्राः।

ये छह अर्घ देनेके छह मंत्र हैं।

अर्घ चढ़ानेके तीन मंत्रः—

ॐ ह्रीं विश्वचक्षुषे स्वाहा। ॐ ह्रीं अनुचराय स्वाहा।
ॐ ह्रीं ज्योतिर्मतये स्वाहा ॥ ३ ॥ इत्यर्घ्यत्रयमन्त्राः।

ये तीन मंत्र तीन अर्घ चढ़ानेके हैं। इन्हें पढ़कर तीन अर्घ चढ़ावे।

णमो अरिहंताणमित्यादिमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तथा।
चतुःपञ्चाशत्तथा सप्तविंशतिकं जपेत् ॥ १४५ ॥

पश्चात् "णमोअरहंताणं" इत्यादि पंच परमेष्ठी मंत्रके एकसौ आठ अथवा चौवन या सत्ताईस जाप देवे ॥ ९ ॥

इसके बादः—

स्वयम्भूर्भगवानर्हन्परः परमपूरुषः।
परमात्मा पवित्रात्मा पवित्रयतु नो मनः ॥ १४६ ॥

देवदेवो महादेवः परात्मा परमेश्वरः।
परमः परमब्रह्म स्वयम्भूतः पुनातु नः ॥ १४७ ॥

भूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा पवित्रं पावनं परम्।
पूतं भागवतं ज्योतिः पुनीतान्मम मानसम् ॥ १४८ ॥

इत्युच्चार्य परमात्मानं नमस्कुर्यात्।

इन तीन श्लोकोंको पढ़कर परमात्माको नमस्कार करे।

ततो जलाञ्जलिं गृहीत्वा झं वं ह्वः पः हः स्वाहा।
इति मन्त्रमुच्चारयन् प्रदक्षिणं परिक्रम्य पूर्वस्यां दिशि जलं विसृजेत्।

इसके पीछे हाथमें जलांजलि लेकर "झँ वँ" इत्यादि मंत्रका उच्चारण करता हुआ प्रदक्षिणा रूपसे चारों ओर घूमकर पूर्व दिशामें उस जलका विसर्जन करे।

ततोऽपि मुकुलितकरकुड्मलः सन् "ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय मम सर्वशांतिर्भवतु।" इत्युच्चार्य—

इसके बाद, दोनों हाथोंको मुकुलित कर "ॐ नमोऽर्हते" इत्यादि मंत्रका उच्चारण कर पूर्व दिशाकी ओर मुख कर **पूर्वस्यां दिशि इन्द्रः प्रसीदतु** पूर्व दिशामें इन्द्र प्रसन्न हो, ऐसा कहे। आग्नेय दिशाकी तरफ मुख कर **आग्नेयां दिशि अग्निः प्रसीदतु** आग्नेय दिशामें अग्निकुमार प्रसन्न हो, ऐसा कहे। दक्षिण दिशामें मुख कर, **दक्षिणस्यां दिशि यमः प्रसीदतु** दक्षिण दिशामें यम प्रसन्न हो, ऐसा कहे। नैऋत दिशामें मुख कर **नैर्ऋत्यां दिशि निऋतः प्रसीदतु** नैऋत्य दिशामें निऋत प्रसन्न हो, ऐसा कहे। पश्चिम दिशामें मुख कर **पाश्चिमस्यां दिशि वरुणः प्रसीदतु** पश्चिम दिशामें वरुण प्रसन्न हो, ऐसा कहे। वायव्य दिशामें मुख कर **वायव्यां दिशि वायुः प्रसीदतु** वायव्य दिशामें वायुकुमार प्रसन्न हो, ऐसा कहे। उत्तर दिशामें मुख कर **उत्तरस्यां दिशि यक्षः प्रसीदतु** उत्तर दिशामें यक्ष प्रसन्न हो, ऐसा कहे। ईशान दिशामें मुख कर **ईशान्यां दिशि ईशानः प्रसीदतु** ईशान दिशामें ईशानदेव प्रसन्न हो, ऐसा कहे। अधो दिशाकी तरफ दृष्टि डाल कर **अधरस्यां दिशि धरणेन्द्रः प्रसीदतु** अधो दिशामें धरणेंद्र प्रसन्न हो, ऐसा कहे। ऊपरकी तरफ दृष्टि कर **ऊर्ध्वायां दिशि चन्द्रः प्रसीदतु** उर्द्ध्व दिशामें चन्द्र प्रसन्न हो, ऐसा कहे ॥ २ ॥

इति दशदिक्पालान्प्रसाद्य सन्ध्यावन्दनां निवर्तयेत्।

इस तरह दश दिक्पालोंको प्रसन्न कर सन्ध्यावन्दना पूरी करे।

अब इसके बाद करनेकी क्रिया बताते हैं:—

अथोत्तरक्रिया। तदनन्तरमुपविश्य सव्यजान्वग्रे दर्भगर्भं मुकुलीकृत्य करकुड्मलमधरीकृत्य वामहस्तं विन्यस्य

प्राणायाममन्त्रं त्रिरुच्चार्य—"मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्। ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥" "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः"। इति वाचनां गृहीत्वा दर्भोदकेन ऋषीणां तर्पणं कुर्यात्। तद्यथा—

संध्यावंदन हो चुकनेके बाद पर्यंकासन बैठकर दाहिनी जाँघकी टखनीपर दोनों हाथोंको मुकुलित कर रक्खे। उसमें बायें हाथको नीचे और दाहिने हाथको ऊपर रक्खे। दोनों हाथोंमें दूब ले। पश्चात् प्राणायामके मंत्रोंका तीन बार उच्चारण कर "मोक्षमार्गस्य नेतारं" इत्यादि श्लोक और "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" इत्यादि सूत्र पढ़कर दर्भके अग्रभागमें जल लेकर उससे ऋषियोंका तर्पण करे। वह इस तरह करे—

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं आचार्यपरमेष्ठिनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं उपाध्यायपरमेष्ठिनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं सर्वसाधुपरमेष्ठिनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं जिनाँस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अवधिजिनांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं परमावधिजिनांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं सर्वावधिजिनांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अनन्तावधिजिनांस्तर्पयामि। एवं। ॐ ह्रीं कोष्ठबुद्धींस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं बीजबुद्धींस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं पादानुसारिणस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं सम्भिन्नश्रोतॄंस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं प्रत्येकबुद्धांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं स्वयम्बुद्धांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं बोधितबुद्धांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं ऋजुमतींस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं विपुलमतींस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं दशपूर्विणस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं चतुर्दशपूर्विणस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अष्टाङ्गमहानिमित्तकुशलांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं विक्रियर्द्धिप्राप्तांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं विद्याधरांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं चारणांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं प्रज्ञाश्रवणांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं आकाशगामिनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं आस्यविषांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं दृष्टिविषांस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं उग्रतपस्विनस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं दीप्ततप-

स्विनस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं तप्ततपस्विनस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं महातपसस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं घोरतपसस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं घोरगुणांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं घोरपराक्रमांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं घोरब्रह्मचारिणस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं आमर्षौषधिप्राप्तांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं क्ष्वेडौषधिप्राप्तांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं जल्लौषधिप्राप्तांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं विप्रौषधिप्राप्तांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं सर्वौषधिप्राप्तांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं मनोबलिनस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं वाग्बलिनस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं कायबलिनस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं अमृतश्राविणस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं मधुस्राविणस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं सर्पिस्स्राविणस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं क्षीरस्राविणस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं अक्षीणमहानसांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं अक्षीणमहालयांस्तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं लोके सर्वसिद्धायतनानि तर्पयामि स्वाहा । ॐ ह्रीं अर्हं भगवतो महतिमहावीरवर्द्धमानबुद्धिऋषींस्तर्पयामि । इति ऋषितर्पणमन्त्रा त्रिपञ्चाशत् । ततस्तेषां नमस्कारमन्त्रोऽयम् । ॐ ह्रीं अर्हं क्ष्यौं क्ष्यौं नमः ।

ये त्रेपन ऋषितर्पण मंत्र हैं। तर्पणके बाद उन सबको नमस्कार करे। "ॐ ह्रीं अर्हं" इत्यादि यह नमस्कार मंत्र है।

अथ पितॄणां तर्पणं कुर्यात्तिलोदकेन— ॐ ह्रीं अर्हं श्रीऋषभस्य भगवतः पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं अजितस्य भगवतः पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं सम्भवस्य भगवतः पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं भगवतोऽभिनन्दनस्य पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं इत्यादि वर्धमानपर्यन्तं योज्यम् । ॐ ह्रीं अर्हं अस्मत्पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं तत्पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं तत्पितरौ तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं अस्मद्दीक्षागुरुं तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं अस्मद्विद्यागुरुं तर्पयामि । ॐ ह्रीं अर्हं अस्मच्छिक्षागुरुं

तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं तेषां पितरस्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं तेषां पितृतत्पितृतात्पितरस्तर्पयामि। एवं द्वात्रिंशन्मन्त्राः पितॄणां तर्पणार्थं। तेषां नमस्कारमन्त्रोऽयम्। ॐ ह्रीं अर्हं नमः।

इसके बाद तिल और जलसे पितरों और पिताओंका तर्पण करे। इस तरह ये बत्तीस मंत्र पितृ-तर्पण करनेके हैं। और "ॐ ह्रीं अर्हं नमः" यह उनको नमस्कार करनेका मंत्र है।

अथाक्षतोदकेन देवतानां तर्पणं। तन्मन्त्राः। ॐ ह्रीं अर्हं जयाद्यष्टदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं रोहिण्यादिषोडशविद्यादेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं यक्षादिपञ्चदशतिथिदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं सूर्यादिनवग्रहदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं इन्द्रादिदशदिक्पालदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं श्र्याद्यष्टदिक्कन्यादेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षीदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं चक्रेश्वर्यादिचतुर्विंशतियक्षदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं असुरादिदशविधभवनवासिदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं किन्नराद्यष्टविधव्यन्तरदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं चन्द्रादिपञ्चविधज्योतिष्कदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं सौधर्मादिवैमानिकदेवतास्तर्पयामि। ॐ ह्रीं अर्हं सर्वाहमिन्द्रदेवतास्तर्पयामि। इति तर्पणमन्त्राः। अतो नमस्कारमन्त्रोऽयम्। ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा ॐ क्रौं नमः। एवं मध्याह्नसायाह्नयोः स्नानतर्पणान्यपि विहाय आचमनादिशेषक्रियां सर्वामाचरेत्। शिरःपरिषेचनं जलाञ्जल्यर्घ्याणि जाप्यं देवपूजादि सर्वं कर्तव्यम्।

इसके बाद अक्षत और जलसे देवतोंका तर्पण करे। उनके तर्पण करनेके ये मंत्र हैं। इस तरह देवतोंका तर्पण किया जाता है। यह उनको नमस्कार करनेका मंत्र है।

इति प्रातः संध्योपासनक्रमः।

इस तरह ऊपर बताये अनुसार प्रातःकालके समय संध्या वंदना करनेका क्रम है। इसी तरह मध्याह्नके समय और सायंकालके समय भी स्नान और तर्पण कर आचमन आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ करे। सिरपर जल सींचना जलांजली देना, अर्घ चढ़ाना, जाप करना, देवपूजा करना आदि सम्पूर्ण कार्य करे।

इत्थं युक्तिविधानतः सुसकलं सन्ध्यादिकोपासनं,
ये कुर्वन्ति नरोत्तमा भवभयाद्भीताश्च ते दुर्लभाः ।
संसाराम्बुधिनौसमां शिवकरां भव्यात्मनां प्राणिनां,
तस्मादादरपूर्विकां बुधजनाः कुर्वन्तु सन्ध्यां सदा ॥ १४९ ॥

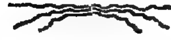
इस प्रकार युक्ति और विधिपूर्वक सम्पूर्ण संध्योपासन क्रियाको जो भव्य पुरुष करते हैं वे सांसारिक भयोंसे निर्भय हो जाते हैं । यह संध्योपासना भव्य प्राणियोंको संसार-समुद्रसे तारनेके लिए जहाजके समान है और क्रमसे मोक्ष स्थानको ले जानेवाली है । इस लिए बुद्धिमान पुरुषोंको आदर पूर्वक दर रोज तीनों समय सन्ध्यावन्दन करना चाहिए ॥ १४९ ॥

श्रीब्रह्मसूरिद्विजवंशरत्नं, श्रीजैनमार्गप्रविबुद्धतत्त्वः ।
वाचन्तु तस्यैव विलोक्य शास्त्रं, कृतं विशेषान्मुनिसोमसेनैः ॥ १५० ॥

द्विजवंशमें शिरोमणि और जैनतत्वोंके स्वरूपको अच्छी तरह जाननेवाले श्रीब्रह्मसूरि नामके एक भारी विद्वान पंडित हमसे पहले हो गये । उन्होंने एक त्रैवर्णिकाचार नामका शास्त्र बनाया है । उसीको देखकर मुझ सोमसेन मुनिने भी इस त्रिवर्णाचार शास्त्रकी कुछ विशेष रीतिसे रचना की है । जिसे भव्य पुरुष अच्छी तरह पढ़ें और पढ़ावें ॥ १५० ॥

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारनिरूपके भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते
स्नानवस्त्राचमनसन्ध्यातर्पणवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

चौथा अध्याय ।



त्रैलौक्ययात्रां चरितुं प्रवीणा, धर्मार्थकामाः प्रभवन्ति यस्याः ।
प्रसादतो वर्तत एव लोके, सरस्वती सा वसतान्मनोऽब्जे ॥ १ ॥

जिसके प्रसादसे धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थ सुखसे तीन लोक सम्बन्धी यात्रा करनेको समर्थ होते हैं और जो इस लोकमें निवास करती है वह सरस्वती देवी मेरे हृदय-कमलमें निवास करे ॥ १ ॥

शान्तिप्रदं सम्प्रति शान्तिनाथं, देवाधिदेवं वरतत्त्वभाषम् ।
नत्वा प्रवक्ष्ये गृहधर्ममत्र, यतो भवेत्स्वर्गसुखं सुभोगम् ॥ २ ॥

जीवादि सात उत्तम तत्वोंके उपदेश करनेवाले और शान्ति प्रदान करनेवाले देवाधिदेव शान्तिनाथ परमात्माको नमस्कार कर मैं अब गृहस्थ-धर्मको कहूँगा जिससे स्वर्गीय सुख और अच्छे अच्छे भोग प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

कृत्वैवं सुजलाशये स मुदितश्चोत्थाय तस्माच्छनै-
रीर्यायाः पथशोधनं शुचितरं कुर्वन्व्रजेत्स्वं गृहम् ।
अस्नातान् सकलान् जनान्नहि तदा मार्गे स्पृशेन्नोत्तमान्,
स्नातान् शूद्रजनान्प्रमादबहुलान् शुद्धानपि नो स्पृशेत् ॥ ३ ॥

तीसरे अध्यायमें बताई हुई क्रियाओंको जलाशयके ऊपर अच्छी तरह सम्पादन कर बड़े ही हर्षके साथ वहांसे उठकर चार हाथ आगेकी जमीनका निरीक्षण करता हुआ अपने घरको रवाना होवे । रास्तेमें स्नान न किए हुए उत्तम पुरुषोंको, स्नान किये हुए शूद्रोंको और जो शुद्ध हैं परन्तु फिर भी प्रमाद युक्त हैं इनको भी न छूवे । उन्हीं न छूने योग्य पुरुषोंको नीचेके श्लोकोंसे प्रकट करते हैं ॥ ३ ॥

मद्यविक्रयिणं शूद्रं कुलालं मद्यपायिनम् ।
नापितं च शिलास्फोटं कुविन्दकमतः परम् ॥ ४ ॥

कान्छिकं मालिकं चैव हिंसकं मुद्गलादिकम् ।
उच्छिष्टपर्णचर्मास्थिच्युतशृंगनखानपि ॥ ५ ॥

रोमकेशखुरान्दन्तान्रक्तविण्मूत्रपूयकान् ।
श्लेष्मनिष्ठीवशूद्रान्नहण्डिकादीन् द्विहस्ततः ॥ ६ ॥

काककुर्कुटमार्जारखरोष्ट्रग्रामसूकरान् ।
कुष्ठिकुर्कुररोगार्तच्छिन्नांगपतितान्नरान् ॥ ७ ॥

कितवान्मत्तमत्ताँश्च वन्धनागाररक्षकान् ।
मलाक्तवस्त्रसंयुक्तान् डोम्बमुख्यान् त्रिहस्ततः ॥ ८ ॥

तक्षकान्रजकान् स्वर्णकारकान् ताम्रकुट्टकान् ।
अयोनिगडसिन्दूरहिंगुहिंगुलकारकान् ॥ ९ ॥

शस्त्रवैद्यानग्निवैद्याञ्जलौकारक्तपायिनः ।
चर्मादीनतिजीर्णांगान् त्यजेद्धस्तचतुष्टयात् ॥ १० ॥

मद्यविक्रेता, शूद्र, कुम्हार, मद्यपायी, नाई, सिलावट, जुलाहे, काछी, माली, हिंसक और मुसलमान आदिको न छूवे। जूँठी-पत्तल-पत्ते, चर्म, हड्डी, सींग, नख, रोम, केश, खुर, दाँत, लहू, विष्टा, मूत्र, पीप, कफ, खँकार, शूद्रका भोजन, मिट्टीकी हँडिया वगैरहको न छूवे—इनसे दो हाथ दूरसे चले। काक, मुर्गे, विल्लियाँ, गधे, ऊँट, ग्राम्य-सूकर, कोढ़ी, कुत्ते, रोग-पीड़ित, छिन्नअंग, जातिच्युत, धूर्त, नशेवाज, कैदखानेके सिपाही, मैले कपड़े पहने हुए मनुष्य और डोम, आदिकसे तीन हाथ दूर चले। मिस्तरी, धोवी, सुनार, तमेरे, लोहार, सिन्दूर, हींग, हिंगुल बनानेवाले मनुष्य, शस्त्रवैद्य (नस्तर आदि लगानेवाले), अग्निवैद्य (डाम देनेवाले), जौंक सिंगी लगानेवाले मनुष्य और जिनका शरीर अत्यन्त जीर्ण हो गया है ऐसे मनुष्योंका चार हाथ दूरीसे त्याग करे—इनसे चार हाथ दूर चले ॥ ४ ॥ १० ॥

पञ्चहस्तादृतुमतीं सूतिकां हस्तषट्कतः ।
चाण्डालचर्मकारादीन् हस्तसप्त परित्यजेत् ॥ ११ ॥

रजस्वला स्त्रियोंसे पाँच हाथ, प्रसूति स्त्रियोंसे छह हाथ और चमार, चांडाल, भील आदिकसे सात हाथ हटकर चले ॥ ११ ॥

मांसभारं सुराकुम्भं युगद्वयं तु वर्जयेत् ।
नृतिरश्चश्च दुर्गन्धिशवं तु युगपञ्चकम् ॥ १२ ॥

अस्पृश्यगृहजं भस्म धूलीधूमतुषादिकान् ।
अस्पृश्यान्निजगेहं स गच्छेज्जीवदयापरः ॥ १३ ॥

मांसभार (ढेड़), मदिराके वर्तन आदिसे आठ हाथ, मनुष्य और तिर्यंचोंके दुर्गन्धियुक्त मुर्दे शरीरसे बीस हाथ दूर चले। अस्पृश्य लोगोंके घरकी भस्म, धूली, धूम, तुष आदिको न छूता हुआ जीव-दयामें तत्पर त्रैवर्णिक श्रावक अपने घर पर जावे। भावार्थ—इन श्लोकोंमें ऊँच नीच दोनों तरहके मनुष्योंको न छूनेका उपदेश इस लिए है कि उसे आगे चलकर अपने चैत्यालयमें पूजा करना है ॥ १२ ॥ १३ ॥

घर बनानेकी विधि।

विजातिम्लेच्छशूद्राणां गेहाद्दूरं भवेद्गृहम्।
काष्ठधूमादिसंसर्गं न कुर्यात्कुड्यमेलनम् ॥ १४ ॥

विजाति लोग, म्लेच्छ (मुसलमान आदि) और शूद्र इनके घरोंसे अपना घर कुछ फासले पर बनवावे। उनके घरोंकी लकड़ी, धूआँ आदिका सम्पर्क अपने घरसे न होने दे। तथा उनके घरोंकी दीवालसे सटाकर अपने घरकी दीवाल न बनावे ॥ १४ ॥

तेषां हि श्रूयते शब्दो हिंसादिदुष्टवाचकः।
केशास्थिचर्मदुःस्पर्शो न भवेत्त्वं तथा कुरु ॥ १५ ॥

जिससे कि इसको मारो, इसको काटो आदि दुष्ट वचन सुनाई न दे सके। तथा ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे केश, हड्डी, चर्म आदिका संसर्ग न हो सके ॥ १५ ॥

तेषां जलप्रवाहस्य नीचभागं विवर्जयेत्।
मानिनां पापशीलानां सक्तानां दुष्टसङ्गतौ ॥ १६ ॥

जिधरको उन नीच जातीय मनुष्योंके घरका जल बहकर जाता हो उधरको अपना घर न बनवावे। तथा मानी, पापी और बुरी सोहबतमें लगे हुए मनुष्योंके घरोंके पास भी अपना घर न बनवावे ॥ १६ ॥

नगरस्यान्त्यसम्भागे न कुर्याद्गृहबन्धनम्।
भषकसूकरादीनां प्रवेशो न हि सौख्यदः ॥ १७ ॥

नगरके बाहर भी अपना घर न बनवावे, क्योंकि नगरके बाहर मकान होनेसे कुत्ते, सूअर आदि घरोंमें घुस जाते हैं। इनका घरोंमें घुसना शुभ नहीं है ॥ १७ ॥

सङ्कीर्णमार्ग उच्छिष्टमलमूत्रादिदूषितः।
वेश्यातस्करव्याघ्रादिसम्बन्धं दूरतस्त्यजेत् ॥ १८ ॥

जहाँसे सभी जातिके मनुष्य आते जाते हों ऐसे रास्ते पर तथा जहाँपर जूँठन, विष्ठा, मूत्र आदि अपवित्र चीजें डाली जाती हों वहाँ पर मकान न बनवावे। तथा वेश्या, चोर, व्याघ्र आदिके सम्बन्धको भी दूरहीसे छोड़े॥ १८॥

उत्तमस्थानमालोक्य सर्पादिपरिवर्जितम्।
रम्यं तत्र गृहं कुर्याद्यथाद्रव्यं यथारुचि॥ १९॥

सर्पादि दुष्ट जन्तुओंसे रहित उत्तमस्थानको पसंद कर अपने विभव और रुचिके अनुसार सुन्दर मकान बनवावे॥ १९॥

रेणुपाषाणनीरान्तं खनयेत्पृथिवीतलम्।
शङ्खखर्परचर्मास्थिविण्मूत्रं दूरतस्त्यजेत्॥ २०॥

मकानकी नीव इतनी गहरी खोदे जिसमेंसे कँकरीली मिट्टी, पत्थर और पानी निकलने लग जाय। तथा शंख, खपरे, चर्म, हड्डी, विष्टा और मूत्रको दूर ही छोड़े अर्थात् जहाँपर ये चीजें डाली जाती हो वहाँ मकान न बनवावे॥ २०॥

पाषाणैश्चेष्टकामृद्भिश्चूर्णैर्भूर्बध्यते दृढम्।
सुदिने सुमुहूर्ते वा जिनपूजापुरस्सरम्॥ २१॥

उत्तम दिन और उत्तम मुहूर्तमें जिनेन्द्र देवकी पूजा-पूर्वक ईंट, चूना, पत्थर और मिट्टीसे बहुत मजबूत मकान चिनवावे॥ २१॥

भुक्तिशालाऽग्निदिक्कोणे नैर्ऋत्यां शयनस्थलम्।
वायव्यां स्नानगेहं स्यादीशान्यां जिनमन्दिरम्॥ २२॥

पश्चिमे चित्रशाला तु नानाजनसमाश्रया।
दक्षिणे तु जलस्थानं ह्युत्तरे श्रीधनाश्रयः॥ २३॥

पूर्वस्यां निर्गमद्वारं घण्टातोरणभूषितम्।
मध्ये नृत्यन्ति नर्तक्यो गीतहास्यविनोदकैः॥ २४॥

सदनस्य बहिर्भागे शाला गोधनसंभृता।
गजाश्वरथपादातैस्तत्रैव स्थीयतेऽन्यतः॥ २५॥

आग्नेय—पूर्व और दक्षिण दिशाके बीचमें रसोई घर, नैऋत्य—दक्षिण और पश्चिम दिशाके बीचमें शयनस्थान, वायव्य—पश्चिम और उत्तर दिशाके बीचमें स्नान घर और ईशान—उत्तर दिशा और

पूर्व दिशाके बीचमें चैत्यालय बनवावे। पश्चिम दिशामें अच्छे अच्छे सुन्दर चित्रोंसे खचित चित्रामशाला, दक्षिण दिशामें जल रखनेका स्थान, उत्तर दिशामें खजाना, पूर्वदिशामें घण्टा, तोरण, बन्दनवार आदिसे सुशोभित बाहर भीतर आने-जानेका दरवाजा बनवावे। मकानके मध्यभागमें अच्छे अच्छे गीत, हास्य-विनोदों द्वारा मन बहलानेवाली नर्तकियोंके लिए नाचने-गानेको नृत्यशाला बनवावे और मकानकी बाहरी बगलमें गौशाला (नौहरा) बनवावे जिसमें कि हाथी घोड़े, रथ, पयादे आदि सभी रह सकें ॥ २२ ॥ २५ ॥

एकद्वित्रीणि सप्तान्ता उपर्युपरि संस्थिताः।
चूर्णकाचसुवर्णादिलेपनैर्लेपिताः पराः ॥ २६ ॥

एक, दो, तीन ऐसे सात मंजिलतकके मकान बनवावे। जिनमें चूना, काच, सुवर्ण आदिका लेप करावे ॥ २६ ॥

नानाशृंगैश्च संयुक्तं मालाचन्द्रोपकादिभिः।
पुत्रोत्पत्तिविवाहादिकल्याणपरिपूजितम् ॥ २७ ॥

मकानके ऊपर कई तरहके शिखर बनवावे तथा माला चँदोवा आदिसे मकानको अच्छी तरह सजावे। और जिसमें पुत्र-जन्मोत्सव, विवाह मंगल आदि अच्छे अच्छे कल्याण करता रहे ॥ २७ ॥

चैत्यस्य वामभागे तु होमशालां समापयेत्।
धूमावकाशकस्थानं सल्लकीकदलीयुतम् ॥ २८ ॥

चैत्यालयकी बाईं ओर होमशालाका निर्माण करावे। जिसमें धूँआ निकलनेका एक रास्ता रक्खे। तथा सल्लकी केले आदिके पेड़ लगवावे ॥ २८ ॥

पल्यङ्कं कुसुमानि चन्दनरसः कर्पूरकस्तूरिका,
स्वाद्वन्नं वनिता स्वरूपसहिता हास्यादिका सत्क्रिया।
तांबूलं वरभूषणानि तनुजा दानाय सत्संपदो,
गेहे यस्य स एव सन्ति विभवा धन्यश्च पुण्यत्माकः ॥ २९ ॥

वही उत्तम पुरुष धन्य है, वही उत्तम पुण्यशाली है जिसके घरमें बढ़ियासे बढ़िया शय्या, फूल, चन्दन-रस, कपूर, कस्तूरी, नित नये मीठे भोजन, उत्तम रूपवती स्त्री, मनोविनोद करनेको उत्तम हास्यादि क्रियाएँ, ताम्बूल, अच्छे अच्छे आभूषण, विनीत पुत्र और दान देनेको उत्तम सम्पत्ति इत्यादि विभव मौजूद हैं ॥ २९ ॥

चैत्यालयप्रवेश।

गत्वा तत्र जिनागारं शनैः स्थित्वा बहिःस्थले।
पादौ प्रक्षाल्य संशोध्य सम्यगीर्यापथं क्रमात् ॥ ३० ॥

त्रिःपरीत्य जिनेन्द्रस्य गेहं चान्तर्विशेद्बुधः।
मुखवस्त्रं समुद्घाट्य जिनवक्त्रं विलोकयेत् ॥ ३१ ॥

वह जलाशय पर स्नान कर आया हुआ गिरस्त अपने मकानमें बने हुए चैत्यालयमें जावे और बाहर आँगनमें खड़ा रहकर पैर धोवे। इसके बाद ईर्यापथ पूर्वक चैत्यालयकी तीन प्रदक्षिणा देकर मन्दिरमें प्रवेश करे। तथा प्रतिमाके सामनेके पड़देको एक तरफ हटा श्रीजिनदेवके मुख-कमलका दर्शन करे और इस प्रकार स्तुति पढ़े ॥ ३० ॥ ३१ ॥

जिनदर्शनस्तवन।

दर्शनं जिनपतेः शुभावहं सर्वपापशमनं गुणास्पदम्।
स्वर्गसाधनमुशन्ति साधवो मोक्षकारणमतः परं च किं ॥ ३२ ॥

हे जिनेन्द्र! आपका दर्शन कल्याणका करनेवाला है, सभी तरहके पापोंका उपशम करनेवाला है और गुणोंका अपूर्व खजाना है, और तो क्या जिसे बड़े बड़े साधु महात्मा स्वर्ग और मोक्षका साधन बनाते हैं ॥ ३२ ॥

दर्शनं जिनरवेः प्रतापवच्चित्तपद्मपरमप्रकाशकम्।
दुष्कृतैकतिमिरापहं शुभं विघ्नवारिपरिशोषकं सदा ॥ ३३ ॥

हे जिनरवे! यह आपका दर्शन सूर्यकी तरह हृदय-कमलका विकास करनेवाला है, पाप रूपी निविड़ अन्धकारको छिन्न भिन्न करनेवाला है, शुभ है और विघ्न रूप जलको सोखनेवाला है ॥ ३३ ॥

दर्शनं जिननिशापतेः परं जन्मदाहशमनं प्रशस्यते।
पुण्यनिर्मलसुधाप्रवर्षणं वर्धनं सुखपयोनिधेः सतः ॥ ३४ ॥

हे जिनचंद्र! यह आपका दर्शन जन्मदाहका शमन करनेवाला है, पुण्य-निर्मल अमृतको बरसानेवाला है और सज्जनोंके सुख-समुद्रको बढ़ानेवाला है ॥ ३४ ॥

दर्शनं जिनसुकल्पभूरुहः कल्पितं हि मनसा प्रपूरयेत्।
सर्वलोकपरितापनाशनं पंफुलीति फलतो महीतले ॥ ३५ ॥

हे जिनेन्द्र रूप कल्पवृक्ष! यह आपका दर्शन मनोवाञ्छित चीजोंको पूरनेवाला है,

संसारके सभी लोगोंके तापको नष्ट करनेवाला है और तमाम संसारको अच्छे अच्छे फलोंसे सफल करनेवाला है ॥ ३५ ॥

दर्शनं जिनसुकामगोरलं कामितं भवति यत्प्रसादतः।
दोग्धि दुग्धमपि वित्तकाम्यया शुद्धमेव मन इत्युदाहृतम् ॥ ३६ ॥

हे जिनेन्द्र रूपी कामधेनु ! यह आपका दर्शन पूर्ण समर्थशाली है जिसके प्रसादसे सभी तरहके मनचाहे पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। यह दर्शनरूपी कामधेनु ऐसी है कि भव्यपुरुष द्रव्यकी इच्छासे जिसका दूध दोहते हैं इसमें शुद्ध मन ही कारण है अर्थात् उनकी द्रव्यकी तृष्णा दूर हो जाती है ॥ ३६ ॥

दर्शनं जिनपयोनिधेर्भृशं सौख्यमौक्तिकसमूहदायकम् ।
सद्घनं गुणगभीरमुत्तमं ज्ञानवारिविपुलप्रवाहकम् ॥ ३७ ॥

हे जिनसमुद्र ! यह आपका दर्शन सुख-मोतियोंके समूहको देनेवाला है और ज्ञान-जलकी बड़ी भारी वृष्टि करनेवाला सद्गुणोंसे भरापूरा उत्तम मेघ है ॥ ३७ ॥

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलकप्रमाणः ॥ ३८ ॥

हे देव ! आपके चरणकमलोंके देखनेसे आज मेरे ये दोनों नेत्र सफल हुए हैं। हे तीन लोकके तिलक ! यह संसार-समुद्र आज मुझे पानीके चुल्लु बराबर देख पड़ रहा है ॥ ३८ ॥

किसलायितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्,
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात् ।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं,
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण ॥ ३९ ॥

हे देव ! तुम्हारे देखनेकी इच्छा करते ही इस मेरे पुण्य-वृक्षमें बहुतसी नई कोंपलें फूट पड़ती हैं। तुम्हारे समीपमें जाते ही इसमें फूलोंके गुच्छेके गुच्छे छा जाते हैं। और तुम्हारे मुख-कमल पर नजर पड़ते ही यह पुण्य-वृक्ष फलोंसे लद जाता है ॥ ३९ ॥

शर्वरीषु शशिना प्रयोजनं भास्करेण दिवसे किमीश्वर ।
त्वन्मुखेन्दुदलिते तमस्तते भूतलेऽत्र तकयोस्तु का स्तुतिः ॥ ४० ॥

हे नाथ ! इस पृथ्वीतलपर तुम्हारे मुख-चन्द्रमाकी तेज कान्ति द्वारा ही जब तमाम अन्धकारका नाश हो जाता है तब रात्रिके समय चाँदसे और दिनको समर्थ सूर्यसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता तो बताइए उनकी क्या स्तुति की जाय ॥ ४० ॥

अमितगुणगणानां त्वद्गतानां प्रमाणं,
भवति समधिगन्तुं यस्य कस्यापि वाञ्छा ।
प्रथममपि स तावद्व्योम कत्यङ्गुलं स्या,–
दिति च सततसंख्याभ्यासमङ्गीकरोतु ॥ ४१ ॥

हे देव ! आपमें निरन्तर स्फुरायमान अमेय गुण-गणोंकी संख्या जाननेकी यदि किसीकी बड़ी भारी उत्कण्ठा है तो वह सबसे पहले आकाश कितने अंगुल लंबा चौड़ा है इस संख्याका निरन्तर अभ्यास करना अंगीकार करे । भावार्थ—जिस तरह आकाशको उँगलियों द्वारा नहीं माप सकते उसी तरह आपके गुणोंकी गिनती भी नहीं कर सकते ॥ ४१ ॥

देव त्वदंघ्रिनखमण्डलदर्पणेऽस्मिन्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः ।
श्रीकीर्तिकान्तिधृतिसङ्गमकारणानि भव्यो न कानि लभते शुभमङ्गलानि॥ ४२ ॥

हे प्रभो ! स्वभावसे ही महा मनोहर आपके चरणोंके नखोंकी कान्ति रूप पूज्य दर्पणमें जो निरन्तर अपना मुख देखता है वह भव्य पुरुष श्री, कीर्ति और धृतिका समागम करानेवाले कौनसे शुभ मंगल बाकी रह जाते हैं जिनको प्राप्त नहीं कर सकता । भावार्थ—आपके पुण्य-दर्शनसे सभी मंगल प्राप्य होते हैं ॥ ४२ ॥

त्वद्दर्शनं यदि ममास्ति दिने दिनेऽस्मिन् देव प्रशस्तफलदायि सदा प्रसन्नम् ।
कल्पद्रुमार्णवसुरग्रहमन्त्रविद्याचिन्तामणिप्रभृतिभिर्न हि कार्यमस्ति ॥ ४३ ॥

हे देव ! प्रशस्त फलका देनेवाला और हमेशा प्रसन्नचित्त रखनेवाला यदि आपका दर्शन मुझे हर रोज होता रहे तो मुझे कल्पवृक्ष, समुद्र, देव, ग्रह मंत्रविद्या, चिन्तामणि इत्यादि बाह्य वस्तुओंसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है । भावार्थ–आपके दर्शनोंसे बढ़कर संसारमें कोई भी चीजें नहीं हैं । मैं तो यही चाहता हूँ कि हमेशा आपके दर्शन होते रहें । मुझे इन मंत्र-तंत्रादिकी बिलकुल चाह नहीं है ॥ ४३ ॥

इति संस्तुत्य देवं तमुपविश्य जिनाग्रतः ।
भार्यायै याचितं वस्तु पानीयाक्षतचन्दनम् ॥ ४४ ॥

पुष्पं नैवेद्यदीपाँश्च धूपं फलमतः परम्।
समालोक्य च संशोध्य पूजा कार्या सुबुद्धितः ॥ ४५ ॥

इस तरह परमात्माकी स्तुति कर उनके सामने मुख कर बैठे और अपनी धर्म-पत्नीसे माँगे हुए जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलको अच्छी तरह देख-सोध कर शुद्धचित्तसे जिनेन्द्र देवकी पूजा करे। भावार्थ—उपर्युक्त रीतिसे भगवानकी स्तुति कर जलादि आठ द्रव्योंसे पूजा करना प्रारम्भ करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

जिनपूजाक्रम।

आव्हानं स्थापनं कृत्वा सन्निधीकरणं तथा।
पञ्चोपचारविधितः पूजनं च विसर्जनम् ॥ ४६ ॥

आव्हान, स्थापना, सन्निधिकरण, पूजन और विसर्जन इस तरह इन पाँच उपचारों पूर्वक पूजा करे ॥ ४६ ॥

गर्भागारे जिनेन्द्राणां कृत्वा पूजां महोत्सवैः।
स्तुतिं स्तुत्या परं भक्त्या नमस्कारं पुनः पुनः ॥ ४७ ॥

कृत्वा मण्डपमध्येऽत्र वेदिकां च समागमेत्।
जिनस्य दक्षिणे भागे दर्भासनमुपाश्रयेत् ॥ ४८ ॥

इस तरह गर्भमन्दिरमें जिन भगवानकी बड़े ही महोत्सवके साथ पूजन कर, अच्छे अच्छे स्तोत्रों द्वारा स्तुति कर और बड़े ही विनय पूर्वक बार बार नमस्कार करे। इसके बाद मण्डपके बीचमें बनी हुई वेदीके समीप आवे। वहाँ आकर जिन भगवानकी प्रतिमाके दाहिनी ओर दर्भासन पर बैठे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

वनिताहस्ततो वाऽन्यशिष्यहस्तात्तथाऽपि च।
गृहीत्वा त्वर्चनाद्रव्यं पूजयेज्जिननायकम् ॥ ४९ ॥

इसके बाद अपनी स्त्रीके द्वारा अथवा और किसीके हाथ द्वारा दिये हुए पूजा-द्रव्यको लेकर जिनदेवकी पूजा करे ॥ ४९ ॥

पञ्चवर्णैर्महाचूर्णैः रङ्गवल्लीं समालिखेत्।
कदलीसच्छकीस्तम्भैरिक्षुदण्डैः सतोरणैः ॥ ५० ॥

घण्टाचमरसम्भूपैर्भूषयेज्जिनवेदिकाम् ।
पूर्णकुम्भार्चनाद्रव्यदर्भांश्च वामभागतः ॥ ५१ ॥

गन्धकुट्यां जिनेन्द्रस्य प्रतिमां च निवेशयेत् ।
सिद्धचक्रस्य यन्त्रं च पूजयेद्गुरुपादुकाम् ॥ ५२ ॥

सहस्रनाम देवस्य पठेत्तावद्विधानतः ।
सकलीकरणं कृत्वा शोधयेन्निजदेहकम् ॥ ५३ ॥

गन्धपुष्पाक्षतैस्तोयैः पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ।
पूजोपकरणस्तोमं शोधयेच्छुचिभिर्जलैः ॥ ५४ ॥

पाँच रंगके जुदे जुदे चूर्णोंसे रंगवल्ली खेंचे। कदली वृक्ष, और सल्लकी वृक्षके स्तोमोंसे, गन्धोंसे, तोरणोंसे, घण्टा और चमरोंसे वेदीको अच्छी तरह सजावे । जलके घड़ों, पूजाद्रव्यों और दर्भोंको अपनी बाईं ओर रक्खे । गन्धकुटीमें श्री जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाको स्थापन करे। प्रासहीमें सिद्धचक्रके यंत्र और गुरु-पादकाएँ (चरण) रख कर उनकी पूजा करे । विधिपूर्वक जिन सहस्रनामको पढ़े। सकलीकरण कर अपनी देहको शुद्ध करे। तथा प्रासुक निर्मल गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि पूजाद्रव्यको और पूजाके वर्तनोंको धोकर साफ करे ॥ १० ॥ ५४ ॥

ततः ईशानदिग्भागे वास्तुवायुकुमारकान् ।
मेघाग्निनागदेवांश्च भूमिशुद्धिविधायकान् ॥ ५५ ॥

दर्भाम्बुवन्हिभिः शुद्धैर्भूमिं संशोध्य पूजयेत् ।
महावाद्यनिनादेन पुष्पांजलीभिरञ्जसा ॥ ५६ ॥

शिष्या विद्यागुरूंश्चात्र सार्घ्यदानेन तर्पयेत् ।
अग्निकोणे क्षेत्रपालं गुडतैलैश्च पूजयेत् ॥ ५७ ॥

इसके वाद दर्भ, जल और अग्निद्वारा भूमिशुद्धि कर वेदीकी ईशान दिशामें भूमि शुद्धकरनेवाले वास्तुदेव, वायुकुमार, मेघकुमार, अग्निकुमार और नागकुमारकी गाजे-बाजेकी ध्वनिपूर्वक पुष्पांजलि द्वारा पूजा करे। और यहीं पर अपने गुरुओंका अर्घ देकर तर्पण करे–पूजा करे। तथा आग्नेय दिशामें गुड़ तेल द्वारा क्षेत्रपालकी पूजा करे ॥ ५५ ॥ ५७ ॥

ईशानदिशि नागांश्च क्षीरैरञ्जलिपूरितैः ।
आभिः पुण्याभिरित्यादि श्लोकेन भुवमर्चयेत् ॥ ५८ ॥

ईशान दिशामें अंजलिभर जलसे नागकुमारोंकी पूजा करे। और आभिः पुण्याभिः इत्यादि नीचे लिखा श्लोक पढ़कर भूमिकी पूजा करे ॥ ५८ ॥

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहलेनामुना चन्दनेन,
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपै-
र्धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरर्चामि भूमिम् ॥ ५९ ॥

इस पवित्र जल, सुगन्ध चन्दन, देखनेमें अत्यन्त सुन्दर पवित्र अक्षतों, फूलों, सुन्दर नैवेद्यों, जलते हुए दीपकों, उत्तम सुगन्धित धूपों और बड़े बड़े उत्तम फलोंसे इस यागशाला—पूजा करनेकी जमीन—की मैं पूजा करता हूँ ॥ ५९ ॥

ततः श्रुतं गुरुं सिद्धं यक्षान्यक्षीश्च देवताः ।
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दीर्घया दम्भवर्जितः ॥ ६० ॥

इसके बाद शास्त्र, गुरु, यक्ष और यक्षीकी विधिपूर्वक परम भक्तिके साथ छल-कपट रहित होकर पूजा करे ॥ ६० ॥

आभरण धारण करनेकी विधि ।

जिनांघ्रिचन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत् ।
यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ॥ ६१ ॥

मुकुटं कुण्डलद्वन्द्वं मुद्रिकां करकङ्कणम् ।
बाहुबन्धांघ्रिभूपे च वस्त्रयुग्मं च तत्परम् ॥ ६२ ॥

जिनांघ्रिस्पर्शितां मालां निर्मलां कण्ठदेशके ।
ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चन्दनेन च ॥ ६३ ॥

जिनदेवके चरणस्पर्शित चन्दनसे अपने शरीरमें लेप करे, यज्ञोपवीत पहने, कमरमें करधोनी पहने, शिर पर मुकुट लगावे, दोनों कानोंमें कुण्डल पहने, उँगलीमें मुद्रिका पहने, दोनों हाथोंमें चूड़ा (सोनेके कड़े) पहने, दोनों भुजाओंमें भुजबन्ध पहने, पैरोंमें घूघरू बाँधे, धोती दुपट्टा पहने-ओढ़े, जिनदेवके चरणोंसे स्पर्शित निर्मल माला गलेमें पहने और ललाटमें उसी (जिनचरण-स्पर्शित) चन्दनसे तिलक करे ॥ ६१ ॥ ६३ ॥

तिलकोंके भेद ।

आतपत्रं तथा चक्रं अर्धचन्द्रं त्रिशूलकम् ।
मानस्तम्भस्तथा सिंहपीठकं चेति षड्विधम् ॥ ६४ ॥

छत्राकार, चक्राकार, अर्धचन्द्राकर, त्रिशूलाकार, मानस्तम्भाकार तथा सिंहसनाकार ये छह तिलक लगानेके भेद हैं॥ ६४॥

छत्रत्रयमिति स्मृत्वा आतपत्रमुदाहृतम् ।
धर्मचक्रमिति स्मृत्वा चक्राकारं च कारयेत् ॥ ६५ ॥

पाण्डुशिलेति संस्मृत्य अर्धचन्द्रं विनिर्मितम् ।
रत्नत्रयमिति ज्ञात्वा त्रिदण्डं तिलकं स्थितम् ॥ ६६ ॥

मानस्तम्भाकृति कार्यं मानस्तम्भाभिधानकम् ।
सिंहासनं जिनेन्द्रस्य संस्मृत्य सिंहविष्टरम् ॥ ६७ ॥

छत्र-त्रय ऐसा मानकर छत्राकार, धर्मचक्र ऐसा समझकर चक्राकार, पाण्डुकशिला ऐसा मानकर अर्धचन्द्राकार, रत्नत्रय ऐसा समझकर त्रिशूलाकार, मानस्तम्भ ऐसा मानकर मानस्तम्भाकार और जिन भगवानके सिंहासनका स्मरण कर सिंहासनाकार तिलक लगावे॥ ६५ ॥ ६७ ॥

तिलक करनेके स्थान।

आतपत्रार्धचन्द्रे वा यदा भाले धृते तदा ।
वक्षसि भुजयोः कण्ठे त्रिशूलाकृतिमादिशेत् ॥ ६८ ॥

जब ललाटपर छत्राकार अथवा अर्धचंद्राकार तिलक लगावे तब छाती पर, दोनों भुजाओं पर और कण्ठमें त्रिशूलाकार तिलक करे॥ ६८॥

भाले स्तम्भं तथा पीठं भुजादौ स्वस्तिकं तदा ।
त्रिदण्डमथवा चक्रं तदाकृति तथा भवेत् ॥ ६९ ॥

जब ललाट पर स्तम्भाकार अथवा सिंहासनाकार तिलक लगावे तब भुजा छाती, कंठ इन स्थानोंमें स्वस्तिकाकार त्रिशूलाकार, और चक्राकार तिलक लगावे॥ ६९॥

सर्वाङ्गलेपनं प्रोक्तं सर्वेषु तिलकेषु वा ।
तदुपरि त्रिशूलाद्यानाकारान्परिचिन्तयेत् ॥ ७० ॥

सभी तरहके तिलकोंमेंसे कोईसा तिलक करना हो तो सम्पूर्ण शरीर—भुजा आदि स्थानों—में गन्ध-लेपन करे। तथा उस लेपनके ऊपर त्रिशूलाकारादि तिलक करे॥ ७०॥

तिलकोंके आकार ।

आतपत्रं त्वर्धचन्द्रं तिर्यग्रेखं प्रकीर्तितम् ।
त्रिदण्डं मानिकस्तम्भमूर्ध्वरेखमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥

सिंहपीठं तथा चक्रं वर्तुलं वर्तुलाकृति ।
स्तम्भश्चैकांगुलव्यासो द्व्यंगुलोऽप्यथवा भवेत् ॥ ७२ ॥

छत्र और अर्धचन्द्र इन दो तिलकोंका आकार आड़ी लकीर जैसा होता है । त्रिशूल और मानस्तंभ ये दो तिलक खड़ी रेखा जैसे माने गये हैं। तथा सिंहपीठ और चक्र इन दो तिलकोंकी आकृति गोलाकार होती है । मानस्तम्भाकार तिलककी चौड़ाई एक अंगुल अथवा दो अंगुल प्रमाण होती है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

त्र्यङ्गुलं विष्टरव्यासे चतुरङ्गुलमेव वा ।
भ्रूकेशयोश्च संव्याप्य विशाले स्तम्भविष्टरे ॥ ७३ ॥

चक्रं तथैव विज्ञेयं त्रिदण्डं केशसंगतम् ।
आतपत्रं त्वर्द्धचन्द्रं रागिणां सुखकारिणम् ॥ ७४ ॥

सिंहासनाकार तिलककी चौड़ाई तीन अंगुल अथवा चार अंगुलकी होती है । मनास्तम्भाकार, सिंहासनाकार और चक्राकार ये तीनों तिलक केशोंके ऊपर तक चौड़े होते हैं । तथा त्रिशूलाकार तिलक भौंके केशोंसे मिला हुआ होता है और छत्राकार तथा अर्धचन्द्राकार ये दो तिलक रागी पुरुषोंको सुखी करनेवाले हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

सर्वांगे रचना कार्या विकारपरिवर्जिता ।
भुजयोर्भालदेशे वा कण्ठे हृद्युदरेऽपि च ॥ ७५ ॥

सारे शरीरमें तिलक-रचना करे अर्थात् दोनों भुजाएँ, ललाट, कण्ठ, छाती और उदर इन स्थानोंमें तिलक करे । यह तिलक-रचना ऐसी होनी चाहिए जिसे देखकर किसीको कोई तरहका विकार न हो ॥ ७५ ॥

चारों वर्णोंके तिलकोंकी विधि ।

अर्धचन्द्रातपत्रे तु कुर्वन्ति क्षत्रियाः पराः ।
स्तम्भं पीठं तथा छत्रं ब्राह्मणानां शुभप्रदम् ॥ ७६ ॥

मानस्तम्भं तथा छत्रं वैश्यानां तु सुखप्रदम् ।
शूद्राणां तु भवेच्चक्रमितरेषां त्रिदण्डकम् ॥ ७७ ॥

अर्धचन्द्र और छत्राकार ये दो तरहके तिलक क्षत्रिय लगाते हैं। स्तम्भाकार, सिंहासनाकार और छत्राकार ये तीन तरहके तिलक ब्राह्मणोंको शुभ देनेवाले होते हैं। मानस्तंभ और छत्राकार ये दो तिलक वैश्योंको सुखप्रद हैं। तथा शूद्रोंके लिए चक्राकार और अन्य लोगोंके लिए त्रिशूलाकार तिलक सुखप्रद होते हैं ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

क्षत्रियवैश्यविप्राणां योषितां तिलकं स्मृतं ।
अर्धचन्द्रस्तथा छत्रं तिर्यग्रेखाचतुष्टयम् ॥ ७८ ॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंकी स्त्रियाँ अर्धचन्द्राकार तथा आड़ी चार रेखारूप छत्राकार तिलक लगावें ॥ ७८ ॥

योषितां सर्वशूद्राणां स्तम्भं पीठं त्रिदण्डकम् ।
चन्दनकुङ्कुमश्रेष्ठद्रव्यैस्त्रिवर्णके स्मृतम् ॥ ७९ ॥

सब ही शूद्रोंकी स्त्रियाँ स्तम्भाकार, सिंहासनाकार और त्रिशूलाकार तिलक लगावें। तथा तीनों वर्णके स्त्री-पुरुष चन्दन, केशर या अन्य श्रेष्ठ सुगन्धित द्रव्यका तिलक लगावे ॥ ७९ ॥

निम्बकाष्ठैर्मृदा वाऽथ शूद्राणां शुभ्रभस्मना ।
सिन्दूरैर्वा निशाचूर्णैः सर्वासां योषितां वरम् ॥ ८० ॥

नींबकी लकड़ी, मृत्तिका अथवा सफेद राखसे शूद्र तिलक करे। सभी जातिकी स्त्रियाँ सिन्दूर अथवा हल्दीका तिलक करे ॥ ८० ॥

अक्षतधारण।

सुगन्धलेपनस्योर्ध्वं मध्येभालं धरेद्गृही ।
अङ्गुलाग्रमिते देशे जिनपादार्चिताक्षतान् ॥ ८१ ॥

गिरिस्ती लोग सुगंध लेपनके ऊपर ललाटके मध्य भागमें उँगलीके टोए प्रमाण जगहमें जिनेन्द्र देवके चरणकमलोंकी पूजा किये हुए अक्षतोंको रक्खें—लगावें ॥ ८१ ॥

गन्धलेपनकी महिमा।

ब्रह्मघ्नो वाऽथ गोघ्नो वा तस्करः सर्वपापकृत् ।
जिनांघ्रिगन्धसम्पर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ८२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष, गोहत्या केरनवाला पुरुष, चौर अथवा सब तरहके पापोंका करने-वाला पुरुष जिन भगवान्‌के चरणस्पर्शित गन्धका लेप करनेसे उसी समय अपने किये हुए पापकर्मोंसे उन्मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

गंध लगानेकी उँगलियोंका फल।

अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो यशसे मध्यमा भवेत् ।
अनामिका श्रियं दद्यान्मुक्तिं दद्यात्प्रदेशिनी ॥ ८३ ॥

अँगूठा पुष्टि देनेवाला है, मध्यमा यशके लिए होती है, अनामिका लक्ष्मी देती है और तर्जनी मुक्ति प्रदान करती है। भावार्थ—अँगूठेसे तिलक करनेसे शारीरिक पुष्टि होती है। मध्यमासे यश फैलता है। अनामिकासे लक्ष्मीका और तर्जनीसे मुक्तिका समागम प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥

श्रीकामः पुष्टिकामो वा यथेष्टं तिलकं चरेत् ।
अभ्यंगोत्सवकाले तु कस्तूरीचन्दनादिना ॥ ८४ ॥

लक्ष्मीके चाहनेवाले अथवा शारीरिक पुष्टि चाहनेवाले पुरुषको चाहिए कि वह अपने योग्य तिलक सदा लगावे। तथा तैल मर्दन करनेके बाद स्नान कर चुकने पर अथवा कोई तरहके उत्सवके समय कस्तूरी चन्दन आदिका तिलक लगावे ॥ ८४ ॥

जपो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
जिनपूजा श्रुताख्यानं न कुर्यात्तिलकं विना ॥ ८५ ॥

जप, होम, दान, स्वाध्याय, पितृतर्पण, जिन-पूजा और शास्त्रका व्याख्यान इतने कार्य तिलक लगाये विना न करे ॥ ८५ ॥

वस्त्रयुग्मं यज्ञसूत्रं कुण्डले मुकुटस्तथा ।
मुद्रिका कंकणं चेति कुर्याच्चन्दनभूषणम् ॥ ८६ ॥

पहनने ओढ़नेके दोनों वस्त्र, यज्ञोपवीत, दोनों कानोंके दोनों कुण्डल, मुकुट, मुद्रिका (छल्ला) दोनों हाथोंके दोनों चूड़े (कड़े) इनको चन्दनसे सुशोभित करे—उपर्युक्त कार्य करते समय इन सब चीजों पर चन्दन लेप करे ॥ ८६ ॥

ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं दर्भैस्त्रिपञ्चभिः स्मृतम् ।
मुष्ट्यग्रं वलयं रम्यं पवित्रमिति धार्यते ॥ ८७ ॥

तीन अथवा चार दर्भ लेकर उनमें ब्रह्मगाँठ लगावे। ब्रह्मगाँठके बाहर निकले हुए दर्भोंके अग्र-

भागको चार अंगुल लंबा रक्खे। इस तरह करनेसे उन दर्भोंके ऊपर वलय-गोलाकारमें गाँठ और नीचेको दर्भोंका अग्रभाग रहता है। इसे पवित्रक कहते हैं। इस पवित्रकको अनामिका उँगलीमें पहने ॥ ८७ ॥

एवं जिनांघ्रिगन्धैश्च सर्वांगं स्वस्य भूषयेत्।
इन्द्रोऽहमिति मत्वाऽत्र जिनपूजा विधीयते ॥ ८८ ॥

इस तरह जिनदेवके चरणस्पर्शित गन्धसे अपना सारा शरीर भूषित करे और मैं इन्द्र हूँ ऐसा मानकर श्रीदेवाधिदेव जिन भगवानकी नीचे लिखे अनुसार पूजा करना प्रारंभ करे ॥ ८८ ॥

श्रीपीठ स्थापन।

पाण्डुकाख्यां शिलां मत्वा श्रीपीठं स्थापयेत्क्रमात्।
मध्ये श्रीकारमालेख्य दर्भाक्षतजलैः शुभैः ॥ ८९ ॥

जिस पर इन्द्रने भगवान्‌का जन्माभिषेक किया था वही यह पांडुकाशिला है ऐसा मानकर पूजा करनेके लिए श्रीपीठको स्थापन करे। इसके बाद उस श्रीपीठ (सिंहासन) के बीचमें श्रीशब्द लिखकर दर्भ, अक्षत, जल आदिसे उस सिंहासनकी पूजा करे ॥ ८९ ॥

प्रतिमास्थापन।

ततो मङ्गलपाठेन प्रतिमां तत्र चानयेत्।
सिद्धादीनां च यन्त्राणि स्थापयेन्मन्त्रयुक्तितः ॥ ९० ॥

इसके बाद उत्तम उत्तम मंगलपाठ-स्तुतियाँ पढ़ते हुए उस सिंहासनपर श्रीजिनदेवकी प्रतिमाको लाकर विराजमान करे। और मंत्रविधानपूर्वक सिद्धचक्रादि यंत्रोंको भी विराजमान करे ॥ ९० ॥

प्रक्षाल्य जिनबिम्बं तत्सुगन्धैर्वासितैर्जलैः।
आव्हानं स्थापनं कृत्वा सन्निधानं तथैव च ॥ ९१ ॥

ततः पञ्चगुरुमुद्रां निवृत्य परिदर्शयेत्।
ततः पाद्यविधिं कृत्वा जलैराचमयेज्जिनम् ॥ ९२ ॥

ततो नीराजनां कृत्वा पूजयेदष्टधार्चनैः।
भस्मोदनशलाकागोमयपिण्डनिराजना ॥ ९३ ॥

इसके बाद आव्हान, स्थापना और सन्निधिकरण कर उस जिनबिंबकी सुगन्धित जलसे प्रक्षाल करे। पश्चात् पंचगुरुमुद्राकी रचना कर उस मुद्राको प्रतिमाके ऊपर तीन वार फिरा कर

दिखावे। इसके बाद पाद्यविधि कर जलसे जिनदेवको आचमन करावे—प्रतिमाके मुखपर जलके छींटे छोड़े। पश्चात् आरती उतार कर जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजन करे। भस्म, ओदन, दर्भकी सलाई, गोमय और पिंड—पंचवर्ण भात—इत्यादि द्रव्योंसे आरती उतारे॥ ९१॥ ९३॥

चतुष्कोणेषु कुम्भांश्च मालाचन्दनचर्चितान्।
फलपल्लववक्त्रस्थान्ससूत्रान्स्थापयेत्क्रमात्॥ ९४॥

उस सिंहासनके चारों कोनोंपर क्रमसे जलसे भरे हुए कलश रक्खे। उन्हें पुष्पमाला और चन्दनसे सुशोभित करे तथा उनके मुख पर फल और पत्ते रक्खे। और गलेमें सूत लपेटे॥ ९४॥

अर्घैः सम्पूज्य कुम्भांस्तांस्ततो दिक्पालकान्दश।
अर्घ्यपाद्यादिभिर्यज्ञभागवल्यादिभिर्यजेत्॥ ९५॥

पश्चात् उन कलशोंको अर्घ देकर दश दिक्पालोंकी अर्घ्य, पाद्य[1], यज्ञभाग, बलि आदिसे पूजा करे॥ ९५॥

कलशस्थापन।

ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा वाद्यनिर्घोषनिर्भरैः।
उद्धृत्य कलशान्पूर्वांस्तज्जलैः स्नापयेज्जिनम्॥ ९६॥

पश्चात् पुष्पांजलि क्षेपणकर गाजेवाजेके साथ साथ उन कलशोंमेंसे चार कलश हाथमें उठाकर उनके जलसे जिन भगवानका अभिषेक करे॥ ९६॥

पंचामृताभिषेक।

इक्षुरसभृतैः कुम्भैस्तथा घृतघटैः परैः।
दुग्धकुम्भैस्तथा दध्नः कुम्भैः संस्नापयेत्पुनः॥ ९७॥

पश्चात् इक्षुरस, घृत, दूध, दही इनसे भरे हुए कलशोंसे क्रमसे अभिषेक करे॥ ९७॥

कोणकलशाभिषेक।

सर्वौषधिरसैश्चापि चोद्धृत्य श्रीजिनेश्वरम्।
कोणस्थैः कलशैर्देवं युक्त्या सस्नापयेत्ततः॥ ९८॥

पश्चात् सर्वौषधि रससे भरे हुए कलशसे जिनदेवका अभिषेक करे। इसके बाद चारों कोनोंपर स्थित उन चार जलसे भरे कलशोंसे विधिपूर्वक पुनः अभिषेक करे॥ ९८॥

१ कमलकी कली, दूब, अक्षत और सफेद राई इसको मिलाकर अर्पण करनेको पाद्य कहते हैं।

जिनपादोदकग्रहण।

गन्धद्रव्यविमिश्रैश्च जलैः संस्नापयेत्पुनः।
पादोदकं जिनेन्द्रस्य प्रकुर्यात्स्वस्य मूर्द्धनि ॥ ९९ ॥

पश्चात् उत्तम गंधद्रव्यसे मिले हुए जलसे जिन भगवान्का अभिषेक करे। और उस पादोदकको अपने शिर पर चढ़ावे—लगावे ॥ ९९ ॥

अष्टद्रव्यार्चन।

वस्त्राञ्चलैस्तथागुच्छ्य संस्थाप्य यन्त्रमध्यतः।
पूजयेदष्टधा द्रव्यैर्निर्मलैश्चन्दनादिभिः ॥ १०० ॥

पश्चात् प्रतिमाको वस्त्रसे पोंछ कर उसी सिंहासनमें लिखे यंत्र पर स्थापन कर आठ प्रकारके निर्मल चन्दनादि द्रव्योंसे पूजा करे ॥ १०० ॥

सिद्धयंत्रादिपूजन।

ततः सिद्धादियन्त्राणि श्रुतं गुरुं च पूजयेत्।
यक्षयक्षीसुरान्सर्वान्यथायोग्यमभ्यर्चयेत् ॥ १०१ ॥

इसके बाद सिद्धादि यंत्रोंकी, शास्त्र और गुरुकी पूजा करे। तथा सम्पूर्ण यक्ष यक्षी आदि शासनदेवोंकी यथायोग्य पूजा करे—सत्कार करे ॥ १०१ ॥

शेषधारण।

त्रिःपरीत्य जिनाधीशं भक्त्या नत्वा पुनः पुनः।
जिनश्रीपादपीठस्थां शेषां शिरसि धारयेत् ॥ १०२ ॥

जिनेंद्रदेवकी तीन प्रदक्षिणा देकर और भक्तिभावसे वार वार नमस्कार कर जिनपीठपर रक्खी हुई शेषा (आशिंका) को शिरपर धरे ॥ १०२ ॥

अथ होमविधि।

एवमाराधनां कृत्वा होमशालां ततो व्रजेत्।
समिधाद्यर्चनाद्रव्यं गृहीत्वा निजभार्यया ॥ १०३ ॥

इस प्रकार जिनदेवकी पूजा कर, अपनी सधर्मिणी द्वारा समिध आदि अर्चना द्रव्यको लेकर होमशालामें जावे ॥ १०३ ॥

लक्षणं होमकुण्डानां वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः।
भट्टारकैकसन्धेश्च दृष्ट्वा निर्मलसंहिताम् ॥ १०४ ॥

श्रीएकसन्धिनामके भट्टारककी रची हुई निर्दोष संहिताको देखकर शास्त्रानुसार होमकुण्डोंका लक्षण कहा जाता है ॥ १०४ ॥

होमकुंडस्थान।

संशोधितमहादेशे जिनस्य वामभागतः।
अष्टहस्तसुविस्तारा दीर्घा तथैव वेदिका ॥ १०५ ॥

चतुःषष्ठ्यंशकान् कृत्वा चतुष्कोणे समांशकान्।
राक्षसांशान् परित्यज्य पश्चिमायां ततो दिशि ॥ १०६ ॥

मनुष्यांशेषु तिर्यक्षु वेदिकां कारयेत्पराम्।
तत्र श्रीजिननाथानां प्रतिमां स्थापयेत्पराम् ॥ १०७ ॥

जिनेन्द्र देवके बाईं ओर जलमंत्रादिके द्वारा शुद्ध की हुई जमीन पर आठ हाथ लम्बी चौड़ी एक वेदी बनवावे। उस वेदीके चारों कोनोंपर बराबर बराबर हिस्सेवाले चौसठ भाग खींचे। उनमेंसे राक्षसोंके भागोंको छोड़कर पश्चिम दिशाकी ओर आड़े मनुष्यभागों पर एक दूसरी वेदिका बनवावे। उस पर श्रीजिनेन्द्रदेवकी पवित्र प्रतिमाको स्थापन करे ॥ १०५ ॥ १०७ ॥

ततोऽग्रदेवभागेषु छत्रत्रयं निवेशयेत्।
चक्रत्रयं तथा यक्षयक्षीश्च स्वस्तिकं परम् ॥ १०८ ॥

उस प्रतिमाके सामनेके देवभागोंपर छत्रत्रय, चक्रत्रय, यक्ष-यक्षी और स्वतिककी स्थापना करे ॥ १०८ ॥

ब्रह्मभागाँस्ततस्त्यक्त्वा देवमानुषभागयोः।
पूर्वे ब्रह्मांशकात्तत्र कुण्डत्रयं तु कारयेत् ॥ १०९ ॥

मध्ये कुण्डं वरं तेषां त्रयाणां क्रियते शृणु।
अरत्न्यगाधविस्तारं चतुरस्रं त्रिमेखलम् ॥ ११० ॥

पश्चात् ब्रह्मभागोंको छोड़कर देव-मानुषभागके समीप जो ब्रह्मभाग हैं उनसे पूर्ववर्ती जो भाग हैं उनपर तीन कुंड बनवावे और उन तीनों कुंडके बीचमें एक अरत्निप्रमाण लंबा, इतना ही चौड़ा और इतना ही गहरा चौकोन—जिसके चारों ओर तीन मेखला (कटनी) खिंची हुई हो ऐसा—एक कुंड बनवावे ॥ १०९ ॥ ११० ॥

त्रिकोणं दक्षिणे कुण्डं कुर्याद्वर्तुलमुत्तरे ।
तत्रादिमेखलायाश्चाप्यवसेयाश्च पूर्ववत् ॥ १११ ॥

भूताब्धिगुणमात्राः स्युर्मेखलाः प्रथमादयः ।
मात्रायामं तथैतेषां कुण्डानामन्तरं भवेत् ॥ ११२ ॥

उस कुंडके दक्षिणकी ओर एक तिकोन कुण्ड और उत्तरकी ओर एक गोल कुंड बनवावे। पहले कुंडकी तरह इन दोनों कुंडोंके चारों ओर भी तीन तीन मेखलाएँ बनवावे। पहली मेखला पाँच मात्रा प्रमाण, दूसरी चार मात्रा प्रमाण और तीसरी तीन मात्रा प्रमाण ऊँची बनवावे। तथा इन तीनों कुंडोंका अन्तर (फासला) एक दूसरेसे एक मात्रा प्रमाण रक्खे ॥ १११ ॥ ११२ ॥

परितो दिक्षु दिक्पालपीठिकाः कुण्डवेदिकाम् ।
ततः समर्च्य तत्सर्वं संशोध्य च जलादिभिः ॥ ११३ ॥

चतुरस्रं ततः कुण्डं त्रिकोणं तदनन्तरम् ।
ततो वृत्तमपि प्रार्चेदम्भोधररसादिभिः ॥ ११४ ॥

उन कुण्डकी वेदिकाओंके चारों ओर आठों दिशाओंमें आठ दिक्पालोंके आठ पीठ बनवावे। पश्चात् उन सबको जलादिके द्वारा शुद्धकर उनकी पूजा करे। पहले चौकोन कुंडकी, इसके बाद त्रिकोण कुंडकी और इसके पश्चात् गोलाकार कुंडकी पूजा व शुद्धता करे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तीर्थकृद्गणभृच्छेषकेवल्यन्त्यमहोत्सवे ।
प्राप्य ते पूजनाङ्गत्वं पवित्रत्वमुपागताः ॥ ११५ ॥

ते त्रयोऽपि प्रणेतव्याः कुण्डेष्वेषु महानयम् ।
गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निप्रसिद्धया ॥ ११६ ॥

तीर्थंकर, गणधर देव और सामान्यकेवलीके निर्वाणोत्सवके समय पूज्यताको प्राप्त होकर जो पवित्रताको प्राप्त हुई हैं उन तीनों तरहकी अग्निकी तीनों कुंडोंमें रचना करे। इन तीनों कुंडोंमें जो पहला चौकोन कुंड है उसका नाम तीर्थंकर-कुंड है और उसकी अग्निको गार्हपत्य अग्नि कहते हैं। दूसरा तिकोन कुंड है वह गणधर-कुंड है, उसकी अग्निको आहवनीय अग्नि कहते हैं। तीसरा वर्तुलाकार कुंड है जो सामान्यकेवली-कुंड कहा जाता है, उसकी अग्नि दक्षिणाग्निके नामसे प्रसिद्ध है। भावार्थ—यहाँपर शंका उपस्थित होती है कि अग्नि पूज्य और पवित्र कैसे हो सकती है। यदि अग्नि पवित्र और पूज्य मानी जाय तो जिसे अन्य लोग देवता मानते हैं और पवित्र मानकर उसे पूजते हैं जैनी लोग उसका खण्डन क्यों करते हैं। इसका उत्तर यह है कि वस्तु एक ही है, उसमें अभिप्राय जुदा जुदा है। अन्य लोग अग्निमात्रको अर्थात् सभी तरहकी अग्निको पवित्र पूज्य और देव मानते हैं, हम ऐसा नहीं मानते। किन्तु जिस अग्निमें तीर्थंकर, गणधर और सामान्यकेवलीका

शरीर दग्ध किया गया था उन अग्निकी स्थापना इन कुंडोंकी अग्निमें करके उसे पवित्र और पूज्य मानते हैं, न कि सारे संसारकी सभी तरहकी अग्निको । जिस तरह कि सारे ही संसारके पत्थर पूज्य नहीं हैं और न सभी तरहका जल पूज्य है, परंतु जिस जड़ पत्थर या स्थापनाके पुष्पोंमें परमात्माकी कल्पना कर ली जाती है वही पत्थर या पुष्प पूज्य हैं । अथवा जिस गन्धोदकको जैनी लोग 'निर्मलं निर्मलीकरं' इत्यादि श्लोक पढ़कर मस्तकपर चढ़ाते हैं उसे पूज्य और पवित्र मानते हैं, न कि सारे संसारके पत्थरों, पुष्पों और जलोंको । जब कि हम परमात्माकी कल्पना किये हुए पत्थरों और पुष्पोंको पवित्र और पूज्य मानते हैं और उस पत्थरकी मूर्तिके स्नानोदकको बड़े चावसे मस्तकपर चढ़ाते हैं तब हम नहीं कह सकते कि जिस अग्निमें तीर्थंकर आदिका शरीर दग्ध हुआ था उस अग्निकी इस अग्निमें स्थापना कर पूजने और पवित्र माननेमें क्या दोष है । अथवा यों समझना चाहिए कि यह सब पूजाविधान अनेक तरहसे किया जाता है । वह सब अर्हंत देवका ही पूजन है ॥ ११४ ॥ ११६ ॥

चतुष्कोणे चतुस्तम्भाः सल्लकीकदलीयुताः ।
घण्टातोरणमालाढ्या मुक्तादामविभूषिताः ॥ ११७ ॥

चन्द्रोपकयवारैश्च चामरैर्दर्पणैस्तथा ।
धूपघटैः करतालैः केतुभिः कलशैर्युताः ॥ ११८ ॥

वेदीके चारों कोनोंपर सल्लकीके पत्ते और केलेके स्तभोंसे युक्त चार स्तंभ खड़े करे । उनको घंटा, तोरण, पुष्पमाला, मोतियोंकी माला आदिसे सजावे । उनके ऊपर चन्दोवा ताने, यवार, तिल, जीरा, गेहूँ आदि मंगल धान्य रक्खे । चँवर, दर्पण, धूपघट, झाँझ, धुजा, कलश ये मांगलिक वस्तु वहाँ पर धरे ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

एवं होमगृहं गत्वा पश्चिमाभिमुखं तदा ।
उपविश्य क्रियाः कार्या नमस्कारपुरस्सराः ॥ ११९ ॥

उपर्युक्त रीतिसे तैयार किये गये होमगृहमें जाकर पश्चिमकी[1] तरफ मुख करके बैठे और नमस्कार पूर्वक पूजा करना प्रारंभ करे ॥ ११९ ॥

तत्रादौ वायुमेघाग्निवास्तुनागाँस्तु पूजयेत् ।
क्षेत्रपालं गुरुं पितॄन् शेषान्देवान्यथाविधि ॥ १२० ॥

जिनेन्द्रसिद्धसूरींश्च पाठकान् साधुसंयुतान् ।
श्रुतं सम्पूज्य युक्त्याऽत्र पुण्याहवचनं पठेत् ॥ १२१ ॥

१. इस स्थानमें जिनदेवका मुख जिस दिशामें हो उसे पूर्व दिशा समझें । और देवके सामने अपना मुख रहता है इस लिए उसे पश्चिम दिशा समझें । पूजाविधिमें सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिए ।

पहले पहल वायुकुमार, मेघकुमार, अग्निकुमार, वास्तुदेवता और नागकुमारकी पूजा करे। पश्चात् क्षेत्रपाल, गुरु, पितर और बाकीके देवोंकी उनकी पूजाविधिके अनुसार पूजन करे। तथा अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और सर्वसाधु तथा श्रुतदेवताकी युक्तिपूर्वक पूजा कर पुण्याहवाचन पढ़े ॥ १२० ॥ १२१ ॥

चक्रत्रयं दक्षिणेऽस्मिन् वामे छत्रत्रयं यजेत् ।
पूर्णकुम्भं पुरोभागे यक्षयक्ष्यौ च पार्श्वयोः ॥ १२२ ॥

जिन भगवानके दक्षिणकी ओर स्थापित चक्रत्रयकी, बाईं ओर छत्रत्रयकी, सामने पूर्ण कुंभोंकी और दोनों पसवाड़ोंकी ओर विराजमान यक्ष, यक्षियोंकी पूजा करे ॥ १२२ ॥

कुण्डस्य पूर्वभागे तु दर्भासनेऽपरे मुखः ।
पद्मासनं समाश्रित्य पूजाद्रव्यं तु विन्यसेत् ॥ १२३ ॥

होमद्रव्यप्रदानाय शिष्यवर्गं नियोजयेत् ।
मौनं व्रतं समादाय ध्यायेच्च परमेश्वरम् ॥ १२४ ॥

होमकुंडकी पूर्वदिशामें रक्खे हुए दर्भके आसनपर पश्चिमकी ओर मुख कर पद्मासनसे बैठे और अपने पासमें पूजाद्रव्यको रक्खे। होमद्रव्यको देनेके लिए शिष्योंकी नियोजना करे (शिष्य न हों तो स्वयं करे) और मौनव्रत लेकर परमात्माका ध्यान करे ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

जिनेंद्रमर्घ्यदानेन परात्मानं च तर्पयेत् ।
मध्येकुण्डं सुगन्धेन विलिखेदग्निमण्डलम् ॥ १२५ ॥

सम्पूज्य होमकुण्डं तमग्निं सन्धुक्षयेत्परम् ।
नूतनाग्निर्भवेद्योग्यो होमसन्धुक्षणे तदा ॥ १२६ ॥

जिनेन्द्रको अर्घ देकर उनका तर्पण करे। कुंडके मध्यभागमें सुगन्ध द्रव्यसे अग्निमंडल लिखे। पश्चात् होमकुंडकी पूजा कर उसमें अग्नि जलावे। उस समय होमद्रव्यके जलानेमें ताजा अग्नि ठीक रहती है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

दर्भपूलं पवित्रं तु रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ।
तेन सञ्ज्वालयेत्कुण्डं स्वमन्त्रेण ससर्पिषा ॥ १२७ ॥

शुद्ध दर्भके पूले पर रक्त वस्त्र लपेट कर उससे और घृतसे मंत्रोच्चारण पूर्वक कुण्डमें अग्नि जलावे ॥ १२७ ॥

तत आचम्य च प्राणायामं कुर्यात् ततः स्तुतिम्।
अग्नेरावाहनं कृत्वा पूजयेदष्टधाऽर्चनैः ॥ १२८ ॥

इसके बाद आचमन कर प्राणायाम करे। पश्चात् स्तुति पढ़े और अग्निका आवाहन कर जलादि अष्ट द्रव्योंसे उसकी पूजा करे ॥ १२८ ॥

गार्हपत्याग्निमादाय ज्वालयेत्तूत्तरेऽनलम्।
उत्तराग्निं तु संगृह्य ज्वालयेद्दक्षिणेऽनलम् ॥ १२९ ॥

पश्चात् गार्हपत्य बीचले कुंडसे अग्नि लेकर उत्तरकी ओरके कुंडमें अग्नि जलावे। और उत्तर कुंडसे अग्नि लेकर दक्षिण कुंडमें जलावे ॥ १२९ ॥

मेखलासु तिथिदेवान् ग्रहानिन्द्राँस्ततः क्रमात्।
पूजयेदुपरिष्टाच्च भक्त्या युक्त्या समन्त्रतः ॥ १३० ॥

इसके बाद कुंडोंकी मेखलाओं पर तिथिदेव, नवगृह और इंद्रोंकी भक्तिपूर्वक मंत्रोच्चारणके साथ साथ युक्तिसे पूजा करे ॥ १३० ॥

दिक्पालान् परितः कुण्डं वेदिकायां तु तर्पयेत्।
कृतेषु लघुपीठेषु यथास्वं स्वदिशास्वपि ॥ १३१ ॥

शाल्योदनं घृतं पक्वं नैवेद्यं रसपायसम्।
सिञ्चेत्क्षीरैर्घृतैर्मिश्रं दुग्धकेक्षुरसान्वितम् ॥ १३२ ॥

कुंडके चारों ओरकी वेदिकाके ऊपर जो आठों दिशाओंमें छोटे छोटे आठ पीठ बनाये गये थे उनपर यथायोग्य दिक्पालोंका तर्पण करे। चावल, घी, पका हुआ अन्न, गन्नेका रस, खीर और घीसे मिले हुए दूध और इक्षु-रस संयुक्त नैवेद्यका सिंचन करे अर्थात् इन सबको मिलाकर चढ़ावे ॥ १३१ ॥ ॥ १३२ ॥

स्रुक् और स्रुवाका लक्षण।

इन्धनं क्षीरवृक्षस्य स्रुक् स्रुवं चन्दनं तथा।
अश्वत्थस्याप्यभावेऽस्य तत्पत्रं वा नियोजयेत् ॥ १३३ ॥

होमद्रव्यको अग्निमें जलानेके लिए बड़की लकड़ीका चाटू बनवावे और घृतको अग्निमें डालनेके लिए चन्दनका छोटा चाटू (चम्मच) बनवावे। यदि बड़की लकड़ी और चन्दनकी लकड़ी न मिले तो पीपलकी लकड़ीके ये दोनों पात्र बनवावे। अथवा उन दोनों पात्रके स्थानोंमें पीपलके पत्तोंको काममें लेवे ॥ १३३ ॥

ततः पलाशपत्रेण क्षीरक्ष्मारुहपत्रतः ।
स्रुक्स्रुवेणाथवा दद्यादादावाज्याहुतिं बुधः ॥ १३४ ॥

यदि उपर्युक्त लकड़ीकी प्राप्ति न हो सके तो ढाक और बड़के पत्तोंका स्रुक और स्रुवा (घृत, होमद्रव्यको कुंडमें डालनेके पात्र) बनवावे। और उनसे प्रथम घृतकी आहुति देवे। गायके पूंछके अग्रभाग सरीखे लंबे मुखका स्रुक और नाकके आकार चौड़े मुखका स्रुवा बनवावे। दोनों ही पात्रोंकी लंबाई एक अरत्निप्रमाण होनी चाहिए और उनकी डंडी छह अंगुल लंबी होनी चाहिए ॥ १३४ ॥

गोपुच्छसदृशा स्रुक् च स्रुवाग्रं नासिकासमम् ।
दैर्घ्यं द्वयोररत्निः स्यान्नाभिदण्डः षडङ्गुलः ॥ १३५ ॥

तद्वयं दर्भपूलेन प्रमृज्यासेचयेज्जलैः ।
काष्ठैः प्रताप्य तद्वन्द्वं ताभ्यां घृतं च होमयेत् ॥ १३६ ॥

उन दोनों पात्रोंको दर्भके पूलेसे पोंछकर उनपर जल सींचे और अग्निपर तपा कर उनसे घृत और होमद्रव्यका होम करे ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

अग्निज्वाला तु महती तथा कुर्यात् घृताहुतिम् ।
अधिकेऽग्नौ गवां दुग्धैः कुशाग्रैः परिपेचयेत् ॥ १३७ ॥

त्रिषु कुण्डेषु सादृश्यं कुर्याद्धोमसमानताम् ।
गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निं क्रमाद्यजेत् ॥ १३८ ॥

अग्निमें जो घृताहुति दी जाय वह ऐसी देनी चाहिए जिससे अग्निकी लौ खूब ही ऊंची बढ़े। तथा अग्निके अत्यन्त प्रचण्ड तेज हो जानेपर कुशके अग्रभागसे गायका दूध सींचे। तीनों कुण्डोंमें एक सरीखा होम करे। किसीमें कमती और किसीमें जियादा न करे। तथा गार्हपत्याग्नि, आहवनीय-अग्नि और दक्षिणाग्निमें क्रमसे होम करे ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

तर्पण।

तर्पणं पीठिकामन्त्रैः कुसुमाक्षतचन्दनैः ।
मृष्टाम्बुपूर्णपाणिभ्यां कुर्वन्तु परमेष्ठिनाम् ॥ १३९ ॥

पीठिका मंत्रोंका उच्चारण करते हुए पुष्प, अक्षत, चन्दन और जलको अंजलिमें लेकर उससे परमेष्ठीका तर्पण करे ॥ १३९ ॥

समिधा।

पिप्पलेन पलाशेन शम्या वा द्वादशाङ्गुलम्।
आर्द्रेन्धनैर्बुधः कुर्यात्समिधां होममुत्तमम्॥ १४०॥

पीपल, पलाश अथवा शमीकी बारह अंगुल लंबी गीली लकड़ियोंसे बुद्धिमान गिरस्त होम करे॥ १४०॥

क्षीरद्रुमैर्वाऽथ पलाशभूरुहैः,
सशर्कराक्षीरघृतप्लुतैः पृथक्।
होमेऽष्टविंशद्भिरिमैः (?) समिन्धनै-,
र्नमोऽर्हतेत्यादिभिरेव पञ्चभिः॥ १४१॥

अथवा बड़की किंवा पलास (ढाक) की समिधाको जुदा जुदा शक्कर, दूध और घीसे भिजोकर 'नमोऽर्हते' इत्यादि पांच मंत्रोंसे होम करे। होममें अट्ठाईस तरहकी समिधा होनी चाहिए॥ १४१॥

वटिकाविधि।

काश्मीरागुरुकर्पूरगुडगुग्गुलचन्दनैः।
पुष्पाक्षतजलैर्लाजामिलितैरक्षसम्मितैः॥ १४२॥

जयादिदेवतामन्त्रैरग्नेराहुतिसम्बुना।
ब्रह्ममायादिहोमान्ते वटिकाहोममाचरेत्॥ १४३॥

केशर, काला चंदन, कपूर, गुड़, गुग्गुल, सफेद चन्दन, पुष्प, अक्षत, जल, भुने चावल और बहेड़ा इनकी गोलियां बनावे और जयादि देवतोंके मंत्रोंसे अग्निमें आहुति दे। तथा जल द्वारा ब्रह्म-माया आदिका होम हो चुकने पर वटिका होम करे। यहां पर जो जलका होम बताया गया है वह जलमें ही करना चाहिए॥ १४२॥ १४३॥

होम करनेका अन्न।

शाल्योदनं क्षीरविचित्रभक्ष्य-
पक्वान्नसर्पिः श्रृतपायसं च।
सुस्वादु पक्वं कदलीफलं च,
स्रुचाऽक्षमात्रं मिलितं जुहोमि॥ १४४॥

भात, दूध, तरह तरहके भक्ष्य पदार्थ, पका हुआ अन्न, खोवा (मावा), मीठे और पके हुए केले इन सबको मिलाकर, बहेड़ा प्रमाण, स्रुच—चाटू—में रखकर अग्निमें होम करे ॥ १४४ ॥

अन्नाभावे जुहुयात्तु तण्डुलानोषधीन् स्रुचा ।
पयो दधि घृतं चापि शर्करां वा फलानि च ॥ १४५ ॥

यदि अन्न न मिले तो चावल, औषधि, दूध, दही, घृत, शक्कर किंवा फलोंको स्रुच नामके होम पात्रमें रखकर इनका होम करे॥ १४५ ॥

उत्तानेन तु हस्तेन त्वङ्गुष्ठाग्रेण पीडिते (?) ।
संहिताङ्गुलिपाणिस्तु मन्त्रतो जुहुयाद्धविः ॥ १४६ ॥

होम करते समय जिस हाथसे होम करे उसमें हाथकी मिली हुई अंगुलियोंपर होमद्रव्यको रखकर, उसे अंगूठेसे दबाकर, हाथको ऊंचा उठा कर, मंत्रोच्चारण पूर्वक उस हविद्रव्यका हवन कुंडमें होम करे ॥ १४६ ॥

दिक्पालोंको कोरान्नाहुति ।

प्रस्थप्रमाणचणकाढकमाषमुद्ग-,
गोधूमशालियवमिश्रितसप्तधान्यैः ।
होमे पृथग्विधृतमुष्टिभिराग्निकुण्डे,
वारांश्च सप्त विषमग्रहदोषशान्त्यै ॥ १४७ ॥

एक सेर चने, उड़द, मूंग, गेहूं, चावल, जव और तिल इन सातों धान्योंको मिला ले । सबका वजन करीब ढाई सेर होना चाहिए । बाद जुदा जुदा एक एक मुट्ठी भर कर क्रूर ग्रहोंकी शान्तिके लिए सात बार अग्निकुंडमें क्षेपण करे । भावार्थ— इसका नाम कोरान्नाहुति है । इसके करनेसे क्रूर ग्रहोंके द्वारा होनेवाली विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाती हैं ॥ १४७ ॥

नवग्रह होम ।

हुत्वा स्वमन्त्रचितमम्बुनि सप्तसप्त-,
मुष्टिप्रमाणतिलशालियवप्रसत्तिम् ।
नीत्वा घृतप्लुतसमिद्भिरथाग्निकुण्डे,
एकादशस्थवदवन्तु सदा ग्रहा वः ॥ १४८॥

उन नवग्रहोंके मंत्रोंका उच्चारण करते हुए, एक घड़ेमें जल भर कर, उसमें सात सात मुट्ठी तिल, चावल, जव आदि धान्यका हवन करे और इन्हीं धान्यों तथा घृतसे भिजोई हुई समिधाओंसे अग्निकुंडमें हवन करे । ऐसा करनेसे उन नवग्रहोंकी पीड़ा दूर होती है ॥ १४८ ॥

अर्कैः पलाशैः खदिरैर्मयूरै-,
बोधिद्रुमैः फल्गुशमीसमिद्भिः ।
दुर्वाकुशाभ्यां क्रमशो ग्रहाणां,
सूर्यादिकानां जुहुयात्प्रशान्त्यै ॥ १४९ ॥

आक, ढाक, खादिर, अपामार्ग, पीपल, काला उंबर, शमी, दूभ और डाभ इन नौ तरहकी समिधासे, एक एकसे, क्रमसे, शान्तिके निमित्त, सूर्यादि नौग्रहोंका हवन करे । भावार्थ—आककी समिधासे सूर्यका, पलासकी लकड़ीसे चन्द्रका इस तरह क्रमसे नौग्रहोंका हवन करे ॥ १४९ ॥

अर्केण नश्यति व्याधिः पलाशः कामितप्रदः ।
खदिरश्चार्थलाभश्च अपामार्गोऽरिनाशकः ॥ १५० ॥

अश्वत्थेन हरेद्रोगं दर्भोदुम्बरभाग्यदः ।
शमी च पापनाशाय दूर्वा चायुःप्रवर्द्धिनी ॥ १५१ ॥

आककी लकड़ीसे हवन करनेसे पीड़ा दूर होती है, पलासकी मनचाहे पदार्थोंको देती है, खादिरसे धनकी प्राप्ति होती है, अपामार्गसे दुष्टोंका नाश होता है, पीपलसे रोग हरे जाते हैं, डाभ और उदुंबरसे यश फैलता है, शमी पापोंको नष्ट करनेके लिए होता है और दूभ आयुष्य (उमर) बढ़ाता है । भावार्थ—इन उक्त समिधाओंसे हवन करनेसे उक्त कार्य होते हैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥

वस्त्राच्छादन ।

धौतादिवर्णं प्रमुखादिवर्णं,
काञ्चीदुकूलं नखच्छिद्रहस्तम् ।
देवाङ्गवस्त्रोज्वलकुन्दद्रीध्रं,
आच्छादनं यज्ञगृहेषु सर्वम् ॥ १५२ ॥

होमशालामें इस श्लोकमें बताये हुए सब तरहके वस्त्र होने चाहिए ॥ १५२ ॥

यदि कुण्डास्त्रयः सन्ति तदा सर्वं समीहितम् ।
पृथगष्टशतं होम्यं आज्यान्नकुसुमं समित् ॥ १५३ ॥

यदि होम करनेके तीन कुंड हों तो उनमें हरएकमें जुदा जुदा घृत, अन्न, पुष्प और समिधा इन सबकी एक सौ आठ आहुति दे ॥ १५३ ॥

एकमेव यदा कुण्डं गार्हपत्ये चतुरस्रके ।
सर्वा अप्याहुतीः कुर्यात्पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥ १५४ ॥

यदि तीन कुंड न हों तो उस चौकोन गार्हपत्य नामके एक ही कुण्डमें उन तीनों कुंड सम्बन्धी जुदी जुदी सबकी सब एक सौ आठ आहुतियाँ देवे ॥ १५४ ॥

अन्नं समिल्लवङ्गापोऽञ्जलिचतुर्विधेषु च ।
होमेषु यत्नतः कुर्यान्मध्ये मध्ये घृताहुतिम् ॥ १५५ ॥

कुर्यात्पूर्णाहुतिं चान्त्ये ग्रहस्तोत्रं तथा पठेत् ।
त्रिःपरीत्य नमस्कारं महावाद्यसमन्वितम् ॥१५६॥

तस्माद्भस्म समादाय पवित्रं पापनाशनम् ।
धरेद्भालादिदेशेषु तिलकं कारयेद्बुधः ॥ १५७ ॥

अन्न, समिधा, लवंग और जल इन चार तरहके होमोंके बीच बीचमें एक एक घृताहुति देता रहे और होम हो चुकने पर अन्तमें एक सीधी घीकी पूर्णाहुति दे जिसकी धार बीचमें न टूटे । ग्रह-स्तोत्र पढ़े । अच्छे अच्छे गाजे बाजेके साथ साथ अग्निके तीन प्रदक्षिणा लगाकर उसे नमस्कार करे। उस पवित्र पापोंको नाश करनेवाली अग्निकी भस्मको लेकर मस्तकादि स्थानोंमें धरे और बुद्धिमान श्रावक उस भस्मका तिलक करे ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

विशेष विधि ।

सत्वचः समिधः कार्या ऋज्व्यः श्लाघ्याः समास्तथा ।
शस्ता दशाङ्गुलास्ताः स्युर्द्वादशाङ्गुलकाश्च या ॥ १५८ ॥

षण्मासं स्याच्छमी ग्राह्या खादिरं तु त्रिमासिकम् ।
मासत्रयं तु पालाशी अश्वत्थोऽहरहस्स्मृतः ॥ १५९ ॥

दिनमेकमपामार्गो ग्राह्यश्चार्कस्तथैव च ।
वटादयोऽपि ग्राह्याः स्युस्त्रिदिनं स्यादुदुम्बरः ॥ १६० ॥

एतेषामप्यभावे तु कुशा इत्यपरे विदुः ।
मासमेकं कुशो ग्राह्यो दूर्वा स्यात्सद्य एव च ॥ १६१ ॥

होम करनेकी समिधा छिलके सहित होनी चाहिए तथा सीधी और लंबाईमें बराबरकी प्रशंसनीय मानी गई है। दस अंगुल किंवा बारह अंगुल लम्बी होनी चाहिए। शमीकी समिधा छह महीने तक काम देती है। खादिर और पलाशकी तीन माह तक काम देती है। पीपलकी समिधा दर रोज लाना चाहिए। अपामार्ग (खेजड़ी) और आककी समिधा एक दिन तक ग्राह्य है। बड़, उंबर वगैरहकी समिधा तीन दिन पर्यन्त ग्राह्य होती है। यदि उक्त प्रकारकी समिधा न मिले तो किसी किसीका मत है कि इसके स्थानमें कुशोंसे काम ले। कुश एक माह पर्यन्त ग्राह्य होता है और दूब तुरतकी ताजा तोड़ी हुई ही ग्राह्य है, अधिक नहीं ॥ १५८ ॥ १६१ ॥

कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम्।
कांजिपक्वं परान्नं च वैश्वदेवे तु वर्जयेत् ॥ १६२ ॥

कोदों, चने, उड़द मसूर, कुलत्थ, कांजिका (एक प्रकारका पदार्थ) का पका हुआ अन्न और दूसरेका अन्न ये पदार्थ विश्वदेव-कर्ममें वर्जनीय हैं ॥ १६२ ॥

प्रतिष्ठादिमहत्कार्ये कुर्यादेवं सविस्तरम्।
नित्यकर्मणि संक्षेपात्तत्सर्वं विधिपूर्वकम् ॥ १६३ ॥

प्रतिष्ठा आदि जैसे महत्कार्योंमें यही होमादि विधान इसी तरह विस्तारके साथ करे। और नित्य कर्ममें इन्हीं सब कार्योंको संक्षेपसे विधिपूर्वक करे ॥ १६३ ॥

होमके भेद।

होमस्तु त्रिविधो ज्ञेयो गृहिणां शान्तिकारकः।
पानीयवालुकाकुण्डभेदाद्रम्यः स्वशक्तितः ॥ १६४ ॥

जलहोम, बालुकाहोम और कुण्डहोम (अग्निहोम) इस तरह होम तीन प्रकारका है, जो गिरस्तोंको शान्तिका करनेवाला है। अतः गिरस्तोंको हमेशा अपनी शक्तिके अनुसार ये तीनों होम करना चाहिए ॥ १६४ ॥

जलहोम।

यत्सद्वर्तुलकुण्डलक्षणमिदं श्रीवारिहोमे जिनैः ;—
प्रोक्तं ताम्रमृदादिवस्तुरचिते कुण्डे समारोपितम्।
कुर्याच्छ्रीतिथिदेवता ग्रहसुराः शेषाश्च सन्तर्प्यताम्,
शान्त्यर्थं जलहोममिष्टममलं दुष्टग्रहाणां बुधः ॥ १६५ ॥

श्रीजिनेन्द्र देवने जलहोममें कुण्डका लक्षण गोल बताया है। वह कुंड तांबा, मिट्टी आदिका बना हुआ होना चाहिए। उस कुंडमें आरंभ किया गया कार्य करना चाहिए। तिथिदेवता, सूर्यादि ग्रह और बाकीके देवोंका तर्पण करे। तथा दुष्ट ग्रहोंकी शान्तिके लिए बुद्धिमान श्रावक पवित्र जलहोम करे। भावार्थ—तांबा मिट्टी वगैरहका गोल कुंड बनवावे, उसमें शान्तिके निमित्त तिथि-देवता आदिके सन्तोषके लिए होम करे ॥ १६५ ॥

श्रीखण्डतण्डुलस्रग्भिः सम्भूषितमलं वरम्।
शुद्धतीर्थोदकैः पूर्णं जलकुण्डं महामहे ॥ १६६ ॥

सन्धौतशोधितव्रीहिपुञ्जे जिनमहोत्सवे।
संस्थाप्य पूजकाचार्यो जलहोमं समाचरेत् ॥ १६७ ॥

चन्दन, अक्षत और मालासे सुशोभित किये गये, और तीर्थस्थानके शुद्ध जलसे भरे हुए उस पवित्र उत्तम जलकुंडको धोये हुए और साफ किये हुए चावलों पर रख कर, पूजकाचार्य जल-होम करे। भावार्थ—कुंड पर चन्दनादिका लेप कर, उसे शुद्ध तीर्थ जलसे भरकर धोये हुए और साफ किये चावलों पर रक्खे और उसमें होम करे ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

सप्तधान्यैस्तु दिक्पालाँस्त्रिधान्यैस्तु नवग्रहान्।
पक्वान्नं नालिकेरं च यथाशक्त्यत्र होमयेत् ॥ १६८ ॥

इस जलकुंडमें सात तरहके धान्योंसे दिक्पालोंका, तीन तरहके धान्योंसे नवग्रहोंका होम करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार पके हुए अन्न और नारियलका होम करे ॥ १६८ ॥

आचमं तर्पणं प्राणायाममत्र विधानतः।
अपां कुंडे विधिं कुर्यादत्रापि सर्वमञ्जसा ॥ १६९ ॥

इस जलहोमके समय विधिपूर्वक आचमन, तर्पण और प्राणायाम करे। तथा इस जलकुंडमें और भी सम्पूर्ण विधि ठीक ठीक रीतिसे करे ॥ १६९ ॥

दिक्पालाः प्रतिसेवनाकुलजगद्दोषार्हदण्डोत्कटाः,
सद्धर्मप्रणये निबद्धभगवत्सेवानियोगेऽपि च।
पूजापात्रकराग्रतः सरसुपेत्योपात्तबल्यर्चनाः,
प्रत्यूहान्निखिलान्निरस्यत तनुस्नानोत्सवोत्साहिताः ॥ १७० ॥

हे दिक्पालो! तुम विपरीत आचरण करनेवाले जगत्के दोषोंके योग्य दण्ड-विधान करने-वाले हो इस लिए जिनाभिषेकके लिए जो मैंने कार्य आरंभ किया है उसे उत्साहित हो कर, जब जब

मैं जिन भगवानकी पूजा करूँ तब तब आकर, बलि-पूजा ग्रहण कर, उत्तम आचरणके करते समय और जिन भगवानके पूजा-महोत्सवके समय मेरे सारे विघ्नोंको दूर करो । इस तरह दिक्पालसे प्रार्थना करे ॥ १७० ॥

वालुका होम ।

सम्मार्ज्य गोमयैर्भूमिं गन्धोदकैश्च सिञ्चयेत् ।
तटिनीवालुकास्तत्र प्रसार्य हस्तमात्रतः ॥ १७१ ॥

तदुपर्यश्वत्थैः काष्ठैः शिखराकारसञ्चयम् ।
कुर्यादन्यैश्च काष्ठैर्वा होमकुण्डे यथा पुरा ॥ १७२ ॥

नवग्रहान् तिथिदेवान् दिक्पालान् शेषदेवकान् ।
अग्निसन्धुक्षणं कृत्वा पूजयेदग्निनायकम् ॥ १७३ ॥

आचमं तर्पणं जाप्यं समिधा त्वादिहोमकम् ।
कुर्याच्छेषं विधानं तु संक्षेपादग्निहोमवत् ॥ १७४ ॥

जमीनको गोबरसे लीप कर उसपर गन्धोदक छिड़कें । नदीसे बालू मिट्टी लाकर उसपर एक हाथ प्रमाण बिछावे । उसके ऊपर पीपलकी लकड़ीका अथवा और किसी लकड़ीका शिखराकार ढेर करे जैसा कि पहले होमकुंडके समय किया था। बाद अग्नि जला कर नवग्रह, तिथिदेव, दिक्पाल और बाकीके देवोंकी तथा अग्निकुमारोंकी पूजा करे । और अग्निहोमकी तरह, आचमन, तर्पण, जाप्य, समिधा-होम आदि सम्पूर्ण विधान संक्षेपसे करे ॥ १७१ ॥ १७४ ॥

होमकरनेके अवसर ।

व्रतबन्धे विवाहे वा सूतके पातके तथा ।
जिनगेहप्रतिष्ठायां नूतनगृहनिर्मितौ ॥ १७५ ॥

ग्रहपीडादिके जाते महारोगोपशान्तिके ।
गर्भाधानविधाने तु पित्रादिमरणे तथा ॥ १७६ ॥

कुण्डानां लक्षणं प्रोक्तं प्रागेव होमलक्षणे ।
यथावसरमालोक्य कुर्याद्धोमविधिं बुधः ॥ १७७ ॥

व्रतोद्यापनके समय, विवाहके समय, सूतक समाप्तिके समय, पातकका प्रायश्चित्त देनेके समय, जिनमन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय, नवीन घर बनवानेके समय, ग्रहोंके उपद्रवोंके समय, बड़े

भारी रोगकी शान्तिके समय, गर्भाधानादि विधियोंके समय तथा पिता आदिके मरणके समय, होमका लक्षण बताते वक्त जो कुंडोंका लक्षण पहले कह आये हैं उसे समय समयमें देखकर बुद्धिमान् गिरस्त सारी होमविधि करे ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

होम करनेका फल।

कृते होमविधौ लोके सर्वशान्तिः प्रजायते ।
वक्ष्येऽधुना परग्रन्थे यजमानस्य लक्षणम् ॥ १७८ ॥

ऊपर कहे अनुसार होमविधिके करनेसे संसारमें चारों ओर शान्ति छा जाती है। अब अन्य ग्रन्थोंमें जो यजमानका लक्षण कहा गया है वह कहा जाता है ॥ १७८ ॥

यजमान।

यजमानस्तु मुख्योऽत्र पत्नी पुत्रश्च कन्यका ।
ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता भागिनेयः सुतापतिः ॥ १७९ ॥

एतैरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि ।
कार्यवशात्स्वयं कर्ता कर्तुं यदि न शक्यते ॥ १८० ॥

इस होम कार्यके करनेमें अपनी धर्मपत्नी, पुत्र, कन्या, ऋत्विक्, शिष्य, गुरु, भाई, भांजा और दामाद (जँवाई) ये सब मुख्य यजमान गिने जाते हैं। यदि कार्यवश स्वयं होम आदिको करनेवाला पुरुष होम न कर सके तो इनके द्वारा किया गया होम ऐसा समझना चाहिए कि मानों खुदने ही किया है ॥ १७९ ॥ १८० ॥

होम करनेका समय।

भानौ समुदिते विप्रो जुहुयाद्धवनं तथा।
अनुदिते तथा प्रातर्गवां च मोचनेऽपि वा ॥ १८१ ॥

हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद्भुवं हित्वा न गच्छति ।
तावदेव हि कालोऽयं प्रातस्तूदितहोमिनाम् ॥ १८२ ॥

सूर्यके उदय होने पर ब्राह्मण होम करे, या सूर्योदय न होनेके पहले होम करे, अथवा प्रातः-काल जब गायें जंगलमें चरनेके लिए छोड़ी जायँ उस समय होम करे। जबतक सूर्य पृथिवीसे एक हाथ ऊंचा नहीं जाता है तब तकका काल प्रातःकाल कहा गया है॥ १८१ ॥ १८२ ॥

प्रातर्द्वादश नाड्यस्तु सायं तु नव नाडिकाः।
होमकालः समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १८३॥

ऊपरके दो श्लोकोंद्वारा वतलाया गया काल होम करनेका मुख्य काल है। इसके सिवा गौण काल, सुबहके वक्त सूर्योदय हो जानेके वाद बारह घड़ीतक और शामको सूर्य अस्त हो जानेके बाद नौ घड़ीतक होम करनेका है ऐसा तत्त्वदर्शी मुनियोंने कहा है॥ १८३॥

अग्निहोत्रीकी प्रशंसा।

एवं प्रतिदिनं कुर्वन्नग्नेरुपासनाविधिम्।
अग्निहोत्री द्विजः प्रोक्तः स विप्रैर्ब्रह्मवेदिभिः॥ १८४॥

धार्मिको भूमिदेवोऽसावाहिताग्निर्द्विजोत्तमः।
आर्यश्चोपासकः शिष्टः पुण्यात्मेति प्रकीर्तितः॥ १८५॥

स तरह पूर्वोक्त प्रकारसे प्रति दिन विधिपूर्वक अग्निकी उपासना करनेवाले पुरुषको आत्माके निजस्वरूपको पहचाननवाले विप्रोंने अग्निहोत्री द्विज कहा है। तथा द्विजोंमें श्रेष्ठ पुरुष धार्मिक, भूमिका देव, आहिताग्नि, आर्य, उपासक शिष्ठ, पुण्यात्मा इत्यादि शब्दोंद्वारा उसका गुण-गान करते हैं॥ १८४॥ १८५॥

आग्निहोत्रीका फल।

आहिताग्निर्द्विजश्चैको यत्र ग्रामे वसत्यहो।
सप्तेतयो न तत्र स्युः शाकिनीभूतराक्षसाः॥ १८६॥

व्याघ्रसिंहगजाद्याश्च पीडां कुर्वन्ति नो कदा।
अकाले मरणं नास्ति सर्पव्याधिभयं न च॥ १८७॥

प्रजा नृपप्रधानाद्याः सर्वेऽत्र सुखिनो जनाः।
धनधान्यैः परिपूर्णा गोधनं तु पुष्टिदम्॥ १८८॥

बहवः सन्ति ते यत्र अग्निहोत्रद्विजाः पुरे।
तस्य देशे क्वाचिन्न स्यादाधिव्याधिप्रपीडनम्॥ १८९॥

तेभ्यो दानं नृपैर्देयं यथेष्टं गोकुलादिकम्।
ग्रामक्षेत्रगृहामत्ररत्नाभरणवस्त्रकम्॥ १९०॥

जिस गांवमें एक भी अग्निहोत्री द्विज रहता हो उस गावमें अतिवृष्टि, अवृष्टि आदि सात तरहके भय नहीं होते। शाकिनी, भूत, राक्षस, व्याघ्र, सिंह, हाथी आदि कभी किसीको पीड़ा नहीं पहुंचाते। किसीकी अपमृत्यु नहीं होती। सर्पका और व्याधिका कुछ भय नहीं रहता। प्रजा, राजा, प्रधान वगैरह सब पुरुष हमेशा सुखसे निवास करते हैं। वहांकी जनता धनधान्यसे परिपूर्ण हराभरी रहती है। गायें सबको संतोष पुष्टि देनेवाली होती हैं। और जिस नगरमें बहुत सारे अग्निहोत्री ब्राह्मण रहते हैं उस नगरके देशमें कहीं पर भी आधि-व्याधिकी पीड़ा नहीं होती। ऐसे अग्निहोत्री ब्राह्मणोंके लिए राजाओंको यथेष्ठ गायें, ग्राम, जमीन घर, बर्तन, रत्न, गहने, कपड़े आदि वस्तुओंका दान देना चाहिए ॥ १८९ ॥ १९० ॥

श्रीजिनपूजन।

जिनबिम्बमथानीय पूर्वं देवगृहे न्यसेत्।
सिद्धादीनां तु यन्त्राणि स्वस्वस्थाने निवेशयेत् ॥ १९१ ॥

जिनेन्द्रसदनद्वारे क्षेत्रपालान् समर्चयेत्।
मध्यदेशे तु सद्देवान् गन्धर्वांस्तत्र दक्षिणे ॥ १९२ ॥

किन्नरान्वामभागे च भूतप्रेतांश्च दक्षिणे।
शेषांश्च बलिदानेन तर्पयेद्वामभागतः ॥ १९३ ॥

ब्रह्मभागे तु ब्रह्माणं अष्टौ दिशाधिपान्बहिः।
अर्घ्यपाद्ययज्ञभागैरमृतैः प्राक्प्रतर्पयेत् ॥ १९४ ॥

होम हो चुकनेके बाद, पहले जिनबिंबको लाकर जिनमन्दिरमें विराजमान कर दे और सिद्ध यंत्रादिकोंको भी अपने अपने स्थान पर विराजमान कर दे। जिनमन्दिरके द्वार पर स्थापित क्षेत्रपालोंका उनके योग्य पूजा सत्कार करे। मन्दिरके मध्य देशमें जिनदेवकी पूजा करे। उनके दाहिनी ओर गन्धर्वोंका, बाईं ओर किन्नरोंका तथा दाहिनी ओर भूत-प्रेतोंका योग्य पूजा-सत्कार करे। तथा बाईं ओर सम्पूर्ण देवोंको बलिदान देकर तृप्त करे। ब्रह्मभाग पर ब्रह्मदेवकी पूजा करे। मन्दिरके बाहर आठ दिशाओंमें आठ दिक्पालोंको अर्घ्य, पाद्य, यज्ञभाग और जलसे पूजा प्रारंभ करनेके पहले ही तृप्त करे ॥ १९१ ॥ १९४ ॥

ग्रहबलि।

गृहाङ्गणे ततो गत्वा मध्यपीठे सुधाशिनाम्।
तत्तद्दिनाधिपस्यापि शान्त्यर्थं बलिमर्पयेत् ॥ १९५ ॥

पश्चात् घरके आंगनमें जाकर मध्यपीठ पर देवोंको और उस उस दिनके स्वामी देवोंको शान्तिके लिए बलि अर्पण करे ॥ १९५ ॥

न पश्येद्भूबलिं चिरं दत्वा गृहे बलिं द्विजः ।
स्वयं नैवोद्धरेन्मोहादुद्धरेच्छ्रीर्विनश्यति ॥ १९६ ॥

वह द्विज घरमें बलि देकर उस भूबलिको बहुत देर तक देखता ही न रहे और न स्वयं उसे उठाकर वापिस रक्खे । यदि अज्ञानसे उस बलिको उठाकर वापिस घरमें रख ले तो उसकी मौजूदा लक्ष्मी नाशको प्राप्त हो जाती है ॥ १९६ ॥

चाण्डालपतितेभ्यश्च पितृजातानशेषतः ।
वायसेभ्यो बलिं रात्रौ नैव दद्यान्महीतले ॥ १९७ ॥

ततोऽपि सर्वभूतेभ्यो जलाञ्जलिं समर्पयेत् ।
दशदिक्षु च पितृभ्यस्त्रिवर्णैः क्रमतः सदा ॥ १९८ ॥

ये भूताः प्रचरन्तीति पात्रे दद्याद्बलिं सुधीः ।
इत्थं कुर्यात् द्विजो यज्ञान् दिवा नक्तं च नित्यशः ॥ १९९ ॥

चांडालों, पतितों, मर कर उत्पन्न हुए पितरों और कौओंको रात्रिमें जमीन पर बलिदान न दे । सम्पूर्ण भूतोंको जलाञ्जलि समर्पण करे, और पितरोंको दशों दिशाओंमें त्रैवर्णिक पुरुष जलांजलि समर्पण करे तथा बुद्धिमान गिरस्ती "ये भूताः प्रचरन्ति" इत्यादि मंत्र पढ़कर पात्रोंको आहा ान देवे । इस प्रकार उक्त रीतिसे द्विज पुरुष निरन्तर रात-दिन यज्ञ-पूजा करे ॥ १९७ ॥ १९९ ॥

स्त्रियोंका कर्तव्य ।

गृहस्त्रिया च किं कार्यं गृहकृत्यं तदुच्यते ।
भर्त्रा तु पूजिते देवे गृहदेवांश्च तर्पयेत् ॥ २०० ॥

घरकी स्त्रियोंका कर्तव्य क्या है यह कहा जाता है । अपना स्वामी जब देवोंकी पूजा कर चुके तब वह गृहदेवोंका तर्पण करे ॥ २०० ॥

चार प्रकारके देव ।

देवाश्चतुर्विधा ज्ञेयाः प्रथमाः सत्यदेवताः ।
कुलदेवाः क्रियादेवाश्चतुर्था वेश्मदेवताः ॥ २०१ ॥

सत्यदेवाः परे पञ्च जिनेन्द्रसिद्धसूरयः।
पाठकसाधुयोगीन्द्राश्चैते मोक्षस्य हेतवः ॥ २०२ ॥

देव चार प्रकारके होते हैं। एक सत्यदेव, दूसरे क्रियादेव, तीसरे कुलदेव, चौथे गृहदेव। मोक्षके कारण अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पांच सत्यदेव कहलाते हैं ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

क्रियादेवता।

छत्रचक्राग्निभेदाच्च क्रियादेवास्त्रयो मताः।
सर्वविघ्नहराः पूज्या हव्यपक्वान्नदीपकैः ॥ २०३ ॥

छत्र, चक्र और अग्नि इन भेदोंसे क्रियादेव तीन प्रकारके माने गये हैं जो सम्पूर्ण विघ्नोंको हरण करनेवाले हैं और हव्य, पक्वान्न, दीपक आदिके द्वारा पूजनीय हैं ॥ २०३ ॥

कुलदेवता।

वंशे पुरातनैरिष्टा नित्यसौख्यविधायकाः।
चक्रेश्वर्यम्बिकापद्मा इत्यादिकुलदेवताः ॥ २०४ ॥

अपने वंशमें पुरातन पुरुषोंके द्वारा माने हुए, निरन्तर सुख देनेवाले चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती आदि कुलदेव कहे जाते हैं ॥ २०४ ॥

गृहदेवता।

विश्वेश्वरीधराधीशश्रीदेवीधनदास्तथा।
गृहे लक्ष्मीकरा ज्ञेयाश्चतुर्धा वेश्मदेवताः ॥ २०५ ॥

विश्वेश्वरी, धरणेन्द्र, श्रीदेवी और कुबेर ये चार घरमें सम्पत्ति बढ़ानेवाले गृहदेवता जानने ॥२०५॥

सत्यदेव।

साक्षात्पुण्यस्य हेत्वर्थं मुक्त्यर्थं मुक्तिदायकाः।
पूज्याः पूज्यैश्च सम्पूज्याः सत्यदेवा जिनादयः ॥ २०६ ॥

जो साक्षात् पुण्यके कारणोंके लिए हैं, मुक्तिके लिए हैं, मुक्तिके देनेवाले हैं, पूज्य हैं और पूज्य पुरुषोंके द्वारा पूजनीय हैं वे जिनादि देवता सत्यदेवता हैं ॥ २०६ ॥

सत्क्रियादेवताः पूज्या होमे शान्त्यर्थमीश्वराः।
जनन्यः श्रीजिनेन्द्राणां विश्वेश्वर्य इति स्मृताः ॥ २०७ ॥

विश्वेश्वर्यः पराः पूज्याः कुलस्त्रीभिर्निकेतने।
अवन्ध्या जायन्ते तासां पूजनात्तु कुलस्त्रियः ॥ २०८ ॥

वे प्रशंसनीय क्रियादेव होमके समय शान्तिके अर्थ अवश्य पूजने योग्य हैं, क्योंकि ये क्रिया-देव इस कार्यके मुख्य स्वामी हैं। श्री जिनेन्द्रदेवकी माताओंको विश्वेश्वरी कहते हैं। कुलीन स्त्रियोंको चाहिए कि वे इन विश्वेश्वरी देवतोंकी अपने घरमें अवश्य पूजा करा करें। इनके पूजनेसे वे कुलीन स्त्रियाँ अपने वन्ध्यापनको छोड़ कर अच्छे अच्छे पुत्र प्रसव करनेवाली हो जाती हैं ॥२०७॥२०८॥

कुबेरपूजनाद्गृहे लक्ष्मीर्वसति शाश्वती।
धरेन्द्रपूजनात्पुत्रप्राप्तिर्भवति चोत्तमा ॥ २०९ ॥

कुबेरके पूजनेसे हमेशा घरमें लक्ष्मीका निवास रहता है और धरणेन्द्रके पूजनेसे उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ २०९ ॥

श्रीदेवीपूजनाद्गर्भस्थितो बालो न नश्यति।
वस्त्रैर्भूषैः फलैश्चान्नैः सम्पूज्या वेश्मदेवताः ॥ २१० ॥

श्रीदेवीकी पूजा करनेसे गर्भमें स्थित बालक नाशको प्राप्त नहीं होता। इस लिए वस्त्र, आभूषण, फल और अन्नसे गृहदेवोंको पूजना चाहिए ॥ २१० ॥

ज्वालिनी रोहिणी चक्रेश्वरी पद्मावती तथा।
कुष्माण्डिनी महाकाली कालिका च सरस्वती ॥ २११ ॥

गौरी सिद्धायनी चण्डी दुर्गा च कुलदेवताः।
पूजनीयाः परं भक्त्या नित्यं कल्याणमीप्सुभिः ॥ २१२ ॥

ज्वालिनी, रोहिणी, चक्रेश्वरी, पद्मावती, कुष्माण्डिनी, महाकाली, काली, सरस्वती, गौरी, सिद्धायनी, चण्डी, और दुर्गा ये देवियां कुलदेवता कहलाती हैं। अपना भला चाहनेवाले पुरुष निरन्तर इनका भक्तिपूर्वक सत्कार करें ॥ २११ ॥ २१२ ॥

पूज्याश्चतुर्विधा देवा धर्मार्थकामसीप्सुभिः।
ईप्सितार्थप्रदा विघ्नहराश्च भाविसिद्धिदाः ॥ २१३ ॥

धर्म, अर्थ और कामके चाहनेवाले पुरुष इन चार प्रकारके देवोंकी पूजा करें। ये देव मनचाहे अर्थको देनेवाले हैं, विघ्नको हरनेवाले हैं, और भावी सिद्धिके देनेवाले हैं ॥२१३॥

ये पूजयन्ति तान् देवान् तेषां गृहेषु शाश्वती ।
लक्ष्मीर्वसति गोऽश्वादिमहिषीसर्वसम्पदः ॥ २१४ ॥

जो पुरुष इन देवोंकी पूजा करते हैं उनके घरोंमें हमेशा लक्ष्मीका निवास रहता है और गाय, घोड़े, भैंस आदि सब तरहकी सम्पदाएं भी सदा निवास करती हैं ॥ २१४ ॥

इह जन्मनि संक्लेशव्याधयो न कदाचन ।
भवन्ति तस्य देवानां सामर्थ्यात्पुण्यसद्मनि ॥ २१५ ॥

उस पुरुष के पुण्यगृहमें उन देवोंके सामर्थ्यसे इस जन्ममें कभीभी संक्लेश व्याधि आदिक रोग नहीं होते ॥ २१५ ॥

अन्त्ये सन्न्यासमादाय समाधिमरणं भवेत् ।
स्वर्गमुक्तिप्रदं रम्यमनन्तसुखसागरम् ॥ २१६ ॥

अन्त समयमें उसका संन्यास धारण पूर्वक समाधिमरण होता है। जो समाधिमरण स्वर्ग-मोक्षको देनेवाला है और अनन्त सुखका रमणीय खजाना है ॥ २१६ ॥

इत्येवं कथितो जिनेन्द्रवचनादाचारधर्मो मया
श्रीभट्टारकसोमसेनगणिना संक्षेपतः सत्क्रियः ।
देवाराधनहोमनित्यमहसां लक्ष्मीप्रमोदास्पदं
ये कुर्वन्ति नरा नरोत्तमगुणास्तेऽहो लभन्ते शिवम् ॥ २१७ ॥

इस तरह पूर्वोक्त रीतिसे मुझ श्रीभट्टारक सोमसेन गणीने जिनेन्द्रके वचनसे कहे हुए देवोंकी आराधना, होम और नित्य पूजोत्सवकी समीचीन क्रियारूप आचार धर्मको कहा। जो उत्तम गुणी पुरुष इस आचार धर्मका पालन करते हैं वे अनन्त चतुष्टय-स्वरूप मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २१७ ॥

सरस्वत्याः प्रसादेन काव्यं कुर्वन्ति पण्डिताः ।
ततः सैषा समाराध्या भक्त्या शास्त्रे सरस्वती ॥ २१८ ॥

सरस्वतीके प्रसादसे पंडितजन काव्यरचना करते हैं इसलिए शास्त्रमें उस सरस्वतीकी भक्ति-पूर्वक आराधना करनी चाहिए ॥ २१८ ॥

ब्रह्मसूरिसुविप्रेण यदुक्तं जिनधर्मिणाम्।
प्रोक्तं महापुराणे वा तदेवात्र प्रकाशितम् ॥ २१९ ॥

श्रीब्रह्मसूरिने जिनधर्मियोंके लिए जो क्रियाकांड कहा है अथवा महापुराणमें जो कहा गया है वही इस त्रैवर्णिकाचार शास्त्रमें कहा गया है ॥ २१९ ॥

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारकथने भट्टारकश्रीसोमसेन-
विरचिते गृहकर्मदेवतापूजानिरूपणीयो नाम
चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

पांचवा अध्याय।



वासुपूज्यं जगत्पूज्यं लोकालोकप्रकाशकम् ॥
नत्वा वक्ष्येऽत्र पूजानां मन्त्रान् पूर्वपुराणतः ॥ १ ॥

लोक और अलोक को प्रकाश करनेवाले जगत्पूज्य वासुपूज्य भगवान् को नमस्कार कर इस अध्यायमें पूर्वपुराणोंसे लेकर पूजा सम्बन्धी मंत्रों को कहूंगा ॥ १ ॥

सन्ध्यास्थानात्स्वगेहस्य ईशान्यां प्रविकल्पिते ॥
जिनागारे व्रजेद्धीमानीर्यापथविशुद्धितः ॥ २ ॥

पादौ प्रक्षाल्य गेहस्य कपाटं समुद्घाटयेत् ॥
मुखवस्त्रं परित्यज्य जिनास्यमवलोकयेत् ॥ ३ ॥

सन्ध्या स्थानसे उठ कर अपने घरकी ईशान दिशामें बने हुए जिन मंदिर को ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक जावे, वहां पर पैरों को धोकर जिन मन्दिर के किवाड़ खोले और जिनमंदिर के दरवाजेपर पड़े हुए पड़देको एक ओर सरकाकर जिन भगवान्के मुखका अवलोकन, और दर्शन करे ॥ २–३ ॥

कपाटोध्दाटन—

ॐ ह्रीं अर्हं कपाटमुध्दाटयामि स्वाहा। कपाटोद्घाटनम् ॥ १ ॥

यह मंत्र पढ़कर मंदिरके किवाड़ खोले ॥ १ ॥

द्वारपालानुज्ञापन—

ॐ ह्रीं अर्हं द्वारपालमनुज्ञापयामि स्वाहा ॥ द्वारपालानुज्ञापनम् ॥२॥

यह मंत्र पढ कर द्वारपाल को अपने भीतर जानेकी सूचना कर दे ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं निःसही ३ रत्नत्रयपुरस्सराय विद्यामण्डलनिवेशनाय समयाय निस्सही जिनालयं प्रविशामि स्वाहा ॥ अन्तःप्रवेशनमन्त्रः ॥ ३ ॥

यह मंत्र पढकर जिन मन्दिरमें प्रवेश करे ॥ ३ ॥

ईर्यापथशोधनः—

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा-
देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा-
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥४॥
ईर्यापथशोधनम् ॥ ४ ॥

ईर्यापथसे गमन करते हुए आज मैंने प्रमादवश एकेन्द्रिय आदि जीवों की विराधना की हो और यदि चार हाथसे अधिक दृष्टि पसारी हो तो वह मेरा पाप गुरुभक्तिसे मिथ्या हो। यह श्लोक पढ़कर ईर्यापथ शुद्धि करे ॥ ४ ॥

मुखवस्त्रोद्धाटन—

क्वणत्कनकघण्टिकं विमलचीनपट्टोज्वलं
बहुप्रकटवर्णकं कुशलशिल्पिभिर्निर्मितम्।
जिनेन्द्रचरणाम्बुजद्वयं समर्चनीयं मया
समस्तदुरितापहृद्धदनवस्त्रमुध्दाट्यते ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं मुखवस्त्रमुध्दाटयामि स्वाहा ॥ मुखवस्त्रोध्दाटनम् ॥ ५ ॥

श्रीजिनेन्द्र देवके दोनों चरण कमलों की पूजा करने की मेरी इच्छा है इसलिए मैं जिसमें टन टन शब्द करनेवाली सोने की घंटिया लगी हुई हैं, जो निर्मल उज्वल रेशमी है, नाना भांतिके रंगोंसे रंगा हुआ है. चतुर कारीगर के हाथका बना हुआ है ऐसे समस्त पापोंको अपहरण करने वाले मुख वस्त्र (जिनभगवानके मुखपर पड़े हुए पर्दे) को एक ओर सरकाता हूं। यह श्लोक और मंत्र पढ कर मुखवस्त्र को हटावे ॥ ५ ॥

श्रीमुखावलोकनः—

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत्।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः ॥ ६ ॥

श्री जिनेन्द्र देवके मुखावलोकन मात्रसे ही लक्ष्मी के मुखका अवलोकन होता है अर्थात् उत्तम सम्पदा मिलती है। जो पुरुष कभी जिन भगवान् के दर्शन नहीं करते उनको श्रीमुख की अवलोकन रूपी सुखकी प्राप्ति नहीं होती—वे मरकर दरिद्री होते हैं ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीँ अर्हं नमोऽर्हत्परमेष्ठिभ्यः श्रीमुखावलोकनेन मम सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ॥ श्रीमुखावलोकनम् ॥ ६ ॥

यह मंत्र पढ़ कर श्री जिनदेवके मुखारविन्दका दर्शन करे ॥ ६ ॥

यागभूमिप्रवेश—

ॐ ह्रीँ अर्हं यागोर्वीं प्रविशामि स्वाहा ॥ यागभूमिप्रवेशनम् ॥ ७ ॥

यह मंत्र पढ कर पूजा-स्थानमें प्रवेश करे ॥७॥

पुष्पांजलि—

ॐ ह्राँ क्ष्वीँ भूः स्वाहा ॥ पुष्पाञ्जलिः ॥ ८ ॥

यह मंत्र पढ़ कर जिन-चरणोंपर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥८॥

वाद्यघोष—

ॐ ह्राँ वाद्यमुद्घोषयामि स्वाहा ॥ तदाप्रभृति वहिर्वाद्यघोषणम् ॥ ९ ॥

यह मंत्र पढ़कर पुष्पांजलि क्षेपणके समयसे लेकर वाहर वाजे वजवावे ॥ ९ ॥

ॐ ह्राँ अर्हं वास्तुदेवाय इदमर्घ्यं पाद्यं गन्धं पुष्पं दीपं धूपं चरुं वलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ॥ १० ॥

ॐ ह्राँ अर्हं वास्तुदेवाय इत्यादि मंत्र पढ़ कर वास्तु देवताको अर्घ्य पाद्य वगैरह देवे ॥ १० ॥ बाद नीचे लिखा श्लोक पढ़े:—

यस्यार्थं क्रियते कर्म स प्रीतो नित्यमस्तु मे ।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धिदः ॥ ७ ॥

जिस देवके लिए मैं शान्तिक और पौष्टिक कर्म करता हूं वह देव मुझपर हमेशाह प्रीति करे और सब कामोंमें सिद्धि दे—विघ्न दूर करे ॥७॥

भूमिशोधन—

ॐ ह्रीँ वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीसम्मार्जनं कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा ॥ दर्भपूलेन यागभूमिं परितः सम्मार्जनम् ॥ पूर्वेशान्ययोर्मध्ये वायुकुमारायार्घ्यप्रदानम् ॥ एवमुत्तरत्रापि ॥ ११ ॥

"ॐ ह्राँ वायुकुमाराय" इत्यादि मंत्र पढ़कर डाभके पूलेसे यागभूमि (पूजा करने की जगह) को चारों ओरसे वुहारे । पूर्व दिशा और ईशान दिशाके बीच में वायुकुमार को अर्घ चढ़ावे । इसी तरह आगे भी करे ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीँ मेघकुमाराय हं सं वं मं झं ठं ठं क्षालनं कुरु कुरु अहं धरां प्रक्षाल्य भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा ॥ दर्भपूलोपात्तजलेन तदा भूमिं सिञ्चेत् ॥ १२ ॥

"ॐ ह्रीं मेघकुमाराय" इत्यादि मंत्र पढ़ कर दर्भके पूलेको जलमें भिजोकर जमीनको सींचे ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं अग्निकुमाराय भूमिं ज्वालय ज्वालय अं हं सं वं ठं यं क्षः फट् स्वाहा ॥ ज्वलद्दर्भपूलानलेन भूमिज्वालनम् ॥ १३ ॥

"ओं ह्रीं अर्हं अग्निकुमाराय" इत्यादि मंत्र पढ़ कर जलते हुए दर्भ पूलेकी आगसे भूमि जलावे ॥ १३ ॥

नागसंतर्पणः—

ॐ ह्रीं क्रौं वौषट् षष्ठिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्योऽमृताञ्जलिं प्रसिञ्चामि स्वाहा ॥ ऐशान्यां दिशि जलाञ्जलिम् ॥ १४ ॥

"ओं ह्रीं क्रौं" इत्यादि मंत्र पढकर नागकुमारोंको ईशान दिशामें जलांजलि देवे ॥ १४ ॥

क्षेत्रपालार्चन—

ॐ ह्रीं क्रौं अत्रस्थक्षेत्रपाल आगच्छागच्छ संवौषट् इदमर्घ्यमित्यादि पूर्ववत् ।१५।

"ओं ह्रीं क्रौं अत्रस्थ क्षेत्रपाल! आगच्छ आगच्छ इद मर्घ्यं पाद्यं गन्धं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वास्तिकं अक्षतं यज्ञ भागं यजा महे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यन्तामिति स्वाहा" यह मंत्र पढकर क्षेत्रपालको अर्घ चढ़ावे ॥ १५ ॥

भूम्यर्चन—

ॐ नीरजसे नमः । ॐ दर्पमथनाय नमः । ॐ शीलगन्धाय नमः । ॐ अक्षताय नमः । ॐ विमलाय नमः । ॐ परमसिद्धाय नमः । ॐ ज्ञानोद्योताय नमः । ॐ श्रुतधूपाय नमः । ॐ अभीष्टफलदाय नमः ॥ जलैर्गन्धदर्भादिभिश्च भूम्यर्चनम् ।१६।

"ओं नीरजसे नमः" इत्यादि मंत्र पढ़ कर जल गन्ध दर्भ आदिसे भूमिकी पूजा करे ॥१६॥

मन्त्रोद्धार—

कर्णिकामध्येऽर्हदादयोऽष्टौ । ततोऽष्टदले जयाद्यष्टौ । ततः षोडशदलेषु षोडश-विद्यादेवताः । चतुर्विंशतिदलेषु चतुर्विंशतियक्षीदेवताः । ततो द्वात्रिंशद्दलेषु शक्राः । ततो वज्राग्रे चतुर्विंशतियक्षदेवताः । ततो दिक्पाला दश । ततो नवग्रहाः । ततोऽनावृतयक्षाः । एवं यन्त्रोद्धारः ॥ १७ ॥

यह मंत्र कमलके आकार होता है। इसकी कर्णिकाके मध्य भागमें अर्हंत आदि आठको लिखे। इसके बाद उसके आठ पत्तोंपर जयादि आठ देवोंको लिखे। इसके बाद सोलह पत्ते खेंच कर उनपर सोलह विद्यादेवतोंको लिखे। इसके बाद चौवीस पत्ते खेंच कर चौवीस यक्षी देवोंको लिखे। इसके बाद बत्तीस पत्तोंपर शक्रोंको लिखे। इसके बाद वज्राग्रोंपर चौवीस यक्षदेवोंको लिखे। इसके बाद दश दिक्पालोंको लिखे। इसके बाद नौ ग्रहोंको लिखे और इसके बाद अनावृत यक्षोंको लिखे। इस तरह मंत्रका उद्धार करे ॥ १७ ॥

दर्भासन—

तद्दक्षिणभागे—ॐ ह्रीँ अर्हं क्षाँ ट ठ दर्भासनं निक्षिपामि स्वाहा ॥
दर्भासनस्थापनम् ॥ १८ ॥

मंत्रके दक्षिण भागमें "ओं ह्रीं अर्हं क्षाँ" इत्यादि मंत्रको पढ़कर दर्भका आसन बिछावे ॥१८॥

ॐ ह्रीँ अर्हं निस्सही हूं फट् दर्भासने उपविशामि स्वाहा ॥ दर्भासने उपवेशनम् ॥१९॥

"ओं ह्रीं अर्हं निस्सही" इस मंत्रको पढ़कर दर्भासन पर बैठे ॥१९॥

मौनधारण—

ॐ ह्रीँ अर्हँ ह्यूं मौनस्थितायाहं मौनव्रतं गृह्णामि स्वाहा ॥ मौनग्रहणम् ॥ २० ॥

"ओं ह्रीं अर्हं ह्यूं" इत्यादि मंत्र पढ़कर मौन धारण करे ॥ २० ॥

अंगशोधन—

ॐ ह्रीँ अर्हँ भूः प्रतिपद्ये भुवः प्रतिपद्ये चतुर्विंशतितीर्थकृच्चरणशरणं प्रतिपद्ये ममाङ्गानि शोधयामि स्वाहा ॥ वस्त्राञ्चलेन स्वांगस्य शोधनम् ॥ २१ ॥

"ओं ह्रीं अर्हं भूः" इत्यादि मंत्र पढ़कर वस्त्रके आँचलसे अपने शरीरकी शुद्धि करे ॥२१॥

हस्तप्रक्षालन—

ॐ ह्रीँ अर्हँ असुज्जुरभव तथा हस्तौ प्रक्षालयामि स्वाहा।
हस्तद्वयपवित्रीकरणम् ॥ २२ ॥

"ओं ह्रीं अर्हं असुज्जुरभव" इत्यादि मंत्र पढ़कर दोनों हाथ पवित्र करे—धोवे ॥ २२ ॥

पूजापात्र शुद्धि।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्र जलेन पात्रशुद्धिं करोमि स्वाहा ॥ पात्रेषु पूजांगद्रव्यस्थापनम् ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं इत्यादि मंत्र पढ़कर संपूर्ण पूजा पात्रों पर शुद्ध जल डाले और भिन्न भिन्न पूजा पात्रोंमें भिन्न भिन्न पूजा द्रव्य रखें।

पूजाद्रव्य शुद्धि।

ॐ ह्रीं अर्हं झ्रौं झ्रौं वं मं हं सं तं पं झ्वीं क्ष्वीं हं सं असि आ उ सा समस्त जलेन शुद्धपात्रे निक्षिप्त पुष्पादि पूजाद्रव्याणि शोधयामि स्वाहा ॥२४॥

ओं ह्रीं इत्यादि मंत्र उच्चारण कर पूजा सामग्रियोंपर पानी प्रक्षेपण करें।

विद्यागुरु पूजन।

ॐ ह्रीं अर्हं आग्नेय्यां दिशि अस्माद्विद्या गुरुभ्यो बलिं ददामि स्वाहा ॥२५॥

ओं ह्रीं इत्यादि मंत्र उच्चारण कर विद्या गुरुके लिये बलिदान करें।

सिद्धार्चन।

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं समर्पयामि स्वाहा ॥ सिद्धायार्घ्य निवेदनम् ॥२६॥

ओं ह्रीं इत्यादि मंत्र पढ़कर सिद्धि परमेष्टिको अर्घ चढ़ावे।

सकली करणम्।

अग्निमण्डलमध्यस्थै रेफैर्ज्वालाशताकुलैः ॥
सर्वांगदेशजैर्ध्यात्वा ध्यानदग्धवपुर्मलम् ॥

दर्भासने स्थित्वा ध्यायन्निदं पठेत्। ॐ ह्रीं अर्हं भगवतो जिनभास्करस्य बोध सहस्रकिरणैर्मम कर्मेन्धस्य द्रव्यं शोषयामि घे घे स्वाहा। इत्युच्चार्य कर्मेन्धनानि शोषयेत् ॥ शोषणम् ॥ २७ ॥

अग्नि मण्डलके बीचमें स्थित, और सेकड़ों ज्वालाओंसे व्याप्त जो रेफ, वह अपने शरीरके सब अंगोंसे निकल कर पापमलको ध्यानद्वारा भस्म करता है।

दर्भासनमें बैठकर यह पढ़ें। ओं ऱ्हीं इत्यादि मंत्र पढ़कर कर्मरूपी ईंधन भस्म करे।

ॐ ऱ्हाँ ऱ्हीं ऱ्हूँ ऱ्हौं ऱ्हः ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं ह्रम्
ल्र्व्ं यूं स दह दह कर्म फलं दह दह दुःखे घे घे स्वाहा ॥
इत्युच्चार्य्य कर्मेंधनानि दग्धानीति स्मरेत् ॥ २८ ॥

ओं ऱ्हाँ इत्यादि मंत्रोच्चारण कर कर्मेंधन जल गये ऐसा चिन्तवन करें।

ॐ ऱ्हीं अर्हं श्रीजिनप्रभुजिनाय कर्मभस्मविधूननं कुरु कुरु स्वाहा ॥
इत्युच्चार्य तद्भस्मानि विधूतानि स्मरेत् ॥ २९ ॥

" ओं ऱ्हीं अर्हं " इस मंत्रका उच्चारण जले हुए कर्मरूपी ईंधनकी भस्म उड़ गई ऐसा चिन्तवन करे ॥ २९ ॥

प्लावनम् । ततः पञ्चगुरुमुद्राग्रे अ सि आ उ सा इत्येतान् तदुपरि झं वं ऱ्हः पः हः इत्यमृतबीजानि निक्षिप्य तन्मुद्रां शिरस्यधोमुखमुध्दृत्य—ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय स्वाहा—इत्युच्चार्य ततः स्रवत्पीयूषधाराभिरात्मानं स्नापयेत् ॥ अभिषवणम् ॥३०॥

इसके बाद पंचगुरु मुद्रा बनावे उसके अग्रभागमें अ सि आ उ सा इन पांच अक्षरोंको रखकर ये पांच अक्षर रख लिये गये ऐसी कल्पना कर अक्षरोंके ऊपर क्रमसे झं वं ऱ्हः पः हः इन अमृत बीजोंको रखकर उनके ऊपर ये पांच अक्षर रख लिये गये ऐसी कल्पना कर उस मुद्राको अपने शिरपर अधोमुख रख कर " ओं अमृते अमृतोद्भवे " इत्यादि मंत्रका उच्चारण कर इसके बाद झरती हुई अमृतधारासे अपनी आत्माको स्नान कराया है ऐसी अपने हृदयमें कल्पना करे। ये अभिषेक मंत्र हैं ॥ ३० ॥

एवं त्रिधा विशुद्धः सन् करन्यासं विदध्यात् ॥ ३१ ॥

हस्तद्वयकनीयस्याद्यङ्गुलीनां यथाक्रमम् ॥
मूले रेखात्रयस्योर्ध्वमग्रे च युगपत्सुधीः ॥ १ ॥

इस तरह अभिषवण विधि तीन वार कर विशुद्ध होकर करन्यास करे—हाथोंपर अर्हन्तदेवकी स्थापना करे ॥ ३१ ॥

इति पञ्चनमस्कारान् विन्यस्य । ॐ ह्रीँ अर्हं वं मं हं सं तं पं अ सि आ उ सा हस्तसम्पुटं करोमि स्वाहा ॥ इति हस्तौ सम्पुटेत् ॥

इति करन्यासः ॥ ३२ ॥

दोनों हाथोंकी कनिष्ठा आदिक उंगलियोंके मूलमें (नीचे) तीन रेखाओंके ऊपर, उन रेखाओंके ऊपर पहले पेरुएकी रेखाओंपर और दूसरे पेरुएकी रेखाओंपर क्रमसे और पांचों उगलियोंपर एक साथ पंच नमस्कार-मंत्रकी स्थापना कर " ओं ह्रीं अर्हं वं " इत्यादि मंत्र पढ़कर दोनों हाथ जोड़े। इसे करन्यास मंत्र कहते हैं ॥ ३२ ॥

ततोऽङ्गुष्ठयुग्मेनैव स्वाङ्गन्यासं कुर्यात् ॥ ॐ ह्राँ णमो अरिहंताणं स्वाहा। इति मन्त्रं हृदि ॥ ॐ ह्रीँ णमो सिद्धाणं स्वाहा । ललाटे ॥ ॐ ह्रूँ णमो आयरियाणं स्वाहा । दक्षिणकर्णे ॥ ॐ ह्रौँ णमो उवज्झायाणं स्वाहा । पश्चिमे ॥ ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा । वामकर्णे ॥ ॐ ह्राँ णमो अरिहंताणं स्वाहा ॥ शिरोमध्ये ॥ ॐ ह्रीँ णमो सिद्धाणं स्वाहा । शिरोऽग्नेयभागे ॥ ॐ ह्रूँ णमो आयरियाणं स्वाहा । नैर्ऋत्ये ॥ ॐ ह्रौँ णमो उवज्झायाणं स्वाहा । शिरो-वायव्याम् ॥ ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा । शिर ईशान्ये ॥

इति द्वितीयन्यासः ॥३३॥

इसके बाद हाथके दोनों अंगुठोंसेही स्वांगन्यास करे । उसकी विधि इस प्रकार है।

"ओं ह्राँ णमो अरिहंताणं स्वाहा" इस मंत्रको पढ़कर दोनों अंगूठोंसे हृदयको "ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा " इसे पढ़कर ललाटको " ओं ह्रूँ णमो आयरियाणं स्वाहा " इसे पढ़कर दाहिने कानको " ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा " इसे पढकर शिरके पिछले भागको " ओं ह्राँ णमो लोए सव्यसाहूणं स्वाहा " इसे पढकर बायें कानको " ओं ह्राँ णमो अरिहंताणं स्वाहा " इसे पढकर शिरके मध्यभागको " ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा " इस मंत्रका उच्चारण कर शिरके आग्नेय भागको " ओं ह्रूं णमो आयरियाणं स्वाहा ,, इसका उच्चारण करके सिरके नैऋत्य भागको " ओं ह्रौं णमो उवझायाणं स्वाहा " इसका उच्चारण कर सिरके वायव्य भागको " ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा इसका उच्चारण कर" शिरके ईशान भागको स्पर्शन करे । इसका नाम द्वितीय न्यास है । न्यास नाम रखनेका है इस लिए इन मंत्रोंका उच्चारण कर हाथके दोनों अंगूठोंको हृदयादि स्थानोंपर रखना चाहिए ॥ ३३ ॥

ॐ ह्राँ णमो अरिहंताणं स्वाहा । दक्षिणे भुजे ॥ ॐ ह्रीँ णमो सिद्धाणं स्वाहा ॥ वाम भुजे ॥ ॐ ह्रूँ णमो आयरियाणं स्वाहा ।

नाभौ ॥ ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा । दक्षिण कुक्षौ ॥
ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा । वामकुक्षौ ॥ इति तृतीयोऽ-
ङ्गन्यासः इत्यङ्गन्यासभेदाः ॥ ३४ ॥

"ओं ह्राँ णमो अरिहंताणं स्वाहा" इसे पढ़कर दाहिनी भुजापर "ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा" इसे पढकर बाईं भुजापर, "ओं ह्रूँ णमो आयरियाणं स्वाहा" इसे पढ़कर नाभिपर "ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा" इसे पढकर दाहिनी कूखपर "ओं ह्रः णमोलोए सव्वसाहूणं स्वाहा" इसे पढकर बाईं कूखपर जुड़े हुए दोनों हाथोंके अंगूठोंको रक्खे। यह तीसरा अंगन्यास है। इस तरह अंगन्यासके भेद बतलाये ॥ ३४ ॥

वामायामथ तर्जन्यां न्यस्यैवं पञ्चमन्त्रकम् ॥
पूर्वादिदिक्षु रक्षार्थं दशस्वपि निवेशयेत् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर, इसी प्रकार बायें हाथकी तर्जनी (अँगूठेके पासकी) उंगलीपर पंचणमोकार मंत्रकी स्थापना कर अपनी रक्षाके लिये पूर्वादि दशों दिशाओंमें उस उँगलीको क्रमसे फिरावे ॥ १ ॥

ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः स्वाहा । इति द्वादश कूटाक्षराणि ॥ ३५ ॥
ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः स्वाहा। इति द्वितीयद्वादश शून्यबीजानि ॥
इति दशदिशां बन्धः ॥ ३६ ॥

"ओं क्षाँ क्षीं" इत्यादि ये दूसरे कूटाक्षर हैं और "ओं ह्रां ह्रीं" इत्यादि ये दूसरे बारह शून्यबीज" हैं। इनसे दशमें दिशाओंकी बन्ध करे। इनमेंसे एक एक अक्षरका एक एक दिशामें न्यास करे इस तरह दशों दिशाओंमें दशों अक्षरोंका न्यास करे। बाद "ओं ह्रां" इत्यादि अक्षरोंका न्यास करे। इसे दिग्बंधन कहते हैं ॥ ३६ ॥

कवचांस्तु करन्यासं कुर्यान्मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ३७ ॥

मंत्रके प्रयोगोंको जाननेवाला पुरुष करन्यास कर मंत्रके द्वारा कवचन्यास करे ॥ ३७ ॥

ॐ हृदयाय नमः । शिरसे स्वाहा ॥ शिखायै वषट् ॥
कवचाय हूं ॥ अस्त्राय फट् ॥ इति शिखाबन्धः ॥ ३८ ॥

ओं हृदयाय नमः इसे पढ़कर हृदयका "शिरसे स्वाहा" इसे पढ़कर शिरका स्पर्श न करे। चोटीका स्पर्श न कर वषट्कार करे चिटकी बजावे सारे शरीरमें कवच धारण कर लिया है ऐसी धारणा कर 'हंकार' करे और अस्त्रके लिए फटकार करे—तीन वार ताली बजावे इसके बाद चोटीके गांठ लगावे ॥ ३८ ॥

अथ परमात्मध्यानम्।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं अर्हद्भ्यो नमः॥ २१ वारं॥ ३९॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सिद्धाणं सिद्धेभ्यो नमः॥ २१ वारं॥
परमात्मध्यानमन्त्र॥ ४०॥

एवं तु कुर्वतः पुंसो विघ्ना नश्यन्ति कुत्रचित्॥

ये दो मंत्र परमात्माका ध्यान करनेके लिए हैं जिनका हस्तकका बीस एक्कीस बार जप करे॥ ३९॥ ४०॥

आधिर्व्याधिः क्षयं याति पीडयन्ति न दुर्जनाः॥ १॥ इति सकलीकरणम्॥

उक्त रीतिसे मंत्रोंका प्रयोग करनेवाले पुरुषके सारे विघ्न नाशको प्राप्त होते हैं। उसकी आधि व्याधि सब क्षयको प्राप्त होती है। और उसे दुर्जन कहींपर भी पीडा नहीं पँहुचा सकते। इस तरह सकली करणकी विधि कही गई॥ ४१॥

तत आव्हानस्थापनसन्निधीकरणं कृत्वा जिनश्रुतसूरीन् पूजयेत्॥ ४१॥

सकलीकरण कर चुकनेके पश्चात् आव्हान स्थापन और सन्निधकरणकर जिन श्रुत और सूरिकीपूजा करे। इनके मंत्र आगे बताते हैं॥ ४१॥

जिनश्रुतसूरि पूजा मंत्र—

ॐ ह्रीँ अर्हं श्रीपरब्रह्मणे अनन्तानन्तज्ञानशक्तये जलं निर्वपामि स्वाहा।
एवं गन्धादि। अष्टद्रव्यपूजनम्। जिनपूजा॥ ४२॥

ओं ह्रीं अर्हं इत्यादि मंत्र पढकर जल चढावे। इसी तरह गंध अक्षत आदि द्रव्य चढावे। ये अष्टद्रव्य प्रासुक ताजें बने हुए होने चाहिए। इसे जिन पूजा कहते हैं॥ ४२॥

ॐ ह्रीं परमब्रह्ममुखकमलोत्पन्नद्वादशाङ्गश्रुतेभ्यः स्वाहा॥
श्रुतपूजामन्त्रः॥ ४३॥

यह श्रुतपूजाका मंत्र है। इस मंत्रसे श्रुत—शास्त्रकी पूजा करे॥ ४३॥

ॐ ह्रीँ शिवपदसाधकेभ्य आचार्यपरमेष्ठिभ्यः स्वाहा॥
आचार्यपूजामन्त्रः॥ ४४॥

यह आचार्यकी पूजाका मंत्र है। इस मंत्रसे आचार्यों गुरुओंकी पूजा करे ॥ ४४ ॥

ततो जिनपादार्पितचन्दनैः स्वांगमलं कुर्यात् ॥ ४५ ॥

इसके बाद जिन चरणोंमें अर्पित चन्दनद्वारा अपने शरीरको भूषित करे ॥ ४५ ॥

कलशस्थापन व श्रीपीठस्थापन—

ततः-ॐ ह्रीँ स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा ॥ यन्त्रात्प्राक्कलश-स्थापनम् ॥ ॐ ह्रीँ नेत्राय संवौषट् । कलशार्चनम् ॥ ॐ ह्रीँ स्वस्तये पीठमारोपयामि स्वहा ॥ यन्त्रात्प्रत्यक् पीठारोपणम् ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं क्ष्मां ठः ठः श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा । श्रीपीठप्रक्षालनं करोमि स्वाहा । श्रीपीठप्रक्षालनम् ॥ ॐ ह्रीँ दर्प-मथनाय नमः । पीठदर्भः ॥ ॐ ह्रीँ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा श्रीपीठार्चनम् ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ श्रीलेखनं करोमि स्वाहा । श्रीकारलेखनम् ॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ श्रीयन्त्रं पूजयामि स्वाहा । श्रीयन्त्रार्चनम् ॥ ४६ ॥

ततः इसके वाद " ओं ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा " यह मंत्र पढ़कर यंत्रसे पूर्वकी ओर कलशस्थापन करे। " ओं ह्रीं नेत्राय संवौषट् " यह पढ़कर कलशोंकी पूजा करे। "ओं ह्रीं स्वस्तये पीठमारोपभक्ति स्वाहा " यह पढकर यंत्रके पश्चिमकी ओर पीठारोपणं करे। " ॐ ह्रीँ अर्हं क्ष्मां ठः ठः श्री पीठस्थापनं करोमि स्वाहा " यह पढकर पीठ स्थापन करे। " ओं ह्री ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रता जलेन श्रीपीठप्रक्षालनं करोभि स्वाहा " यह पढकर पीठ प्रक्षालन करे। "ओं ह्रीं दर्पमथनाय नम" यह पढकर पीठपर दर्भ रक्खे। "ओं ह्रीं सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रभ्यः स्वाहा " यह पढकर पीठकी पूजा करे। "ओं ह्रीँ श्रीँ श्री लेखने करोमी स्वाहा " यह पढकर पीठपर श्रीकार लिखे। " ओं ह्रीं श्रीं श्रीं यंत्रं पूजयाभि स्वाहा " यह पढ़कर श्री यंत्रकी पूजा करे ॥ ४६ ॥

जिनप्रतिमास्थापनादिमंत्र—

ॐ धात्रे वषट् ॥ सिंहासनस्थजिनं श्रीपादयोः स्पृष्ट्वा प्रतिमामानयेत् ॥४७॥

" ओं धात्रे वषट् " यह पढ़ कर निजमंदिरमें सिंहासनपर विराजमान जिन प्रतिमाको पूजाके स्थानमें लावे ॥ ४७ ॥

ॐ ह्रीँ श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा । श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनम् ॥४८॥

" ओं ह्रीं श्री वर्णे " इत्यादि पढ़कर सिंहासनपर लिखे हुए श्रीकारपर प्रतिमा स्थापन करे ॥ ४८ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्मणे अर्घ्यं निर्वपामि स्वाहा ॥ अर्घ्यदानमन्त्रः ॥ ४९ ॥

"ओं ह्रीं अर्हं" इत्यादि मंत्र पढ कर प्रतिमाको अर्घ्य देवे ॥ ४९ ॥

ॐ नमः परब्रह्मणे श्रीपादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा ॥ श्रीपादौ प्रक्षाल्य तज्जलैरात्मानं प्रसिञ्चेत् ॥ पाद्यम् ॥ ५० ॥

" ओं नमः परब्रह्मणे " इत्यादि पढ कर श्री जिन चरणोंका प्रक्षालन कर उस जलसे अपने को सीचे—जलकी कुछ बूंदें अपने पर गेरे। इसे पाद्य कहते हैं ॥ ५० ॥

ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा एहि एहि संवौषट् ॥ आव्हानम् ॥ एवं अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ॥ पुनः मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम् ॥५१॥

"ओं ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौँ ह्रः असि आ उ सा एहि एहि संवौषट्" यह पढ कर श्री जिन भगवानका आव्हान करे। इसी तरह ओं ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं यह पढ कर प्रतिगजेन देवकी स्थापना करे। फिर " ओं ह्राँ ह्रीं ह्र ह्रौं ह्रः असि आ उ सा मम सान्नि-हितो भव भव वषट् " यह पढकर सन्निधिकरण करे ॥ ५१ ॥

ॐ ह्रीँ अ सि आ उ सा नमः ॥ पंचगुरुमुद्राधारणम् ॥ ५२ ॥

" ओं ह्रीं अ सि " यह मंत्र पढकर पंच गुरुमुद्रा धारण करे ॥ ५२ ॥

ॐ वृषभाय दिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्राज्ञाय अनन्तचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयम्भुवे अजरामरपरमपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्ठिने महते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यप्रस्थापनाय अधीष्ट-दिव्यनागपूजिताय परमपदाय ममात्र सन्निहिताय स्वाहा ॥ अनेन पंचगुरुमुद्रानिर्वर्तनम् ॥ ततोऽपि पाद्यम् ॥ ५३ ॥

" ओं वृषभाय " इत्यादि मंत्रके द्वारा पंच गुरुमुद्राकी रचना करे। इसके बादभी पूर्वोक्त प्रमाण पाद्य विधान करे ॥ ५३ ॥

ॐ ह्राँ क्ष्वीँ क्ष्वीँ वं मं हं सं तं पं द्राँ द्राँ द्राँ द्राँ हं सः स्वाहा ॥ जिनस्यार्चमनम् ॥ ५४ ॥

" ओं ह्रीं ह्वीं " इत्यादि पढकर प्रतिमाको आचमान करावे ॥ ५४ ॥

ॐ ह्रीं क्रौं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि अस्माकं दुरितमपनयतु भवतु भगवते स्वाहा ॥ नीराजनार्चनम् ॥ ५५ ॥

" ओं ह्रीं क्रौं " इत्यादि पढ़कर जिनेंद्र देवकी आरती उतारे ॥ ५५ ॥

ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णायु धवाहनयुवतिजनसहिता इन्द्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणपवनकुबेरेशानशेषशीतांशवो दश दिग्देवता आगच्छत ॥ इत्यादि दिक्पालार्चनम् ॥ ५६ ॥

" ओं ह्रीं क्रौं " इत्यादि पढकर दिक्पालोंका अर्चन करे ॥ ५६ ॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धारणं करोमि स्वाहा ॥ कलशोद्धारणम् ॥५७॥

" ओं ह्रीं स्वस्तये " इत्यादि पढ़कर जिनाभिषेकके लिए कलशोंको हाथमें लेवें ॥ ५७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं मं हं सं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रां द्रां द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ॥ जलस्नपनम् ॥ ५८ ॥

" ओं ह्रीं श्रीं क्लीं " इत्यादि मंत्र पढ़कर कलश जलसे जिन देवका अभिषेक करे ॥ ५८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं—इत्यादि श्रीमते सर्वरसेषु पवित्रतरनालिकेररसाम्ररसकदलीपनसेक्षुरसघृतदुग्धदधिभिः जिनमभिषेचयामि स्वाहा ॥ ५९ ॥

" ओं ह्रीं श्रीं " इत्यादि पढ़कर पंचामृताभिषेक करे ॥ ५९ ॥

ॐ नमोऽर्हते भगवते कङ्कोलैलालवङ्गादिचूर्णैर्जिनाङ्गमुद्वर्तयामि स्वाहा ॥६०॥

"ओं नमोऽर्हते" इत्यादि पढ़कर कंकोला इलायची लवंग आदिसे प्रतिमाका उद्वर्तन करे॥६०॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इत्यादि श्रीमते पवित्रतरचतुष्कोणकुम्भपरिपूर्णजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा ॥ कोणकुम्भजलस्नपनम् ॥ ६१ ॥

" ओं ह्रीं " यह पढ़कर सिंहासनके कोनोंपर रक्खे हुए जलके कलशोंसे भगवान्का अभिषेक करे ॥ ६१ ॥

ॐ ह्रीँ निखिललोकपवित्रीकरणगन्धोदकेनाभिषेचयामि जिनम् ।
गन्धोदकेनोत्तमाङ्गस्य सेचनम् ॥ इति स्नपनविधिः ॥ ६२ ॥

"ओं ह्रीं" यह मंत्र पढ़कर गन्धोदकसे जिन भगवानके मस्तकका सेचन करै। इस तरह स्नपन विधि पूर्ण हुई ॥ ६२ ॥

अष्टद्रव्यार्चन मंत्र—

ततः प्रतिमामानीय यन्त्रेमध्ये संस्थाप्य सम्पूजयेत् ॥ स्नपनाभावे अधिवासनात्मालङ्करणपर्यन्तं विधानमाचर्य यन्त्रे एव प्रतिमाया आव्हानादिकं कृत्वा सम्यक् पूजयेत् ॥ तद्यथा ॥ ६३ ॥ ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा जलं गृहाण गृहाण नमः ॥ एवं गन्धाक्षतकुसुमचरुदीपधूपफलैश्च जिनं पूजयेत् ॥ पूर्णार्घ्यं जाप्यं जपेत् ॥ ६४ ॥

स्नानविधि हो चुकनेके बाद प्रतिमाको उठाकर यंत्रके मध्य भागमें स्थापन कर पूजा करै। यदि प्रतिमाको स्नान न कराना हो तो आव्हानसे लेकर जिन चरणार्पित गंधसे स्वशरीको भूषित करने तककी विधान करै। और यंत्रमेंही प्रतिमाका आव्हानादिक करके अच्छी तरह पूजा करै। वह इसतरह कि ॥ ६३ ॥

"ओं ह्राँ श्रीं" इत्यादि मंत्र पढ़कर जल चढ़ावे। इसी तरह गन्ध अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप ओर फलसे जिन देवकी पूजा करै। बाद पूर्णार्घ्य देकर जाप जपै ॥ ६४ ॥

जयादिदेवतार्चनमंत्र—

ततः पञ्चपरमेष्ठिनां पूजां कुर्यात् ॥ इति कर्णिकाभ्यर्चनम् ॥ ६५ ॥

इसके बाद पंचपरमेष्ठिकी पूजा करै। इस तरह जो कमलाकार यंत्र बनाकर मध्य कर्णिकामें पंच परमेष्ठीकी स्थापनाकी थी उसका पूजाविधान समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

अष्टपत्रेषु—ॐ ह्रीँ जये विजये अजिते अपराजिते जम्भे मोहे स्तम्भे स्तम्भिनि सर्वा अध्यायुधवाहनसमेता आयात आयात इदमर्घ्यं चरुममृतमिव स्वस्तिकं यज्ञभागं गृहीत गृहीत स्वाहा ॥ इति जयादिदेवीरभ्यर्चयेत् ॥६६॥

उस कर्णिकाके चारों ओर आठ पत्ते खेंचकर जो जयादि आठ देवियोंकी स्थापना की थी उनकी "ओं ह्रीं जये विजये" इत्यादि पढ़कर अर्घ चढ़ावे ॥ ६६ ॥

विद्यादेवतार्चनमंत्र—

षोडशपत्रेषु — ॐ ह्रीँ रोहिणि प्रज्ञप्ते वज्रशृंखले वज्राङ्कुशे अप्रतिचक्रे पुरुषदत्ते कालि महाकालि गान्धारि गौरि ज्वालामालिनि वैराटि अच्युते अपराजिते मानसि महामानसि चेति सर्वा अप्यायुधवाहनसमेता आयात आयातेदमर्घ्यं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा ॥ इति विद्यादेवतार्चनम् ॥ ६७ ॥

उन आठ पत्तोंके चारों ओर सोलह पत्रोंमें " ओं ह्रीं रोहिणी " इत्यादि पढ़कर सोलह विद्यादेवोंकी पूजन करै ॥ ६७ ॥

शासनदेवतार्चन मंत्र—

चतुर्विंशपत्रेषु—ॐ ह्रीँ चक्रेश्वरि रोहिणि प्रज्ञप्ति वज्रशृङ्खले पुरुषदत्ते मनोवेगे कालि ज्वालामालिनि महाकालि मानवि गौरि गांधारि वैराटि अनन्तमति मानसि महामानसि जये विजये अपराजिते बहुरूपिणि चामुण्डे कूष्माण्डिनि पद्मावति सिद्धायिनि सर्वा अप्यायुधवाहनसमेता आयात आयात इदमर्घ्यं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा ॥ इति शासनदेवतापूजनम् ॥६८॥

चौवीस पत्रोंपर "ओं ह्री चक्रेश्वरी" इत्यादि पढ़कर चक्रेश्वरी आदि चौवीस शासन देवोंकी अर्घसे पूजन करै ॥ ६८ ॥

इंद्रार्चन मंत्र—

द्वात्रिंशत्पत्रेषु—ॐ ह्रीँ असुरेन्द्र नागेन्द्र सुपर्णेन्द्र द्वीपेन्द्रो दधीन्द्र स्तनितेन्द्र विद्युदिन्द्र दिगिन्द्र अग्नीन्द्र वाय्विन्द्र किन्नरेन्द्र किम्पुरुषेन्द्र महोरगेन्द्र गन्धर्वेन्द्र यक्षेन्द्र राक्षसेन्द्र भूतेन्द्र पिशाचेन्द्र चन्द्रादित्य सौधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र सनत्कुमारेन्द्र माहेन्द्रेन्द्र ब्रह्मेन्द्र लान्तवेन्द्र शुक्रेन्द्र शतारेन्द्रानतेन्द्र प्राणतेन्द्रारणेन्द्राच्युतेन्द्र सर्वेऽप्यायातायात यानायुधयुवतिजनैः सार्धं भूर्भुवः स्वः स्वधा इदमर्घ्यं चरुममृतमिव स्वस्तिकं यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत ॥ इतीन्द्राणामभ्यर्चनम् ॥ ६९ ॥

बत्तीस पत्रोंपर " ओं ह्रीं असुरेन्द्र " इत्यादि पढ़कर असुरेन्द्रादि बत्तीस इंद्रोंकी पूजा करै ॥ ६९ ॥

यक्षार्चनमंत्र—

अथ वज्राग्रस्थापितचतुर्विंशतियक्षाः । ॐ ह्रीँ गोमुखमहायक्षत्रिमुखयक्षेश्वरतुम्बरुपुष्पाक्षमातङ्गस्यामजितब्रम्हेश्वरकुमारचतुर्मुखपातालकिन्नरगरुडगन्धर्वखगेन्द्रकुवेरवरुणभृकुटिगोमेदधरणमातङ्गाः सर्वेऽप्यायु धवाहनयुवतिसहिता आयातायात इदमर्घ्यं गन्धमित्यादि गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा ॥ यक्षार्चनम् ॥ ७० ॥

बत्तीस पत्तोंके चारों ओर बताये हुए चौवीस वज्राग्रोंपर स्थापित चोवीस यक्षोंकी "ओं ह्रीँ गोमुख" इत्यादि पढ़कर पूजा करै ॥७०॥

दिक्पाल व नवग्रह—

अथ दिक्पालः । ॐ इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणपवनकुवेरेशानधरणसोमाः सर्वेप्यायुधवाहनयुवतिसहिता आयातायात इदमर्घ्यमित्यादि ॥ दिक्पालार्चनम् ॥ ७१ ॥

"ओं इंद्राग्नि" इत्यादि पढ़कर दिक्पालोंकी पूजा करै ॥ ७१ ॥

अथ ग्रहाः । ॐ आदित्यसोममंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतवः सर्वेऽप्यायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवारा आयातायात इदमर्घ्यं स्वाहा ॥ इति नवग्रहपूजा ॥ ७२ ॥

"ओं आदित्यसोम" इत्यादि पढ़कर नवग्रहोंकी पूजा करै ॥ ७२ ॥

अनावृतपूजा।

ॐ ह्रीं औं क्रौं हे अनावृत आगच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा ॥ इत्यनावृतपूजा ॥ ७३ ॥

"ओं ह्रीँ ओं" इत्यादि पढ़कर अनावृत देवकी पूजा करै ॥ ७३ ॥

एवं महायन्त्रं समाराध्य मूलविद्यामष्टशतवारान् जपेत् ॥ इति देवताराधनविधिः ॥ ७४ ॥

इस तरह महा यंत्रकी पूजा कर मूल मंत्रको एकसौ आठ बार जपै ॥ ७४ ॥

ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्य देवदत्तस्य सर्वोपद्रवशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा ॥ अयं मूलमन्त्रः ॥ ७५ ॥

यह मूल मंत्र है। इसका एकसौ आठ बार जप करै जाप जपनेवाला देवदत्तके स्थानमें अपना नाम जोड़ दे ॥

शांतिकर्म।

ज्वररोगोपशान्त्यर्थं श्वेतवर्णैर्यन्त्रमुद्धार्य सम्पूज्य पश्चिमाभिमुखः सूरिः ज्ञानमुद्रापद्मासनं श्वेतजापैरष्टोत्तरशतं जपेत् पश्चिमरात्रौ। त्रिपञ्चसप्तदिनाभ्यन्तरे ज्वरो मुञ्चति ॥ एवमन्येषामपि रोगाणामनुष्ठेयम् ॥ इति शान्तिकर्म ॥ ७६ ॥

ज्वररोगकी शान्तिके लिए बुद्धिमान् पुरुष रात्रिके पिछले भागमें श्वेतवर्णसे यंत्र खेंचकर उसकी पूजा कर पश्चिमकी ओर मुख कर ज्ञानमुद्रा धारण कर पद्मासन बैठ कर श्वेत जापसे एक सौ आठ जप करै। इस तरह करनेसे तीन पांच अथवा सात दिनके भीतर ज्वर दूर हो जाता है। इसी तरह अन्य रोगोंके लिएभी अनुष्ठान करै। इसे शान्तिकर्म कहते हैं ॥ ७६ ॥

पौष्टिककर्म।

एवं पौष्टिकेऽपि तथैव। उत्तराभिमुख इति विशेषः॥ ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्य देवदत्तनामधेयस्य मनःपुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा ॥ पुष्टिकर्म ॥ ७७ ॥

इस तरह पौष्टिक कर्ममेंभी ऐसाही करै। इतना विशेष है कि इस जापमें उत्तरकी ओर मुख कर बैठे। "ओँ ह्राँ ह्रीँ" इत्यादि पौष्ठिक कर्ममें जप करनेका मंत्र है। इसे पौष्टिक कर्म कहते हैं ॥ ७७ ॥

वशीकरण।

अथ वश्यकर्माणि। रक्तवर्णैर्यन्त्रोद्धारः रक्तपुष्पैः। स्वस्तिकासनपद्ममुद्रांकितः पूर्वाण्हे यक्षाभिमुखः—ॐ ह्राँ ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुं राजानं वश्यं कुरु कुरु वषट्—वामहस्तेन मंन्त्र जपेत् ॥ इति वश्यकर्म ॥ ७८ ॥

इसके अनन्तर वश्य कर्ममें इस प्रकार करै कि लालरंगसे यंत्रोद्धार करै, लाल पुष्पोंसे पूजा

करे, स्वस्तिकासन बैठे। पद्ममुद्रा जोड़े। उत्तरकी ओर मुख करके बैठे पूर्वाण्हके समय "ॐ ह्राँ ह्रीँ" इत्यादि मंत्रको बायें हाथसे जपे। इस तरह वश्य कर्म होता है॥ ७८॥

आकर्षण।

अथाकृष्टिकर्मणि। रक्तवर्णैर्यन्त्रोद्धारः पूर्वाभिमुखो दण्डासनाङ्कुश-मुद्रायुतः ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा एनां स्त्रियमा कर्षयाकर्षय संवौषट्॥ एवं भूतप्रेतवृष्ट्यादीनामप्याकर्षणम्॥ ७९॥

आकर्षण कर्म यदि किसी स्त्री आदिका करे तो लालवर्णका यंत्र बनावे, पूर्व दिशाकी ओर मुखकर दण्डासनसे बैठे, अंकुश मुद्रा जोड़े और "ॐ ह्राँ" इत्यादि मंत्रका जप करे। इसी तरह भूत-प्रेत-वृष्टि आदिकाभी आकर्षण करे॥ ७९॥

स्तम्भन।

हरितालादिपीतवर्णैर्यन्त्रोद्धारः। पूजा सर्वा पीता। पीता जपमाला वज्रासनं शंखमुद्रा॥ ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा साधकस्य एतन्नामधेयस्य क्रोधं स्तम्भय स्तम्भय ठः ठः॥ एवं शार्दूलादीनां क्रोधस्तम्भनम्॥ ८०॥

यदि किसीके क्रोधका स्तम्भन करना हो तो इस प्रकार करे कि हल्दी आदिके पीले रंगसे यंत्र खेंचे, पूजा-सामग्री पीली बनावे, जापमाला भी पीले रंगकी ले, वज्रासन मांड़े। शंखमुद्रा जोड़े, "ॐ ह्राँ ह्रीँ" इत्यादि मंत्रका जाप करे। इसी प्रकार सिंह आदिका क्रोध-स्तम्भन करे॥८०॥

अतिवृष्टौ सत्यां कर्मणि—ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा अत्र एनां वृष्टिं स्तम्भय ठः ठः॥ इति स्तम्भनम्॥८१॥

अतिवृष्टिके स्तंभन करनेमें "ॐ ह्राँ ह्रीँ" इत्यादि मंत्रका जप करै इसतरह स्तम्भन कर्म होता है॥ ८१॥

उच्चाटनकर्म।

अथोच्चाटनकर्मणि कृष्णवर्णैर्यन्त्रोद्धारः। अपराण्हे मरुद्दिङ्मुखः कुर्कुटासनः पल्लवमुद्रा नीलजाप्यैर्जप ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः अ सि आ उ सा देवदत्तानमधेयं अत उच्चाटय उच्चाटय फट् फट्॥ इति जपेत्॥ एवं भूतादीनामप्युच्चाटनम्॥ इत्युच्चाटनकर्म॥ ८२॥

यदि किसीका उच्चाटन करना हो तो इस कर्ममें काले रंगका यत्रं बनावै दिनके पिछले भागमें वायव्य दिशाकी ओर मुखकर कर्कुटासन वैठै पल्लवमुद्रा जोडै और नील जाप्यसे "ॐ ह्राँ ह्रीँ" इत्यादि मंत्रका जाप करै इसीतर भूतादिका उच्चाटन करै। यह उच्चाटन कर्म है ॥ ८२ ॥

विद्वेषकर्म।

अथ विद्वेषकर्मणि कृष्णवर्णैर्यन्त्रोद्धारः। मध्यान्हे अग्निमुखः। कुर्कुटासनं पल्लवमुद्रा कृष्णजाप्यैर्जपः॥ ॐ न्हाँ न्हीँ न्हूँ न्हौँ न्हः अ सि आ उ सा अनयोर्यज्ञदत्तदेवदत्तनामधेययोः परस्परमतीव विद्वेषं कुरु कुरु हूँ॥ एवं स्त्रीपुरुषयोर्वा॥ इति विद्वेषणम् ॥ ८३ ॥

विद्वेष कर्ममें काले रंगसे यंत्रोद्धार करै। मध्याह्नके समय आग्नेय दिशाकी ओर मुख कर कुकुटासनसे बैठे पल्लव मुद्रा करै, कालेजाप्यसे "ॐ ह्राँ" इत्यादि मंत्रका जाप करे। यदि स्त्रीपुरुषमेंभी विद्वेष कराना हो तो इसी प्रकार करै॥ ८३॥

अभिचारकर्म।

अभिचारकर्मणि सर्पविषमिश्रैरुन्मत्तरसमिश्रैः अपराण्हे ईशानदिङ्मुखः कृष्णवस्त्रो भद्रासनो वज्रमुद्राखदिरमण्यादिकृताक्षमालः। ॐ न्हाँ न्हीँ न्हूं न्हौँ न्हः अ सि आ उ सा अस्य एतन्नामधेयस्य तीव्रज्वरं कुरु कुरु घे घे। इत्युच्चारयेत्। शूलशिरोरोगाणामप्येवं कर्तव्यम्। उच्चाटनादिकर्माणि धर्माधारभूतानां राजादिनामभिलषितानि चेत्तदा विधेयानि॥ ८४॥

यदि किसीको कोई तरहका रोग उत्पन्न करना हो तो इस मंत्रका उपयोग करै। साँपके जहरसे अथवा किसी मादक द्रव्यसे मिश्रित काले रंगसे यंत्र खेंचै दोपहरके बाद ईशानदिशाकी तरफ मुख कर काले कपड़े पहन भद्रासन बैठे, वज्रमुद्रा बनावे खदिरमणिकी जपमाला बनवावे, और "ॐ ह्राँ ह्रीँ" इत्यादि मंत्रका उच्चारण करै। शूर शिरका रोग आदिमेंभी इस मंत्रका प्रयोग करै। उच्चाटनं आदि कर्म धर्मात्मा राजा आदिको अभिलषित हो तो करै॥ ८४॥

होम विधि।

इत्याराधनाविधिं समाप्य होमशालायामग्निहोमं विदध्यात्॥
तद्यथा—ॐ न्हीँ क्ष्वीँ भूः स्वाहा। पुष्पाञ्जलिः॥ १॥

इस तरह इस पूजाके विधानको पूर्ण कर होम शालामें जाकर अग्नि होम करै। इसका विधान इस प्रकार है।

" ॐ ह्रीँ क्ष्वीँ " इस मंत्रका उच्चारण कर पुष्पांजलि क्षेपण करै ॥ १ ॥

ॐ ह्रीँ अत्रस्थक्षेत्रपालाय स्वाहा ॥ क्षेत्रपालबलिः ॥ २ ॥

इस मंत्रका उच्चारण कर क्षेत्रपालको बलि देवे ॥ २ ॥

ॐ ह्रीँ वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा ॥ भूमिसम्मार्जनम् ॥ ३ ॥

इस मंत्रको पढ़कर भूमिका सम्मार्जन—सफाई करै ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीँ मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं तं पं स्वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा ॥ भूमिसेचनम् ॥ ४ ॥

यह मंत्र पढ़कर भूमीपर जल सींचें ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीँ अग्निकुमाराय ह्म्ल्व्र्यूं ज्वल ज्वल तेजःपतये अमिततेजसे स्वाहा ॥ दर्भाग्निप्रज्वालनम् ॥ ५ ॥

यह मंत्र पढ़कर दर्भसे अग्नि सुलगावे ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीँ क्रौं षष्ठिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा । नागतर्पणम् ॥६॥

इस मंत्रका उच्चारण कर नागोंकी पूजा करै ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीँ भूमिदेवते इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा । भूम्यर्चनम् ॥ ७ ॥

यह मंत्र पढ़कर भूमिकी पूजा करै ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीँ अर्हं क्षं वं वं श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा ॥ होमकुण्डात्प्रत्यक् पीठस्थापनम् ॥ ८ ॥

इस मंत्रका उच्चारण कर होम कुंडसे पश्चिमकी ओर पीठ स्थापन करै ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीँ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा ॥ श्रीपीठार्चनम् ॥ ९ ॥

इस मंत्रको पढ़कर पीठकी पूजा करै ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ऐँ अर्हं जगतां सर्वशान्तिं कुर्वन्तु श्रीपीठे प्रतिमास्थापनम् करोमि स्वाहा ॥ श्रीपीठे प्रतिमास्थापनम् ॥ १० ॥

यह मंत्र पढ़कर श्रीपीठपर प्रतिमा स्थापन करे ॥ १० ॥

ॐ ह्रीँ अर्हं नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमोऽनादिनिधनेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमो नृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमोऽनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमोऽनन्तदर्शनेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ—ह्रीँ अर्हं नमोऽनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीँ अर्हं नमोऽनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा इत्यष्टभिर्मन्त्रैः प्रतिमार्चनम् ॥ ११ ॥

इन आठ मंत्रोंका उच्चारण कर प्रतिमाकी पूजा करना चाहिए ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीँ धर्मचक्रायाप्रतिहततेजसे स्वाहा ॥ चक्रत्रयार्चनम् ॥ १२ ॥

इस मंत्रको पढ़कर तीनों चक्रोंकी पूजा करे ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीँ श्वेतच्छत्रत्रयश्रियै स्वाहा ॥ छत्रत्रयपूजा ॥ १३ ॥

इस मंत्रका उच्चारण कर छत्र त्रयकी पूजा करे ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ऐँ अर्हं ह्सौं ह्रौं सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वदवद-वाग्वादिनि अवतर अवतर । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । संनिहिता भव भव वषट् । क्लूं नमः सरस्वत्यै जलं निर्वपामि स्वाहा ॥ एवं गन्धाक्षतपुष्पचरुदीपधूपफलवस्त्राभरणादिकम् । प्रतिमाग्रे सरस्वतीपूजा ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीँ श्रीँ इत्यादि मंत्र पढ़कर सरस्वतीका आव्हान स्थापन और सन्निधिकरण करे "क्लूँ" इत्यादि पढ़कर जल गन्ध अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल और वस्त्राभरणादिकसे प्रतिमाके सामने सरस्वतीकी पूजा करे ॥ १४ ॥

ॐ ह्रीँ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपवित्रतरगात्रचतुरशीतिलक्षणगुणाष्टा-दशसहस्रशीलधरगणधरचरणाः आगच्छत आगच्छत संवौषट् ॥ इत्यादि गुरुपादुकापूजा ॥ १५ ॥

" ॐ ह्रीँ " इत्यादि पढ़कर गणधरोंकी पादुकाकी पूजा करे ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीँ कलियुगप्रबन्धदुर्मार्गविनाशनपरमसन्मार्गपरिपालन भगवन् यक्षेश्वर जलार्चनं गृहाण गृहाण ॥ इत्यादि जिनस्य दक्षिणे यक्षार्चनम् ॥ १६ ॥

" ॐ ह्रीँ " इत्यादि पढ़कर जिन भगवानके दक्षिणकी ओर यक्षोंकी पूजा करे ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीँ कलियुगप्रबन्धदुर्मार्गविनाशिनि सन्मार्गप्रवर्तिनि भगवति यक्षीदेवते जलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण । इत्यादि वामे शासनदेवतार्चनम् ॥ १७ ॥

यह मंत्र पढ़कर जिन भगवानकी बाईं ओर शासन देवतोंकी पूजा करे ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीँ उपवेशनभूः शुध्यतु स्वाहा ॥ होमकुण्डपूर्वभागे दर्भपूलेनोपवेशनभूमिशोधनम् ॥ १८ ॥

यह मंत्र पढ़कर होम कुंडके पूर्वभागमें दर्भके पूलेसे बैठनेकी जमीनको शुद्ध करे ॥ १८ ॥

ॐ ह्रीँ परब्रह्मणे नमो नमः । ब्रह्मासने अहमुपविशामि स्वाहा ॥ होमकुण्डाग्रे पश्चिमाभिमुखं होता उपविशेत् ॥ १९ ॥

यह मंत्र पढ़कर होता (होम करनेवाला) होम कुंडके अग्रभागमें पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीँ स्वस्तये पुण्याहकलशं स्थापयामि स्वाहा ॥ शालिपुञ्जोपरि फलसहितपुण्याहकलशस्थापनम् ॥ २० ॥

यह मंत्र पढ़कर चावलोंके ढेरपर पुण्याहवाचनके कलश स्थापन करे और उनके ऊपर नारियल आदि कोईसा फल रक्खे ॥ २० ॥

ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ ह्रौँ ह्रः नमोऽर्हते भगवते पद्ममहापद्मतिगञ्छकेसरिपुण्डरीकमहापुण्डरीकगङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदापयोधिशुद्धजलसुवर्णघटप्रक्षालितवररत्नगंधाक्षतपुष्पार्चितमामोदकंपवित्रं कुरु कुरु झं झं झ्वीं झ्वीं वं वं मंमं हं हं सं सं तं तं पं पं द्राँ द्राँ द्रीँ द्रीँ हं सः ॥ इति जलेन प्रसिञ्च्य जलपवित्रीकरणम् ॥ २१ ॥

यह मंत्र पढ़कर जल सींचकर पूजा करनेके जलको पवित्र करे ॥ २१ ॥

ॐ ह्रीँ नेत्राय संवौषट् ॥ कलशार्चनम् ॥ २२ ॥

यह मंत्र बोलकर कलशोंकी पूजा करे ॥ २२ ॥

ततो यजमानाचार्यः वामहस्तेन कलशं धृत्वा सव्यहस्तेन पुण्यहवाचनां पठन् भूमिं सिञ्चेत् ॥ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां इत्यादि पुण्याहवाचनां पठित्वा कलशं कुडस्य दक्षिणे भागे निवेशयेत् ॥२३॥

इसके बाद यजमान आचार्य बायें हाथमें कलश लेकर दाहिने हाथसे पुण्याहवाचनाको पढ़ता हुआ भूमिका सिंचन करे और पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां इत्यादि पुण्याहवाचनाको पढ़कर कलशको कुण्डके दाहिने भागमें स्थापन करे ॥ २३ ॥

ततः ॐ ह्रीँ स्वस्तये मङ्गलकुम्भं स्थापयामि स्वाहा ॥
वामे मङ्गलकलशस्थापनं तत्र स्थालीपाकप्रोक्षणपात्रपूजाद्रव्यहोम-द्रव्यस्थापनम् ॥ २४ ॥

इसके बाद "ॐ ह्रीं स्वस्तये" इत्यादि पढ़कर कुंडके बायें भागमें कलश स्थापन करे और वहींपर स्थालीपाक-गन्ध-पुष्प-अक्षत-फल इत्यादिकोंसे सुशोभित पांच पंचपात्री, प्रेक्षणपात्र पूजाद्रव्य और होम द्रव्यको स्थापन करे ॥ २४ ॥

ॐ ह्रीँ परमेष्ठिभ्यो नमो नमः । इति परमात्मध्यानम् ॥ २५ ॥

इसे पढ़कर परमात्माका चिन्तवन करे ॥ २५ ॥

ॐ ह्रीँ णमो अरिहंताणं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा ॥
परमपुरुषस्यार्घ्यप्रदानम् ॥ २६ ॥

यह पढ़कर परमात्माको अर्घ्य दे ॥ २६ ॥

तत इदं यन्त्रं कुण्डमध्ये लिखेत् ॥ ॐ ह्रीँ नीरजसे नमः ।
ॐ दर्पमथनाय नमः । इत्यादि ॥ जलंदर्भैर्गन्धाक्षतादिभि-र्होमकुण्डार्चनम् ॥ २७ ॥

इसके बाद कुण्डके बीचमें "ॐ ह्रीं नीरजसे नमः" "ॐ दर्पनाथाय नमः" इत्यादि जिसे पीछे पूर्ण लिख आये हैं उस मंत्रको लिखे जल-गन्ध-अक्षत-दर्भ आदिसे होम कुंडकी अर्चना करे ॥ २७ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निं स्थापयामि स्वाहा ॥ अग्निस्थापनम् ॥२८॥

इसे पढ़कर कुंडमें अग्निकी स्थापना करे ॥ २८ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं दर्भं निक्षिप्य अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा ॥
अग्निसन्धुक्षणम् ॥ २९ ॥

यह पढ़कर कुंडमें दर्भ डाल कर अग्नि जलावे ॥ २९ ॥

ॐ ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं यं मं हं सं तं पं द्रां द्रां हं सः स्वाहा ॥
आचमनम् ॥ ३० ॥

यह मंत्र पढ़कर आचमन करे ॥ ३० ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अ सि आ उ सा अर्हं प्राणायामं करोमि स्वाहा ॥
त्रिरुच्चार्य प्राणायामः ॥३१॥

इस मंत्रका तीन वार उच्चारण कर प्राणायाम करे ॥ ३१ ॥

ॐ नमोऽर्हते भगवते सत्यवचनसन्दर्भाय केवलज्ञानदर्शनप्रज्वलनाय पूर्वोत्तराग्रं दर्भपरिस्तरणमुदुम्बरसमित्परिस्तरणं च करोमि स्वाहा ॥ होमकुण्डस्य चतुर्भुजेषु पञ्चपञ्चदर्भवेष्टितेन परिधिबन्धनम् ॥ ३२ ॥

“ ॐ नमोऽर्हते ” इत्यादि पढ़कर कुंडके चारों कोनोंपर पांच पांच दर्भको एक साथ बांधकर परिधिबन्धन करे दक्षिण और उत्तरके कोनेपर रक्खे हुए दर्भोंकी नौंकें पूर्व दिशाकी ओर करे और पूर्व पश्चिमके कोनोंपर रक्खे हुए दर्भोंकी नोंकें उत्तरकी ओर करे ॥ ३२ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निकुमार देव आगच्छागच्छ इत्यादि। इत्यादिदेवमाहूय प्रसाद्य तन्मौल्युद्भवस्याग्नेरस्य गार्हपत्यनामधेयमत्र संकल्प्य अर्हद्दिव्यमूर्तिभावनया श्रद्धानरूपदिव्यशक्तिसमन्वितसम्यग्दर्शन भावनया समभ्यर्चनम् ॥ ३३ ॥

“ ॐ ॐ ॐ ॐ ” इत्यादि मंत्र पढ़कर अग्निदेव (अग्नि कुमार) का आव्हान करे, उसे प्रसन्न करे अर्थात् अग्नि जलावे, उस अग्निकी ऊपरकी ज्वालामें ‘ गार्हपत्य ’ इस नामकी कल्पना करे और अर्हन्त भगवानकी दिव्यमूर्तिकी तथा श्रद्धान रूप दिव्यशक्ति युक्त सम्यग्दर्शनकी भावना कर पूजा करे ॥ ३३ ॥

ॐ ह्री ँ क्रौ ँ प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवाराः पञ्चदशतिथिदेवताः आगच्छत आगच्छत इत्यादि कुण्डस्य प्रथममेखलायां तिथिदेवतार्चनम् ॥ ३४ ॥

" ॐ ह्रीँ क्रौं " इत्यादि मंत्रको बोलकर कुंडकी प्रथम मेखलापर पन्द्रह तिथि देवतोंकी पूजा करे ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीँ क्रौँ प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवारा नवग्रहदेवता आगच्छतागच्छतेत्यादि द्वितीयमेखलायां ग्रहपूजा ॥ ३५ ॥

ॐ ह्रीँ क्रौँ इत्यादि मंत्रका उच्चारण कर दूसरी मेखलापर ग्रहोंकी पूजा करे ॥ ३५ ॥

ॐ ह्रीँ क्रौँ प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवाराश्चतुर्णिकायेन्द्रदेवता आगच्छतागच्छतेत्यादि । ऊर्ध्वमेखलायां द्वात्रिंशदिन्द्रार्चनम् ॥ ३६ ॥

यह मंत्र पढ़कर तीसरी मेखलापर बत्तीस इंद्रोंकी पूजा करे ॥ ३६ ॥

ॐ ह्री ँ क्रौ ँ सुवर्णवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण स्वायुधवाहनवधूचिन्ह सपरिवार इन्द्रदेव आगच्छागच्छेत्यादि इन्द्रार्चनम् ॥ एवं लघुपीठेषु दशदिक्पालपूजा ॥ ३७ ॥

यह मंत्र पढ़कर इंद्रकी पूजा करे, इसी तरह वेदी पर आठों दिशाओंमें बने हुए आठ लघुपीठों-पर आठ दिक्पालोंकी पूजा करे ॥ ३७ ॥

ततः ॐ ह्री ँ स्थालीपाकमुपहरामि स्वाहा ॥ पुष्पाक्षतैरुपहार्य स्थालीपाकग्रहणम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद " ॐ ह्रीँ स्थालीपाकमुपहरामि स्वाहा " यह पढ़कर पुष्प अक्षतोंसे भरकर स्थालीपाकको अपने पास रक्खे ॥ ३८ ॥

ॐ ह्री ँ होमद्रव्यमादधामि स्वाहा ॥ होमद्रव्याधानम् ॥ ३९ ॥

इसे पढ़कर होम द्रव्यको अपने पास रक्खे ॥ ३९ ॥

ॐ ह्री ँ आज्यपात्रमुपस्थापयामि स्वाहा ॥ आज्यपात्रस्थापनम् ॥४०॥

यह पढ़कर होम करनेके घीको अपने पास स्थापन करे ॥ ४० ॥

ॐ ह्रीं स्रुचमुपस्करोमि स्वाहा ॥ स्रुचस्तापनं मार्जनं जलसेचनं पुनस्तापनमग्रे निधापनं च ॥ ४१ ॥

यह मंत्र पढ़कर स्रुक (सुची) अर्थात् घी होमनेके पात्रका संस्कार इस प्रकार करे कि प्रथम उसे अग्निपर तपावे सेके इसके बाद उसे पौंछे, इसके बाद उसपर जल सींचे पुनः अग्निपर तपावे। और अपने सामने रक्खें ॥ ४१ ॥

ॐ ह्रीं स्रुवमुपस्करोमि स्वाहा ॥ स्रुवस्थापनं तथा ॥ ४२ ॥

यह मंत्र बोलकर स्रुव अर्थात् होम सामग्रीको होमनेके पात्रका सुचीकी तरह संस्कार करे स्थापना करै ॥ ४२ ॥

ॐ ह्रीं आज्यमुद्वासयामि स्वाहा ॥ दर्भपिण्डोज्वलेन आज्यस्योद्वासनमुत्पाचनमवेक्षणं च ॥ ४३ ॥

यह मंत्र पढ़कर घीको तपावे । वह इस तरह कि दर्भके पूलेको जलाकर घीको उद्वासन (उठावे) उत्पाचन (तपावे) और अवेक्षण (देखें) करे ॥ ४३ ॥

ॐ ह्रीं पवित्रतरजलेन द्रव्यशुद्धिं करोमि स्वाहा ॥ होमद्रव्यप्रोक्षणम् ॥ ४४ ॥

यह मंत्र पढ़कर द्रव्यशुद्धि करे ॥ ४४ ॥

ॐ ह्रीं कुशमाददामि स्वाहा ॥ दर्भपूलमादाय सर्वद्रव्यस्पर्शनम् ॥ ४५ ॥

यह मंत्र पढ़कर दर्भके पूलेको उठाकर सब द्रव्यसे छुवावे ॥ ४५ ॥

ॐ ह्रीं परमपवित्राय स्वाहा ॥ अनामिकांगुल्यां पवित्रधारणम् ॥ ४६ ॥

यह मंत्र पढ़कर अनामिका उंगलीमें पवित्र पहने ॥ ४६ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय स्वाहा ॥ यज्ञोपवीतधारणम् ॥ ४७ ॥

यह मंत्र पढ़कर यज्ञोपवीत पहने ॥ ४७ ॥

ॐ ह्रीं अग्निकुमाराय परिषेचनं करोमि स्वाहा ॥ अग्निपर्युक्षणम् ४८ ॥

यह मंत्र पढ़कर कुंडके चारों ओर पानीकी धार छोड़े ॥ ४८ ॥

ततः ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धकेवलिभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं पञ्चदशतिथिदेवेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं नवग्रहदेवेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं द्वात्रिंशदिन्द्रेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं दशलोकपालेभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा ॥ षडेतान् मन्त्रानष्टादशकृत्वः पुनरावर्तनेनोच्चारयन् स्रुवेण प्रत्येकमाज्याहुतिं कुर्यादित्याज्याहुतयः ॥ ४९ ॥

इसके बाद, " ॐ ह्रीं अर्हं " इत्यादि छह मंत्रको अठारहबार दोहरा कर बोले प्रत्येक मंत्रको बोलकर स्रुची घृताहुति करे। इस तरह एकसौ आठ आहुति हो जाती हैं। इसे घृताहुति कहते हैं ॥ ४९ ॥

ॐ ह्रां अर्हत्परमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा ॥ ॐ ह्रूं आचार्यपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा ॥ ॐ ह्रौं उपाध्यायपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा ॥ ॐ ह्रः सर्वसाधुपरमेष्ठिनस्तर्पयामि स्वाहा ॥ अवांतरे पंच तर्पणानि ॥५०॥

" ॐ ह्रां " इत्यादि मंत्र पढ़कर मध्यमें पांच तर्पण करे। यह तर्पण हर एक द्रव्यका हो, और होम हो, चुकनेके बाद किया जाता है इस लिए इसे अवान्तर तर्पण कहते हैं ॥ ५०।

ॐ ह्रीं अग्निं परिषेचयामि स्वाहा ॥ क्षीरेणाग्निपर्युक्षणम् ॥ ५१

यह मंत्र पढ़कर अग्निको दूधकी धार दे ॥ ५१ ॥

अथ समिधाहुतयः। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा ॥ अनेन मन्त्रेण समिधाहुतयः करेण होतव्याः ॥ इति समिधाहोमः १०८ ॥ ततः षडाज्याहुतयः पञ्च तर्पणानि पर्युक्षणं च॥५२

अब समिधाहुति कहते हैं " ॐ ह्रां " इत्यादि मंत्रके द्वारा हाथसे समिधाकी एकसौ आठ आहुतिया देवें मंत्रोच्चारणभी एकसौ आठ वार करे इसके बाद पूर्वोक्त छह घृताहुतिके मंत्र पढ़कर छह घृताहुति देवे। पांच तर्पण करे और अग्निका पर्युक्षण करे। अग्निके चारों ओर दूधकी धार देनेको पर्युक्षण कहते हैं ॥ ५२ ॥

---

१ नित्य यज्ञमें हमेशह यज्ञोपवीत बदल लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है नित्ययज्ञमें तो उस पुराने यज्ञोपवीतपरही जलगन्ध लगावे और नैमित्तिक यज्ञमें नया यज्ञोपवीत धारण करे।

अथ लवंगाद्याहुतयः ॥ ॐ ह्रां अर्हद्भ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रूं सूरिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रौं पाठकेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं जिनालयेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा। ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं जयाद्यष्टदेवताभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं षोडशविद्यादेवताभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं चतुर्विंशतियक्षेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं चतुर्विंशतियक्षीभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं चतुर्दशभवनवासिभ्यः स्वाहा ॐ ह्रीं अष्टविधव्यन्तरेभ्यः स्वाहा ॐ ह्रीं चतुर्विधज्योतिरिन्द्रेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं द्वादशविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अष्टविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं दशदिक्पालकेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं नवग्रहेभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अष्टविधकल्पवासिभ्यः स्वाहा। ॐ ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा। ॐ स्वाहा भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा ॥ एतान् सप्तविंशतिमन्त्रांश्चतुर्वारानुच्चार्य प्रत्येकं लवंगगन्धाक्षतगुग्गुलुतिलशालिकुङ्कुमकर्पूरलाजागुरुशर्कराभिराहुतीः स्रुचा जुहुयात् ॥ इति लवङ्गाद्याहुतयः ॥ १०८ ॥ ५३ ॥

"ॐ ह्रीं अर्हद्भ्य" इत्यादि सत्ताईस मंत्रोंका चार चार वार उच्चारण कर हरएक मंत्रको लौंग-गन्ध-अक्षत-गुग्गुल-तिल-शाली-कुंकुम-कपूर-लाजा-(भुने चांवल) अगुरु-और शक्कर इनकी सूर्चीसे आहूतियां देवे। इस प्रकार १०८ एकसौ आठ आहूति दे ॥ ५३ ॥

॥ पूर्ववत् षडाज्याहुतिपञ्चतर्पणैकपर्युक्षणानि ॥५४॥

इसके बाद पहलेकी तरह छह घृताहूति पंचतर्पण और एक पर्युक्षण करे। इनके करते समय पूर्वोक्त मंत्रोंको बोलता जाय ॥ ५४ ॥

॥ अथ पीठिकामन्त्रः ॥

ॐ सत्यजाताय नमः। ॐ अर्हज्जाताय नमः ॐ परमजाताय नमः। ॐ अनुपमजाताय नमः ॐ स्वप्रधानाय नमः। ॐ अचलाय नमः। ॐ अक्षयाय नमः। ॐ अव्याबाधाय नमः। ॐ अनन्तज्ञानाय नमः। ॐ अनन्तदर्शनाय नमः। ॐ अनन्तवीर्याय नमः। ॐ अनन्तसु-

द्याय नमः । ॐ नीरजसे नमः । ॐ निर्मलाय नमः । ॐ अच्छेद्याय नमः । ॐ अभेद्याय नमः । ॐ अजराय नमः । ॐ अपराय नमः । ॐ अप्रमेयाय नमः । ॐ अगर्भवासाय नमः । ॐ अक्षोभ्याय नमः । ॐ अविलीनाय नमः । ॐ परमघनाय नमः । ॐ परमकाष्ठयोगरूपाय नमः । ॐ लोकाग्रनिवासिने नमः । ॐ परमसिद्धेभ्यो नमः । ॐ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमः । ॐ केवलिसिद्धेभ्यो नमः । ॐ अन्तकृत्सिद्धेभ्यो नमः ॐ परंपरासिद्धेभ्यो नमः । ॐ अनादिपरमसिद्धेभ्यो नमः । ॐ अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमः । ॐ सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्ह अग्नीन्द्राय स्वाहा ॥ सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु । अपमृत्युनाशनं भवतु ॥ पीठिकामन्त्राः ॥ पीठिकामन्त्रैरेतैः षट्त्रिंशद्भेदभिन्नैः प्रतिमन्त्रं त्रिवारमुच्चारितैः शाल्यन्नक्षीरघृतभक्ष्यपायसशर्करारम्भाफलैर्मिलितैरन्नाहुतीः स्रुचा जुहुयात् ॥ १०८ ॥ पुनराज्याहुतितर्पणपर्युक्षणानि ॥ ५५ ॥

"ॐ सत्यजाताय नमः" इत्यादि छत्तीस मंत्र पीठिका मंत्रोंका हरएकका तीन तीन वार उच्चारण करें प्रत्येकके अन्तमें, शाली, अन्न, दूध, घी, दूसरे खानेके पदार्थ, खोवा, शक्कर और केले इन सबको मिलाकर सूचीके द्वारा अन्नाहूति देवे । यह भी १०८ वार हो जाती है इसके बाद फिर छह घृताहूति पांचतर्पण और एक पर्युक्षण करे ॥ ५५ ॥

॥ अथ पूर्णाहुतिः ॥

ॐ तिथिदेवाः पञ्चदशधा प्रसीदन्तु । नवग्रहदेवाः प्रत्यवायहरा भवन्तु । भावनादयो द्वात्रिंशद्देवा इन्द्राः प्रमोदन्तु । इन्द्रादयो विश्वे दिक्पालाः पालयन्तु । अग्नीन्द्रमौल्युद्भवाऽप्यग्निर्देवता प्रसन्ना भवतु । शेषाः सर्वेऽपि देवा एते राजानं विराजयन्तु । दातारं तर्पयन्तु । संघं श्लाघयन्तु । वृष्टिं वर्षयन्तु । विघ्नं विघातयन्तु । मारीं निवारयन्तु । ॐ ह्रीं नमोऽर्हते भगवते पूर्णज्वालितज्ञानाय सम्पूर्णफलार्घ्यां पूर्णाहुतिं विदध्महे ॥ इति पूर्णाहुतिः ॥ ५६ ॥

"ॐ तिथिदेवाः" इत्यादि मंत्रोंके द्वारा पूर्णाहूति देवे । पूर्णाहूतिमें फल और पूजाका द्रव्य होना चाहिए । पूर्णाहूतिके मंत्र पूर्ण हों वहां तक बराबर एक सरीखी घीकी धार छोड़ता रहे ॥५६॥

ततो मुकुलितकरः—ॐ दर्पणोद्योतज्ञानप्रज्वलित सर्वलोकप्रकाशक भगवन्नर्हन् ! श्रद्धां मेधां प्रज्ञां बुद्धिं श्रियं बलं आयुष्यं तेज आरोग्यं सर्वशान्तिं विधेहि स्वाहा। एतत्पठित्वा सम्प्रार्थ्य शान्तिधारां निपात्य पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य चैत्यादिभक्तित्रयं चतुर्विंशतिस्तवनं वा पठित्वा पञ्चाङ्गं प्रणम्य तद्दिव्यभस्म समादाय ललाटादौ स्वयं धृत्वा अन्यानपि दद्यात् ॥ ५७ ॥

इसके बाद हाथ जोडकर " ॐ दर्पणोद्योत " इत्यादि मंत्र पढ़े, प्रार्थना करे, शान्ति धारा दे, पुष्पाँजलि क्षेपण करे, चैत्य वगैरहकी तीन भक्ति अथवा चौवीस तीर्थकरोंकी स्तुति पढ़े और पंचांग नमस्कार कर होमकी दिव्य भस्मको लेकर ललाट वगैरह स्थानोंपर लगावे और औरोंकोभी देवे ॥५७॥

इति होमविधिं कृत्वा तत्रस्थां जिनप्रतिमां सिद्धायतनयन्त्राणि पूर्वनिर्मापितजिनगृहाभ्यन्तरे संस्थाप्य पुनःपुनर्नमस्कारं कृत्वा नित्यव्रतं गृहीत्वा देवान्विसर्जयेत् ॥ ५८ ॥

इस तरह होम विधिको करके होम स्थानमें लाकर विराजमान की हुई जिन प्रतिमाको और सिद्धादि यंत्रोंको जिनमन्दिरमें स्थापन कर वारवार नमस्कार कर, नित्यव्रत ग्रहण कर, वाकीके सब देवोंका विसर्जन करे ॥ ५८ ॥

क्षेत्रपालादिकार्चन.

ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णाः सर्वलक्षणसम्पूर्णाः स्वायुधवाहनसमेताः क्षेत्रपालाः ! श्रियो गन्धर्वाः किन्नराः प्रेता भूताः सर्वे ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा इमं सार्घ्यं चरुममृतमिव स्वस्तिकं यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत। इति क्षेत्रपालादिद्वारपालानभ्यर्चयेत् ॥ ५९ ॥

" ॐ ह्रीं " इत्यादि मंत्र पढ़कर क्षेत्रपालादि द्वारपालोंकी पूजा करे अर्थात् गंधादि अष्टद्रव्योंका अर्घ, नैवेद्य, स्वस्तिक और यज्ञ भाग चढ़ावे ॥५९॥

वास्तुदेवतार्चन.

ततो निजगृहाङ्गणमध्यदेशप्रकल्पितायां यथोचितायामविस्तारोत्सेधचतुरस्रवेदिकायां—ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्णाः सर्वलक्षणसम्पूर्णा यानायुधयुवतिजनसहिता वास्तुदेवाः ! सर्वेऽपि ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा इदमर्घ्यं चरुममृतमिव स्वस्तिकं यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत। इति वास्तुदेवान् समर्चयेत् ॥ ६० ॥

इसके बाद, अपने घरके बीच आंगनमें बनी हुई योग्य लम्बी, चौड़ी, ऊँची और चौकोन वेदीके ऊपर " ॐ ह्रीं " इत्यादि मंत्र पढ़कर वास्तु देवोंका पूजन करे ॥ ६० ॥

तिथिदेवतार्चन.

ततस्तत्र-ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण यानायुधयुवतिजनसहित यक्षदेव ! इदमर्घ्यं बलिं गृहाण गृहाण इति प्रतिपद्दिने यक्षदेवं समर्चयेत् । द्वितीयायां तिथौ वैश्वानरं, तृतीयायां राक्षसं, चतुर्थ्यां निर्ऋतिं, पञ्चम्यां पन्नगं, षष्ठयामसुरं, सप्तम्यां सुकुमारं अष्टम्यां पितृदेवं, नवम्यां विश्वमालिनं, दशम्यां चमरं, एकादश्यां वैरोचनं. द्वादश्यां महाविद्यां. त्रयोदश्यां मारदेवं, चतुर्दश्यां विश्वेश्वरं, पर्वान्ते पिण्डभुजं, एवं तत्तद्दिनेषु तिथिदेवता अभ्यर्चयेत्॥ ६१ ॥

इसके बाद वहीं पर " ॐ ह्रीं " इत्यादि मंत्र पढ़कर जिस दिन जो तिथि हो उसी देवताकी पूजा करे। अर्थात् प्रतिपत् (पड़वा) के दिन यक्षदेवकी, दौजको वैश्वानरकी, तीजको राक्षसोंकी, चौथको निर्ऋतिकी, पंचमीको पन्नगकी, छठको असुरकी, सप्तमीको सुकुमारकी, अष्टमीको पितृदेवकी, नवमीको विश्वमालिनीकी, दशमीको चमरकी, एकादशीको वैरोचनकी, द्वादशीको महाविद्याकी, त्रयोदशीको मारदेवकी, चतुर्दशीको विश्वेश्वरकी, पर्वके अंत दिनको अर्थात् अमावास्या और पूर्णमासीको पिण्डभुजकी पूजा-सत्कार करे। ।६१ ॥

वारदेवतार्चन.

ततः-ॐ ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्ण सर्वलक्षणसम्पूर्ण यानायुधयुवतिजनसहित आदित्य ! इमं बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा । एवं रवौ रविं, सोमे सोमं, भौमे भौमं, बुधे बुधं, बृहस्पतौ गुरुं, शुक्रे शुक्रं, शनौ शनिं, एवमर्चयेत् ॥ ६२ ॥

इसके बाद " ॐ ह्रीं " इत्यादि मंत्र पढ़कर रविवारको सूर्यकी, सोमवारको चन्द्रकी, मंगलको मंगलकी, बुधको बुधकी, बृहस्पतिको बृहस्पतिकी, शुक्रको शुक्रकी, और शनिको शनिकी पूजा करे ॥ ६२ ॥

ग्रहदेवतार्चन.

ततो गृहिणी गृहाभ्यन्तरे पूर्वोक्तसत्यदेवता अर्हदादयः, क्रियादेवता अग्न्यादयः, गृहदेवता धनदादयः, कुलदेवताः पद्मावत्यादयः, एतान्देवानर्चयेत् मन्त्रपूर्वकम् । ततो द्वारपालान् पूजयेत् । जलाञ्जलिना पित्रदेवाँस्तर्पयेत् । इति गृहस्थानां नित्यकर्म ॥ ६३ ॥

इसके बाद यजमानकी धर्मपत्नी अपने घरमें अर्हदादि सत्यदेवतोंकी, अग्निआदि क्रिया देवोंकी, धनद आदि गृहदेवतोंका और पद्मावती आदि कुलदेवतोंकी मंत्र पूर्वक पूजा करे, इसेके बाद द्वारपालोंकी पूजा करे, तथा जलाञ्जलिसे पितृदेवोंका तर्पण करे। इस तरह गृहस्थोंका नित्य कर्म होता है ॥ ६३ ॥

एवं सुमन्त्रविधिपूर्वकमत्र कार्यं, देवार्चनं सुखकरं जिनराजमार्गम्।
कुर्वन्ति ये नरवरास्तदुपासकाः स्युः, स्वर्गापवर्गफलसाधनसाधकाश्च ॥१॥

इस तरह मंत्रोंके द्वारा विधिपूर्वक सुख प्रदान करनेवाला देवार्चन करना चाहिए। जो पुरुष जिनराजके बताये हुए मार्गका अनुसरण-आचरण करते हैं वे उनके उपासक और स्वर्ग-मोक्षके फलोंके कारणोंको साधनेवाले बन जाते हैं॥ १ ॥

कर्मप्रतीतिजननं गृहिणां यदुक्तं
श्रीब्रह्मसूरिवरविप्रकवीश्वरेण।
सम्यक्तदेव विधिवत्प्रविलोक्य सूक्तं
श्रीसोमसेनमुनिभिः शुभमन्त्रपूर्वम् ॥ २ ॥

श्री ब्रह्मसूरिने गिरिस्तोंको नित्य नैमित्तिकका ज्ञान होनेके लिए जो उपाय बताया है उसीको अच्छी तरह देखकर शुभ मंत्रों पूर्वक, विधि सहित, मुझ सोमदेव मुनिने कहा है ॥ २ ॥

इति धर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारे पञ्चमोऽध्यायः।

छठा अध्याय।



अनन्तमहिमोपेतमनन्तगुणसागरम् ।
अनन्तसुखसम्पन्नमनन्तं प्रणमाम्यहम् ॥१॥

जो अनन्त महिमा युक्त हैं, अनन्त गुणोंके समुद्र हैं, और अनन्त सुख सम्पन्न हैं उन अनन्तनाथ परमात्माको मैं, नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

अब जिन चैत्यालयका लक्षण वताते हैं—

शकुनं श्रीगुरुं पृष्ट्वा जप्त्वा कर्णपिशाचिनीम् ।
तदुपदेशतः कुर्याज्जिनागारं मनोहरम् ॥ २ ॥

अपने श्रीगुरुसे शकुन पूछकर और कर्णपिशाचिनी मंत्रको जपकर उन (गुरु) के उपदेशके अनुसार मनोहर जिनमन्दिर बनवावे ॥ २ ॥

कर्णपिशाचिनी यंत्र।

यन्त्रं विलिख्य पूर्वोक्तविधिना कांस्यभाजने ।
तस्याग्रे तु जपं कुर्यात् काञ्जिकाहारभुक्तिभाक् ॥३॥

पूर्वोक्त विधान पूर्वक कांसीके वर्तनपर मंत्र लिखकर उस यंत्रके सामने जप करे। जप करनेवाला पुरुष उस दिन केवल काञ्जिका—आहार करे ॥ ३ ॥

इस तरहका यंत्र बनवावे।

ॐ जोगे मग्गे०

ॐ ह्रीं सः ह्ल्वीं ह ह्रीं ॐ
ॐ यन्त्रस्थापना ॐ

इति यन्त्रम् ।

अर्थ मंत्रः—ॐ जोगे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिनपार्श्वे श्रीं ह्रीं क्लीं कर्णपिशाचिनीं नमः। इति मन्त्रः

यंत्रके सामने यह मंत्र जपे।

जातीपुष्पसहस्राणि जप्त्वा द्वादश सद्दृशः ।
विधिना दत्तहोमस्य विद्या सिद्ध्यति वर्णिनः ॥ ४ ॥

उक्त मंत्रके जाति पुष्पोंद्वारा बारह हजार जाप करनेसे विधिपूर्वक होम करनेवाले सम्यग्दृष्टि ब्रह्मचारीको विद्या (कर्णपिशाचनी मंत्र) सिद्ध होती है ॥ ४ ॥

सानाहते मूर्ध्नि मुखज्योतिःस्त्रीकारधीरिमाम् ।
जपन् शृणोति च पश्यत्यपि जाग्रच्छुभाशुभम् ॥ ५ ॥

अनाहत मंत्र युक्त ह्रीँ इस अक्षरके मस्तकपर जिसके मुखकी ज्योति है और जिसका स्त्री जैसा आकार है ऐसे इस कर्णपिशाचेनी मंत्रका जाप करनेवाला पुरुष अपने भावी शुभ-अशुभको जानता है और प्रत्यक्ष देखता है ॥ ५ ॥

जिन मन्दिरकी भूमिका लक्षण.

भूपातालक्षेत्रपीठवास्तुद्वारशिलार्चनाः ।
कृत्वा नरं प्रविश्यार्चां न्यस्यात्तारोपयेद्ध्वजम् ॥ ६ ॥
जैनं चैत्यालयं चैत्यमुत निर्मापयेच्छुभम् ।
वाञ्छन् स्वस्य नृपादेश्च वास्तुशास्त्रं न लङ्घयेत् ॥ ७ ॥

भूपाताल, (मंदिरकी नीव) क्षेत्र, पीठ, वास्तु, द्वार, और शिला इनकी पूजा कर पुतला रखकर उसकी पूजा करे और यहाँपर ध्वजारोपण करे । अपने और राजा–प्रजाको शुभ की कामना करता हुआ जिन चैत्यालय और जिन प्रतिमा बनवावे । तथा वास्तु शास्त्रका उल्लंघन न करे अर्थात् सब विधि वास्तुशास्त्रके अनुसार करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

रम्ये स्निग्धां सुगन्धादिदूर्वाद्याढ्यां स्वतः शुचिम् ।
जिनजन्मादिना वाऽस्मै स्वीकुर्याद्भूमिमुत्तमाम् ॥८॥

जो उत्तम रमणीय स्थान में हो, स्निग्ध हो, सुगन्ध आदि या दूर्वा (दूब) आदि संयुक्त हो, स्वयं पवित्र हो, अथवा जिनेन्द्रके पंचकल्याण आदिसे पवित्र हो ऐसी उत्तम जमीन जिन मन्दिर बनवानेके लिये स्वीकार करे–पसन्द करे ॥८॥

उत्तम मध्यम और जघन्य भूमिकी परीक्षा.

खात्वा हस्तमधः पूर्णे गर्ते तेनैव पांसुना ।
तदाधिक्यसमोनत्वैः श्रेष्ठा मध्याऽधमा च भूः ॥९॥

उस जमीनमें एक हाथ गहरा और एक हाथ चौड़ा एक गढ़ा खोदे और उसी मिट्टीसे उस गढ्ढेको भरदे। यदि वह मिट्टी उस गढ़ेके भर जानेपर गढ़ेसे ऊंची रह जाय तो जमीन को उत्तम समझे, यदि मिट्टी गढ़ेके बराबर हो तो मध्यम और गढ़ेसे नीची रह जाय तो जघन्य समझे ॥ ९ ॥

प्रदोषे कटसंरुद्धतमिस्रायां च तद्भुवि।
ॐ हूं फडित्यस्त्रमन्त्रत्रातायामामभाजने ॥१०॥
आमकुम्भोर्ध्वगे सर्पिःपूर्णे पूर्वादितः सिताम्।
रक्तां पीतासितां न्यस्य वर्तिं सर्वाः प्रबोध्य ताः ॥११॥
अनादिसिद्धमन्त्रेण मन्त्रयेदाघृतक्षयात्।
शुद्धं ज्वलन्तीषु शुभं विध्यातीष्वशुभं वदेत् ॥ १२ ॥

ॐ हूं फट् इति अस्त्रमन्त्रः। ॐ णमो अरहंताणमित्यादि धम्मो-सरणं पव्वज्जामिपर्यन्तं ह्रौं शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा इत्यनादिमन्त्रः।

जमीनको भली बुरी जाननेका दूसरा उपाय यह है कि सूर्यास्त हो जानेपर जब कुछकुछ अन्धेरा छा जाय तब थोड़ीसी जमीनके चारों और परकोटेके मानिन्द चटाई बांध दे जिससे उसमें हवा का प्रवेश न हो सके। बाद उस जमीनपर "ॐ हूँ फट्" यह अस्त्र मंत्र लिखे उसके ऊपर एक मिट्टीका कच्चा घड़ा रख कर उस घड़ेपर एक कच्चा मिट्टीका दिया रख दे. उस दियेको घीसे लबालब भरदे, और उसमें पूर्व दिशामें सफेद, दक्षिण दिशामें लाल, पश्चिम दिशामें पीली और उत्तर दिशामें काली बत्ती धरकर सब बत्तियोंको जलावे और उन्हे अनादि सिद्धमंत्रके द्वारा मंत्रित करदे। यदि घृत निबटने तक वे बत्तियां साफ जलती रहें तो जमीनको शुभ समझे और यदि बुझती हुई मालूम पड़ें तो अशुभ समझे ॥१०॥११॥१२॥

"ॐ हूँ फट्" यह अस्त्र मंत्र है। ॐणमो इत्यादि अनादि मंत्र है।

पातालवास्तुपूजन।

एवं संगृह्य सद्भूमिं सुदिनेऽभ्यर्च्य वास्त्वधः।
संशोध्याध्यर्धमम्भोभिः प्राग्धरावधि वा तथा ॥१३॥
पातालवास्तु सम्पूज्य प्रपूर्याप्याप्य तां समात्।
प्रासादं लोकशास्त्रज्ञो दिशः संशोध्य सूत्रयेत् ॥ १४ ॥

इस प्रकार जमीनकी परीक्षा कर अच्छे मुहूर्तमें उसकी पूजा करे। बाद उस जमीनको पानी सींच कर शुद्ध करे। उसमें एक खड्डा खोदे। उस खड्डेमें पाताल वास्तुकी पूजा करे। बाद छोटेछोटे

पत्थरके टुकडोंसे उस गढ़ेको पूरकर उसे पहली जमीनके बराबर समतल कर दे। इस प्रकार लोक व्यवहार और वास्तुशास्त्रको जाननेवाला गिरस्त दिशाओंका विचार कर जिनमन्दिर बनवाना आरंभ करे ॥ १३॥१४ ॥

प्रतिष्ठादिषु शास्त्रेषु यदुक्तं गेहलक्षणम् ।
तेन मार्गेण संस्कुर्याज्जिनागारं शुभावहम् ॥ १५ ॥

प्रतिष्ठादिशास्त्रोंमें जो मकान बनवानेका लक्षण कहा गया है उसीके अनुसार शुभको देनेवाला जिनमन्दिर बनवावे ॥१५॥

मूलेषु पारदं क्षिप्त्वा श्रीखण्डं कुंकुमं तथा ।
प्रथमं स्थापयेद्गर्भे कोणेषु च चतुष्टयम् ॥ १६ ॥
तेषामुपरि संस्थाप्य शिलाः पञ्च यथाक्रमम् ।
पृथङ्मन्त्रैश्च सम्पूज्य पञ्चानां परमेष्ठिनाम् ॥ १७ ॥
दानं तक्षादियुक्तानां दत्वा सन्मानपूर्वकम् ।
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं स्वक्षेत्रे भ्रामयेद्बलिम् ॥ १८ ॥

पाया भरनेके पत्थर रखनेकी जगहपर पारा, घिसाहुआ चन्दन, तथा कुंकुम रखकर उनके ऊपर यथाक्रमसे पांच पत्थर रक्खे उनमेंसे एक पत्थर उठा कर प्रथम मध्यमें रक्खे. और चार पत्थर जुदा जुदा चारों कोनोंमें रक्खे बाद पंच परमेष्ठीकी पृथक् पृथक् मंत्रोंद्वारा पूजा कर कारीगरोंको आव-आदरपूर्वक इनाम देकर सारे विघ्नोंकी शान्तिके लिए उस क्षेत्रकी पूजा करे ॥ १६॥१७॥१८॥

पीठबन्धं ततः कुर्यात्प्रासादस्यानुसारतः ।
आदौ गर्भगृहं द्वारे ततः सूत्रनिवासकम् ॥ १९ ॥
ततो मण्डपविन्यासं वेदिकास्थानमुत्तमम् ।
द्वाराद्बहिश्चतुःपार्श्वे चित्रशालां मनोहराम् ॥ २० ॥
व्याख्यानकारणस्थानं नाट्यशालां विचित्रिताम् ।
वाद्यनिर्घोषकास्थानं मानस्तम्भं मनोहरम् ॥ २१ ॥
इत्यादिलक्षणोपेतं जिनगेहं समाप्य च ।
जिनबिम्बार्थमानेतुं गच्छेच्छिल्पिसमन्वितः ॥ २२ ॥
सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे वाद्यवैभवसंयुतः ।
प्रसिद्धपुण्यदेशेषु नदीनगवनेषु च ॥ २३ ॥
सुस्निग्धां कठिनां चैव सुखदां सुस्वरां शिलाम् ।
समानीय जिनेन्द्रस्य बिम्बं कार्यं सुशिल्पिभिः ॥ २४ ॥

पश्चात्, जिनमन्दिरकी लंबाई चौड़ाईके अनुसार पीठबन्ध अर्थात् वेदी रखनेके लिए एक चबूतरा बनवाले। बाद सबसे पहले गर्भागार तैयार कराया जाय। इसके बाद क्रमसे दरवाजे, सूत्रनिवासनामका स्थान, मण्डप, और वेदिका बनवावे। मण्डपके दरवाजोंसे बाहर चारों पसवाड़ोंमें एक मनोहर चित्रशाला, शास्त्र–व्याख्यान स्थान (स्वाध्याय शाला), हरएक प्रकारके चित्रामोंसे चित्रित एक नाट्यशाला, वाद्यशाला (बाजे बजानेका स्थान) और एक सुन्दर मानस्तंभकी रचना करावे। इत्यादि सुलक्षणोंसे भरापूरा जिनमंदिर बनवावे। जब मन्दिर बनकर पूर्ण होजाय तब कारीगारोंको साथ लेकर अच्छे मुहूर्तमें गाजे बाजे और उत्तम ठाट–बाट के साथ जिनबिंब बनवानेके लिए शिला लानेको जावे। प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुण्यस्थानोंमें घूमकर नदी, पर्वत और वनमें जाकर, अच्छी चिकनी, कठिन, सुखदेनेवाली, बजानेसे जिसमें सुर अच्छा निकलता हो ऐसी उत्तम शिला लाकर उसे जिनबिंब बनवानेके लिए अच्छे शिल्पिकारोंके सिपुर्द करे ॥ १९ ॥

जिनबिंबलक्षण.

कक्षादिरोमहीनाङ्गश्मश्रुरेखाविवर्जितम् ।
स्थितं प्रलम्बितहस्तं श्रीवत्साढ्यं दिगम्बरम् ॥ २५ ॥
पल्यङ्कासनं वा कुर्याच्छिल्पिशास्त्रानुसारतः ।
निरायुधं च निःस्त्रीकं भ्रूक्षेपादिविवर्जितम् ॥ २६ ॥
निराभरणकं चैव प्रफुल्लवदनाक्षिकम् ।
सौवर्णं राजतं वाऽपि पैत्तलं कांस्यजं तथा ॥ २७ ॥
प्रावालं मौक्तिकं चैव वैडूर्यादिसुरत्नजम् ।
चित्रजं च तथा लेप्यं क्वचिच्चन्दनजं मतम् ॥ २८ ॥
प्रातिहार्याष्टकोपेतं सम्पूर्णावयवं शुभम् ।
भावरूपानुविद्धाङ्गं कारयेद्बिम्बमर्हतः ॥ २९ ॥

जो जिनबिंब तैयार कराया जाय वह इन लक्षणोंसे युक्त होना चाहिए. जिनबिंबके कूख आदि स्थानोंमें बालोंके चिन्ह न हों, हजामत वगैरह की रेखा न हो, खड्गासनहो, जिसके दोनों हाथ सीधे लम्बे लटकते हुए हों, श्रीवत्स चिन्हवाला हो, दिगम्बर हो, अथवा खड्गासन न हो तो पल्यकासन (पद्मासन) हो अर्थात् खड्गासन या पद्मासन इन दोनोंमेंसे कोई सा आकारवाला हो यह नहीं कि खड्गासन ही हो या पद्मासन ही हो, जिसकी रचना शिल्पशास्त्रके अनुसार हो, गदा तोमर आदि आयुधोंसे रहित हो, स्त्री रहित हो, भ्रू-क्षेप आदि दोषोंसे रहित हो, आभरण आदि से रहित हो, जिसका चेहरा और नेत्र प्रफुल्लित हो, वह जिनबिंब चाहे पत्थरका हो, चाहे सौना, चांदी, पीतल, कांसा, प्रवाल, मोती और अच्छे २ वैडूर्यादि रत्नोंका हो। तथा चित्रज—चित्रका लेप्य—मन्दिरकी दिवालपर चित्रामकी बनीहुई और कहीं कहीं चन्दनकी प्रतिमा भी मानी गई

है, छत्र चामर आदि आठ प्रातिहार्योंसे युक्त हो, जिसके शारीरिक अवयव परिपूर्ण और शुभ हों, देखनेमें ऐसा हो कि जो मनुष्योंके भावोंको अपनी ओर खेंचती हो अर्थात् वीतरागता को लिए हुए हो ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं सिद्धबिम्बमपीदृशम् ।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमम् ॥ ३० ॥

प्रातिहार्य को छोड़ सिद्ध-बिम्ब भी ऐसाही होना चाहिए। तथा आचार्य उपाध्याय और साधुओं की प्रतिमा भी आगमके अनुसार ऐसीही होनी चाहिए ॥३०॥

वामे च यक्षीं बिभ्राणं दक्षिणे यक्षमुत्तमम् ।
नवग्रहानधोभागे मध्ये च क्षेत्रपालकम् ॥ ३१ ॥
यक्षाणां देवतानां च सर्वालङ्कारभूषितम् ।
स्ववाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ ३२ ॥

उस अर्हन्तकी प्रतिमाके बाईं ओर यक्षी हो, दाहिनी ओर यक्ष हो, प्रतिमाके नीचले भागमें नवग्रह हों, पीठके मध्यमें क्षेत्रपाल हो। तथा यक्षों और यक्षियों की प्रतिमा सम्पूर्ण अलंकारोंसे सजी हुई, अपने अपने वाहन और आयुधोसे युक्त सर्वांग सुन्दर बनावे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

लक्षणैरपि संयुक्तं बिम्बं दृष्टिविवर्जितम् ।
न शोभते यतस्तस्मात्कुर्याद्दृष्टिप्रकाशनम् ॥ ३३ ॥

यदि प्रतिमा उक्त लक्षणोंसे युक्त हो परन्तु उसकी दृष्टि--नजर ठीक ठीक न हो तो वह देखने में सुन्दर नहीं लगती है, इस लिए प्रतिमा की दृष्टि स्पष्ट बनवाना चाहिए ॥ ३३ ॥

प्रतिमाकी दृष्टि व हीनाधिक अंग-उपांगका फल।

अर्थनाशं विरोधं च तिर्यग्दृष्टेर्भयं तदा ।
अधस्तात्पुत्रनाशं च भार्यामरणमूर्ध्वदृक् ॥ ३४ ॥
शोकमुद्वेगसन्तापं सदा कुर्याद्धनक्षयम् ।
शान्ता सौभाग्यपुत्रार्थं शान्तिवृद्धिप्रदानदृक् ॥ ३५ ॥
सदोषा च न कर्तव्या यतः स्यादशुभावहा ।
कुर्याद्रौद्री प्रभोर्नाशं कृशाङ्गी द्रव्यसंक्षयम् ॥ ३६ ॥
संक्षिप्ताङ्गी क्षयं कुर्याच्चिपिटा दुःखदायिनी ।
विनेत्रा नेत्रविध्वंसी हीनवक्त्रा त्वभोगिनी ॥ ३७ ॥

व्याधिं महोदरी कुर्याद्धृद्रोगं हृदये कृशा ।
अङ्गहीना सुतं हन्याच्छुष्कजङ्घा नरेन्द्रहा ॥ ३८ ॥
पादहीना जनं हन्यात्कटिहीना च वाहनम् ।
ज्ञात्वैवं पूजयेज्जैनीं प्रतिमां दोषवर्जिताम् ॥ ३९ ॥

प्रतिमा की दृष्टि यदि टेढ़ी हो तो प्रतिमा बनवाने वालेके धनका नाश होता है, सबसे वैर विरोध पड़जाता है, और उसको नाना प्रकारके भय उत्पन्न होते रहते हैं। यदि उसकी दृष्टि नीचेको हो तो पुत्रका नाश होता है, यदि दृष्टि ऊपरको हो तो स्त्रीका मरण होता है, और वह शोक, उद्वेग सन्ताप और धनका क्षय करती है। यदि प्रतिमा शान्त हो तो वह सौभाग्य और पुत्रोत्पात्तिके लिए और शान्तिको बढ़ानेवाली होती है; सदोष प्रतिमा कभी न बनवाना चाहिए, क्योंकि वह अशुभ करनेवाली होती है। रुद्राकार प्रतिमा स्वामीका नाश करनेवाली और कृश अंगवाली प्रतिमा द्रव्यका क्षय करनेवाली होती है। सिकुडे हुए अंगवाली प्रतिमा कुलका क्षय करती है, चिपटी दुःख करनेवाली होती है, नेत्ररहित प्रतिमा नेत्रका विध्वंस करनेवाली होती है। मुखरहित प्रतिमा भोगोंको हरण करने वाली होती है। बड़े पेटवाली व्याधि उत्पन्न करती है, हृदयमें कृश प्रतिमा हृदयमें रोग पैदा करती है, अंगहीन प्रतिमा पुत्रका नाश करती है, शुष्क जंघावाली राजाका घात करनेवाली होती है पैरहीन प्रतिमा मनुष्योंका क्षय करती है। कटिहिन प्रतिमा सवारीके वाहन आदिका क्षय करनेवाली होती है। इस लिए इन सब दोषोंको जानकर जैनियोंको निर्दोष प्रतिमाकी पूजा करना चाहिए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

प्रतिष्ठां च यथाशक्ति कुर्याद्गुरूपदेशतः ।
स्थिरं चानुचलं बिम्बं स्थापयित्वाऽत्र पूजयेत् ॥ ४० ॥

गुरुके उपदेशानुसार अपनी शक्ति-माफिक प्रतिमा बनवावे। तथा स्थिर किंवा चल प्रतिमाकी स्थापना कर उसकी पूजा करे ॥४०॥

गिरस्तोंके घरोंमें रखने योग्य प्रतिमा।

द्वादशांगुलपर्यन्तं यवाष्टांशादितः क्रमात् ।
स्वगृहे पूजयेद्बिम्बं न कदाचित्ततोऽधिकम् ॥ ४१ ॥

अपने घरमें यवके आठवें भागको आदि लेकर क्रमसे बारह अंगुलपर्यन्तकी प्रतिमाकी पूजा करे इससे अधिक आकारवाली प्रतिमाकी घरमें पूजा कभी न करे। भावार्थ—घरमें प्रतिमा कमसे कम जौके आठवें हिस्से प्रमाण और जियादासे जियादा बारह अंगुल—एक वेंत प्रमाण विराजमान करे इससे अधिक नही ॥ ४१ ॥

१ न वितस्त्यधिकां जातु प्रतिमां स्वगृहेऽर्चयेत् ।

चैत्यालयस्य चैत्यस्य लक्ष्म संक्षेपतो मया।
वर्णितं च ततो वक्ष्ये वन्दनादिविचारकम् ॥ ४२ ॥

यहां तक चैत्य और चैत्यालयका लक्षण संक्षपसे कहा गया, अब इसके आगे वन्दना आदिका विचार करते हैं ॥ ४२ ॥

होमशालासे उठकर चैत्यालय-मन्दिरको जावे।

तस्मात्स्वस्थमनीभवन् भवभयाद्भीतः सदा धार्मिको
मध्येनागरिकं जिनेन्द्रभवनं घण्टाध्वजाभूषितम्।
धर्मध्यानपरास्पदं सुखकरं सद्द्रव्यपूजान्वित
ईर्यायाः पथशोधयन् स यतिवद्गेहाद्व्रजेच्छ्रावकः ॥ ४३ ॥

होम आदिसे स्वस्थ चित्त हो कर, संसारके सम्पूर्णभयोंसे हमेशह डरता हुआ, धार्मिक गिरस्त, उत्तम पूजासामग्री साथमें लेकर ईर्यापथशुद्धिपूर्वक, नगरके बीचमें बने हुए, घंटा-ध्वजाओंसे सुसज्जित, धर्म्यध्यानके करनेका उत्कृष्ट स्थान, सुखको करनेवाले जिनचैत्यालयको महामुनिकी तरह अपने घरसे रवाना होवे ॥ ४३ ॥

बहिर्द्वारे ततः स्थित्वा नमस्कारपुरस्सरम्।
संस्तुयाच्छ्रीजिनागारं परमानन्दनिर्भरम् ॥ ४४ ॥

वहां पहुंचकर जिनमंदिरको नमस्कार करे और बाहर दरवाजेपर खड़ा रह कर परम आनंद करनेवाले श्रीजिन-चैत्यालयकी स्तुति करे ॥ ४४ ॥

सपदि विजितमारः सुस्थिताचारसारः
क्षपितदुरितभारः प्राप्तसद्बोधपारः।
सुरकृतसुखसारः शंसितश्रीविहारः
परिगतपरपुण्यो जैननाथो मुदेऽस्तु ॥ ४५ ॥

वे जिन भगवान् मेरे कल्याणके करनेवाले होवें। जिनने क्षणभरमें कामदेवको अपने काबूमें कर लिया है, जो सम्यक् आचरणपर आरूढ हो चुके हैं, जिनने चार घातियारूप महापापके बोझको अपनेसे अलहदा कर दिया है, जो सद्बोध-के पारको पाचुके हैं, जिनके लिए देवोंके द्वारा सुख-सामग्री जुटाई जाती है, जिनका विहार अत्यन्त प्रशंसनीय है और जिनने उत्कृष्ट पुण्य प्राप्त किया है। यह श्लोक पढ़कर नमस्कार करे ॥४५॥

उच्चैर्गोपुरराजितेन सुवृतं सालेन रम्येन वै
शालामण्डपतोरणान्वितवरं श्रीभव्यसंघैर्भृतम् ।
गीतैर्वाद्यनिनादगर्जनिवहैः शोभापरं मंगलम्
जैनेन्द्रं भवनं गिरीन्द्रसदृशं पश्येत्ततः श्रावकः ॥ ४६ ॥

इसके बाद वह श्रावक, ऊंचे ऊंचे दरवाजोंसे सुशोभित, मनोहर परकोटेसे वेढ़े हुए, शाला मण्डप और तोरणसे युक्त, भव्य समूहोंसे खचाखच भरे हुए, गीत बाजे वगैरहके शब्दोंसे गुंजार करते हुए, परम रमणीय, मंगलस्वरूप, सुमेरुके समान ऊंचे श्रीजिनमन्दिरका अवलोकन करे ॥ ४६ ॥

चैत्यालय स्तुति ।

कुसुमसघनमाला धूपकुम्भा विशाला-
श्चमरयुवतिताना नर्तकी नृत्यगाना ।
कनककलशकेतूत्तुङ्गशृङ्गाग्रशाला
सुरनरपशुसिंहा यत्र तिष्ठन्ति नित्यम् ॥ ४७ ॥

जिसमें, दरवाजोंपर फूलोंकी मालाएं लटक रही हैं, बड़े बड़े धूप-घट जहांपर रक्खे हुए हैं, युवतियाँ चमर ढौर रही हैं, नाचनेवालियां नाच रही हैं और मंगलगान कर रही हैं, जिसके उंचे शिखरपर सोनेके कलश चढे हुए हैं, ध्वजाएँ फहरा रही हैं, जिसमें देव मनुष्य पशु सिंह आदि सब जातिके प्राणी अपना अपना वैरभाव छोड़ कर एक जगह निरन्तर बैठते हैं ॥४७॥

श्रीमत्पवित्रमकलङ्कमनन्तकल्पं
स्वायम्भुवं सकलमंगलमादितीर्थम् ।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां
त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये ॥ ४८ ॥

जो परम पवित्र है, बुरे कर्मोंसे रहित निर्दोष है, अनन्त कल्पपर्यन्त परमात्माके रहनेका स्थान है, सकल मंगलोंमें उत्तम मंगल है, मुख्य तीर्थस्थान है, जिसमें निरन्तर उत्सव होते रहते हैं, जो अच्छे अच्छे मणियोंका बनाया गया है और तीन लोकका भूषणभूत है, ऐसे जिन चैत्यालयकी शरणको आज मैं प्राप्त हुआ हूं ॥४८॥

जयति सुरनरेन्द्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोऽयं जैनचैत्याभिरामः ।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसरशिखरशुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः ॥ ४९ ॥

जो देवों और राजाओंकी विभूतिरूपी अमृतकी नदीके निकलनेका कुलपर्वत है, जिनप्रतिमाओंसे अत्यन्त शोभायमान है, जिसके शिखरपर जो धुजाएं फर्रा रही हैं वे ऐसी जान पड़ती हैं मानों बड़े बड़े फलोंके भारसे झुकेहुए धर्मरूपी कल्पवृक्षकी नवीन कोमल कौंपलें ही चारों ओर फल रही हो और जो लक्ष्मीका निवास स्थान है ऐसा श्रीजिनमन्दिर जयवंत रहे॥ ४९॥

मन्दिर प्रवेश।

इत्यादिवर्णनोपेतं जिनेन्द्रभवनं गृही।
गत्वोपविश्य शालायां पादौ प्रक्षालयेत्ततः॥ ५०॥

इत्यादि वर्णनासे युक्त श्री जिनमन्दिरमें जावे और स्नानशालामें बैठ कर पैर धोवे॥ ५०॥

वारत्रयं चेतसि निःसहीति शब्दं गिरा कोमलया नितान्तम्।
समुच्चरन् द्वारत एव भक्त्या जैनं निरीक्षेत दृशा सुबिम्बम्॥ ५१॥

श्री जिनमंदिरके दरवाजेमें प्रवेश करतेही अपने निर्मल हृदयमें तीन वार निसही इस शब्दका अत्यन्त कोमल वाणीद्वारा उच्चारण करता हुआ श्री जिनप्रतिबिंबका अपने नेत्रोंसे निरीक्षण करे॥५१॥

त्रिःपरीत्य जिनबिम्बमुत्तमं हस्तयुग्ममुपधाय भालके।
निन्दयन्निजमनेकदोषतः स्वैर्गुणैर्जिनवरं स्तुयात्सुखम्॥ ५२॥

बाद श्री जिनबिंबके तीन प्रदक्षिणा (परिक्रमा) लगा कर दोनों हाथोंको सिरपर रख कर नमस्कार करे। और अपनी अनेक दोषोंसे भरपूर निन्दा करता हुआ उत्तम गुणोंद्वारा श्री जिनेंद्रका यशोगान करे॥ ५२॥

द्वारपालाँश्च सन्मान्य हीनाधिकान्स्वतःपरान्।
कृत्वाऽन्तर्वामभागेषु स्थित्वा संस्तूयते जिनः॥ ५३॥

इसके बाद, द्वारपालोंका सत्कार करे और अपनेसे भिन्न जो दर्शक गण हैं उन्हे बाईं ओर लेकर भीतर गर्भागारमें जावे और वहांपर खड़ा रह कर श्री जिनदेवकी इस प्रकार स्तुति पढ़े (?)॥ ५३॥

श्रीजिन-स्तुति।

शान्तं ते वपुरेतदेव विमलं भामण्डलालंकृतं
वाणीयं श्रुतिहारिणी जिनपते! स्याद्वादसद्दर्शना।
वृत्तं सर्वजनोपकारकरणं तस्मात् श्रुतज्ञाः परे
त्वामेकं शरणं प्रयान्ति सहसा संसारतापच्छिदे॥ ५४॥

हे जिनपते ! यह आपका शरीर अत्यन्त शान्त है, पापोंसे रहित निर्मल है, और प्रभामण्डलसे अलंकृत है। यह आपकी दिव्यध्वनि कानोंको अपनी ओर आकर्षण करनेवाली है, और स्याद्वादके स्वरूपको हाथमें रक्खे हुए आवलेकी तरह दिखलाती है। तथा आपका यह निर्मल आचरण सारे संसारी जनोंका उपकार करनेवाला है। इस लिए शास्त्रोंके जानकर और और मनुष्य भी, संसारके सन्तापका उच्छेद करनेके लिए अकेले आपकी शरण आते हैं ॥५४॥

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भान्धकूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्माऽस्मि चाद्य स्फुटम् ।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवरकाननेन्दुममृतस्यन्दिप्रभाचन्द्रकम् ॥ ५५ ॥

हे स्वामिन् ! तीन लोकवर्ती मनुष्योंके नेत्र-कमल-वन के विकास करनेको चन्द्रमाके समान और अमृत बरसानेवाली प्रभायुक्त चंद्रिकारूप आपका जब मैं अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिए दर्शन करता हूं तब मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मानों मैं आज माताके गर्भरूपी अन्धकारमय कुएसे निकलकर बाहर आया हूं, आज मैंने अपने नेत्र खोले हैं और आज मेरा जन्म सलफ हुआ है ॥ ५५ ॥

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्धिरसस्य सद्म सदनं दृष्टं तु चिन्तामणेः ।
किं दृष्टैरथवानुषङ्गिकफलैरेभिर्मयाऽद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्तिविवाहमङ्गलमिदं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥ ५६ ॥

हे देव ! मैंने कठिनसे कठिन रोगोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेवाला रसायन गृह देखा, भारीसे भारी निधियोंका स्थान देखा, सिद्धिरसका महल देखा, चिन्तामणिका उत्तम स्थान देखा किन्तु इन आनुषंगिक फलोंको देनेवाली चीजोंके देखनेसे प्रयोजन ही क्या है ? प्रयोजन मूल तो यह है कि आज मैंने श्री जिनमन्दिर देखा है सो ऐसा भासता है कि मुक्तिरूपी स्त्रीका विवाह मंगल देख लिया है ॥ ५६ ॥

दृष्टे त्वयि प्रभुतया प्रविराजमाने
नेत्रे इतः सफलतां जगतामधीश ।
चित्तं प्रसन्नमभवन्मम शुद्धबुद्धं
तस्मात्त्वदीयमघहारि च दर्शनं स्तात् ॥ ५७ ॥

हे तीन जगतके अधिपति जिन ! अपने प्रभुत्वरूपसे विराजमान हुए आपको देख लेनेपर ये मेरे दोनों नेत्र सफल हो जाते है और मेरा मन शुद्ध और ज्ञानरूप हो कर अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है इसलिए पापको जड़मूलसे खोद कर फेंक देनेवाला आपका दर्शन मुझे निरन्तर होता रहे ॥ ५७ ॥

सैषा घटी स दिवसः स च मास एव
प्रातस्तथापि वरपक्ष इहास्तु सोऽपि ।
यत्र त्वदीयचरणाम्बुजदर्शनं स्यात्
साफल्यमेव वदतीह मुखारविन्दम् ॥ ५८ ॥

हे जिन ! जिस समय आपके चरणकमलोंका दर्शन होवे वही घड़ी, वही दिन, वही महीना वही प्रातःकालका समय और वही पखवाड़ा इस जगत मे निरन्तर बना रहे क्योंकि आपका यह मुखकमल मेरे जन्मकी सफलताको कह रहा है ॥५८॥

नेत्रे ते सफले मुखाम्बुजमहो याभ्यां सदा दृश्यते
जिह्वा सा सफला यया गुणतया त्वद्दर्शनं गीयते ।
तौ पादौ सफलौ च यौ कलयतस्त्वद्दर्शनायोद्यतं
तच्चेतः सफलं गुणाँस्तव विभो ! यच्चिन्तयत्यादरात् ॥ ५९ ॥

हे देव ! नेत्र वेही सफल हैं जिनसे हमेशह आपका मुखकमल देखा जाता है। जिव्हा वही सफल है जिससे आपका यशोगान किया जाता है। पैर वेही सफल हैं जो आपके दर्शनोंके लिए उद्यत रहते हैं और चित्त भी वही सफल है जो वड़े चावसे आपके गुणोंका चिन्तवन करता है ॥ ५९॥

दर्शनं तव सुखैककारणं दुःखहारि यशसेऽपि गीयते ।
सेवया जिनपतेरहर्निशं जायतां शिवमहो तनूसताम् ॥ ६० ॥

हे विभो ! आपका दर्शन अनिर्वचनीय सुखका कारण है। दुःखका हरण करनेवाला है और दिग्दिगान्तरोंमें कीर्ति फैलानेवाला है। इसलिए हे जिन ! रात-दिन आपकी सेवा करनेसे प्राणियोंका कल्याण होवे ॥६०॥

इत्यादिस्तवनैः स्तुत्वा जिनदेवं महेश्वरम् ।
भवेत्सन्तुष्टचित्तोऽसावुपात्तपुण्यराशिकः ॥ ६१ ॥

इत्यादि स्तवनों द्वारा परमात्मा जिन देवकी स्तुति कर जिसने भारी पुण्यका उपार्जन किया है ऐसा यह भव्य पुरुष परमसन्तोष धारण करे ॥ ६१ ॥

द्वारपालसे अनुज्ञा लेनेका मंत्र ।

ॐ ह्रीँ अर्हं द्वारपालाननुज्ञापयामि स्वाहा ।

यह द्वारपालसे प्रार्थना करनेका मंत्र है, इसे पढ़ कर द्वारपालसे आज्ञा लेवे ।

चैत्यालयप्रवेशमंत्र ।

ॐ ह्रीँ अर्हं निःसही निःसही रत्नत्रयपुरस्सराय विद्यामण्डल-निवेशनाय समयाय निःसही जिनालयं प्रविशामि स्वाहा ।

जिनालय प्रवेशः ।

इसे पढ़कर जिनालयमें प्रवेश करे ।

गंधोदकसेंचनमंत्र ।

ॐ ह्रीँ पवित्रं गन्धोदकं शिरसि परिषेचयामि स्वाहा ।

गन्धोदकपरिषेचनम् ।

इस मंत्रको पढ़कर शिरपर गन्धोदक छिड़के ।

नमस्कारविधि ।

ऊर्ध्वाधो वस्त्रयुक्तः सन् स भूमौ श्रीजिनाधिपम् ।
नमेत्साष्टांगविधिना पञ्चांगविधिनाऽथवा ॥ ६२ ॥

धोती-दुपट्टेसे युक्त वह श्रावक, जमीनपर, श्री जिनदेवको साष्टांग अथवा पंचांग नमस्कार करे ॥ ६२ ॥

पश्वर्द्धशय्यया यद्वा प्रणामः क्रियते बुधैः ।
भक्त्या युक्त्या स्थलं दृष्ट्वा यथावकाशकं भवेत् ॥ ६३ ॥

अथवा पश्वर्ध शय्यासे, भक्तिपूर्वक योग्य रीतिसे वह बुद्धिमान जिनदेवको प्रणाम करे । सो जैसा अवकाश हो वैसा स्थान देखकर नमस्कार करे ॥६३॥

अष्टांग नमस्कार ।

हस्तौ पादौ शिरश्चोरः कपोलयुगलं तथा ।
अष्टांगानि नमस्कारे प्रोक्तानि श्रीजिनागमे ॥ ६४ ॥

दोनों हाथ, दोनों पैर, शिर, छाती, और दोनों कपोल ये आठ अंग नमस्कार करनेमें, जिनागममें कहे गये है । अर्थात् इन आठ अंगोंसे नमस्कार करे । भावार्थ–इन आठ अंगोंको जमीनपर टेक कर नमस्कार करनेको साष्टांग नमस्कार करते हैं ॥ ६४ ॥

पंचांग और पश्वर्ध नमस्कार।

मस्तकं जानुयुग्मं च पञ्चाङ्गानि करौ नतौ।
अत्र प्रोक्तानि पश्वर्द्धं शयनं पशुवन्मतम् ॥ ६५ ॥

मस्तक, दोनों घुटने और दोनों हाथ इस तरह ये पांच अंग नमस्कारमें कहे गये हैं अर्थात् इन पांचों अंगोंको जमीनपर टेककर नमस्कार करना सो पंचांग नमस्कार है। और पशुकी तरह सोनेको पश्वर्ध नमस्कार कहते हैं ॥६५॥

भुवं सम्मार्ज्य वस्त्रेण साष्टांगनमनं भवेत्।
पदद्वन्द्वं समं स्थित्वा दृष्ट्या पश्येज्जिनेश्वरम् ॥ ६६ ॥

कपड़ेसे जमीनका मार्जन कर साष्टांग नमस्कार करे। इस तरह नमस्कार कर लेनेपर दोनों पैरोंको बराबर कर खड़ा रह कर आखोंसे जिनेश्वरको देखे। इसके बाद— ॥ ६६ ॥

संयोज्य करयुग्मं तु ललाटे वाऽथ वक्षसि।
न्यस्य क्षणं नमेत्किंचिद्भूत्वा प्रदक्षिणी पुनः ॥ ६७ ॥

दोनों हाथोंको जोड़ कर ललाटपर अथवा वक्षस्थलपर रख कर थोड़ासा नीचा झुक कर नमस्कार करे और प्रदक्षिणा देकर पुनः नमस्कार करे ॥ ६७ ॥

अष्टांग नमस्कार विधि।

वामपादं पुरः कृत्वा भूमौ संस्थाप्य हस्तकौ।
पादौ प्रसार्य पश्चात् द्वौ शयेताधोमुखं शनैः ॥ ६८ ॥
सम्प्रसार्य करद्वन्द्वं कपालं स्पर्शयेद्भुवम्।
कपोलं सर्वदेहं च वामदक्षिणपार्श्वगम् ॥ ६९ ॥
पुनरुत्थाय कार्यं त्रिवारं मुखे स्तुतिं पठन्।
समस्थाने समाविश्य कुर्यात्सामायिकं ततः ॥ ७० ॥

प्रथम बायें पैरको आगे कर दोनों हाथोंको जमीनपर टेक दे पश्चात् दोनों पैरोंको पसारकर धीरेसे नीचा मुख कर सोवे। इसके बाद दोनों हाथोंको पसार कर मस्तकसे भूमिका स्पर्शन करे। इसके बाद दोनों कपोलों तथा बांये दाहिने पसवाड़ोंसे भूमिका स्पर्श करे। पश्चात् खड़ा होकर फिर नमस्कार करे फिर खड़ा होवे और फिर नमस्कार करे इस तरह तीन वार नमस्कार कर खड़ा होकर जिन भगवानकी स्तुति पढ़े। इसके बाद बराबर जगहपर बैठकर सामायिक करे ॥६८॥६९॥७०॥

जिनपूजा ततः कार्या शुभैरष्टविधार्चनैः ।
श्रुतं गुरुं ततः सिद्धं पूजयेद्भक्तितः परम् ॥ ७१ ॥

पश्चात् जलगन्धादि आठ तरहके प्रासुक अर्चना द्रव्यसे जिनदेवकी पूजा करे। इसके बाद शास्त्र, गुरु, और सिद्धोंकी भक्तिभावसे पूजा करे ॥७१॥

श्रुतपूजा वर्णन ।

ये यजन्ति श्रुतं भक्त्या ते यजन्त्येऽञ्जसा जिनम् ।
न किञ्चिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयोः ॥ ७२ ॥

जो श्रावक भक्तिभावसे शास्त्रकी पूजा करते हैं वे परमार्थसे जिनदेवकी ही पूजा करते हैं क्योंकि श्रीवीरभगवान देव और शास्त्रमें कुछ भी अन्तर नहीं बतलाते हैं ॥ ७२ ॥

गुरु-उपास्तिवर्णन ।

उपास्या गुरवो नित्यमप्रमत्तैर्वृषार्थिभिः ।
तत्पक्षताक्ष्यपक्षान्तश्चरा विघ्नोरगोत्तराः ॥ ७३ ॥

मोक्ष-सुखकी चाहना करनेवाले पुरुषोंको प्रमाद छोड़कर निरन्तर श्रीगुरुकी सेवा करना चाहिए। क्यौंकि जो पुरुष गुरुओंकी अधीनतारूप गरुडपक्षीकी छत्रछायामें रहता है वह धर्मकार्योंमें आनेवाले विघ्नरूपी सर्पोंसे दूरही रहता है। भावार्थ-जो गुरुओंकी आज्ञामें रहते हैं उन्हें कभी भी विघ्न-बाधाएं नहीं सतातीं इसलिए गुरुओंकी उपासना अवश्य करना चाहिए ॥७३॥

निर्व्याजया मनोवृत्त्या सानुवृत्त्या गुरोर्मनः ।
प्रविश्य राजवच्छश्वद्विनयेनानुरञ्जयेत् ॥ ७४ ॥

जिस प्रकार सेवक लोग राजाके मनको प्रसन्न रखते हैं उसी तरह कल्याणकी कामना करनेवाले श्रावकोंको छल-कपट रहित और मनोनुकूल अपने मनकी प्रवृत्तिसे गुरुके मनमें पवेश कर, उन्हें देखकर खड़े होना नमस्कार करना हितामित वचन बोलना और उनका भला विचारना रूप विनयसे हमेशा अपने ऊपर उन्हें अनुरक्त रक्खे ॥ ७४ ॥

पूजाके भेद।

पूजा चतुर्विधा ज्ञेया नित्या चाष्टान्हिकी तथा ।
इन्द्रध्वजकल्पद्रुमौ चतुर्मुखश्च पञ्चमः ॥ ७५ ॥

नित्यमह पूजा, आष्टान्हिकी पूजा, इन्द्रध्वज पूजा, और कल्पद्रुम पूजा इस तरह पूजाके

चार भेद हैं, पांचवां भेद चतुर्मुख भी है ॥ ७५॥

नित्यमह पूजाका लक्षण।

प्रोक्तो नित्यमहोऽन्वहं निजगृहान्नीतेन गन्धादिना
पूजा चैत्यगृहेऽर्हतः स्वविभवाच्चैत्यादिनिर्मापणम्।
भक्त्या ग्रामगृहादिशासनविधा दानं त्रिसन्ध्याश्रया
सेवा स्वेऽपि गृहेऽर्चनं च यमिनां नित्यप्रदानानुगम् ॥ ७६ ॥

प्रतिदिन अपने घरसे गन्ध पुष्प अक्षत आदि पूजाकी सामग्री ले जाकर चैत्यालयमें जिन भगवानकी पूजा करना, अपनी सम्पत्ति के अनुसार जिनबिंब जिनमंदिर आदि बनवाना, मन्दिर आदिके कार्य निर्विघ्न चलते रहनेके लिए भक्तिपूर्वक राजनीतिके अनुसार स्टॉम्प आदि लिखकर अथवा रजिस्टर्ड करा कर गांव घर खेत दुकान आदि देना, अपने घर अथवा जिनमंदिरमें सबेरे दोपहर और शामको तीनों समय नित्य अरहंत देवकी आराधना करना और मुनियोंको प्रतिदिन आहार देकर उनकी पूजा करना, ये सब अलग अलग नित्यमह कहलाते हैं ॥ ७६ ॥

आष्टान्हिक और इंद्रध्वज पूजाका लक्षण।

जिनार्चा क्रियते सद्भिर्या नन्दीश्वरपर्वणि।
आष्टान्हिकोऽसौ सेन्द्राद्यैः साध्या त्वैन्द्रध्वजो महः ॥ ७७ ॥

नन्दीश्वर पर्वके दिनोंमें अर्थात् प्रतिवर्ष आषाढ़ कार्तिक और फाल्गुन महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमीसे पौर्णिमा तक अन्तके आठ दिनोंमें जो अनेक भव्यजन मिलकर अरहंत देवकी पूजा करते हैं उसे आष्टाह्निक मह कहते हैं और इंद्र प्रतीन्द्र आदि जो पूजा करते हैं उसे इन्द्रध्वज मह कहते हैं ॥ ७७ ॥

चतुर्मुखमहका लक्षण।

भक्त्या मुकुटबद्धैर्या जिनपूजा विधीयते।
तदाख्यः सर्वतोभद्रश्चतुर्मुखमहामखः ॥ ७८ ॥

बड़े बड़े मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा जो भक्ति भावसे पूजा की जाती है उसका नाम चतुर्मुख सर्वतोभद्र और महामह है। यह पूजा प्राणिमात्रका भला करनेवाली है इसलिए इसे सर्वतोभद्र, चार दरवाजेवाले मण्डपमें की जाती है इसलिए चतुर्मुख और अष्टाह्निक मह की अपेक्षा बड़ी है इसलिए महामह कहते हैं ॥ ७८ ॥

कल्पद्रुम पूजाका लक्षण।

किमिच्छकेन दानेन जगदाशाः प्रपूर्य यः।
चक्रिभिः क्रियते सोऽर्हद्यज्ञः कल्पद्रुमो मतः॥ ७९॥

आप क्या चाहते हैं इस प्रकार प्रश्न पूर्वक संसार भरके मनुष्योंकी आशा पूर्ण कर चक्रवर्ती राजाओंके द्वारा जो पूजा की जाती है उसे कल्पद्रुम यज्ञ कहते हैं ॥७९॥

बलिस्नपननाट्यादि नित्यं नैमित्तिकं च यत्।
भक्ताः कुर्वन्ति तेष्वेव तद्यथास्वं विकल्पयेत्॥ ८०॥

भक्तजन जो नित्य करने योग्य और पर्व दिनोंमें करने योग्य ऐसे बलि (दाल, भात, रोटी आदि) चढ़ाना अभिषेक करना, नृत्य करना, गाना, बजाना, प्रतिष्ठा, रथयात्रा आदि करते हैं, उन सबका समावेश यथा योग्य इन नित्यमहादिकोंमेंही करना चाहिए। भावार्थ-परमात्माका अभिषेक करना उनके सामने नाचना गाना बजाना रथयात्रा करना गिरनार सम्मेद शिखर आदि यात्रा करना इत्यादिकोंका नित्यमह वगैरह जो पूजाके भेद हैं उन्हींमें शुमार है ॥८०॥

हरएक जल-गन्ध-आदि पूजाका फल।

वार्धारा रजसः शमाय पदयोः सम्यक्प्रयुक्ताऽर्हतः
सद्गन्धस्तनुसौरभाय विभवाच्छेदाय सन्त्यक्षताः।
यष्टुः स्रग्दिविजस्रजे चरुरुमास्वाम्याय दीपस्त्विषे
धूपो विश्वदृगुत्सवाय फलमिष्टार्थाय चार्घाय सः॥ ८१॥

शास्त्रोक्त विधिके अनुसार श्रीजिनेन्द्र देवके चरणोंमें अर्पण की हुई जल धारा ज्ञानावरणादि पापकर्मोंको शान्त करती है। पवित्र गन्ध विलेपन शरीरमें सुगन्धि देता है, अक्षत चढ़ानेसे उसकी अणिमा महिमा सम्पत्तिका कभी नाश नहीं होता है, पुष्पमाला चढ़ानेसे स्वर्गमें कल्पवृक्षोंकी मालाएं प्राप्त होती हैं। नैवेद्य चढ़ानेसे अनन्त लक्ष्मीका अधिपति बनता है, दीप चढ़ानेसे कान्ति बढ़ती है, धूप चढ़ानेसे परम सौभाग्य प्राप्त होता है, फल चढ़ानेसे मनचाहे फलोंकी प्राप्ति होती है और अर्घ्य पुष्पांजलि क्षेपण करनेसे विशिष्ट सत्कारकी प्राप्ति होती है॥ ८१॥

पूजाक्रमः।

भक्त्या स्तुत्वा पुनर्नत्वा जिनेशं क्षेत्रपालकम्।
पद्माद्याः शासनाधिष्ठा देवता मानयेत्क्रमात्॥ ८२॥

पूजा कर चुकनेके बाद भक्तिभावसे जिनदेवकी स्तुति कर पुनः उन्हें नमस्कार कर क्रमसे

क्षेत्रपाल और पद्मावती आदि शासन देवतोंका सत्कार करे ॥ ८२ ॥

ततो मण्डपसद्देशं समागत्य श्रुतं मुनिम् ।
भक्त्या नत्वा समाधानं पृच्छेद्देहादिसम्भवम् ॥ ८३ ॥

पश्चात् मंडपमें आकर भक्तिपूर्वक शास्त्र और मुनिको नमस्कार करे तथा मुनिमहाराजकी शारीरिक कुशलता पूछे ॥ ८३ ॥

नित्य व्रत ग्रहण ।

दिग्देशानर्थदण्डादि रसं तैलघृतादिकम् ॥
नित्यव्रतं तु गृण्हीयाद्गुरोरग्रे सुखप्रदम् ॥ ८४ ॥

पश्चात् श्रीगुरुके समक्ष दिग्विरति, देशविरति अनर्थदण्डविरति वगैरह और तेल घी वगैरह रसका त्याग यह नित्य व्रत ग्रहण करे । भावार्थ-मैं आज इस देशसे बाहर नहीं जाऊंगा इस दिशाकी ओर नहीं जाऊगा, विना प्रयोजनके कोई भी कार्य नहीं करूंगा. आज तेल नहीं खाऊं गा, आज घी नहीं खाऊगा, आज गुड-शक्कर नहीं खाऊगा, आज नमक नहीं खाऊंगा इत्यादि नियम ग्रहण करे ॥ ८४ ॥

व्रतग्रहणकामाहात्म्य ।

दृक्पूतमपि यष्टारमर्हतोऽभ्युदयश्रियः ।
श्रयन्त्यहम्पूर्विकया किं पुनर्व्रतभूषितम् ॥ ८५ ॥

श्री अर्हन्त देवकी पूजा करनेवाले केवल व्रत रहित सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध पुरुषोंका, बड़प्पन, आज्ञा, ऐश्वर्य, बल, परिवार भोगोपभोगकी सामग्रियां आदि सम्पदाएं पहले मैं प्राप्त होऊं इस प्रकार एक दूसरीसे ईर्ष्या करती हुई बहुत शीघ्र आश्रय ग्रहण करती हैं। तो फिर जो सम्यग्दर्शनसे पवित्र हैं और अहिंसा सत्य आदि व्रतोंसे विभूषित हैं ऐसे श्री जिन देवकी पूजा करनेवाले श्रावकोंका वे संपदाएं आश्रय ले इसमें क्या आश्चर्य है-कुछ भी नहीं । भावार्थ-ये सम्पदाएं व्रतोंसे विभूषित पुरुषोंका विशेष रीतिसे आश्रय ग्रहण करती हैं ॥ ८५ ॥

गुरु आदिको नमस्कार करनेका प्रकार ।

नमोऽस्तु गुरवे कुर्याद्वन्दनां ब्रह्मचारिणे ।
इच्छाकारं सधर्मिभ्यो वन्दामीत्यर्जिकादिषु ॥ ८६ ॥

गुरुओं को "नमोऽस्तु" ब्रह्मचारियोंको "वंदना" साधर्मियोंको "इच्छाकार" और अर्जिकाओंको "वन्दामि" करे ॥ ८६ ॥

गुरु आदिके देने योग्य आशीर्वाद ।

श्रावकानां मुनीन्द्रा ये धर्मवृद्धिं ददत्यहो ।
अन्येषां प्राकृतानां च धर्मलाभमतः परम् ॥ ८७ ॥
आर्यिकास्तद्वदेवात्र पुण्यवृद्धिं च वर्णिनः ।
दर्शनविशुद्धिं प्रायः क्वचिदेतन्मन्तान्तरम् ॥ ८८ ॥
श्राद्धाः परस्परं कुर्युरिच्छाकारं स्वभावत ।
जुहारुरिति लोकेऽस्मिन्नमस्कारं स्वसज्जनाः ॥ ८९ ॥

जो लोग मुनिश्वरोंको आकर " नमोऽस्तु " करे उसके बदलेमें वे महामुनीश्वर श्रावकोंको तो " धर्मवृद्धिरस्तु " अर्थात् सद्धर्मकी वृद्धि हो ऐसा कहे । जैनधर्मसे बाह्य अजैनोंको " धर्मलाभोऽस्तु " अर्थात् तुम्हें सद्धर्मकी प्राप्ति हो ऐसा कहे । आर्यिकाएंभी श्रावकों और अजैनोंको ऐसाही कहे । तथा ब्रह्मचारी " पुण्यवद्धिरस्तु " पुण्यकी वृद्धि हो ऐसा कहे अथवा " दर्शनविशुद्धिरस्तु " तुम्हारे दर्शनकी विशुद्धि होवे ऐसा कहे, ऐसा किन्हीं किन्हींका मत हैं । श्रावकगण परस्परमें एक दूसरेसे इच्छाकार करें तथा इस लोकव्यहारमें सज्जनवर्ग जुहारु इस तरहका नमस्कार करें ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९॥

व्यावहारिक पद्धति ।

योग्यायोग्यं नरं दृष्ट्वा कुर्वीत विनयादिकम् ।
विद्यातपोगुणैः श्रेष्ठो लघुश्चापि गुरुर्मतः ॥ ९० ॥

योग्य और अयोग्य मनुष्योंको देखकर विनय वगैरह करना चाहिए । तथा जो पुरुष विद्या तप और गुणोंमें श्रेष्ठ है वह अवस्थामें छोटा है तो भी बड़ा माना जाता है ॥ ९० ॥

रोगिणो दुःखितान् जीवान् जैनधर्मसमाश्रितान् ।
सम्भाष्य वचनैर्मृष्टैः समाधानं समाचरेत् ॥ ९१ ॥

रोगी तथा दुःखी ऐसे जैन धर्मावलंबी मनुष्योंका हितकर मीठे वचनोंसे सम्बोधन कर उनका यथेष्ट समाधान करे ॥ ९१ ॥

मूर्खान् मूढांश्च गर्विष्ठान् जिनधर्मविवर्जितान् ।
कुवादिवादिनोऽत्यर्थं त्यजेन्मौनपरायणः ॥ ९२ ॥

जो मूर्ख हों, मूढ हों, घमंडी हों, व्यर्थ वितंडा करनेवाले हों और जैन धर्मसे बाह्य हों ऐसे लोगोंसे विशेष बातचीत न करे, किन्तु मौन धारण कर ले ॥ ९२ ॥

नम्रीभूताः परं भक्त्या जैनधर्मप्रभावकाः ।
तेषामुध्दृत्य मूर्धानं ब्रूयाद्वाचं मनोहराम् ॥ ९३ ॥

जो भारी भक्तिसे जैन धर्मकी प्रभावना करनेवाले हैं और बड़े नम्र हैं उनके सामने अपना मस्तक ऊंचा उठा कर मनोहर वचन बोले ॥ ९३ ॥

शास्त्रश्रवण और शास्त्रकथन।

गुरोरग्रे ततो मह्यामुपविश्य मदोज्झितः ।
शृणुयाच्छास्त्रसम्बन्धं तत्त्वार्थपरिसूचकम् ॥ ९४ ॥

इसके बाद मद छोड़ कर-विनय भावसे गुरुके सामने भूमिपर बैठ कर तत्वोंकी कथनी करनेवाले शास्त्रके रहस्यको गुरु-मुखसे सुने ॥ ९४ ॥

अन्येषां पुरतः शास्त्रं स्वयं वाऽथ प्रकाशयेत् ।
मनसा चाऽप्रमत्तेन धर्मदीपनहेतवे ॥ ९५ ॥
जीवाजीवास्रवा बन्धसंवरौ निर्जरा तथा ।
मोक्षश्च सप्त तत्त्वानि निर्दिष्टानि जिनागमे ॥ ९६ ॥
षड् द्रव्याणि सुरम्याणि पञ्च चैवास्तिकायकाः ।
यतिश्रावकधर्मस्य शास्त्रार्थं कथयेद्बुधः ॥ ९७ ॥
मिथ्यामतं परिच्छिद्य जैनमार्गं प्रकाशयेत् ।
प्रमाणनयनिक्षेपैरनेकान्तमताङ्कितैः ॥ ९८ ॥
पुण्यं पुण्यफलं पापं तत्फलं च शुभाशुभम् ।
दयादानं भवेत्पुण्यं पापं हिंसानृतादिकम् ॥ ९९ ॥
इत्यादि धर्मशास्त्राणि समुद्दिश्य सविस्तरम् ।
यतिपण्डितमुख्यानां शुश्रूषां कारयेन्नरः ॥ १०० ॥

अथवा धर्मकी प्रभावनाके निमित्त बहुतही सावधानीके साथ अन्य साधर्मियोंको आप खुद शास्त्र सुनावे । जिनमतमें कहे गये जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल इन छह द्रव्यों, और काल द्रव्यको छोड़ कर बाकीके पांच अस्तिकाय तथा अनगार धर्म और श्रावक धर्मके स्वरूपका अच्छी तरह कथन करे । अनेकान्तसे अंकित प्रमाण नय और निक्षेप द्वारा मिथ्या मतोंका खण्डन करते हुए जैन मार्गका प्रकाशन करे । पुण्य पाप और इनके शुभ अथवा अशुभ फलको समझावे । दया दान करनेसे पुण्य होता है । हिंसा करने झूठ बोलने चौरी करने कुशील सेवन करने और परिग्रह रखनेसे

पाप होता है इत्यादि धर्मके रहस्यको विस्तार पूर्वक समझावे। तथा मुनि पंडित आदिकी शास्त्र सुनने-सुनानेकी इच्छा उत्पन्न करावे-अथवा सेवा शुश्रूषा करे-करावे॥९५॥९६॥९७॥९८॥९९॥१००॥

नमस्कारं पुनः कुर्याज्जिनानां जैनधर्मिणाम्।
गुर्वादिकं च सम्पृछ्य व्रजेन्निजगृहं गृही ॥ १०१ ॥

फिर जिनदेवको और जैन धर्मियोंको नमस्कार करे और गुरु आदिको पूछ कर वह गिरिस्त अपने घरको रवाना होवे ॥ १०१ ॥

सदने पुनरागत्य कृत्वा स्नानं च पूर्ववत्।
जपहोमजिनार्चाश्च कुर्यादाचमनादिकम् ॥ १०२ ॥
प्राणायामं परीषेकं शिरसोऽर्घ्यप्रकल्पनम्।
उष्णोदकेन पूजादिकार्यं कुर्यान्न च क्वचित् ॥ १०३ ॥

घरपर आकर स्नान कर जप, होम, जिन भगवानकी पूजा, आचमन, प्राणायाम, शिरपर जल सिंचन, अर्घ्य प्रदान आदि सम्पूर्ण कार्य पहलेकी तरह करे। तथा कहीं परभी गर्म जलसे पूजा आदि कार्य न करे॥ १०२ ॥ १०३ ॥

पात्रदान।

ततो भोजनकाले तु पात्रदानं प्रकल्पयेत्।
भोगभूमिकरं स्वर्गप्राप्तेरुत्तमकारणम् ॥ १०४ ॥

इसके बाद भोजन करनेके समय, भोग भूमिको ले जाने और स्वर्ग प्राप्त करानेका उत्तम कारण ऐसा जो पात्रदान है उसे करे॥ १०४ ॥

पात्रोंके भेद।

पात्रं चतुर्विधं ज्ञेयममुत्रात्र सुखाप्तिदम्।
धर्मभोगयशःसेवापात्रभेदात् परं मतम् ॥ १०५ ॥

इस भवमें और परभवमें सुख देनेवाले धर्म पात्र, भोगपात्र, यशपात्र और सेवापात्रके भेदसे चार तरहके पात्र माने गये हैं। भावार्थ—पात्रके चार भेद हैं॥ १०५॥

धर्म पात्रके भेद।

धर्मपात्रं त्रिभेदं स्याज्जघन्यं मध्यमोत्तमम्।
तेभ्यो दानं सदा देयं परलोकसुखप्रदम् ॥ १०६ ॥

धर्म पात्रके तीन भेद हैं । जघन्य, मध्यम और उत्तम । जिनको, परलोकमें सुखदेनेवाला दान सदा देना चाहिए ॥ १०६ ॥

जघन्य पात्रका लक्षण।

सम्यग्दृष्टिः सदाचारी श्रावकाचारतत्परः।
गुरुभक्तश्च निर्गर्वो जघन्यं पात्रमुच्यते ॥ १०७ ॥

जो सम्यग्दर्शनसे युक्त है, सदाचारी है, श्रावकाचारके पालनेमें तत्पर है, गुरुमें जिसकी भक्ति है और विनयी है उसे जघन्य पात्र कहते हैं। भावार्थ-अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक जघन्य पात्र है। श्रावकाचारमें तत्पर है इसका अभिप्राय यह है कि श्रावकपनेके मुख्य मुख्य चिन्ह जैसे रात्रिमें न खाना, जल छान कर पीना, जिन पूजा करना, मद्य मांस मधु और अभक्ष्य भक्षण न करना आदि ॥ १०७ ॥

मध्यम पात्रका लक्षण।

ब्रह्मचर्यव्रतोपेतो गृहस्थारम्भवर्जितः।
अल्पपरिग्रहैर्युक्तो मध्यमं पात्रमिष्यते ॥ १०८ ॥

जो ब्रह्मचर्य व्रतसे युक्त है, गृहस्थ सम्बन्धी आरम्भसे रहित है और जिसकें पास थोड़ा परिग्रह है उसे मध्यम पात्र कहते हैं। भावार्थ-प्रथम प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमातकके देशविरति श्रावक मध्यमपात्र हैं ॥ १०८ ॥

उत्तम पात्रका लक्षण।

अष्टाविंशतिसंख्यातमूलगुणयुतो व्रती।
सर्वैः परिग्रहैर्मुक्तः क्षमावान् शीलसागरः ॥ १०९ ॥
मित्रशत्रुसमध्यानी ध्यानाध्ययनतत्परः।
मुक्त्यर्थी त्रिपदाधीशो ज्ञेयं ह्युत्तमपात्रकम् ॥ ११० ॥

जो अठाईस मूलगुणोंसे युक्त है, सब तरहके परिग्रहोंसे रहित है, क्षमावान् है, शीलका सागर है, मित्र और शत्रुको एक दृष्टिसे देखता है-दोनोंमें समभाव है, ध्यान और अध्ययनमें तत्पर है, मुक्ति चाहनेवाला है और रत्नत्रयका स्वामी है उसे उत्तम पत्र जानना ॥ १०९ ॥ ११० ॥

जघन्यादित्रिपात्रेभ्यो दानं देयं सुधार्मिकैः।
ऐहिकामुत्रसम्पत्तिहेतुकं परमार्थकम् ॥ १११ ॥

धर्मात्मा लोग जघन्य मध्यम और उत्तम इन तीनों पात्रोंको दान देवें। इनको दिया हुआ दान, इस लोकसम्बन्धी और परलोकसम्बन्धी वास्तविक सम्पत्तिके देनेका कारण है। भावार्थ-इन तीनों पात्रोंको दान देनेवाले धर्मात्माओंको दोनों लोकोंमें उत्तम सुखकी प्राप्तिका कारण तरह तरहकी भोगोपभोगकी सामग्रियां मिलती हैं॥ १११॥

भोग पात्रके लक्षण।

भोगपात्रं तु दारादि संसारसुखदायकम्।
तस्य देयं सुभूषादि स्वशक्त्या धर्महेतवे॥ ११२॥

स्त्री पुत्र आदि भोगपात्र कहे जाते हैं ये सांसारिक सुखके देनेवाले हैं इनको धर्मके लिए अपनी शक्तिके अनुसार अच्छे अच्छे आभूषण कपड़े आदि देने चाहिएं॥ ११२॥

भोगपात्रोंको दान न देनेका फल।

यदि न दीयते तस्य करोति न वचस्तदा।
पूजादानादिकं नैवं कार्यं हि घटते गृहे॥ ११३॥

यदि भोग पात्रोंको दान न दिया जाय तो वे उसकी बातको न मानेंगे और पूजन आदि कार्य घरमें अच्छी तरह न बन सकेंगे। इस लिए भोगपात्रोंको अवश्य दान देना चाहिए॥ ११३॥

यशपात्रका लक्षण।

भट्टादिकं यशस्पात्रं लोके कीर्तिप्रवर्तकम्।
देयं तस्य धनं भूरि यशसे च सुखाय च॥ ११४॥

भाट ब्राह्मण आदि लोकमें कीर्ति फैलानेवाले यशपात्र हैं इनको अपने यश और सुखके लिए बहुतसा धन देना चाहिए॥ ११४॥

यशपात्रोंको दान न देनेका फल।

विना कीर्त्या वृथा जन्म मनोदुःखप्रदायकम्।
मनोदुःखे भवेदार्तं पापबन्धस्तथाऽर्ततः॥ ११५॥

संसारमें नामवरीके बिना जन्मधारण करना व्यर्थ है। ऐसा जन्म रात-दिन हृदयमें वेदना उत्पन्न करता रहता है, चित्तमें अत्यन्त संक्लेश होता है, चित्तमें संक्लेश होनेसे भारी आर्तध्यान होता है, जिसके होनेसे पाप कर्मका बन्ध होता है। इसलिए कीर्तिके लिए उचित आचरण करना चाहिए॥ ११५॥

सेवापात्रका लक्षण।

सेवापात्रं भवेद्दासीदासभृत्यादिकं ततः।
तस्य देयं पटाद्यन्नं यथेष्टं च यथोचितम्॥ ११६॥

दास-दासी, नौकर-चाकर वगैरह सेवा पात्र हैं इसलिए इनको इनकी योग्यताके अनुसार, इन्हें जैसा इष्ट हो वस्त्र अन्न आदि पदार्थ देवे॥ ११६॥

दयादान।

दयाहेतोस्तु सर्वेषां देयं दानं स्वशक्तितः।
गोवत्समहिषीणां च जलं च तृणसञ्चयम्॥ ११७॥

दयाके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सभीको दान देना चाहिए। गाय भैंस आदिको जल और घास देना चाहिए। भावार्थ-जो श्रावक भारी आरंभमें प्रवर्तित है वह पिंजरापोल आदि संस्थाएं खोल कर गो आदिकी रक्षा करे और अन्धे लूले अपाहिज पुरुषोंके लिए अन्न शाला प्याऊ आदि बनवावे। तथा व्रती श्रावक अपने योग्य दयादान करें॥ ११७॥

जुदे जुदे दानोंके फल।

पात्रे धर्मनिबन्धनं तदितरे श्रेष्ठं दयाख्यापकं
मित्रे प्रीतिविवर्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमम्।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानसम्पादकं
भट्टादौ तु यशस्करं वितरणं न क्वाप्यहो निष्फलम्॥ ११८॥

पात्रोंको दान देनेसे पुण्यबन्ध होता है, पात्रोंके अलावा अन्य दुःखी जीवोंको दान देनेसे यह बड़ा दयालु है इस प्रकारकी नामवरी होती है, मित्रको दान देनेसे प्रीति बढ़ती है, अपने दुश्मनोंको दान देनेसे वैरका नाश होता है, नौकरको दान देनेसे वह अपनेमें भक्ति करता है, राजाको देनेसे राज-दरबारमें तथा अन्यत्रभी सत्कार होता है और भाट ब्राह्मण आदिको देनेसे यश फैलता है इस लिए किसीको भी दिया हुआ दान निष्फल नहीं होता। अतः अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य दान करना चाहिए॥११८॥

सुप्तोत्तानशया लिहन्ति दिवसान् स्वांगुष्ठमार्यास्ततः
कौ रङ्गन्ति ततः पदैः कलगिरो यान्ति स्खलद्भिस्ततः।
स्थेयोभिश्च ततः कलागुणभृतस्तारुण्यभोगोद्गताः
सप्ताहेन ततो भवन्ति सुदृगादानेऽपि योग्यास्ततः॥ ११९॥

भोगभूमिके पुरुष आर्य कहलाते हैं वे आर्य पुरुष जब दान देकर भोग भूमिमें जन्म लेते हैं तब वे सात दिनतक-पहले सप्ताहमें तो ऊपरको मुंह किये सोये रहते हैं और अपना हाथका अंगूठा चूषते रहते हैं। इसके दूसरे सप्ताहमें, पृथिवीपर पैरोंसे रेंगते हैं-धीरे धीरे घुटनोंके बल चलते हैं। इसके बाद तीसरे सप्ताहमें मीठे मीठे वचन बोलते हैं और लड़खड़ाते हुए चलने लगते हैं। चौथे सप्ताहमें वे स्थिर रूपसे पैर रखते हुए ठीक ठीक चलने लगते हैं। इसके बाद पांचवें सप्ताहमें गाना बजाना आदि कलाओंसे तथा लावण्य आदि गुणोंसे सुशोभित हो जाते हैं। इसके बाद छठे सप्ताहमें युवा बन जाते हैं और अपने इष्ट भोगोंके भोगनेमें समर्थ हो जाते हैं और इसके बाद सातवें सप्ताहमें वे सम्यग्दर्शनके ग्रहण करनेके योग्य हो जाते हैं। ग्रन्थकार अपि शब्दसे आश्चर्य प्रगट करते हैं कि देखो दानका क्याही माहात्म्य है जिससे वे लोग भोगभूमिमें जन्म लेकर थोड़े ही दिनोंमें कैसे योग्य बन जाते हैं ॥ ११९ ॥

दानके भेद।

आहारशास्त्रभैषज्याभयदानानि सर्वतः।
चतुर्विधानि देयानि मुनिभ्यस्तत्त्ववेदिभिः ॥ १२० ॥

वस्तु स्वरूपको जानने वाले पुरुष, आहारदान, शास्त्रदान, औषधदान और अभयदान ये चार प्रकारके दान मुनियोंके लिए देवें ॥ १२० ॥

प्रत्येक दानके फल।

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्व्याधिर्भेषजाद्भवेत् ॥ १२१ ॥

ज्ञानदान-शास्त्रदानके देनेसे ज्ञानवान हो जाता है। अभयदानके देनेसे भय दूर होता है। आहार दानके देनेसे वह सुखी होता है और औषधदानके देनेसे व्याधि रहित नीरोग होता है ॥ १२१ ॥ अथोत्तर पुराणे—उत्तर पुराणमें ऐसा कहा है कि—

शास्त्राभयान्नदानानि प्रोक्तानि जिनसत्तमैः।
पूर्वपूर्वबहूपात्तफलानीमानि धीमताम् ॥ १२२ ॥

सर्वज्ञदेवने शास्त्रदान अभयदान और अन्नदान ये तीन दान कहे हैं। जिनमेंसे आहार दानसे अभयदान और अभयदानसे शास्त्रदानका फल अधिक है ॥ १२२ ॥

कुदान।

कन्या हस्तिसुवर्णवाजिकपिलादासीतिलाः स्यन्दनं
क्ष्मा गेहं प्रतिबद्धमत्र दशधा दानं दरिद्रेप्सितम्।

तीर्थान्ते जिनशीतलस्य सुतरामाविश्चकार स्वयं
लुब्धो वस्तुषु भूतिशर्मतनयोऽसौ मुण्डशालायनः ॥ १२३ ॥

कन्या, हाथी, सोना, घोडा, गाय, दासी, तिल, रथ, भूमि और मकान ये दरिद्रोंको इष्ट दशप्रकारके दान हैं। जिनका दशवें शीतल नाथ तीर्थंकरके तीर्थके अन्त समयमें तरह तरहकी वस्तुओंमें लोलुप हुए भूतिशर्माके पुत्र मुंडशालायनने स्वयं आविष्कार किया था। भावार्थ- ये दान वीतरागकथित नहीं हैं इनका प्रवर्तक एक स्वार्थी लुब्धक पुरुष है। इस लिए ये दान निन्द्य हैं। यदि ये ही दान आगे लिखे अभिप्रायोंसे किये जांय तो न निन्द्यही हैं और न पापके कारणही हैं॥ १२३ ॥

विचार्य युक्तितो देयं दानं क्षेत्रादि सम्भवम्।
योग्यायोग्यं सुपात्राय जघन्याय महात्मभिः॥ १२४ ॥

श्रावकोंको योग्य-अयोग्यका युक्तिपूर्वक विचार कर जघन्य पात्रके लिए भूमि आदि दश दान अवश्य देने चाहिएं॥ १२४ ॥ औरोंको क्यों न दे ऐसी शंका होने पर कहते हैं—

मध्यमोत्तमयोर्लोके पात्रयोर्न प्रयोजनम्।
क्षेत्रादिना ततस्ताभ्यां देयं पूर्वं चतुर्विधम्॥ १२५ ॥

मध्यम पात्रों और उत्तम पात्रोंको लोकसे कुछ प्रयोजन नहीं है। इस लिए उनको इन दश-दानोंके अतिरिक्त पूर्वोक्त चार प्रकारके आहार दान, औषध दान, शास्त्र दान और अभय दान देवे॥ १२५ ॥

चैत्यालयं जिनेंद्रस्य निर्माप्य प्रतिमां तथा।
प्रतिष्ठां कारयेद्धीमान् हैमैः संघं तु तर्पयेत्॥ १२६ ॥
पूजायै तस्य सत्क्षेत्रग्रामादिकं प्रदीयते।
अभिषेकाय गोदानं कीर्तितं मुनिभिस्तथा॥ १२७ ॥

जिन भगवानका चैत्यालय बनवाकर तथा प्रतिमा बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करावे और सुवर्णसे सारे जैन संघको तृप्त करे। जिन भगवानकी पूजाके लिए अच्छी उपजाऊ जमीन, ग्राम, घर आदि देवे जिससे कि उनकी उपजसे निर्विघ्न जिन पूजाका कार्य चलता रहे। तथा भगवानके अभिषेकके लिए गौका दान दे जिसके शुद्ध प्रासुक दूधसे भगवानका दुग्धाभिषेक हुआ करे। ऐसा आचार्योंका मत है॥ १२६॥ १२७॥

शुद्धश्रावकपुत्राय धर्मिष्ठाय दरिद्रिणे।
कन्यादानं प्रदातव्यं धर्मसंस्थितिहेतवे॥ १२८ ॥

विना भार्यां तदाचारो न भवेद्गृहमेधिनाम् ।
दानपूजादिकं कार्यमग्रे सन्ततिसम्भवः ॥ १२९ ॥

निर्धन, धर्मात्मा श्रावकके पुत्रको धर्मकी स्थिति बनी रहनेके लिए कन्यादान करे । क्योंकि उत्तम स्त्रीके बिना गिरस्तोंका गिरस्ताचार नहीं चल सकता इस लिए आगेको गिरस्ताचारकी सन्तति बराबर चलती रहनेके लिए कन्यादान देकर उसका सत्कार करना चाहिए ।

भावार्थ—धर्मात्मा पुरुषोंके सहारेही धर्म चलता है इस लिए धर्मकी सन्ततिका व्युच्छेद न होने देनेके लिए धर्मात्माओंको श्रावकके पुत्रको कन्या देना चाहिए। यदि इस उद्देशसे धर्मकी स्थिति बराबर जारी रहनेके लिए कन्याका दान किया जाय तो पापका कारण नहीं है वह प्रत्युत धर्मका कारण ही है। यदि यह अभी प्राय न रखकर काम भोगोंकी वांछासे कन्या दी जाय तो वह अवश्य कुदान है। हमारे यहां जो कन्याओंका विवाह जारी हैं वह धर्मकी स्थिति बने रहनेके अभिप्रायसे है। जिनलोगोंका अभिप्राय यह कि माता पिता कन्याओंका विवाह काम भोग सेवन करनेके लिए करते हैं वे जैन शास्त्रोंसे अनभिज्ञ हैं और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए शास्त्रोंके रहस्यको छिपाकर लोगोंको धोखा देते हैं । कन्याका विवाहना धर्म है इस विषयको सूरिवर पं. आशाधरजीने सागारधर्मामृतमें बहुत अच्छी तरह प्रतिपादन किया है उससे इस विषयको अच्छी तरह धर्मके श्रद्धानी पुरुषोंको समझ लेना चाहिए ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

श्रावकाचारनिष्ठोऽपि दरिद्री कर्मयोगतः ।
सुवर्णदानमाख्यातं तस्मायाचारहेतवे ॥ १३० ॥

यदि कोई श्रावकका पुत्र श्रावकके आचरणमें निष्ठ है किन्तु वह कर्मयोगसे दरिद्री है तो ऐसे धर्मात्माको उसके गिरस्ताचारकी स्थितिके लिए सुवर्ण दान देना चाहिए ।

भावार्थ—सुवर्ण दान देनेसे वह बेफिकर होकर अपने धर्ममें दृढ बना रहता है और आगेको धर्मकी बढवारी प्रभावना आदिके लिए जी जानसे कोशिश करता रहता है और उसका गिरस्ताचार बराबर जारी रहता है इस लिए ऐसोंको सुवर्णदान अवश्य देना चाहिए। धर्मके निमित्त सुवर्णदान करना पाप नहीं है ॥ १३० ॥

निराधाराय निस्स्वाय श्रावकाचाररक्षिणे ।
पूजादानादिकं कर्तुं गृहदानं प्रकीर्तितम् ॥ १३१ ॥

जिस श्रावकके पास रहनेको मकान नहीं है, वह इतना निर्धन है कि मकान बनवानेको असमर्थ है किन्तु श्रावकके आचरणोंकी पूरी पूरी रक्षा करता है ऐसे श्रावकको पूजा करने मुनीश्वरोंको दान देने आदिके लिए गृह दान देना चाहिए ॥ १३१ ॥

पद्भ्यां गन्तुमशक्ताय पूजामंत्रविधायिने।
तीर्थक्षेत्रसुयात्रायै रथाश्वदानमुच्यते ॥ १३२ ॥

जो पैरोंसे चलनेमें असमर्थ है और जिनपूजा मंत्र आदि श्रावकके कर्तव्योंका मुस्तैदीसे पालन करता है उसको तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा करनेके लिए रथदान अश्वदान आदि देना चाहिए ॥ १३२ ॥

भट्टादिकाय जैनाय कीर्तिपात्राय कीर्तये।
हस्तिदानं परिप्रोक्तं प्रभावनाङ्गहेतवे ॥ १३३ ॥

जैन धर्मावलंबी ब्राह्मण भाट आदि कीर्ति पात्रोंको कीर्तिके लिए प्रभावनाके कारण हाथीदान करना चाहिए ॥ १३३ ॥

दुर्घटे विकटे मार्गे जलाश्रयविवर्जिते।
प्रपास्थानं परं कुर्याच्छोधितेन सुवारिणा ॥ १३४ ॥

जो मार्ग दुर्घट है पर्वत वृक्ष पत्थर आदिके कारण विकट हो रहा है। जिसमें जलाशय कुआ, बावड़ी आदि नहीं है ऐसे मार्गमें छने पानीकी प्याऊ लगानी चाहिए ॥ १३४ ॥

अन्नसत्रं यथाशक्ति प्रतिग्रामं निवेशयेत्।
शीतकाले सुपात्राय वस्त्रदानं सतूलकम् ॥ १३५ ॥

अपनी शक्तिके अनुसार हरएक गांवमें भोजनशाला खोलना चाहिये और शर्दीकी मोसिममें गरीब सज्जन पुरुषोंको रुईके कपड़े बनवादेना चाहिए ॥ १३५ ॥

जलान्नव्यवहाराय पात्राय कांस्यभाजनम्।
महाव्रतियतीन्द्राय पिच्छं चापि कमण्डलुम् ॥ १३६ ॥

पात्रोंके लिए खाने और पीनेके लिए कांसी आदिके वर्तन देवे। तथा महाव्रती मुनियोंके लिए पिच्छि-कमंडलु देवे ॥ १३६ ॥

जिनगेहाय देयानि पूजोपकरणानि वै।
पूजामन्त्रविशिष्टाय पण्डिताय सुभूषणम् ॥ १३७ ॥

जिनमन्दिरमें जिनभगवानकी पूजाके लिए पूजाके वर्तन और पूजाकरनेवाले तथा मंत्र तंत्र विशिष्ट पंडितके लिए भूषण वगैरह देना चाहिए ॥ १३७ ॥

गिरस्त इन चीजोंका दान न करें।

हिंसोपकरणं मूलं कन्दं मांसं सुरा मधु।
घुणितं स्वादु नष्टान्नं सूक्ष्मान्नं रात्रिभोजनम् ॥ १३८ ॥
मिथ्याशास्त्रं वैद्यकं च ज्योतिष्कं नाटकं तथा।
हिंसोपदेशको ग्रन्थः कोकं कंदर्पदीपनम् ॥ १३९ ॥
हिंसामन्त्रोपदेशश्च महासंग्रामसूचकम्।
न देयं नीचबुद्धिभ्यो जीवघातप्रवर्द्धकम् ॥ १४० ॥

फरसी तलवार आदि हिंसोपकरण पदार्थ, मूल, कन्द, मांस, मदिरा मधु, घुने हुए पदार्थ, जिनमें जीव हिंसाकी संभावना हो ऐसे स्वादिष्ट पदार्थ, नष्ट-अन्न, सूक्ष्म-अन्न, रात्रिको भोजन, मिथ्याशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, ज्योतिःशास्त्र, नाटक, जिसमें हिंसाका उपदेश हो ऐसा शास्त्र, कामको उद्दीपन करनेवाला कोकशास्त्र, जिसमें हिंसाके मंत्रोंका उपदेश हो और महासंग्रामका सूचक हो ऐसाशास्त्र किसीको भी न दे। क्योंकि यदि ऐसी चीजें नीचपुरुषोंके हाथ पड़ गईं तो उनसे हिंसाके बढ़नेकी संभावना है॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

कुपात्र।

मदोन्मत्ताय दुष्टाय जैनधर्मोपहासिने।
हिंसापातकयुक्ताय मदिरामांसभोजिने ॥ १४१ ॥
मृषाप्रलापिने देवगुरुनिन्दां प्रकुर्वते।
देयं किमपि नो दानं केवलं पापवर्द्धनम् ॥ १४२ ॥

जो मदोन्मत्त हों, दुष्ट हों, जैनधर्मकी हँसीहँसनेवाले हों, हिंसा-महापापसे युक्त हों, मदिरा-मांसका सेवन करनेवाले हों, झूठ बोलनेवाले हों और सच्चे देव-गुरुओंकी निन्दा करनेवाले हों ऐसे पुरुषोंको कुछ भी न दे क्योंकि इनको दान देना केवल पापका बढ़ाना है। इस १४२ वें श्लोकमें देव गुरुकी निंदा करनेवालेको भी कुछ नहीं देना चाहिए ऐसा कहा गया वह बहुतही युक्ति युक्त है क्योंकि जो देव गुरुकी निन्दा करनेवाले होंगे वे अवश्यही खोटे आचरणोंका प्रचार करेंगे इससे पापकीही बढ़वारी होगी। इसके लिए वर्तमानमें ज्वलन्त दृष्टान्त भरे पड़े हैं बहुतसे लोगोंने जैनधर्मकी तथा जैनाचार्योंकी निन्दा करना आरंभ कर दिया है जिन लोगोंने ऐसा करना आरंभ कर दिया है वे खुले दिलसे विधवा विवाह करना ऊंचनीचका भेद तोड़ना, एक पत्तलमें बैठ कर हरएकके साथ भोजन करना आदि पापाचारोंका समर्थन कर रहे हैं। ऐसे लोगोंको जैनसमाज सहायता देकर कुदान रूपमहापापका बोझ अपने शिरपर ले रही है बड़ेही आश्चर्यकी बात है॥ १४१ ॥ १४२ ॥

मिथ्याशास्त्रेषु यत्प्रोक्तं ब्राह्मणैर्लोभलम्पटैः ।
तन्न देयमजास्त्र्यादि पादत्राणादि हिंसकम् ॥ १४३ ॥

अत्यन्त लोभी ब्राह्मणोंने खोटे खोटे शास्त्रोंमें जो बकरी स्त्री आदिका दान देना लिखा है वह भी न दे तथा पैरके जूते आदि हिंसक चीजें भी न दे ॥ १४३ ॥

दानके पात्र ।

चैत्ये चैत्यालये शास्त्रे चतुःसंघेषु सप्तसु ।
सुक्षेत्रेषु व्ययः कार्यो नो चेल्लक्ष्मीर्निरर्थिका ॥ १४४ ॥

जिन प्रतिमाके बनवानेमें, जिनमंदिरके बंधवानेमें, शास्त्रोंके लिखवाने तथा जीर्णोद्धार करानेमें और चारों संघोंमें-इस तरह इन सात स्थानोंमें श्रावकगण अपनी लक्ष्मीका व्यय करे; वरना उनकी लक्ष्मी व्यर्थ है—निष्फल है ॥ १४४ ॥

दानकी प्रशंसा ।

भोगित्वाऽद्यन्तशान्तिप्रभुपदमुदयं संयतेऽन्नप्रदाना-
च्छ्रीषेणो रुग्निषेधाद्धनपतितनया प्राप सर्वौषधर्द्धिम् ।
प्राक्तज्जन्मर्षिवासावनशुभकरणाच्छूकरः स्वर्गमग्र्यं
कौण्डेशः पुस्तकार्चावितरणविधिनाऽप्यागमाम्भोधिपारम् ॥ १४५ ॥

श्रीषेण महाराजने आदित्यगति और अरिंजय नामके चारणमुनियोंको आहारदान दिया था, जिसके प्रभावसे वे प्रथम उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। फिर कई बार स्वर्गीय सुखोंको भोग कर अन्तमें शान्तिनाथ तीर्थंकरका पद पाकर मुक्तिको गये। यहांपर केवल कारणमात्र दिखाया है अर्थात् वे आहार देनेसे ही तीर्थंकर नहीं हो गये थे, किंतु उनने आहार-दानके बलसे ऐसे पुण्य और पदकी प्राप्ति की थी, जिसकी वजहसे उनने तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया था। यदि वे आहार-दान न देते तो उन्हें वह पुण्य और पद नहीं मिलता कि, जिस पदमें जिस पुण्योदयसे वे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर सके थे। इसलिए उनके तीर्थंकर पदमें भी परंपरासे आहारदान ही कारण है। देवकुल राजाके यहां एक कन्या बुहारी दिया करती थी। उसने औषध-दान देकर एक मुनिको नीरोग किया था। उसके प्रभावसे वह मरकर शेठ धनपतिकी वृषभसेना नामकी पुत्री हुई और उसे वहां ज्वर, अतिसार आदि रोगोंको दूर करनेवाली सर्वौषधि नामकी ऋद्धि प्राप्त हुई। एक शूकरने अपने पहिले भवमें मुनियोंके लिए वसतिका बनवानेका अभिप्राय किया था और उसने अपने उसी शूकर भवमें एक मुनिकी रक्षा की थी। इन दोनों कार्योंमें जो उसके शुभ परिणाम हुए थे उन परिणामोंसे वह मरकर सौधर्म-स्वर्गमें एक ऋद्धिधारी देव हुआ था। तथा गोविंदनामका एक ग्वालिया था। उसने शास्त्रकी पूजाकर वह शास्त्र मुनियोंको भेंट किया था। इसलिए उस दानके प्रभावसे वह कौंडेश नामका मुनि होकर द्वादशांग श्रुतज्ञान—महासागरका पारगामी हो गया था। इस तरह चार प्रकारके दानोंमें ये चार प्रसिद्ध हुए हैं। इनके अलावा और भी बहुतसे हुए हैं। उनमेंसे केवल चारके नाम दिखाये हैं ॥ १४५ ॥

संक्षेपेण मया प्रोक्तं गृहिणां दानलक्षणम् ।
दत्वा दानं यथाशक्ति भुञ्जीत श्रावकः स्वयम् ॥ १४६ ॥

हमने यह संक्षेपसे गृहस्थियोंके दानका कथन किया है। इसी तरह अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर श्रावक आप स्वयं भोजन करे ॥ १४६ ॥

भोजन-विधि ।

प्रक्षाल्य हस्तपादास्यं सम्यगाचम्य वारिणा ।
स्वबान्धवान् समाहूय स्वस्य पंक्तौ निवेशयेत् ॥ १४७ ॥

भोजन करनेको बैठनेके पहिले जलसे हाथ पैर और मुंह धोकर अच्छी तरह आचमन करे और फिर अपने बन्धु-वर्गको बुलाकर उन्हें अपनी पंक्तिमें साथ लेकर बैठे ॥ १४७ ॥

पंक्तिभेद ।

क्षत्रियसदने विप्राः क्षत्रिया वैश्यसद्मनि ।
वैश्याः क्षत्रियगेहे तु भुञ्जते पंक्तिभेदतः ॥ १४८ ॥
विप्रस्य सदने सर्वे विट्क्षत्रियाश्च भुञ्जते ।
शूद्राः सद्मसु सर्वेषां नीचोच्चाचारसंयुताः ॥ १४९ ॥

क्षत्रियोंके मकानमें ब्राह्मण, वैश्यके मकानमें क्षत्रिय और क्षत्रियके घरमें वैश्य निरनिराली पंक्तिमें बैठकर भोजन करें। एकही पंक्तिमें न बैठें। ब्राह्मणके घरपर वैश्य और क्षत्रिय सब भोजन करें। तथा नीच ऊंच सभी जातिके शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके घरपर भोजन करें। भावार्थ-जैसा भोजनका क्रम बताया गया है उसी तरह अपनी अपनी अलहदी पंक्तिमें बैठ कर भोजन करना चाहिए। ब्राह्मण ब्राह्मणकी पंक्तिमें, क्षत्रिय क्षत्रियकी पंक्तिमें, वैश्य वैश्यकी पंक्तिमें और शूद्र अपने अपने योग्य शूद्रकी पंक्तिमें बैठकर भोजन करें। यह नहीं कि, ब्राह्मणकी पंक्तिमें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र, क्षत्रियकी पंक्तिमें ब्राह्मण वैश्य और शूद्र, वैश्यकी पंक्तिमें ब्राह्मण क्षत्रिय और शूद्र तथा शूद्रकी पंक्तिमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य बैठकर भोजन करें। तथा इससे यह भी पाया जाता है कि शूद्रके घरपर कोई भी भोजन न करे। इसी तरह उच्च शूद्रके यहां नीच शूद्र भोजन करे, परंतु नीच शूद्रके यहां उच्च शूद्र भोजन न करे ॥१४८-१४९॥

भोजनके अयोग्य स्थान ।

विण्मूत्रोच्छिष्टपात्रं च पूयचर्मास्थिरक्तकम् ।
गोमयं पङ्कदुर्गन्धस्तमो रोगांगपीडितः ॥ १५० ॥

असम्मार्जितमुद्धूलि मृताङ्गि धूमसंवृतम्।
मलिनं वस्त्रपात्रादि युक्ता स्त्रीः पूर्णगर्भिणी ॥ १५१ ॥
सूतकिगृहसन्धिस्थो म्लेच्छशब्दोऽतिनिष्ठुरः।
तिष्ठन्ति यत्र शालायां भुक्तिस्तत्र निषिध्यते ॥ १५२ ॥

जहांपर विष्टा पड़ा हो, मूत्र पड़ा हो, जूठे वर्तन रक्खे हों, पीप, चमड़ा, हड्डी और खून पड़े हों, गोबर पड़ा हो, कीचड़ हो, दुर्गन्ध आती हो, अन्धकार हो, रोगसे पीड़ित मनुष्य हों, जो जगह झाड़–पोंछकर साफ की हुई न हो, धूला–कूड़ा–करकट डला हो, प्राणियोंके टूटे हुए अवयव इधर उधर पड़े हों, जो जगह चारों ओर धूएंसे आच्छादित हो रही हो, जिस मकानकी दीवालों और छत वगैरह पर धूआं जमा हुआ हो, मैले-कुचैले कपड़े वर्तन आदिसे भरी पड़ी हो, जहां पूर्ण गर्भवती स्त्री बैठी हो वहां भोजन न करे। जिस मकानकी दीवाल वगैरह सूतकीके मकानकी दीवाल वगैरहसे चिपटी हो अथवा सूतक जिस घरमें हो वहांपर भोजन न करे। जहांपर नीच लोगोंके कठोर शब्द सुनाई पड़ते हों ऐसी जगहमें बैठकर भोजन न करे ॥ १५०–१५२ ॥

पंक्तिमें सामिल होने योग्य मनुष्य।

पंक्त्या युक्तो नरो ज्ञेयो रोगमुक्तः कुलीनकः।
स्नातोऽनुव्रतिकः पूर्णावयवो विमलाम्बरः ॥ १५३ ॥
सर्वेन्द्रियेषु सन्तुष्टो निर्विकारश्च धर्मदृक्।
निर्गर्वो ब्रह्मचारी वा गृहस्थः श्लाघ्यवृत्तिकः ॥ १५४ ॥

एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करने योग्य मनुष्य ऐसा होना चाहिए कि जो नीरोग हो, कुलीन हो, स्नान किया हुआ हो, अपने योग्य व्रतोंको पालनेवाला हो, जिसके शारीरिक अवयव परिपूर्ण हों–लूला लंगड़ा अन्धा न हो, जो स्वच्छ कपड़े पहने हो, जिसकी सब इंन्द्रियां सन्तुष्ट हों, जो विकार-रहित हो, जिसकी धर्मपर श्रद्धा हो, जो गर्वयुक्त न हो, ब्रह्मचारी हो और जिसकी आजीविका प्रशंसनीय हो ऐसा गृहस्थी हो ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

पंक्तिमें सामिल न होने योग्य मनुष्य।

पंक्त्ययोग्यं ततो वक्ष्ये विजातीयो दुरात्मकः।
मलयुक्ताम्बरोऽस्नातच्छिन्नाङ्गः परनिन्दकः ॥ १५५ ॥
श्वासी कासी व्रणी कुष्टी पीनसच्छर्दिरोगिणः।
मिथ्यादृष्टिर्विकारी च उन्मत्तः परिहासकः ॥ १५६ ॥
असन्तुष्टश्च पाषण्डी लिङ्गी भ्रष्टः कुवादिकः।
सप्तव्यसनसंयुक्तो दुराचारो दुराशयः ॥ १५७ ॥
चतुःकषायिको दीनो निर्घृणाङ्गोऽभिमान्यपि।

अतिबालोऽतिवृद्धश्चातिश्यामोऽतिमतिभ्रमः ॥ १५८ ॥
षण्ढश्च पश्चिमद्वारी पञ्चभिश्च बहिष्कृतः ।
देवार्चकश्च निर्माल्यभोक्ता जीवविनाशकः ॥ १५९ ॥
राजद्रोही गुरुद्रोही पूजापीडनकारकः ।
वाचालोऽतिमृषावादी वक्राङ्गश्चातिवामनः ॥ १६० ॥
इत्यादिदुष्टसंसर्गं सन्त्यजेत्पंक्तिभोजने ।
श्वानसूकरचाण्डालम्लेच्छहिंसकदर्शनम् ॥ १६१ ॥

अब पंक्तिमें सामिल न होने योग्य मनुष्योंको बताते हैं–जो विजातीय हो-अपनी जातिका न हो, दुष्ट हो, मैले-कुचैले कपड़े पहने हो, स्नान किये न हो, जिसके शरीरका कोईसा अंग छिन्न भिन्न हो गया हो, जो निन्दक हो, जिसको सांस चढ़ रहा हो, खांसी चलती हो, जिसके शरीरमें फोड़ा फुंसी वगैरहके घाव हो रहे हों, जो कोढ़ी हो, जिसके पीनसका रोग हो रहा हो, उल्टी होती हो, जो मिथ्यादृष्टि हो, विकारी हो, उन्मत्त हो, ठट्ठेबाज हो, सन्तोषी न हो, पाखंडी हो, शरीरमें कुछ न कुछ चिन्ह रखनेवाला लिंगी (ढोंगी) हो, वितंडा करनेवाला हो, सातों व्यसनोंका सेवन करनेवाला हो, दुराचारी हो, दुष्ट आशयवाला हो, चारों कषायोंसे युक्त हो, दीन हो, जिसके शरीरको देखकर ग्लानी आती हो, जो अभिमानी हो, अत्यन्तही बालक हो, अत्यन्त बूढ़ा हो, अत्यन्त काला हो, जिसकी बुद्धिमें अत्यन्त भ्रम (विकार) हो गया हो, जो नपुंसक हो, जिसकी गुदा बह रही हो, पंचोंने जिसको बहिष्कृत कर दिया हो, जिसके जिनपूजाकी आजीविका हो–देवपूजा करके उदर-निर्वाह करता हो, जो निर्माल्य-भोजी हो, जीवोंकी हिंसा करनेवाला हो, राजद्रोही हो, गुरुद्रोही हो, पूजादि धर्मकार्योंमें विघ्न पाड़नेवाला हो, अत्यन्त वाचाल हो, अत्यन्त झूठ बोलनेवाला हो, जिसका शरीर टेढ़ामेढ़ा हो और बिल्कुल बौना हो, इत्यादि तरहके मनुष्योंको भोजनमें सामिल न करे तथा भोजनके समय, कुत्ते, सूकर, चांडाल, म्लेच्छ, हिंसक आदिको आँखसे न देखे ॥१५५-१६१॥

प्राङ्मुखस्तु समश्नीयात्प्रतीच्यां वा यथासुखम् ।
उत्तरे धर्मकृत्येषु दक्षिणे तु विवर्जयेत् ॥ १६२ ॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्वी चोत्तरामुखः ।
श्रीकामः पश्चिमे भुंक्ते जातु नो दक्षिणामुखः ॥ १६३ ॥

पूर्व दिशाकी ओर मुख कर भोजन करे अथवा पश्चिमकी ओर मुख कर भोजन करे । जैसा सुभीता दिखे वैसा करे । तथा धार्मिक कामोंमें उत्तरकी ओर मुख कर भोजन करे, किन्तु भोजनके समय दक्षिणकी ओर मुख न करे । पूर्वकी ओर मुखकर भोजन करनेसे आयु बढ़ती है, उत्तरकी ओर मुखकर भोजन करनेसे यश फैलता है और पश्चिमकी ओर मुखकर भोजन करनेसे लक्ष्मीका चहीता होता है–उसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तथा दक्षिणकी ओर मुखकर भोजन करनेसे कुछ भी नहीं मिलता ॥ १६२–१६३॥

भोजनके योग्य चौकेकी रचना।

चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम्।
कर्तव्यमानुपूर्व्येण मण्डलं ब्राह्मणादिषु ॥ १६४ ॥

ब्राह्मणोंका चौका चौकोन, क्षत्रियोंका त्रिकोण और वैश्योंका गोल अथवा अर्धचन्द्राकार होना चाहिए ॥ १६४ ॥

यातुधानाः पिशाचाश्च त्वसुरा राक्षसास्तथा।
घ्नन्ति ते बलमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम् ॥ १६५ ॥

चौकेके विना भोजन करनेसे यातुधान (भूत), पिशाच, असुर तथा राक्षस भोजनकी शक्तिको नष्ट कर देते हैं। इसलिए चौका बनाकर उसमें बैठकर ही भोजन करना चाहिए ॥१६५॥

भोजनके योग्य वर्त्तन।

भोजने भुक्तिपात्रं तु जलपात्रं पृथक् पृथक्।
श्रावकाचारसंयुक्ता न भुञ्जन्त्येकभाजने ॥ १६६ ॥

भोजनमें भोजनपात्र और जलपात्र अलहदे २ होने चाहिए। श्रावकगण एक थालीमें बैठकर भोजन न करें ॥ १६६ ॥

एक एव तु यो भुंक्ते विमले कांस्यभाजने।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥ १६७ ॥

जो पुरुष अकेला ही निर्मल कांसेके वर्तनमें भोजन करता है उसकी आयु, प्रज्ञा, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं ॥ १६७ ॥

पलाद्विंशतिकादर्वागत ऊर्ध्वं यदृच्छया।
इदं पात्रं गृहस्थानां न यतिब्रह्मचारिणाम् ॥ १६८ ॥

भोजन करनेका वर्तन (थाली) वीस पल (अस्सी तोले) के भीतर भीतर होना चाहिए। अथवा इससे ऊपर चाहे जितना हो। यह पात्रका प्रमाण गृहस्थोंके लिए है, यति-ब्रह्मचारियोंके लिए नहीं ॥ १६८ ॥

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्यात्प्राङ्मुखोऽसौ समाश्रितः।
हस्तौ पादौ तथा चास्यमेषु पञ्चार्द्रता स्मृता ॥ १६९ ॥

गृहस्थ पूर्वकी ओर मुखकर पंचार्द्र भोजन करे। दोनों हाथ, दोनों पैर और एक मुख इन पांचोंको पंचार्द्रता कहते हैं। इन पांचों अंगोंको धोकर भोजन करे ॥ १६९ ॥

भोजनके बर्तनोंका अन्तर।

अन्तरं भुक्तिपात्राणां वितस्तिद्वयमश्नताम्।
द्वित्रिहस्तं यथा न स्याच्छीकरस्पर्शनं तथा ॥ १७० ॥

भोजन करनेवालोंके भोजनके पात्रोंका एक दूसरेसे दो बेंत अथवा दो तीन हाथका फासला रहना चाहिए, जिससे एक दूसरेके छींटे उछलकर इधर उधर न जावें ॥ १७० ॥

पत्तोंमें भोजन करनेकी विधि।

विवाहे वा प्रतिष्ठायां कांस्यपात्राद्यसम्भवे।
पर्णपात्रेषु भोक्तव्यमुष्णाम्बुप्रासुकेषु च ॥ १७१ ॥

विवाहके समय अथवा प्रतिष्ठाके समय आवश्यकताके अनुसार कांसीके वर्तन न मिलें तो गर्मजलसे धोकर प्रासुक की हुई पत्तोंकी बनी हुई पत्तलोंमें भोजन करे ॥ १७१ ॥

भोजनके योग्य पत्ते।

रम्भाकुटजमध्वाम्रतिन्दुफणसचम्पकाः।
पद्मपोफलपलाशवटवृक्षादिपत्रकम् ॥ १७२ ॥

केळा, कुटज वृक्ष, मधु वृक्ष, आम्र वृक्ष, फणस वृक्ष, चम्पक वृक्ष, कमल, पोफल वृक्ष, ढाक, बड़ इत्यादि वृक्षोंके पत्ते भोजनके योग्य होते हैं ॥ १७२ ॥

अयोग्य पत्ते।

चिञ्चार्काश्वत्थपर्णेषु कुम्भीजम्बूकपर्णयोः।
कोविदारकदम्बानां पात्रेषु नैव भुज्यते ॥ १७३ ॥

चिंच वृक्ष, आक, पीपल, कुंभीज वृक्ष, जांबू, कांचन वृक्ष और कदम्ब वृक्ष इनके पत्तोंपर भोजन न करे ॥ १७३ ॥

निषिद्ध पात्र।

करे खर्परके गेही शिलायां ताम्रभाजने।
भिन्नकांस्ये च वस्त्रे च न भुञ्जीयात्तथायसे ॥ १७४ ॥

गृहस्थ लोग हाथमें, मिट्टीके खपरोंमें, पत्थरपर, तांबेके वर्तनमें, फूटे हुए कांसेके वर्तनमें, कपड़ेमें तथा लोहेके पात्रमें भोजन न करें ॥ १७४ ॥

वर्तनमें भोजन रखनेकी विधि।

अन्नं मध्ये प्रतिष्ठाप्यं दक्षिणे घृतपायसम्।
शाकादि पुरतः स्थाप्यं भक्ष्यं भोज्यं च वामतः ॥ १७५ ॥

थाली अथवा पत्तलके बीचमें भात वगैरह अन्न परोसे, दाहिनी ओर घी और दूध, शाक दाल आदि सामने, और बाकीके भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थोंको बाईं ओर परोसे ॥ १७५ ॥

भोजन करनेको बैठनेकी विधि।

पात्रं धृत्वा तु हस्तेन यावद्ग्रासं न भुज्यते।
अन्नं प्रोक्ष्यामृतीकृत्य सेचयेद्विमलैर्जलैः ॥ १७६ ॥

भोजनका ग्रास मुंहमें न ले उसके पहले पात्रको हाथसे रखकर प्रथम अन्नको मंत्र द्वारा प्रोक्षण कर और उसको अमृत बनाकर चारों ओर जल सींचे ॥ १७६ ॥ उसके मंत्र ये हैं—

ॐ ह्रीं झं वं ह्वः पः हः इदममृतान्नं भवतु स्वाहा। अन्न प्रोक्षणम् ॥१॥

यह मंत्र पढ़ कर भोजनको अमृत बनावे और प्रोक्षण करे।

ॐ ह्रीं क्ष्रौं क्ष्रौं भूतप्रेतादिपरिहारार्थं परिषेचयामि स्वाहा। परिषेचनम् ॥ २ ॥

यह मंत्र पढ़ कर भोजनकी थालीके चारों ओर पानी सींचे।

अन्नेनैव घृताक्तेन नमस्कारेण वै भुवि।
तिस्र एवाहुतीर्दद्याद्भोजनादौ तु दक्षिणे ॥ १७७ ॥
बलिं दत्वोर्विदेवेभ्यः करौ प्रक्षाल्य वारिभिः।
अमलीफलमात्रं तु गृह्णीयाद्ग्रासमुत्तमम् ॥ १७८ ॥

भोजन प्रारंभ करनेके पेश्तर दाहिनी ओर भूमिपर " उर्वि देवेभ्यो नमः " यह मंत्र पढ़ कर घीसे मिले हुए अन्नकी तीन आहूतियाँ देवे। पृथिवीके अधिष्ठाता देवको यह बलि देकर दोनों हाथोंको जलसे धोकर आँवलेके फलकी बराबर उत्तम ग्रास मुंहमें लेवे ॥ १७७—१७८ ॥

ॐ क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः आपोशनं करोमि स्वाहा। इति शंखमुद्रया जलं पिबेत् ॥ ३ ॥

यह मंत्र पढकर शंखमुद्रासे जल पीवे

ॐ ह्रीं इन्द्रियप्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं कायबलप्राणाय स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ ह्रीं मनोबलप्राणाय स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ ह्रीं उच्छ्वासप्राणाय स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ ह्रीं आयुःप्राणाय स्वाहा ॥ ५ ॥ इति पञ्चप्राणाहुतीर्दत्वा भुञ्जीत ॥ ४ ॥

" ॐ ह्रीं " इत्यादि पांच मंत्र पढ कर पांच प्राणाहुति देकर भोजन करे ॥ ४ ॥

अन्न-लक्षण ।

पक्वं शुद्धं कवोष्णं च भोज्यमन्नमनिन्दयन् ।
देशकालानुसारेण यथेष्टं भुज्यते वरम् ॥ १७९ ॥

देश कालका विचार कर अपनी रुचिके अनुसार भोजनसे ग्लानि न करता हुआ अच्छा सीझा या सिका हुआ कुछ कुछ गर्म और निर्दोष भोजन करे ॥ १७९ ॥

अन्न-भक्षण और पात्र-स्पर्श ।

वामहस्तेन गृण्हीयाद्भुंजानः पात्रपार्श्वकम् ।
दक्षिणेन स्वहस्तेन भुञ्जीतान्नं विशोध्य च ॥ १८० ॥

भोजन करनेवाला श्रावक बायें हाथसे थालीको पकड़ ले और आंखोंसे देख-भालकर दाहिने हाथसे भोजन जीमें ॥ १८० ॥

जलपान ।

वामेन जलपात्रं तु धृत्वा हस्तेन दक्षिणे ।
ईषदाधारमादाय पिवेन्नीरं शनैः शनैः ॥ १८१ ॥
आदौ पीतं हरेद्वन्हि मध्ये पीतं रसायनम् ।
भोजनान्ते च यत्पीतं तज्जलं विषवद्भवेत् ॥ १८२ ॥

बायें हाथसे लोटे वगैरहको पकड़कर दाहिने हाथसे उस लोटेके नीचे कुछ सहारा लगाकर धीरे धीरे जल पीवे। भोजनके आदिमें जल पीनेसे अग्नि मन्द होती है, मध्यमें पीनेसे वह जल औषधिका काम देता है और अन्तमें पीया हुआ जल विषके मानिंद होता है ॥ १८१--१८२ ॥

शीत और उष्ण अन्नके गुण ।

अत्युष्णान्नं बलं हन्यादतिशीतं तु दुर्जरम् ।
तस्मात्कवोष्णं भुञ्जीत विषमासनवर्जितः ॥ १८३ ॥

अत्यन्त गर्म भोजन बलका नाश करता है-निर्बल बना देता है और अत्यन्त ठंडा भोजन अजीर्णता उत्पन्न करता है-वह पचता नहीं। इस लिए कुछ कुछ गर्म भोजन करे और भोजन करते समय विषम आसनसे न बैठे ॥ १८३ ॥

तृषितस्तु न भुञ्जीत क्षुधितो न पिबेज्जलम्।
तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥ १८४ ॥

प्यासा तो भोजन न करे और भूखा जल न पीवे। क्योंकि प्यासमें भोजन करनेसे गुल्मरोग हो जाता है और भूखमें पानी पीनेसे जलोदर रोग हो जाता है ॥ १८४ ॥

आदौ स्वादु स्निग्धं गुरु मध्ये लवणमाम्लमुपसेव्यम्।
रूक्षं द्रवं च पश्चान्नं च भुक्त्वा भक्षयेत्किंचित् ॥ १८५ ॥

भोजनके लिए जब बैठे तब शुरूमें मीठा और चिकना भोजन करे, बीचमें भारी, नमकीन और खट्टा भोजन करे, तथा अन्तमें रूखा और पतला भोजन करे। भोजन कर चुकनेके बाद कुछ न खावे ॥ १८५ ॥

भोजनान्तराय।

प्राणघातेऽन्नबाष्पेण वन्हौ झंपत्पतङ्गके।
दर्शने प्राणघातस्य शरीरिणां परस्परम् ॥ १८६ ॥
कपर्दकेशचर्मास्थिमृतप्राणिकलेवरे।
नखगोमयभस्मादिमिश्रितान्ने च दर्शिते ॥ १८७ ॥
उपद्रुते बिडालाद्यैः प्राणिनां दुर्वचःश्रुतौ।
शुनां श्रुते कलिध्वानै ग्रामघृष्टिध्वनौ श्रुते ॥ १८८ ॥
पीडारोदननिःश्वानग्रामदाहशिरश्छिदः।
धाट्यागमरणप्राणिक्षयशब्दे श्रुते तथा ॥ १८९ ॥
नियमितान्नसम्भुक्ते प्राग्दुःखाद्रोदने स्वयम्।
विट्शङ्कायां क्षुते वान्तौ मूत्रोत्सर्गेऽन्यताडिते ॥ १९० ॥
आर्द्रचर्मास्थिमांसासृक्पूयरक्तसुरामधौ।
दर्शने स्पर्शने शुष्कास्थिरोमविट्जचर्मणि ॥ १९१ ॥
ऋतुमती प्रसूता स्त्री मिथ्यात्वमलिनाम्बरे।
मार्जारमूषकश्वानगोश्वाद्यव्रतिबालके ॥ १९२ ॥
पिपीलिकादिजीवैर्वा वेष्टितान्नं मृतैश्च वा।
इदं मांसमिदं चेदृक् संकल्पे वाऽशनं त्यजेत् ॥ १९३ ॥

भोजन करते समय, भोजनकी भाफसे प्राणीके प्राणोंका घात हो जानेपर, अग्निमें झपटकर पतंग आदिके मर जानेपर, भोजन करनेवालोंके शरीरोंका परस्पर स्पर्श हो जानेपर, कौड़ी, केश, चमड़ा, हड्डी,

मरे हुए प्राणियोंके कलेवर, नाखून, गोबर, राख चिपटा हुआ अन्न देख लेनेपर, बिल्ली, आदिका उपद्रव होनेपर, प्राणियोंके दुर्वचन सुनाई देनेपर, कुत्तोंकी आवाज सुन लेनेपर, परस्परमें लड़नेकी आवाज आनेपर, सूकरकी बोली सुन लेनेपर, पीड़ाके कारण किसीके रोनेकी आवाज सुनाई देनेपर, ग्राममें आग लग जानेपर, फलाँका शिर कट गया इसतरहके शब्द सुनने पर, लड़ाई वगैरहमें प्राणियोंके मरनेकी आवाज सुननेपर, त्याग किये हुए भोजनके खा लेनेपर, पहले उत्पन्न हुए दुःखसे अपनेको रुलाई आनेपर, अपनेको टट्टीकी आशंका होनेपर, छींक आनेपर, वमन होनेपर, पेशाब आ जानेपर, दूसरेके अपनेको मार देनेपर, गीला चमड़ा, हड्डी, मांस, खून, पीप, मदिरा मधुका दर्शन किंवा स्पर्श हो जानेपर, जली हुई हड्डी केश चमड़ाका दर्शन स्पर्श हो जानेपर, ऋतुमती और प्रसूता स्त्रीका दर्शन या स्पर्शन हो जानेपर, मिथ्यादृष्टि और मैले कुचैले कपड़े पहने हुए मनुष्यके दृष्टिगत या स्पर्श हो जानेपर; बिल्ली, चूहे, कुत्ते, गायें, घोड़े, आदि तथा अव्रती बालकका स्पर्श हो जानेपर और भोजनमें जिंदे जिन्हें भोजनसे अलहदा नहीं कर सकते ऐसे अथवा मरे हुए चींटी आदि जीवोंके गिर पड़नेपर भोजन छोड़ दे। तथा यह मांस है, टट्टी है, खून है—इस तरहकी भोजनमें कल्पना हो जानेपर भोजन छोड़ दे॥ १८६-१९३॥

त्याज्य भोजन।

मद्यमांसमधून्युज्झेत्पञ्चक्षीरफलानि च।
अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूलवधाद्विदुः॥ १९४॥

मद्य, मांस, मधु और पंच उदुंबर फलोंको भक्षण करनेका त्याग करे। इन आठोंके त्यागको श्रावकोंके आठ मूलगुण बोलते हैं। इनके त्यागनेसे स्थूल वधसे विरति अर्थात् स्थूल-हिंसाका त्याग हो जाता है॥ १९४॥

पिप्पलोदुम्बरप्लक्षवटपीलुफलान्यदन्।
हन्त्यार्द्राणि त्रसान् शुष्कान्यपि स्वं रागयोगतः॥ १९५॥

पीपल, ऊमर (गूलर), पाकर, बड़ और कठूमर (काले गूलर अथवा अंजीर) इन पांचों वृक्षोंके हरे फल खानेवाला श्रावक सूक्ष्म और स्थूल-दोनों तरहके त्रस जीवोंकी हिंसा करता है। और अधिक दिन पड़े रहनेसे जिनमेंके त्रसजीव नष्ट हो गये हैं-ऐसे सूखे हुए इन फलोंको जो खाता है वह भी रागयुक्त होनेके कारण अपनी हिंसा करता है। भावार्थ—हिंसा दो तरहकी है-एक द्रव्य-हिंसा और दूसरी भाव-हिंसा। अपने अथवा दूसरेके बाह्य प्राणोंका घात करना द्रव्य-हिंसा है; और भाव प्राणोंका नाश करना भाव-हिंसा है। अपने रागद्वेषादि भावोंकी उत्पत्ति होना अथवा परको क्रोधादि उत्पन्न कराना भी भाव-हिंसा है। इन फलोंके खानेसे दोनों तरहकी हिंसा होती है। इनमें रहनेवाले-जीवोंके प्राणोंका घात होता है, इसलिए द्रव्य-हिंसा है। और खानेवालेकी आत्मामें अत्यन्त रागभाव है, इसलिये भाव-हिंसा है। आत्माका स्वभाव रागद्वेषादि-रहित शुद्ध स्फटिकरूप निर्मल है।

उसमें विकार-भावोंके पैदा होनेसे उसके उस असली स्वभावका घात हो जाता है। बस इस स्वभावका घात होना ही हिंसा है। इन सूखे फलोंके खानेमें उसे अधिक राग-भाव है। इसलिए वह इन राग-भावोंके निमित्तसे अपनी हिंसा करता है ॥ १९५ ॥

मद्यपान-निषेध।

पीते यत्र रसाङ्गजीवनिवहाः क्षिप्रं म्रियन्तेऽखिलाः ।
कामक्रोधभयभ्रमप्रभृतयः सावद्यमुद्यंति च ॥
तन्मद्यं व्रतयन्न धूर्तिलपरास्कन्दीव यात्यापदं ।
तत्पायी पुनरेकपादिव दुराचारं चरन्मज्जति ॥ १९६ ॥

जिस मद्यकें रससे उत्पन्न हुए अथवा जिनके समूहसे वह मद्यका रस बना है ऐसे अनेक जीवोंके समूहके समूह उस मद्यके पीते ही मर जाते हैं। इसके पीनेसे काम, क्रोध, भय, भ्रम आदि तथा पाप उत्पन्न करने वाले परिणाम पैदा होते हैं। इसलिए उस मद्यका त्याग करनेवाला पुरुष धूर्तिल नामके चोरकी तरह आपत्तिको प्राप्त नहीं होता है, लेकिन मद्यपायी पुरुष एकपाद नामके सन्यासीकी तरह अगम्य-गमन, अभक्ष-भक्षण, अपेय-पान आदि दुराचारोंका सेवन करता हुआ संसार-समुद्रमें डूबता है—दुर्गतिको जाता है। भावार्थ—मद्यके पीनेमें भी द्रव्य-हिंसा और भाव-हिंसा—दोनों तरहकी हिंसा होती है। मद्य पीनेवालोंकी बड़ी बुरी दुर्गति होती है। इसमें प्रत्यक्ष अनेक दोष देखे जाते हैं ॥ १९६ ॥

आस्तामेतद्यदिह जननीं वल्लभां मन्यमाना ।
निन्द्यां चेष्टां विदधति जना निस्त्रपा पीतमद्याः ॥
तन्नाधिक्यं पथि निपतिता यत्किरत्सारमेयात् ।
वक्त्रे मूत्रं मधुरमधुरं भाषमाणाः पिबन्ति ॥ १९७ ॥

खैर, जीभके लोलुपी होकर द्रव्य-हिंसा और भाव-हिंसाको कुछ नहीं समझते हैं तो जाने दीजिए, परंतु ये दोष जो प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं उनपर तो जरा गौर कीजिए। इस संसारमें कितने ही निर्लज्ज मनुष्य मदिरा पीकर विह्वल हुए अपनी जन्म देनेवाली माताको अपनी प्यारी-काम-प्रेयसी समझकर उससे बड़ी निंद्य चेष्टाएं करते हैं। यह इतनी अधिक आश्चर्यकी बात नहीं है, कारण कि जो लोग मद्य पीकर रास्तेमें गिर पड़ते हैं और मुंह फाड़कर सीधे बीच सड़कोंमें पड़े रहते हैं उनके मुंहमें बिल समझकर कुत्ते पेशाब कर देते हैं। उसे वे लोग बड़ा मीठा है, बड़ा मीठा है—ऐसा कह कह कर बड़े चावसे पीते हैं। भावार्थ—कहनेका तात्पर्य यह है कि मदिरा पीनेवाले बुरेसे बुरे कार्योंको करनेमें तत्पर रहते हैं। उन्हें किसी भी विषयके हेयोपादेयकी सुधि नहीं रहती। यदि ऐसे घृणित कार्य करनेवाले भी नीच न कहे जा कर एक पंक्ति और एक पत्तलमें बैठकर भोजन-पान करनेके योग्य समझे जावेंगे तो नहीं मालूम नीच शब्दका प्रयोग ही कहाँपर किया जायगा? जिस उद्देश्यको लेकर

वे किसीको नीच कहना चाहेंगे, फर्ज कीजिए कि दूसरा उस-विचारको भी अच्छा समझता हो, वह उसे नीच न समझता हो। तो कहना पड़ेगा कि नीच शब्द कोई भी वाच्य न रहा। खैर, मान लो कि, किसीके ये विचार हों कि नीच ऊंचके भेदको ही मिटा देना चाहिए, तो इनके विचार ऐसे हैं जैसे किसीका विचार हो कि तमाम संसारको मद्य मांसादिका सेवन करना चाहिए। परंतु जैसे इसके इन विचारोंके लिए कुलीन बुद्धिमान् पुरुषोंके हृदयमें स्थान नहीं है, उसी तरह नीच ऊंच भेदोंको मिटा देनेके विचारोंके लिये भी अनुभवी विचारशील मनुष्योंके हृदयोंमें स्थान नहीं है। सारांश-मद्य पीना महा घृणित कार्य है, और मद्यपायी पुरुषोंके साथ बैठकर भोजनादि करना भी अत्यन्त घृणित कार्य है ॥ १९७ ॥

मांस-भक्षण-निषेध।

हिंस्रः स्वयं मृतस्यापि स्यादश्नन्वा स्पृशन् पलम् ।
पक्वापक्वा हि तत्पेश्यो निगोतौघभृतः सदा ॥ १९८ ॥

जिन गाय, भैंस, बकरे, बकरी, मछलियां आदि जीवोंको किसीने मारा नहीं है-जो काल पाकर स्वयं मर गये हैं, उनके मांसको खानेवाले या सिर्फ उसको छूनेवाले भी हिंसक—जीवोंके मारनेवाले हैं। क्योंकि पकी हुई हो, विना पकी हुई हो अथवा पक रही हो-ऐसी मांसकी डलियोंमें भी हर समय अनन्त साधारण-निगोदिया जीवोंका समूह अथवा उसी जातिके लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय-जीव उत्पन्न होते रहते हैं ॥ १९८ ॥

मधु-निषेध।

मधुकृद्व्रातघातोत्थं मध्वशुच्यपि विन्दुशः ।
खादन् बध्नात्यघं सप्तग्रामदाहांहसोऽधिकम् ॥ १९९ ॥

यह मधु उसके बनानेवाले भौंरे, मधुमक्खियां आदि ढेरके ढेर प्राणियोंके विनाशसे पैदा होता है। इसके अलावा इसमें भी हर समय प्राणी उत्पन्न होते रहते हैं। यह मधु उन जीवोंकी झूठन है। इसलिए यह बड़ा ही अपवित्र पदार्थ है। इसको निकालनेवाले म्लेच्छोंकी लार भी उसमें गिर पड़ती है अतः बड़ा ही तुच्छ है। जो कोई मनुष्य इस शहदकी एक बूंद भी सेवन करता है उसे सात गांवोंके जलानेके पापसे भी अधिक पाप लगता है ॥ १९९ ॥

नवनीत-निषेध।

मधुवन्नवनीतं च मुञ्चेत्तदपि भूयसः ।
द्विमुहूर्तात्परं शश्वत्संसजन्त्यङ्गिराशयः ॥ २०० ॥

मधुकी तरह मक्खन अथवा लौनीका भी श्रावकोंको त्याग करना चाहिए। क्योंकि

मक्खनमें भी हर समय दो मुहूर्तके बाद प्राणियोंके समूहके समूह उत्पन्न होते रहते हैं। भावार्थ—दही मथकर मक्खन निकाल लेनेके दो मुहूर्त बाद उसमें अनन्तजीव उत्पन्न हो जाते हैं और फिर जब तक उसे गर्म नहीं कर लेते तब तक हर समयमें उसमें अनन्तजीव उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। अतः हिंसासे डरनेवाले धर्मात्माओंको मक्खन कभी नहीं खाना चाहिए ॥ २०० ॥

रात्रि-भोजन व जलपान-निषेध।

रागिजीववधापायभूयस्त्वात्तद्वदुत्सृजेत्।
रात्रौ भुक्तिं तथा युञ्ज्यान्न पानीयमगालितम् ॥ २०१ ॥

धर्मात्मा पुरुषोंको मद्य-मांसके त्यागकी तरह रात्रिमें भोजन करनेका भी त्याग करना उचित है। क्योंकि दिनमें भोजन करनेकी अपेक्षा रात्रिमें भोजन करनेमें अधिक राग पाया जाता है। जहां राग है वहां हिंसा अवश्य है। दिनकी अपेक्षा रात्रिमें भोजन बनाने खानेसे प्राणियोंका वध भी कई गुना अधिक होता है। रात्रिमें भोजन करनेसे जलोदर आदि अनेक रोग हो जाते हैं। इसी तरह अनछना पानी भी पीने वगैरहके काममें न लेवे। पानी यह पेय द्रव्य है। इसलिए पीने योग्य तैल, घृत, दूध आदि सब पतले पदार्थोंको छानकर काममें लेवे ॥ २०१ ॥

मुहूर्तेऽन्त्ये तथाऽद्येऽह्नो वल्भाऽनस्तमिताशिनः।
गदच्छिदेऽप्याम्रघृताद्युपयोगश्च दुष्यति ॥ २०२ ॥

रात्रि-भोजन-त्यागी पुरुषको दिनके पहले मुहूर्तमें-सूर्योदयके हो जाने पर दो घड़ी तक भोजन करना चाहिए और दिनके अन्त्य मुहूर्तमें अर्थात् सूर्यास्तमें दो घड़ी बाकी रह जाने पर भोजन करे; तथा रोगकी शान्तिके लिए आम, चिरोंजी, केला, दालचीनी आदि फल और घी, दूध, गन्नेका रस आदि रसका उपयोग भी दूषित है। भावार्थ—रात्रि-भोजन-त्यागी पुरुष दो घड़ी दिन चढ़े पहले भोजन न करे और शामको जब दो घड़ी दिन रह जाय तब भोजन न करे—उससे पहले पहले भोजन, जल-पान, फल, रस आदिका खाना पीना कर ले। वरना रात्रि-भोजन-त्याग व्रतमें दोष आता है ॥ २०२ ॥

अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये।
नक्तं भुक्तिं चतुर्धाऽपि सदा धीरस्त्रिधा त्यजेत् ॥ २०३ ॥

बाईस परीषहों और नाना प्रकारके उपसर्गोंसे चल-विचल न होनेवाला तथा जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर धीर वीर पुरुष, अहिंसा-व्रतकी रक्षाके लिए और मद्य-त्याग आदि आठ मूलगुणोंकी विशुद्धिके लिए मन वचन कायसे अन्न, पान, खाद्य, और लेह्य-इन चार प्रकारके आहारका यावज्जीव (मरणपर्यन्त) त्याग करे ॥ २०३ ॥

जलोदरादिकृद्यूकाद्यङ्कमप्रेक्ष्यजन्तुकम् ।
प्रेताद्युच्छिष्टमुत्सृष्टमप्यश्नन्निश्यहो सुखी ॥ २०४ ॥

रात्रिमें भोजन करनेसे भोजनके साथ यदि जूं खानेमें आ जाय तो वह जलोदर रोग पैदा कर देता है। यदि मकड़ी खानेमें आ जाय तो शरीरमें कोढ़ हो जाता है। यदि मक्खी खानेमें आ जाय तो वमन हो जाता है। यदि मक्षिका खानेमें आ जाय तो मेदाको हानि पहुंचती है। यदि भोजनमें बिच्छू गिर पड़े तो तालुमें बड़ी व्यथा पैदा कर देता है। लकड़ीका टुकड़ा अथवा कांटा भोजनके साथ खा लिया जाय तो गलेमें रोग पैदा करता है। भोजनमें मिला हुआ बाल यदि गलेमें लग जाय तो स्वरभंग हो जाता है। इस तरह अनेक दोष रात्रिमें भोजन करनेसे उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा कई सूक्ष्म जन्तु भोजनमें गिर पड़ते हैं, जो अन्धकारके कारण दिखते नहीं हैं उनको भी खाना पड़ता है। रात्रिके समय पिशाच, राक्षस आदि नीच व्यंतरदेव इधर उधर घूमते रहते हैं, उनका भी भोजनसे स्पर्श हो जाता है। वह भोजन भक्षण करनेके योग्य नहीं रहता है। इस तरहके अनेक दोषोंसे युक्त भोजन भी रात्रिमें भोजन करनेवालोंको खाना पड़ता है। तथा जिस चीजका त्याग है वह भी रात्रिमें न दिखनेसे खानेमें आ जाती है। इस प्रकार रात्रि-भोजनमें अनेक दोष होते हुए भी, आश्चर्य और खेद है कि, दुर्बुद्धि लोग रात्रिमें भोजन करते हुए अपनेको सुखी मानते हैं ॥ २०४ ॥

जल-गालन-व्रतके दोष ।

मुहूर्तयुग्मोर्ध्वमगालनं वा दुर्वाससा गालनमम्बुनो वा ।
अन्यत्र वा गालितशेषितस्य न्यासो निपानेऽस्य न तद्व्रतेऽर्च्यः ॥ २०५ ॥

छने हुए पानीको दो मुहूर्त याने चार घड़ीके बाद न छानना, फटे-टूटे, मैले, पुराने, छोटे छेदवाले कपड़ेसे छानना, छाननेसे बाकी बचे हुए जल (जीवानी) को जिस जलाशयका वह पानी था उससे दूसरेमें लेजाकर डालना-ये सब जल-गालन-व्रतके दोष हैं। भावार्थ—जिसके जल छान कर पीनेका नियम है वह यदि चार घड़ीके बाद पानी छान कर न पीवे, योग्य छन्नेसे न छाने और जीवानीको उसीके स्थानमें न पहुंचावे तो उसका वह व्रत प्रशंसनीय नहीं है ॥ २०५ ॥

मद्य-त्याग-व्रतके दोष ।

सन्धानकं त्यजेत्सर्वं दधि तक्रं द्व्यहोषितम् ।
काञ्जिकं पुष्पितमपि मद्यव्रतमलोऽन्यथा ॥ २०६ ॥

श्रावकोंको सब तरहका आचार, दो दिन-रातके बादका दही और मठा (छाछ), जिसपर सफेद सफेद फूलन आ गई हो अथवा दो दिन-रातसे अधिक हो गई हो ऐसी कांजी नहीं खाना चाहिए। यदि वे इनको न छोड़ेंगे तो उनके मद्य-त्याग-व्रतमें अतीचार लगेंगे ॥ २०६ ॥

मांस-त्याग-व्रतके दोष।

चर्मस्थमम्भः स्नेहश्च हिंग्वसंहृतचर्म च।
सर्वं च भोज्येव्याप्यन्नं दोषः स्यादामिषव्रते ॥ २०७ ॥

चमड़ेके वर्तनमें रक्खा हुआ जल, घी, तेल आदि, चमड़ेसे ढकी हुई या चमड़ेमें बँधी हुई हींग, तथा जिनका स्वाद बिगड़ गया हो ऐसे दाल भात घी आदि समस्त पदार्थोंका खाना मांस-त्याग-व्रतके अतीचार हैं ॥ २०७॥

मधु-त्याग-व्रतके अतीचार।

प्रायः पुष्पाणि नाश्नीयान्मधुव्रतविशुद्धये।
वस्त्यादिष्वपि मध्वादिप्रयोगं नार्हति व्रती ॥ २०८ ॥

शहदके त्यागी पुरुषोंको अपने मधु-त्याग-व्रतकी निर्मलताके लिए प्रायः सभी जातिके फूल न खाने चाहिए; तथा वस्तिकर्म, पिण्डदान, नेत्रांजन आदिमें भी मधु, मांस, मद्यका उपयोग न करना चाहिए। भावार्थ—श्लोकमें प्रायः पद पड़ा हुआ है उससे मालूम पड़ता है कि जिन पुष्पोंको शोध सकते हैं ऐसे महुआ, भिलामा आदिके तथा नागकेसर आदिके सूके फूलोंके खानेका बिलकुल निषेध नहीं है ॥ २०७॥

पंच उदम्बर-त्याग व्रतके अतीचार।

सर्वं फलमविज्ञातं वार्ताकाद्यविदारितम्।
तद्वद्वलादिसिम्बीश्च खादेन्नोदुम्बरव्रती ॥ २०९ ॥

पंच उदुम्बर फलोंके त्यागी गृहस्थोंको सभी जातिके अजान फल, ककड़ी, बेर, सुपारी आदि फल और मटर आदिकी फलियोंको विदारेबिना-उनका मध्यभाग शोधेबिना न खाना चाहिए ॥२०९॥

इन ऊपरके श्लोकोंमें अष्ट मूलगुणोंके अतीचार बताए गए हैं। उनका संक्षेप भावार्थ मात्र यहां दिया गया है। यदि विशेष देखनेकी आवश्यकता हो तो सागारधर्मामृतकी संस्कृत टीका और उसकी भाषा टीकासें देखना चाहिए

अन्य त्याज्य पदार्थ।

अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदा हेया दयापरैः।
यद्येकमपि तं हन्तुं प्रवृत्तो हन्त्यनन्तकान् ॥ २१० ॥

ये ऊपर बताए गए सभी पदार्थ तथा इसी तरहके और भी पदार्थ अनन्तकाय हैं। इनमें अनन्तानन्त जीव हर समय निवास करते हैं। अतः दयालु पुरुषोंको इन अनन्तकायोंका यावज्-

जीवन त्याग करना चाहिए। जो इनमेंसे एकको भी मारनेके लिए प्रवृत्त होता है वह अनन्त जीवोंका संहार करता है ॥ २१० ॥

नालीसूरणकालिङ्गद्रोणपुष्पादि वर्जयेत्।
आजन्म तद्भुजामल्पफलं घातश्च भूयसाम् ॥ २११ ॥

कमलकी डंडी, सूरण कंद; तरबूज (कलिङ्गड), द्रोणपुष्प, मूली, अदरख, नीमके फूल, केतकीके फूल आदि वनस्पतिका यावज्जीवन त्याग करना चाहिए। क्योंकि इनके खानेवालोंको फल तो थोड़ा होता है और उनके खानेसे बहुतसे जीवोंका घात होता है। ॥ २११ ॥

आमगोरससम्पृक्तं द्विदलं प्रायशो नवम्।
वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च वर्जयेत् ॥ २१२ ॥

जिस धान्यके बराबर २ दो हिस्से हो सकते हों ऐसे मूंग, उड़द, चना आदिको द्विदल कहते हैं। अग्निसे पकाये गए कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध के जमाये हुए दहीकी छाछमें मिले हुए मूंग, उड़द, चना आदि द्विदलको न खाना चाहिए; क्योंकि उनमें अनन्तजीव पड़ जाते हैं। ऐसा आगममें सुना जाता है। इसी तरह प्रायः पुराने द्विदलको भी न खावे। प्रायः शब्दके कहनेका तात्पर्य यह है कि कुलिथ आदि द्विदल अन्न यद्यपि अधिक दिन रक्खे रहनेके कारण काले पड़ गये हों, परंतु उनमें सम्मूर्च्छन जीव न पड़े हों; तो उनके खानेमें कोई दोष नहीं है। तथा बरसातके दिनोंमें चक्कीमें बिना दले-जिनकी दलकर दाल न बनाई गई हो ऐसे द्विदल धान्यको भी न खावे। क्योंकि आयुर्वेदमें लिखा है कि बरसातके दिनोंमें इन धान्योंमें अंकुरे पैदा हो जाते हैं, और सम्मूर्च्छन त्रसजीव भी उत्पन्न हो जाते हैं। इससे यह भी अभिप्राय निकलता है कि बरसातमें इन धान्योंमेंसे जिनमें अंकुर न पड़े हों उन्हें भी न खाना चाहिये, और बरसातके दिनोंमें पत्तेवाला शाक भी नहीं खाना चाहिये; क्योंकि बरसातमें ऐसे शाकोंमें त्रस-स्थावर जीव बहुतसे मिले रहते हैं। इनके खानेसे फल भी बहुत थोड़ा होता है ॥ २१२ ॥

भोजन करते समय मौन-विधि।

रक्षार्थमभिमानस्य ज्ञानस्य विनयो भवेत्।
तस्मान्मौनेन भोक्तव्यं नार्थ्यं हस्तादिसञ्ज्ञया ॥ २१३ ॥

मौन धारण करनेसे, मैं भोजन करते समय कुछ भी न मांगूगा-इस प्रकारके अयाचकत्व-व्रत-रूप अभिमानकी रक्षा होती है और श्रुतज्ञानका विनय होता है। इसलिए मौन धारणकर भोजन करना चाहिए। हाथ आदिके इशारेसे भी किसी भोज्य वस्तुकी अभ्यर्थना न करे ॥ २१३ ॥

भोजन-प्रमाण।

आपूर्णमुदरं भुञ्जेच्छङ्कालज्जाविवर्जितः।
अतिक्रमो न कर्तव्य आहारे धनसञ्चये॥ २१४॥

शंका और लज्जाको छोड़कर पेट भरे पर्यन्त भोजन करे। भोजनके करनेमें और धन इकट्ठा करनेमें अत्यन्त लालसा न करे। भावार्थ—जब भोजन करनेको बैठे तब पेट भरकर भोजन करे। भोजन करते समय कोई तरहकी लज्जा या आशंका न करे तथा खूब अघाकर भी न खावे; क्योंकि अधिक खा लेनेसे सुस्ती आती है और निद्रा भी खूब आती है। अतः हमेशह परिमित भोजन करना चाहिए॥ २१४॥

भोजनके पश्चात् करने योग्य क्रिया।

ततोऽन्नपाचनार्थं च शीतलं तु पिबेज्जलम्।
मुखं जलेन संशोध्य हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः॥ २१५॥

पेट भर भोजन करनेके बाद भोजन पचनेके लिए थोड़ा ठंडा पानी पीवे, और मुखको जलसे साफ कर दोनों हाथ अच्छी तरह धोवे॥ २१५॥

ततोऽङ्गणे पुनर्गत्वा शलाकादन्तघर्षणम्।
कृत्वा जलेन हस्तौच पादौ प्रक्षालयेच्छुचिः॥ २१६॥

फिर उठकर आँगनमें जाकर दाँतोंनसे दाँतोंको घिसे और जलसे हाथ-पैरोंको धोकर साफ करे॥ २१६॥

न खाने योग्य भोजन।

ब्रह्मोदने तथा चौले सीमन्ते प्रथमार्तवे।
मासिके च तथा कृच्छ्रे नैव भोजनमाचरेत्॥ २१७॥

बलि चढ़ाया हुआ अन्न, और चौल-संबंधी, सीमंत-क्रिया-संबंधी, गर्भाधान-संबंधी तथा मासिकश्राद्ध-संबंधी अन्न-भोजन न खावे तथा कष्टके समय भी भोजन न करे॥ २१७॥

गणान्नं गणिकान्नं च शूलिकान्नमधर्मिणः।
यत्यन्नं चैव शूद्रान्नं नाश्नीयाद्गृहिसत्तमः॥ २१८॥

उत्तम गृहस्थ जो भोजन बहुतसे मनुष्योंके लिए तैयार किया जाता है उसे न खावे; तथा वेश्याका अन्न, अधर्मी पुरुषोंका अन्न, यतिका अन्न और शूद्रका अन्न भी न खावे॥ २१८॥

एकादशे पक्षश्राद्धे सपिण्डप्रेतकर्मसु।
प्रायश्चित्ते न भुञ्जीत भुक्तश्चेत्सञ्जपेज्जपम्॥ २१९॥

मरे हुए मनुष्यके ग्यारहवें दिनका, पखवाड़ेमें जो श्राद्ध होता है उसका, सपिंड प्रेतकर्मका और किसीको प्रायश्चित्त दिया गया हो तो उस प्रायश्चित्तके समयका अन्न न खावे। यदि खा लेवे तो जाप जपे॥ २१९॥

एकपंक्त्युपविष्टानां धर्मिणां सहभोजने।
यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषैरन्नं न भुज्यते ॥ २२० ॥

एक पंक्तिमें एक साथ बैठे हुए साधर्मियोंमेंसे यदि एक भी पुरुष पात्र छोड़कर उठ खड़ा हो तो बाकीके बैठे हुए साधर्मियोंको भी भोजन न करना चाहिए ॥ २२० ॥

भुञ्जानेषु च सर्वेषु योऽग्रे पात्रं विमुञ्चति।
स मूढः पापतां भुंजेत्सर्वेभ्यो हास्यतां व्रजेत् ॥ २२१ ॥

अपनी पंक्तिमें बैठे हुए जितने मनुष्य भोजन कर रहे हों उनमेंसे जो कोई भी पात्र छोड़कर पहले उठ खड़ा होता है वह महामूर्ख है और वह सबके हँसीका पात्र होता है—उसकी सब लोग हंसी करते हैं ॥ २२१ ॥

अग्निना भस्मना चैव दर्भेण सलिलेन च।
अन्तरे द्वारदेशे तु पंक्तिदोषो न विद्यते ॥ २२२ ॥

अग्नि, राख, दर्भ और पानी-इनका व्यवधान हो—ये भोजन करते हुए पुरुषोंके मध्यमें रक्खे हों, तथा दरवाजे आदिका व्यवधान हो तो पंक्ति-दोष नहीं है। भावार्थ—भोजन करते समय यदि इनमेंसे किसी एकका व्यवधान हो तो पंक्तिसे उठ खड़े होनेमें कोई दोष नहीं है ॥ २२२ ॥

एकपंक्त्युपविष्टानामन्योऽन्यं स्पृश्यते यदि।
भुक्त्वा चान्नं विशङ्कः संनष्टोत्तरशतं जपेत् ॥ २२३ ॥

एक पंक्तिमें बैठे हुए मनुष्योंका यदि परस्परमें स्पर्श हो जाय तो उस भोजनको निःशंक होकर खावे और खा चुकनेके बाद एक सौ आठ जाप देवे ॥ २२३ ॥

पूर्वं किञ्चित्समुद्धृत्य स्थाल्या अन्नादिकं परम्।
मित्राद्यर्थं स्वयं शेषमश्नीयादित्ययं क्रमः ॥ २२४ ॥

पहले अपनी थालीमेंसे थोड़ासा भोजन निकालकर अपने मित्र आदिके लिए जुदा रख दे। बाद अवशिष्ट भोजनको आप खावे। यह भोजन करनेका क्रम है ॥ २२४ ॥

भुक्त्वा पीत्वा तु तत्पात्रं रिक्तं त्यजति यो नरः।
स नरः क्षुत्पिपासार्तो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २२५ ॥

जो मनुष्य भोजन करके या जल पी करके उनके पात्रोंको बिल्कुल खाली छोड़ देता है वह हर जन्ममें भूख-प्यासकी पीड़ा सहता है ॥ २२५ ॥

अर्द्धं भवति गण्डूषमर्धं त्यजति वै भुवि।
शरीरे तस्य रोगाणां वृद्धिर्नैव प्रजायते ॥ २२६ ॥

जो मनुष्य चूल्लूमें जल लेकर कुरला करे तो वह उसमेंसे आधेको पी जाय और आधेको जमीनपर डाल दे। ऐसा करनेसे उसके शरीरमें कभी रोग नहीं बढ़ते ॥ २२६ ॥

यद्युत्तिष्ठेदनाचम्य भुक्तवानासनाद्गृही।
सद्यः स्नानं प्रकुर्वीत नान्यथाऽशुचितां व्रजेत् ॥ २२७ ॥

यदि भोजन करनेवाला गृहस्थ आचमन किये बिना ही आसनसे उठ खड़ा हो तो वह उसी वक्त स्नान करे; नहीं तो वह अपवित्रताको प्राप्त होता है। सारांश—भोजन करनेके बाद आचमन अवश्य करना चाहिए ॥ २२७ ॥

भुक्तिवस्त्रं परित्यज्य धारयेदन्यदम्बरम्।
पूगताम्बूलपर्णानि गृण्हीयान्मुखशुद्धये ॥ २२८ ॥

जिस कपड़ेको पहनकर भोजन किया था उसे उतारकर दूसरा कपड़ा पहने, और मुख-शुद्धिके लिए पान-सुपारी खावे ॥ २२८ ॥

ताम्बूलचर्वणं कुर्यात्सदा भुक्त्यन्त आदरात्।
अभ्यङ्गे चैव मांगल्ये रात्रावपि न दुष्यति ॥ २२९ ॥

भोजन कर चुकनेके बाद हमेशह तांबूल खाना चाहिए। तेलकी मालिस कर स्नान कर चुकनेपर और मांगलीक कार्यके समय रात्रिमें भी पान खानेमें कोई दोष नहीं है। यह विधि पाक्षिक-श्रावकके लिए है ॥ २२९ ॥

पान खानेकी विधि।

प्रातःकाले फलाधिक्यं चूर्णाधिक्यं तु मध्यमे।
पर्णाधिक्यं भवेद्रात्रौ लक्ष्मीवान् स नरो भवेत् ॥ २३० ॥

सुबहके समय पानमें सुपारी अधिक डालना चाहिए, दोपहरको चूना अधिक होना चाहिए और रात्रिमें पान अधिक होना चाहिए। इस क्रमसे जो तांबूल भक्षण करता है वह पुरुष भाग्यशाली होता है ॥ २३० ॥

पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः।
चूर्णपर्णे हरत्यायुः शिरा बुद्धिं विनाशयेत् ॥ २३१ ॥

पानका नीचेका हिस्सा खानेसे व्याधि होती है, अग्रभाग खानेसे पाप-उत्पन्न होता है, पान मसलकर खानेसे आयु घटती हे और उसका शिरा-डंठल भक्षण करनेसे बुद्धिका नाश होता है;— ॥ २३१ ॥

मूलमग्रं परित्यज्य शिराश्चैव परित्यजेत्।
सचूर्णं भक्षयेत्पर्णमायुःश्रीकीर्तिकारणम् ॥ २३२ ॥

इसलिए उसका मूलभाग, अग्रभाग और शिरा छोड़कर चूना लगाकर पान खावे। इस प्रकार पान खानेसे आयुष्य, सम्पत्ति और कीर्तिकी वृद्धि होती है ॥ २३२ ॥

अनिधाय मुखे पर्णं पूगं खादति यो नरः ।
सप्तजन्म दरिद्रः स्यादन्ते नैव स्मरेज्जिनम् ॥ २३३ ॥

जो मनुष्य मुखमें पान न रखकर सिर्फ सुपारी खाता है वह सात जन्म तक दरिद्री होता है और मरणके समय परमात्माका नाम-स्मरण भी नहीं कर पाता ॥ २३३ ॥

पञ्च सप्ताष्ट पर्णानि दश द्वादश वाऽपि च ।
दद्यात्स्वयं च गृह्णीयादिति कैश्चिदुदाहृतम् ॥ २३४ ॥

पांच, सात, आठ, दश अथवा बारह पान दूसरोंको दे और इतने ही आप खावे—ऐसा भी किसी किसीका कहना है ॥ २३४ ॥

प्रथमः कुरुते व्याधिं द्वितीयः श्लेष्मकारकः ।
तृतीयो रोगनाशाय रसस्ताम्बूलजो मतः ॥ २३५ ॥

पानका पहला रस (पीक) व्याधि पैदा करता है, दूसरा रस श्लेष्म (कफ) लाता है और तीसरा रोग नाश करता है ॥ २३५ ॥

तर्जन्या चूर्णमादाय ताम्बूलं न तु भक्षयेत् ।
मध्यमाङ्गुल्यङ्गुष्ठाभ्यां खादयेच्चूर्णलोहितम् ॥ २३६ ॥

तर्जनी (अंगूठेके पासकी) उंगलीसे चूना लगाकर पान न खावे, किन्तु बीचकी उंगली और अंगूठेसे चूना लगाकर पान खावे ॥ २३६ ॥

ताम्बूलं कटु तीक्ष्णमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं ।
वातघ्नं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्धिनिर्णाशनम् ॥
वक्त्रस्याभरणं विशुद्धिजननं कामाग्निसन्दीपनं ।
ताम्बूलस्य सखे त्रयोदश गुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ॥ २३७ ॥

पान कडुआ, तीक्ष्ण, उष्ण, मधुर, खारा और कषैला होता है। यह बात, कफ, कृमि (पेटके जंतु) और दुर्गन्धिको दूर करता है, मुखकी शोभा है, विशुद्धि पैदा करने वाला है और कामाग्निको दीपन करने वाला (बढ़ाने वाला) है। हे मित्र ! पानमें ये तेरह गुण होते हैं। इनका स्वर्गमें भी मिलना कठिन है ॥ २३७ ॥

मृताशौचगते श्राद्धे मातापितृमृतेऽहनि ।
उपवासे च ताम्बूलं दिवा रात्रौ च वर्जयेत् ॥ २३८ ॥

मरणका सूतक प्राप्त होनेपर, अपने माता पिताके श्राद्धके दिन और उपवासके दिन, दिन और रातमें पान न खावे ॥ २३८ ॥

पात्रदाने जिनार्चायामेकभक्तव्रतेऽपि वा ।
पारणादिवसे शुद्धे भुक्तेरादौ विवर्जयेत् ॥ २३९ ॥

पात्र-दान और जिन भगवानकी पूजा करते समय तथा एकाशनके दिन पान न खावे। और पारणेके दिन भोजन करनेसे पहिले पान न खावे ॥ २३९ ॥

एलालवंगकर्पूरसुगन्धान्यसुवस्तुकम् ।
भक्षयेत्सह पर्णैश्च तथा वा मुखशुद्धये ॥ २४० ॥

इलायची, लौंग, कपूर और दूसरे २ सुगन्धित पदार्थ पानके साथ खावे। तथा मुखशुद्धिके लिए वगैर पानके भी इन चीजोंको खावे ॥ २४० ॥

दोपहरके समय शयन करनेकी विधि।

शनैः शनैस्ततो गत्वा चाष्टोत्तरशतं पदान् ।
उपविश्य घटीयुग्मं स्वपेद्वा वामभागतः ॥ २४१ ॥

तांबूल चर्वण कर चुकनेके बाद धीरे धीरे एक सौ आठ पैंड घूमकर अथवा कुछ थोड़ी देर तक बैठकर बाईं करवटसे दो घड़ी सोवे ॥ १४१ ॥

न स्वपेद्दिवसे भूरि रोगस्योत्पत्तिकारणम् ।
कार्याणां च विनाशः स्यादङ्गशैथिल्यमत्र च ॥ २४२ ॥

दिनमें बहुत न सोवे। क्योंकि दिनमें सोना रोगकी उत्पत्तिका कारण है, गृह-कार्योंमें हानि पहुँचती है और सारे अंग-उपांग ढीले पड़ जाते हैं ॥ २४२ ॥

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च । दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ ॥
निरोधनान्मूत्रपुरीषयोश्च । षड्भिःप्रकारैः प्रभवंति रोगाः ॥ २४३ ॥

अधिक जल पीने, विषम—अरुचिकर या परिमाणसे अधिक भोजन करने, दिनमें अधिक सोने, रात्रिमें जागने और टट्टी-पेशाबकी बाधा रोकने-इन छह कारणोंसे रोग उत्पन्न होते हैं ॥२४३॥

भुक्तोपविशतस्तुन्दं बलमुत्तानशायिनः ।
आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ २४४ ॥

भोजन करके बैठे रहनेसे तौंद बढ़ती है, मुंह ऊपरको करके सीधा सोनेसे बल बढ़ता है, बाईं करवट सोनेसे आयु बढ़ती है और दौड़नेसे मृत्यु दौड़ती है—आयु घटती हैं ॥ २४४ ॥

चैतस्थानगमागमौ जिनमते प्रीतिश्च पात्रे रुचि-
राहारादिसुदानदत्तिकथनं भुक्तिश्च शय्याऽऽसनम् ॥
योग्यायोग्यसुवस्तुभक्ष्यकथनं श्रीसोमसेनेन वै ।
सम्प्रोक्ता बहुधा जिनेन्द्रवचनाद्धर्मप्रदाः सत्क्रियाः ॥ २४५ ॥

जिन मंदिरको आना, यहांसे वापिस घर जाना, जिनमतमें प्रीति करना, पात्रमें प्रेम करना, आहारादि चार प्रकारके दान देना, भोजन करना, सोना, बैठना, योग्य वस्तुका भक्षण करना और

अयोग्यका त्याग करना—इन विषयोंकी विधि इस अध्यायमें मुझ श्रीसोमसेनने वर्णन की है। ये क्रियाएँ जिन वचनके अनुसार ही कही गई हैं, जो पुण्यको प्राप्त कराने वाली हैं॥ २४५॥

ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः सुरुचिभिर्दानं जिनेन्द्रार्चनं।
तत्त्वातत्त्वविचारणां जिनपतेः शास्त्राब्धितः सम्भवाम्॥
धान्यास्ते पुरुषाः सुमार्गजनका मोक्षस्य चाराधका।
भोक्तारोगुणसम्पदां त्रिभुवनस्तुत्याः परं धार्मिकाः॥ २४६॥

जो श्रेष्ठ पुरुष, भक्तिभावसे पात्रोंको दान देते हैं, जिन भगवानकी पूजा करते हैं और जिन भगवान्के कहे हुए शास्त्रके अनुसार योग्य अयोग्यका विचार करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं, सुमार्गके प्रवर्तक हैं, मोक्षकी आराधना करनेवाले हैं, गुण-सम्पत्तिके भोगनेवाले हैं, तीन भुवनके द्वारा स्तवनीय हैं और बड़े धर्मात्मा हैं॥ २४५॥

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारकथने भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते
जिनचैत्यालयगमनादिभोजनान्त क्रियाप्रतिपादकः
षष्ठोऽध्यायः समाप्तः।

सातवां अध्याय।

मङ्गलाचरण।

नमः श्रीवर्द्धमानाय सर्वदोषापहारिणे।
जीवाजीवादितत्त्वानां विश्वज्ञानं सुबिभ्रते ॥ १ ॥

श्रीवर्धमानस्वामीको नमस्कार है, जिनने अपने क्षुधादि अठारह दोषोंको नष्ट कर दिए हैं, और जिनको जीव अजीव आदि सातों तत्वोंका परिपूर्ण ज्ञान है ॥ १ ॥

सकलवस्तुविकासदिवाकरं, भुवि भवार्णवतारणनौसमम्।
सुरनरप्रमुखैरुपसेवितं, सुजिनसेनमुनिं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥

जो सम्पूर्ण वस्तुओंके स्वरूपको प्रकाश करनेमें सूर्यके समान हैं, भूमंडलमें संसारी जीवोंको संसारसमुद्रसे पार करनेके लिए नौका-जहाजके समान हैं और देवों तथा मनुष्यों द्वारा सेवनीय हैं—ऐसे श्रीजिनसेन मुनीश्वरको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

द्रव्य सम्पादन करनेकी विधि।

धर्मकृत्यं समाराध्य सद्द्रव्यं साधयेत्ततः।
विना द्रव्यं कुतः पुण्यं पूजा दानं जपस्तपः ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त अध्यायोंमें वर्णन किये अनुसार विधिपूर्वक धर्म-कार्योंका संपादन करता हुआ द्रव्य कमावे; क्योंकि द्रव्यके बिना पुण्य, पूजा, दान, जप और तप नहीं बन सकते ॥ ३ ॥

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण, पशोरिवायुर्विफलं नरस्य।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति, न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥ ४ ॥

धर्म, अर्थ और काम इन तीन वर्गोंकी साधना किये बिना मनुष्यका जन्म पशुकी तरह विफल है। इन तीनों वर्गोंमें भी धर्म पुरुषार्थको बड़े बड़े दिव्यज्ञानी श्रेष्ठ बतलाते हैं; क्योंकि धर्मके बिना अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ दोनों नहीं बन सकते ॥ ४ ॥

स्त्रियोंके कर्तव्य।

सम्मार्जनं जलाकर्षं पेषणं कण्डनं तथा।
अग्निज्वालेति पञ्चैव कर्माणि गृहियोषिताम् ॥ ५ ॥

घरकी सफाई रखना, जलाशयसे जल भरकर लाना, चक्की पीसना, ऊखलमें धान्यादि कूट कर साफ करना, चूल्हा जला कर भोजन बनाना—ये पांच गृहस्थ स्त्रियोंके कर्तव्य हैं ॥ ५ ॥

सूक्ष्मकोमलमार्जन्या पट्टवस्त्रसमानया ।
मार्जयेत्सदने भूमिं बाध्यन्तेऽतो न जन्तवः ॥ ६ ॥

वस्त्र जैसी मुलायम और बारीक झाडूसे स्त्री घरको झाडे, जिससे इधर उधर चलते फिरते हुए चींटी आदि जीवोंको बाधा न पहुंचे ॥ ६ ॥

तत्रोत्थां धूलिमादाय छायायां प्रासुके स्थले ।
सम्प्रसार्य क्षिपेद्यत्नात्करुणायै नितम्बिनी ॥ ७ ॥

घरमें झाडू लगानेसे जो धूल-कचरा निकलता है उसे छायामें प्रासुक स्थानमें करुणा-भावसे फैलाकर गेरे ॥ ७ ॥

गोमेयेन मृदा वाऽथ सद्योभूतेन वारिणा ।
गेहिन्या लेपयेद्गेहं हस्तेनाऽङ्गिसुयत्नतः ॥ ८ ॥

ताजे गोबर और जलसे अथवा मिट्टी और जलसे या केवल पानीसे गृहस्थ स्त्रियां खुद अपने हाथोंसे घरको लीपें और प्राणियोंको पीड़ा न हो-ऐसी सावधानी रक्खें ॥ ८ ॥

गोमयं स्थापयेत्सद्यो धर्मे चैव निधापयेत् ।
उपलानि सुशुष्काणि निर्जन्तूनि सुसञ्चयेत् ॥ ९ ॥

गृहस्थ स्त्रियां गोबर थापें और उसे धूपमें सुखावें । इस प्रकार ये जीवजन्तु रहित सूके उपलों (कंडों)का संचय करें । भावार्थ—यह त्रिवर्णाचार ग्रन्थ है। इसमें तीनों वर्णोंके छोटी बड़ी हैसियतके सभी पुरुषोंके कर्तव्य बतलाए गए हैं । ऊंची स्थितिके लोगोंको इन कार्योंसे घृणा नहीं करना चाहिए । यदि वे नौकरोंसे भी सावधानीसे ये कार्य करावें तो परमार्थमें कोई हानि नहीं है ॥ ९ ॥

चुल्युत्थभस्मना प्रातर्मर्दयेत्कांस्यभाजनम् ।
पानं वा भोजनं कुर्याद्विना भस्म न शोधितम् ॥ १० ॥

सुबह उठकर अपने चूल्हेकी राखसे कांसे आदिके बर्तन मांजे; क्योंकि राखसे मांजे बिना खाने-पीनेके बर्तन साफ नहीं होते ॥ १० ॥

गृहीत्वा जलकुम्भांश्च शनैर्गच्छेज्जलाशयम् ।
शोधितेन जलेनादौ कुम्भान् प्रक्षालयेच्छुचेः ॥ ११ ॥

जलके घड़े लेकर धीरे धीरे जलाशय पर जावे और शुद्ध छने जलसे प्रथम उन घड़ोंको धोकर साफ करे ॥ ११ ॥

षट्त्रिंशदङ्गुलं लम्बं तावदेव च विस्तृतम् ।
अच्छिद्रं सघनं वस्त्रं गृह्यते जलशुद्धये ॥ १२ ॥

छत्तीस अंगुल लम्बा और इतनाही चौडा छेद-रहित मोटा कपडा जल छाननेको रक्खे ॥ १२ ॥

त्रुटितं पाटितं जीर्णं तुच्छं सूक्ष्मं सरन्ध्रकम्।
न ग्राह्यं गालनं स्त्रीभिर्जलजन्तुविशुद्धये ॥ १३ ॥

जो कटा-फटा हो, पुराना हो, छोटा हो, बारीक हो, छेदवाला हो—ऐसा कपड़ा स्त्रियोंको जल छाननेके लिए नहीं रखना चाहिए ॥ १३ ॥

तेन वस्त्रेण कुम्भास्यं संच्छाद्य शोधयेज्जलम्।
शनैः शनैश्च धाराभिर्यथा नोल्लंघयेद्धटम् ॥ १४ ॥

ऐसे योग्य छन्नेसे घड़ेके मुखको ढांक कर धीरे धीरे धार बांध कर जल छाने, ताकि जल उछलकर घड़ेके बाहर न फैले ॥ १४ ॥

शेषं जलं तु तत्रैव तीर्थे निक्षेपयेत्पुनः।
तीर्थादागत्य गेहे तु पुनः संशोधयेज्जलम् ॥ १५ ॥

बचे हुए जलको अर्थात् जीवानीको वहीं जलाशयमें छोड़ दे। तथा जलाशयसे घर आकर फिर जल छाने ॥ १५ ॥

घटीद्वये गते चापि पुनरेवं विशोधयेत्।
प्रातःकाले तु संशोध्य शेषं पूर्वजले क्षिपेत् ॥ १६ ॥
मुहूर्तं गालितं तोयं प्रासुकं प्रहरद्वयम्।
उष्णोदकमहोरात्रमगालितमिवोच्यते ॥ १७ ॥

इसी तरह प्रत्येक दो घड़ीके बाद जल छान कर काममें लेवे। सुबहके समय जल छानकर जीवानी उसी जलाशयमें डाल आवे।

इस तरह छाना हुआ जल दो घड़ी तक जीव-जन्तु रहित याने प्रासुक रहता है। इलायची, लौंग वगैरह डालकर प्रासुक किया हुआ जल दो पहरतक और गर्म किया हुआ जल एक दिन-राततक जीवजन्तु-रहित रहता है। इसके अलावा जो जल है वह बिना छने जलके बराबर होता है ॥ १६–१७ ॥

वासयेत्पाटलीपुष्पैर्मूलैरौशीरकैस्तथा।
एलाकर्पूरकाभ्यां तु चन्दनादिसुवस्तुना ॥ १८ ॥

पाटली (पाढल) के फूल, उशीरक मूल (खस), इलायची, कपूर तथा चन्दन आदि उत्तम उत्तम वस्तुओंसे जलको सुगन्धित करे ॥ १८ ॥

एकबिन्दूद्भवा जीवाः पारावतसमा यदि।
भूत्वा चरन्ति चेज्जम्बूद्वीपोऽपि पूर्यते च तैः ॥ १९ ॥

जलकी एक बूंदमें इतने जीव हैं कि यदि वे कबूतरके बराबर होकर उड़ें तो उनसे यह जम्बूद्वीप लबालब भर जाय ॥ १९ ॥

तस्माद्यत्नः परः कार्यो धर्माय जलशोधने ।
नूतनं सुदृढं वस्त्रं ग्राह्यं श्रावकधर्मिणा ॥ २० ॥

इसलिए श्रावकोंको जल छाननेमें धर्मके निमित्त पूरा पूरा यत्न करना चाहिए तथा नया मजबूत कपड़ा जल छाननेको रखना चाहिए ॥ २० ॥

इस ग्रन्थके प्रायः सभी श्लोक संग्रह किये हुए हैं, इसलिए पुनरुक्तिपर लक्ष्य नहीं देना चाहिए।

पट्टकूलमतिसूक्ष्मं बहुमूल्यं दृढं घनम् ।
परिधत्ते स्वयं वस्त्रं जलार्थे तु दरिद्रता ॥ २१ ॥

जो बहुत बढ़िया हो, अधिक मूल्यका हो, बहुत बारीक हो, बहुत ही मोटा हो जिससे पानी छनना ही मुश्किल हो जाय—ऐसे कपड़ेको जल छाननेके लिए रखनेसे दरिद्रता बढ़ती है ॥२१॥

गोधूमादिसुधान्यानि संशोध्य शुचिभाजने ।
नूतनानि पवित्राणि पेषयेज्जीवयत्नतः ॥ २२ ॥

अच्छे नए गेहूं आदि धान्यको पवित्र बर्तनमें बीन कर चक्कीमें सावधानीसे पीसे, जिससे कि जीवोंको बाधा न पहुंचे ॥ २२ ॥

घुणितं जीर्णितं धान्यं वर्णस्वादविपर्ययम् ।
पेषयेत्कुट्टयेन्नैव भिक्षुभ्योऽपि न दीयते ॥ २३ ॥

जो घुना हुआ हो, पुराना हो, जिसका रंग और स्वाद बदल गया हो—ऐसे धान्यको नहीं पीसे, न ऊखलमें कूटे और न भिक्षुकोंको देवे ॥ २३ ॥

घुणितं कीटसंयुक्तं घर्मे मार्गेऽथवा जले ।
धान्यं प्रसार्यते नैव जीवघातो भवेद्यतः ॥ २४ ॥

जो घुन गया हो, जिसमें कीड़े पड़ गए हों—ऐसे धान्यको न तो धूपमें फैलावे, न रास्तेमें फैलावे, और न पानीसे धोवे । क्योंकि ऐसा करनेसे जीवोंकी हिंसा होती है ॥ २४ ॥

बहुदिनानि रक्ष्यन्ते न च धान्यानि संग्रहे ।
उत्पत्तिस्त्रसजीवानां यतः सञ्जायते भुवि ॥ २५ ॥

अधिक दिन पर्यन्त धान्यका संग्रह न रक्खे । क्योंकि अधिक दिन तक रखनेसे उसमें त्रसजीव पड़ जाते हैं ॥ २५ ॥

तण्डुलेषु च चूर्णेषु द्विदलेषु च शीघ्रतः ।
उत्पत्तिस्त्रसजीवानां तस्माद्वेगाद्व्ययो मतः ॥ २६ ॥

चावलोंमें, आटेमें और चने आदिकी दालमें बहुत जल्दी त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये इनको अधिक दिन तक न रखकर जल्दी खर्च कर देना चाहिए ॥ २६ ॥

स्नात्वा जलेन वा शीर्षं हस्तौ संशोध्य मृत्स्नया।
परिधाय पटं धौतं प्रविशेत्स्त्रीमहानसे ॥ २७ ॥

जलसे स्नानकर, मस्तक और हाथोंको मिट्टीसे धोकर और धुली हुई धोती पहनकर स्त्रियाँ रसोई-घरमें जावें ॥ २७ ॥

चुल्ल्यां संशोध्य जीवादीन् पूर्वभस्म परित्यजेत्।
निर्जन्तूनि सुशुष्काणि चेन्धनानि समानयेत् ॥ २८ ॥
अग्निं सन्धुक्षयेच्चुल्ल्यां प्रक्षाल्य थालिकास्ततः।
स्वयं पाकविधिः कार्यो नानारससमन्वितः ॥ २९ ॥
घृतपक्कं पयःपाकं सूपोदनं सशर्करम्।
आपूपव्यञ्जनान्येव भाग्यस्येदं फलं विदुः ॥ ३० ॥

वहां पर जीव-जन्तुओंको देखकर पहलेकी राखको निकालकर चूल्हेको साफ करे। फिर जीव-जन्तु रहित सूका ईंधन जलानेको लावे और चूल्हेमें आग सुलगावे। इसके बाद सब बर्तनोंको धोकर स्वयं अनेक प्रकारका रसीला भोजन बनावे। घीमें तली हुई पूरी आदि; दूधमें पकी हुई खीर वगैरह; दाल-भात, शक्करका हलुआ, लड्डू, पेड़े, बरफी आदि; पूवे (गुलगुले), नमकीन सेव, भुंजिए आदि अपनी शक्तिके अनुसार बनावे। इस तरहकी उत्तम उत्तम चीजोंका प्राप्त होना भाग्यका फल है ॥ २८–३० ॥

आदौ सन्तर्प्य सत्पात्रं भर्तारं च सुतादिकम्।
गृहदेवाँश्च सन्तर्प्य ततः स्याद्भोजनं स्त्रियः ॥ ३१ ॥

स्त्रियाँ प्रथम सत्पात्रोंको आहार देकर बादमें पति-पुत्रोंको भोजन जिमा कर तथा गृह-देवतांका सत्कार करनेके पश्चात् आप भोजन करे ॥ ३१ ॥

इत्येवं पञ्च कर्माणि कथितानि सुयोषिताम्।
नराणां कर्म षष्ठं तु व्यापारः कथ्यतेऽधुना ॥ ३२ ॥

इस तरह गृहस्थ स्त्रियोंके पाँच कर्तव्योंका कथन किया। अब पुरुषोंके कर्तव्योंका कथन करते हैं ॥ ३२ ॥

पुरुषोंके कर्तव्य।

ब्राह्मणः सरितं गत्वा वस्त्रं प्रक्षालयेत्ततः।
दर्भादि समिधो नीत्वा गृहे संस्थापयेत्ततः ॥ ३३ ॥
सदनं यजमानस्य गत्वा धर्मोपदेशनाम्।
तिथिवारं च नक्षत्रं कथयेद्ग्रहशुद्धये ॥ ३४ ॥

श्रीजिनगुणसम्पत्तिं श्रुतस्कधं द्विकावलिम् ।
मुक्तावलिं तथाऽन्यं च व्रतोद्देशं समादिशेत् ॥ ३५ ॥
चतुर्दश्यष्टमी चाद्य प्रातर्वा व्रतवासरम् ।
चान्द्रं बलं गृहाचारं कथयेज्जैनशासनात् ॥ ३६ ॥
कथां व्रतविधानस्य पुराणानि जिनेशिनाम् ।
ग्रहहोमं गृहाचारं कथयेज्जिनशासनात् ॥ ३७ ॥
यजमानेन यद्दत्तं दानं धान्यं धनं तथा ।
गृह्णीयाद्धर्षभावेन बहुतृष्णाविवर्जितः ॥ ३८ ॥
आशीर्वादं ततो दद्याद्भक्तचित्तं न दूषयेत् ।
गृहमागत्य पुत्रादीन् तोषयेन्मधुरोक्तितः ॥ ३९ ॥
गृहचिन्तां ततः कुर्याद्वस्त्रैर्धान्यैश्च पूरयेत् ।
गोधनैर्दधिदुग्धैश्च तृणकाष्ठैश्च भूषणैः ॥ ४० ॥

ब्राह्मण, प्रातःकाल नदीपर जाकर अपने वस्त्रोंको धोवे और दर्भ वगैरह समिधा (होमादिका ईंधन) लाकर घर पर रक्खे । इसके बाद यजमानके घर जाकर उसे धर्मोपदेश सुनावे; और ग्रह-शुद्धिके लिए तिथि, वार, नक्षत्र बतलावे; जिनेन्द्रदेवके गुणोंका, श्रुतस्कन्ध, द्विकावली, मुक्तावली तथा अन्य व्रतोंको समझावे; आज किंवा कल अष्टमी है, चतुर्दशी है, व्रत करनेका दिन है; चन्द्रमाका बल, गृहस्थका आचार, व्रतविधान सम्बन्धी कथाएं, जिनेन्द्रदेवोंके पुराण, ग्रहहोम, ग्रहाचार आदि जिन शासनके अनुसार बतलावे । फिर यजमान धन-धान्य आदि जो कुछ दे उसे लोभ-तृष्णा-रहित होकर बड़े हर्ष-पूर्वक स्वीकार करे । इसके बाद वह उसे आशीर्वाद दे । वह अपने भक्तके चित्तको नाराज न करे । फिर घर पर आकर मधुर वचनों द्वारा पुत्रादिकोंको सन्तुष्ट करे । इसके बाद घरमें कौनसी वस्तु है, कौनसी नहीं है, इसका विचार कर वस्त्र, धान्य, गौ, दही, दूध, घास, लकड़ी, आभूषण आदि लाकर घरमें रक्खे ॥ ३३—४० ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति सद्दानं जिनमर्चति ।
पठते पाठयत्यन्यानेवं ब्राह्मण उच्यते ॥ ४१ ॥

जो उत्तम दान देता-लेता है, जिनदेवकी पूजा करता है, स्वयं पढ़ता है और औरोंको पढ़ाता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं ॥ ४१ ॥

पुत्रपौत्रसुतादीनां लौकिकाचाररक्षणम् ।
विवाहादिविधानं च कुर्याद्द्रव्यानुसारतः ॥ ४२ ॥
गोऽश्वमहिषीमुख्यानि स्वं स्वं स्थानं निवेशयेत् ।
सन्ध्यायाः समये सन्ध्यां विप्रः कुर्याच्च पूर्ववत् ॥ ४३ ॥

अपने पुत्र, पौत्र, पुत्री आदिको लौकिक आचार-व्यवहारकी शिक्षा देवे। अपनी शक्तिके अनुसार उनके विवाह-शादी करे। तथा गौ, घोड़ा, भैंस आदिको अपने अपने स्थान पर बांधे और सन्ध्याके समय पहलेकी तरह वह ब्राह्मण सन्ध्या-वंदना करे ॥ ४२-४३ ॥

क्षत्रियाणां विधिं प्रोचे संक्षेपाच्छ्रूयतां त्वहम् ।
भृत्यो यः क्षत्रियस्तेन गन्तव्यं राजसद्मनि ॥ ४४ ॥
सभास्थितं महीपालं नत्वाऽग्रे स्थीयते भुवि ।
सशस्त्रः स्वामिभक्तः सन्करकुड्मलवान्मुदा ॥ ४५ ॥
नृपाज्ञया यथास्थानं तथैवोपविशेत्सुखम् ।
स्वाम्यर्थे च त्यजेत्प्राणान् स्वाम्यर्थे देहधारणम् ॥ ४६ ॥
एतत्कार्यं प्रकर्तव्यं तच्छ्रुत्वा शीघ्रतः पुनः ।
तत्कर्तव्यं प्रयत्नेन प्रसन्नः स्याद्यतो नृपः ॥ ४७ ॥
स्वामिद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ।
पशुघाती कृपाहीनः श्वभ्रं याति स निन्दकः ॥ ४८ ॥
नृपाज्ञा यत्र विद्येत स गच्छेत्तत्र वेगतः ।
सन्ध्यां सामायिकं पात्रदानं तपश्च साधयेत् ॥ ४९ ॥

अब थोड़ासा क्षत्रियोंका कर्तव्य बताया जाता है। उसे ध्यान देकर सुनिए। जो क्षत्रिय नौकर हो वह प्रातः उठकर अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो राजभवनको जावे। वहाँ जाकर सभामें बैठे हुए राजाको नमस्कार कर दोनों हाथ जोड़ हृदयमें स्वामीकी भक्ति रखता हुआ बड़े हर्षसे उसके सामने भूमिपर खड़ा रहे। फिर राजाकी आज्ञासे अपने योग्य स्थानमें जाकर सुखसे बैठ जावे। मौका आने पर स्वामीके लिए अपने प्राणोंकी आहूति कर दे; क्योंकि सेवकोंका देह धारण करना स्वामीके लिए ही है। राजा कहे कि यह कार्य करो उसे बहुत जल्दी और पूरी कोशिशके साथ करे, जिससे अपना स्वामी अपनेसे प्रसन्न रहे। जो भृत्य स्वामीका द्रोही, कृतघ्नी, विश्वासघाती, पशुघाती, निर्दयी और निन्दा करनेवाला होता है वह मरकर नरकको जाता है। राजाकी जहां भेजनेकी आज्ञा हो वहाँ शीघ्र जावे। सन्ध्यावंदन, सामायिक, पात्र-दान, तपश्चरण आदि कर्तव्योंकी साधना करता रहे ॥ ४४-४९ ॥

देवपूजां परां कृत्वा पूर्वोक्तविधिना नृपः ।
आगत्योपविशेत्स्वस्थः सभायां सिंहविष्टरे ॥ ५० ॥
न्यायमार्गेण सर्वांश्च सुदृष्ट्या प्रतिपालयेत् ।
प्रजा धर्मसमासक्ता विना प्रजां कुतो नृपः ॥ ५१ ॥
दुष्टानां निग्रहं कुर्याच्छिष्टानां प्रतिपालनम् ।
जिनेन्द्राणां मुनीन्द्राणां नमनादिक्रियां भजेत् ॥ ५२ ॥

राजानं धर्मिणं दृष्ट्वा धर्मं कुर्वन्ति वै प्रजाः ।
यथा प्रवर्तते राजा तथा प्रजा प्रवर्तते ॥ ५३ ॥

राजा पूर्वोक्त विधिके अनुसार देव पूजा कर, सब क्रियाओंसे स्वस्थ चित्त हो सभामें आकर सिंहासन पर विराजमान होवे। सबका न्याय-नीतिके अनुसार पालन करे। प्रजाको धर्म में आसक्त बनावे। क्योंकि प्रजाके बिना धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। दुष्टोंका निग्रह करे, शिष्टोंका प्रतिपालन करे और जिनेन्द्रों तथा मुनीन्द्रोंको नमस्कार आदि करे। राजाको धर्मात्मा देखकर प्रजा भी धर्माचरण करती है। जैसी राजाकी प्रवृत्ति होती है वैसी ही प्रजाकी हुआ करती है ॥ ५०–५३ ॥

सप्ताङ्गैश्च भवेद्राजा भयाष्टकविवर्जितः ।
शक्तित्रयसमोपेतः सिद्धित्रयविराजितः ॥ ५४ ॥

राजाको राज्यके सात अंगोंसे युक्त, आठ भयोंसे रहित तथा तीन तरहकी शक्ति और तीन तरहकी सिद्धिसे युक्त होना चाहिए ॥ ५४ ॥

अमात्यसुसुहृत्कोशदुर्गराष्ट्रबलानि च ।
स्वामिना सह सप्तैव राज्याङ्गानि सुखाय वै ॥ ५५ ॥

मंत्री, अच्छे मित्र, खजाना, किला, राष्ट्र, सेना और राजा–ये राज्यके सात अंग होते हैं। ये सातों ही अंग सुखके साधन हैं ॥ ५५ ॥

अनावृष्ट्यतिवृष्ट्यग्निसस्योपघातमारिकाः ।
तस्करव्याधिदुर्भिक्षा एता अष्टौ भीतयः स्मृताः ॥ ५६ ॥

अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अग्निप्रलय, धान्य-नाश, महामारी, चोर, व्याधि, और दुर्भिक्ष–ये आठ भय माने गये हैं ॥ ५६ ॥

शाकिनीभूतवेतालरक्षःपन्नगवृश्चिकाः ।
मूषकाः शलभाः कीरा इत्यष्टौ भीतिकारकाः ॥ ५७ ॥

शाकिनी, भूत, बेताल, राक्षस, सांप, बिच्छू, चूहे, पतंग-कीड़े, और तोते–ये आठ भय उत्पन्न करने वाले हैं ॥ ५७ ॥

सुपूजायां महीपाले सर्वत्र सुखचिन्तकः ।
परमनःस्थितं ज्ञानं ज्ञात्वा चरत्यमात्यकः ॥ ५८ ॥

जो सज्जनोंके सत्कारमें, राजामें और बाकीके सब मनुष्योंमें हितकी कामना करने वाला है और दूसरेके मनकी बात जानकर कार्य करता है उसे मंत्री कहते हैं ॥ ५८ ॥

अमुत्रात्र हितंकारी धर्मबुद्धिप्रदायकः ।
गुणवाची परोक्षेऽपि स सुहृत्कथितो बुधैः ॥ ५९ ॥

नोट—१. गिनतीमें ये नव होते हैं। इससे यथा संभव किन्हीं दोकाएकमें समावेश कर लेना चाहिये। प्र०

जो इसलोक और परलोक सम्बन्धी हित करने वाला हो, धार्मिक भावोंकी जागृति पैदा करने वाला हो और पीठ पीछे भी बड़ाई करने वाला हो उसे बुद्धिमान् लोग मित्र कहते हैं ॥ ५९ ॥

धनधान्यसुवर्णानि वस्त्रशस्त्राणि भेषजम् ।
रसा रत्नानि भूरीणि सन्ति कोश इति स्मृतः ॥ ६० ॥

धन, धान्य, सुवर्ण, वस्त्र, शस्त्र, औषध, रस, रत्न आदिको कोश कहते हैं ॥ ६० ॥

वैषम्यं वारिणा पूर्णं सर्वधान्यास्त्रसंग्रहः ।
तृणकाष्ठानि भृत्याश्च पलायनावकाशकम् ॥ ६१ ॥
उपला वह्नियन्त्राणि गुटीगोफणषड्रसाः ।
गूढमार्गाः प्रवर्तन्ते यत्र दुर्गः स उच्यते ॥ ६२ ॥

जो ऊंचे नीचे पथरीले स्थानमें बना हुआ हो, जिसमें जल खूब हो, सब तरहके धान्य और अस्त्रोंका जिसमें संग्रह हो, घांस, लकड़ी, नौकर, चाकर जहांपर खूब हों, निकल भागनेका जिसमें रास्ता हो; बड़े २ पत्थर, अग्नि, यंत्र, गोले, गोफण और दूध दही आदि छह रसोंसे परिपूर्ण हो, जिसका रास्ता ऐसा गूढ़ हो कि जिसमें होकर शत्रुओंका प्रवेश न हो सके, वह दुर्ग कहा जाता है ॥ ६१–६२ ॥

पुरनगरसुग्रामाः खेटखर्वटपत्तनाः ।
द्रोणाख्यं वाहनं यत्र सन्ति राष्ट्रः स उच्यते ॥ ६३ ॥

जहां पर पुर, नगर, ग्राम, खेट, खर्वट, पत्तन, द्रोण और वाहन हैं उसे राष्ट्र कहते हैं ॥ ६३ ॥

ग्रामो वृत्त्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिसालं ।
खेटं नद्यद्रिवेष्ट्यं परिवृतमभितः खर्वटं पर्वतेन ॥
ग्रामैर्युक्तं परं स्याद्दलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनि ।
द्रोणाख्यं सिन्धुवेलावलयवलयितं वाहनं चाद्रिरूढम् ॥ ६४ ॥

जिसके चारों ओर कांटोंकी बाड़ लगी हो उसे ग्राम और जिस ग्रामके चारों दिशामें चार मोटे मोटे दरवाजे हों उसे नगर कहते हैं। पर्वत और नदीसे बेढ़े हुए ग्रामको खेट और चारो ओरसे पर्वत द्वारा घिरे हुए ग्रामको खर्वट कहते हैं। जिसमें एक हजार ग्राम लगते हों वह पुर और जिसमें रत्नोंका खजाना हो वह पत्तन कहलाता है। और समुद्रसे बेढ़े हुए ग्रामको द्रोण और पर्वतके ऊपर बने हुए ग्रामको वाहन कहते हैं ॥ ६४ ॥

अञ्जनाद्रिसमा नागा वायुवेगास्तुरङ्गमाः ।
रथाः स्वर्गविमानाभा भीमा भृत्याश्चतुर्बलम् ॥ ६५ ॥

जिसमें अंजन पर्वतके समान बड़े २ काले हाथी हों, हवाकी तरह तेज दौड़ने वाले घोड़े हों, स्वर्गीय विमानोंकी तरह ऊँचे ऊँचे रथ हों और भयानक—अर्थात् युद्ध-कलामें निपुण सिपाही हों, उसे चतुरंग-सैन्य कहते हैं ॥ ६५ ॥

तेजस्वी शान्तरूपश्च त्यागी भोगी दयापरः ।
बलिष्ठश्च रणे योद्धा प्रोक्तो राजा स पण्डितः ॥ ६६ ॥

राजा तेजस्वी, शान्त, उदार, सम्पत्तिका उपभोग करनेवाला, दयालु, बलवान्, योद्धा और विद्वान होना चाहिए ॥ ६६ ॥

तिस्रो मंत्रप्रभूत्साहशक्तयश्च प्रकीर्तिताः ।
वाङ्मनोदैवसिद्ध्यन्ता नृपे तिस्रश्च सिद्धयः ॥ ६७ ॥

मंत्र-शक्ति, प्रभु-शक्ति और उत्साह-शक्ति—ये तीन शक्तियां हैं । वचन-सिद्धि, मन-सिद्धि और देव-सिद्धि—ये तीन सिद्धियां हैं ॥ ६७ ॥

षाड्गुण्यं नृपतौ प्रोक्तं राज्यरक्षणहेतवे ।
सन्धिविग्रहयानासनाश्रयद्वैधभावनम् ॥ ६८ ॥

राज्यकी रक्षाके लिए राजामें सन्धि, विग्रह, मान, आसन, आश्रय और द्वैधी भाव—ये छह गुण कहे गए हैं ॥ ६८ ॥

समतादर्शनं स्वस्य ददेद्दानमरिं प्रति ।
भेदः शत्रोश्च सेनाया दण्डः शत्रुनिपातनम् ॥ ६९ ॥

समता—सबको समान देखना, दान-अपने शत्रुको नजराना देना, भेद—शत्रुकी सेनामें फूट मचा देना, और दण्ड—शत्रुका विनाश करना—ये चार राज्यकी रक्षाके उपाय हैं ॥ ६९ ॥

सहायाः साधनोपायो देशकालबलाबले ।
विपत्तेश्च प्रतीकारः पञ्चधा मन्त्र इष्यते ॥ ७० ॥

अपने सहायक कौन कौन हैं, अपने पास क्या क्या साधन हैं, इस समय कौनस उपाय करना चाहिए, देश—काल अपने अनुकूल है या प्रतिकूल है, तथा इस आई हुई आपत्तिक प्रतीकार कैसे हो सकता है—इस तरहके विचार करनेको पांच प्रकारके मंत्र कहते हैं ॥ ७०

अष्टादशाक्षौहिणीनां स्वामी मुकुटबन्धकः ।
क्षोणीलक्ष्म ततो वक्ष्ये जिनागमानुसारतः ॥ ७१ ॥

जो अठारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी हो उसे मुकुटबंद्ध राजा कहते हैं । अक्षौहिणी सेना-का लक्षण जिनागमके अनुसार आगे कहते हैं ॥ ७१ ॥

पत्तिः सेना च सेनास्यं गुल्मो वाहिनिपृतने ।
चमूरनीकिनी चेति चाष्टधा शृणु तद्विधिम् ॥ ७२ ॥

पत्ति, सेना, सेनामुख, गुल्म, वाहिनी, पृतना, चमू और अनीकिनी ये सेनाके आठ भेद हैं । इनके लक्षण आगे कहते हैं ॥ ७२ ॥

एकविंशतिका अश्वाश्चतुरशीतिपादगाः ।
एको हस्ती रथश्चैकः पत्तिरित्यभिधीयते ॥ ७३ ॥

जिसमें इक्कीस घोड़े, चौरासी पियादे, एक हाथी और एक रथ हो उसे पत्ति कहते हैं ॥ ७३ ॥

पत्तिस्त्रिगुणिता सेना तिस्रः सेनामुखं च ताः ।
सेनामुखानि च त्रीणि गुल्ममित्यनुकीर्त्यते ॥ ७४ ॥
वाहिनी त्रीणि गुल्मानि पृतना वाहिनीत्रिकम् ।
चमूस्त्रिपृतना ज्ञेया चमूत्रयमनीकिनी ॥ ७५ ॥
अनीकिन्यो दश प्रोक्ताः प्राज्ञैरक्षौहिणीति सा ।
अष्टादशाक्षौहिणी यः प्रभुर्मुकुटवर्द्धनः ॥ ७६ ॥

तीन पत्तिकी एक सेना, तीन सेनाका एक सेनामुख, तीन सेनामुखका एक गुल्म, तीन गुल्मकी एक वाहिनी, तीन वाहिनीकी एक पृतना, तीन पृतनाकी एक चमू, तीन चमूकी एक अनीकिनी और दश अनीकिनीकी एक अक्षौहिणी सेना होती हैं। ऐसी अठारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामीको मुकुटबद्ध राजा कहते हैं। एक अक्षौहिणी सेनामें ४५९२७० घोड़े, १८३७०८० पियादे, २१८७० हाथी और २१८७० रथ, कुल मिलाकर २३४००९० सैन्य होते हैं ॥ ७४–७६ ॥

अथ मतान्तरम् ॥ एकमण्डलभू राजा श्रेण्यश्चाष्टादशाधिपः ।
मुकुटबद्ध इत्याख्यः स एव मुनिभिः परः ॥ ७७ ॥

जो राजा एक मंडलका स्वामी हो वह यदि अठारह श्रेणियोंका स्वामी हो तो उसे मुकुटबद्ध राजा कहते हैं। ऐसा भी किसी २ का मत है ॥ ७७ ॥

सेनापतिर्गणपतिर्वणिजां पतिश्च । सेनाचतुष्कपुररक्षचतुःसुवर्णाः ॥
मन्त्रीस्वमात्यगुरुपुरोधमहास्वमात्याः । श्रेण्यो दशाष्टसहिता विबुधश्च वैद्यः ॥ ७८ ॥

सेनापति, ज्योतिषी, श्रेष्ठी, चार प्रकारका सैन्य (हाथी, घोड़े, प्यादे और रथ), कोतवाल, ब्राह्मणादि चार वर्ण, मंत्री, अमात्य, पुरोहित, महामात्य, पंडित और वैद्य इन अठारहको श्रेणि कहते हैं ॥ ७८ ॥

एतत्पतिर्भवेद्राजा राज्ञां पञ्चशतानि यम् ।
सेवन्ते सोऽधिराजस्स्यादस्मात्तु द्विगुणो भवेत् ॥ ७९ ॥
महाराजस्ततश्चार्द्धमण्डली मण्डली ततः ।
महामण्डल्यर्धचक्री ततश्चक्रीत्यनुक्रमात् ॥ ८० ॥

अठारह श्रेणियोंके अधिपतिको राजा या मुकुटबद्ध राजा कहते हैं। जिसकी ऐसे पांचसौ मुकुटबद्ध राजा सेवा करते हों उसे अधिराजा कहते हैं। अधिराजासे दूना महाराजा, महाराजासे दूना अर्धमंडली, अर्धमंडलीसे दूना मंडली, मंडलीसे दूना महामंडली, महामंडलीसे दूना अर्धचक्री और अर्धचक्रीसे दूना चक्रवर्ती राजा होता है। भावार्थ—मुकुटबद्ध राजाओंका स्वामी अधिराजा होता है। एक हजार मुकुटबद्ध राजाओंका स्वामी महाराजा होता है। दो हजार मुकुटबद्ध राजाओंका

अधिपति अर्धमंडली होता है। चार हजार मुकुटबद्ध राजाओंका स्वामी मंडली होता है। आठ हजार मुकुटबद्ध राजाओंका स्वामी महामंडली होता है। सोलह हजार राजाओंका स्वामी अर्धचक्री होता है। और बत्तीस हजार राजाओंका स्वामी चक्रवर्ती होता है ॥ ७९-८० ॥

चतुरशीतिर्लक्षाश्च मातङ्गाश्च रथास्तथा ।
अष्टादश सुकोट्योऽमी वायुवेगास्तुरङ्गमाः ॥ ८१ ॥
चतुरशीतिः सुकोट्यो यमदूताः पदातयः ।
षण्णवतिसहस्राणि स्त्रीणां च गुणसम्पदाम् ॥ ८२ ॥
द्वात्रिंशत्सुसहस्राणि मुकुटबद्धभूभृताम् ।
तावन्त्येव सहस्राणि देशानां सुनिवेशिनाम् ॥ ८३ ॥
नाटकानां सहस्राणि द्वात्रिंशत्प्रमितानि वै ।
द्वासप्ततिसहस्राणि पुरामिन्द्रपुरश्रियाम् ॥ ८४ ॥
ग्रामकोट्यश्च विज्ञेया रम्याः षण्णतिप्रमाः ।
द्रोणामुखसहस्राणि नवतिर्नव चैव हि ॥ ८५ ॥
पत्तनानां सहस्राणि चत्वारिंशदथाष्ट च ।
षोडशैव सहस्राणि खेटानां परिमा मता ॥ ८६ ॥
भवेयुरन्तरद्वीपाः षट्पञ्चाशत्प्रमामिताः ।
संवाहनसहस्राणि संख्यातानि चतुर्दश ॥ ८७ ॥
स्थालीनां कोटिरेकोक्ता रन्धने या नियोजिता ।
कोटीशतसहस्रं स्याद्धलानां कुलवैः समम् ॥ ८८ ॥
तिस्रोऽपि व्रजकोट्यः स्युर्गोकुलैः शश्वदाकुलाः ।
कुक्षिवासशतानीह सप्तैवोक्तानि कोविदैः ॥ ८९ ॥
दुर्गाटवीसहस्राणि संख्याष्टाविंशतिर्मता ।
म्लेच्छराजसहस्राणि रम्याष्टादशसंख्यया ॥ ९० ॥
कालाख्यश्च महाकालो माणवः पिङ्गलस्तथा ।
नैसर्प्यः पद्मः पाण्डुश्च शङ्खश्च सर्वरत्नकः ॥ ९१ ॥
निधयो नव विख्याता वाञ्छितार्थफलप्रदाः ।
भद्रेण परिणेतव्या देवाधिष्ठितशक्तयः ॥ ९२ ॥
भोग्यं भाण्डं च शस्त्रं च भूषणं देहवस्त्रकम् ।
धनं वाद्यं बहुरत्नं ददते निधयः क्रमात् ॥ ९३ ॥

चक्रातपत्रदण्डासिमणयश्चर्म काकिणी ।
चमूगृहपतीभाश्वयोषित्तक्षपुरोधसः ॥ ९४ ॥
रत्नानि निधयो देव्यः पुरं शय्यासने चमूः ।
भाजनं वाहनं भोज्यं नाट्यं दशाङ्गभोगकाः ॥ ९५ ॥
गणबद्धामराणां तु सहस्राणि च षोडश ।
इत्यादिविभवैर्युक्तश्चक्रवर्ती भवेद्भुवि ॥ ९६ ॥

चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, वायुके समान तेज दौड़नेवाले अठारह करोड़ घोड़े, यमदूतसरीखे चौरासी करोड़ पियादे, छ्यानवे हजार सुन्दर गुणवती स्त्रियाँ, बत्तीस हजार सेवा करनेवाले मुकुटबद्ध राजे, बत्तीस हजार सुन्दर रचनावाले देश, बत्तीस हजार नाट्यशालाएँ, इन्द्रपुरीके समान संपदावाले बहत्तर हजार पुर, छ्यानवे करोड़ रमणीक ग्राम, निन्यानवे हजार द्रोणमुख, अडतालीस हजार पत्तन, सोलह हजार खेट, छप्पन अन्तर्द्वीप, चौदह हजार वाहन, भोजन बनानेके एक करोड़ बर्तन, सौ हजार करोड़ (दश खरब) हल और कुलव (बक्खर), गायोंसे भरे तीन करोड़ बड़े, सात सौ कुक्षिवास, अट्ठाईस हजार दुर्ग (गढ़) और जंगल, अठारह हजार म्लेच्छ राजे, मनचाहे फलोंको देनेवाली और क्रमसे अपने २ देवोंद्वारा अधिष्ठित, महापुण्यदायिनी और बर्तन, शस्त्र, आभूषण, मकान, कपड़े, धन, बाजे, और नाना प्रकारके रत्न इत्यादि भोग्य पदार्थ देनेवाली काल, महाकाल, माणव, पिंगल, वैसर्प, पद्म, पांडु, शंख और सर्वरत्न ये नव निधियां; चक्र, छत्र, दंड, खड्ग, मणि, चर्म, काकिणी, सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, सुतार और पुरोहित ये चौदह रत्न; निधियां, देवियां, पुर, शय्या, आसन, सेना, भाजन (बर्तन), वाहन (सवारी), भोज्य (भोजनके योग्य पदार्थ) नाट्य (खेल-तमाशेके योग्य वस्तुएं), ये दश भोग्य पदार्थ और सोलह हजार श्रेणीबद्ध देव इत्यादि अनेक प्रकारकी विभूतियुक्त चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ८१–९६ ॥

न्यायेन पालयेद्राज्यं प्रजां पालयति स्फुटम् ।
यः स प्राप्नोति धर्मिष्ठः सदा राज्यमनागतम् ॥ ९७ ॥

जो न्याय-नीतिसे राजकाजका संचालन और प्रजाका पालन करता है वह धर्मात्मा राजा अपने राज्यके अलावा और भी अधिक राज्यको प्राप्त करता है ॥ ९७ ॥

इत्यतो न्यायमार्गेण हिताय स्वपरात्मने ।
पालनीयं सदा राज्यं त्रिवर्गफलसाधनम् ॥ ९८ ॥

इसलिए अपने और दूसरोंके हितके लिए हमेशा न्यायमार्गसे राज्यका संचालन करना चाहिए। क्योंकि यह राज्य धर्म, अर्थ और काम, इन तीन पुरुषार्थोंका साधक है ॥ ९८ ॥

सन्यासियोगिविप्रादीं स्तोषयेद्दानमात्रतः ।
प्रतीत्य शपथैः सर्वाः प्रजा ग्रामं निवासयेत् ॥ ९९ ॥

सन्यासी, योगी, ब्राह्मण आदिको दान देकर संतुष्ट करे, और शपथोंद्वारा सर्व प्रजाको विश्वास दिलाकर गांव बसावे ॥ ९९ ॥

कर्णेजपान् खलाँश्चोरान् परस्त्रीलम्पटान्मदान् ।
देशान्निर्वासयेद्राजा हिंसकान्मद्यपायिनः ॥ १०० ॥

चुगलखोरों, दुष्टों, चोरों, परस्त्री लंपटियों, मदोन्मत्तों, हिंसकों और शराब पीने वालोंको राजा देशसे निकाल वाहिर करे ॥ १०० ॥

स्वदेशादागतं वित्तं यथापात्रं समर्पयेत् ।
खञ्जं भट्टं नटं काणमन्धादीन्प्रतिपालयेत् ॥ १०१ ॥

अपने देशसे वसूल हुए धनको योग्य पात्रोंको देवे तथा उससे लंगड़े, भाट, नट, काने, अंधे आदि लोगोंका पालन-पोषण करे ॥ १०१ ॥

इत्यादि देशनं कृत्वा सन्ध्यायाः समये ततः ।
गच्छेज्जिनालयं राजा सन्ध्यादिक क्रियां भजेत् ॥ १०२ ॥

उपर्युक्त कार्योंके वारेमें अपने नौकरादिकोंको आज्ञा करके राजा सन्ध्याके समय जिनमंदिरको जावे और वहांपर सन्ध्यावंदन आदि क्रियाएं करे । इस तरह क्षत्रियोंका आचार कहा ॥ १०२ ॥

वैश्यस्य सत्क्रियां प्रोचे पुराणस्यानुसारतः ।
मषी कृषिः पाशुपाल्यं वाणिज्यं वैश्यकर्मणि ॥ १०३ ॥

अब पुराणके अनुसार वैश्योंका आचार-व्यवहार कहता हूँ । वैश्यके कर्ममें मषी (लिखना-पढ़ना), कृषि (खेती), पशुपालन और वाणिज्य (व्यापार), ये चार कार्य मुख्य हैं ॥ १०३ ॥

राजसेवां समाश्रित्य कुर्याद्देशस्य लेखनम् ।
आयव्ययं कुलाचारं दत्तं भुक्तं नृपेण यत् ॥ १०४ ॥

राजकी नौकरी पाकर सारे देशके आयव्ययका हिसाव लिखे कि राज्यमें कितनी आमदनी है, कितना खर्च है; राजाके कुलका आचरण कैसा है, राजाने किसको क्या दिया है, उसने स्वयं किस चीजका उपभोग किया है ॥ १०४ ॥

व्ययं तु सदने स्वस्य वाऽऽयं वा कतिममम् ।
द्रविणं कस्य किं दत्तं गृहीतं किं च कस्य वा ॥ १०५ ॥

इसी तरह वैश्य अपने घरका हिसाव-किताव लिखे कि आज अपने घरमें क्या खर्च हुआ है, कितनी आमदनी हुई है, किसको कितने रुपये दिए हैं और किसके कितने रु० आए हैं ॥ १०५ ॥

कति धान्यं कति द्रव्यं सुवर्णं वाऽथ गोधनम् ।
भुक्तिभाण्डं च संलेख्यं यतो न संशयो भवेत् ॥ १०६ ॥

अपने घरमें कितना धान्य, कितना द्रव्य, कितना सोना, कितनी गाएँ-भैंसें और कितने भोजनके वर्तन हैं, ये सब लिखे; ताकि कोई तरहका सन्देह न रहे ॥ १०६ ॥

लञ्चं खुचं न गृण्हीयात् कूटलेखं च वर्जयेत् ।
मायाशल्यं निदानं च क्रौर्यरागातिलोभताम् ॥ १०७ ॥

वैश्य लाँच न ले, और कोई खुशीसे कुछ दे उसे भी न ले । क्योंकि लांचके लेनेसे अपने परिणाम लांच देनेवालेकी ओर झुक जाते हैं, जिससे कार्योंके ठीक ठीक होनेकी संभावना नहीं रहती। वैश्य खोटे लेख, तमस्सुक आदि न लिखे, छल कपट न करे, अप्राप्त वस्तुके ग्रहण करनेकी लालसा न रक्खे, परिणामोंमें क्रूरता न रक्खे और अत्यन्त राग और लोभ न करे ॥ १०७ ॥

किंकरं तु समाहूय दत्वा च वृषभान् परान् ।
बीजधान्यं धनं वित्तं संस्कुर्यात् कृषिकर्म च ॥ १०८ ॥

अच्छे अच्छे बैल और बोने योग्य अच्छा बीज तथा अन्य उपयोगी सामग्री देकर नौकरोंसे खेती करावे ॥ १०८ ॥

व्रतधारी क्रियाकारी सामायिकी तपोरतः ।
न कुर्यात् कर्षणं धर्मी भूरिजीवप्रघातकम् ॥ १०९ ॥

जो व्रतधारी है, नित्य नैमित्तिक क्रियाओंको करता है, निरन्तर सुबह शामको सामायिक करता है और उपवास आदि तपश्चरण करता है, ऐसा धर्मात्मा वैश्य स्वयं खेती न करे। क्योंकि खेती करनेसे बहुतसे जीवोंका घात होता है ॥ १०९ ॥

गोमहिषीतुरंगादीन् संगृह्य च व्ययेत्पुनः ।
दधि दुग्धं घृतं तक्रं भव्यपात्राय दीयते ॥ ११० ॥
घृतस्य विक्रये दोषो नास्ति व्यापारवर्तिनः ।
शेषं गव्यं न विक्रीत तृणाद्यैस्तर्पयेद्धनम् ॥ १११ ॥

वैश्य, गाँए, भैंस, घोड़े आदिकी खरीदी कर बेंचे और दूध, दही, घी और मठा योग्य पुरुषोंको देवे । व्यापारी गृहस्थको घीके बेंचनेमें कोई दोष नहीं है । घीके अलावा शेष दूध दही आदि न बेंचना चाहिये । तथा अपने पासके पशुओंको घास आदिसे खूब तृप्त रक्खे—उन्हें भूखे रहने दे ॥ ११०–१११ ॥

वाणिज्यं त्रिविधं प्रोक्तं पण्यं वृषभवाहनम् ।
अब्धिनावादिकं चेति कुटुम्बपोषणाय वै ॥ ११२ ॥

वैश्योंको अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करनेके लिए व्यापार करना चाहिए। वह व्यापार तीन प्रकारका है । प्रथम—दुकान करना, दूसरे बैलगाड़ी आदिमें माल रखकर दूसरी जगह ले जाकर बेंचना तथा दूसरी जगहसे माल लाकर अपने यहां बेंचना और तीसरे जहाज आदि द्वारा द्वीपान्तरोंको माल ले जाना और वहांसे लाना ॥ ११२ ॥

गजयन्त्रे समानत्वं न्यूनाधिक्यविवर्जितम् ।
अल्पलाभेन कर्तव्यं वस्त्रस्य विक्रयं मुदा ॥ ११३ ॥

कपड़ा नापनेका गज बराबर रक्खे, कमती ज्यादा न रक्खे । तथा थोड़ा नफा लेकर कपड़ा बेचे ॥ ११३ ॥

वर्षासु सूक्ष्मवस्त्रेषु जन्तूनां सम्भवो भवेत् ।
तत्प्रतिलेखनं कार्यं श्रावकैर्धर्महेतवे ॥ ११४ ॥

बरसातके दिनोंमें बारीक कपड़ोंमें प्रायः जीवोंकी उत्पत्ति होनेकी संभावना रहती है । इस-लिए श्रावकोंको धर्मके निमित्त ऐसे कपड़े निरन्तर झाड़ पोंछ कर साफ रखने चाहिए ॥ ११४ ॥

रोमचर्मभवं वस्त्रं कौशेयं रक्तवर्जितम् ।
नीचगृहारनालेन संलिप्तं नैव विक्रयेत् ॥ ११५ ॥

ऊनी, चमड़ाके, बिना रंगे हुए (?) कोशेके तथा नीच घरोंका चांवल आटा आदिका मांड (कड़प) लगे हुए कपड़े न बेंचे ॥ ११५ ॥

सूत्रं च पट्टसूत्रं च कार्पासं नैव दोषभाक् ।
पट्टसूत्राण्डकौशाण्डैः श्रावकैर्नैव गृह्यते ॥ ११६ ॥ (?)

सूत, पट्टसूत्र (रेशम) और रुई-कपासका व्यापार करना दूषित नहीं है । तथा पट्टसूत्रांड, कौशांडका व्यापार श्रावकगण न करें ॥ ११६ ॥

सुवर्णं रजतं रत्नं गृण्हीयान्मौक्तिकं तथा ।
कपटं तत्र नो कार्यं बहिर्लेपादिसम्भवम् ॥ ११७ ॥

श्रावकगण, सोना, चाँदी, रत्न और मोतियोंका व्यापार करें । तथा व्यापारमें किसी हीन (खोटी) चीजपर किसी चीजका झोल आदि देकर-पालिशकर चोखी कहकर न बेंचे ॥ ११७ ॥

कूटद्रव्यं स्वयं ज्ञात्वाऽज्ञानिनं नैव विक्रयेत् ।
अतिवृद्धं तथा बालं मुग्धं भद्रं न धूर्तयेत् ॥ ११८ ॥

यह माल खोटा है, ऐसा अपनेको मालूम हो जानेपर अज्ञानियोंको वह माल न बेंचे । तथा बूढे, बालकों, मुग्धों और सज्जन पुरुषोंके साथ धूर्तता न करे ॥ ११८ ॥

चोरद्रव्यं नृपद्रव्यं भूपालद्रोहिणस्तथा ।
चेटीचेटकयोर्वित्तं न ग्राह्यं साधुभिर्जनैः ॥ ११९ ॥

चोरीका माल, राजाका माल, राजद्रोहीका माल, तथा दास-दासीका माल सज्जन पुरुषोंको न लेना चाहिए ॥ ११९ ॥

विस्मृतं पतितं गुप्तवृत्त्या दत्तं च केनचित् ।
रक्षणे स्थापितं भूमौ क्षिप्तं वा नच गोपयेत् ॥ १२० ॥

किसीका भूला हुआ, गिरा हुआ, गुप्तपनेसे अपने पास रक्खा हुआ, रक्षा करनेके लिए अपनेको सम्हलाया हुआ अथवा जमीनमें गढ़े हुए द्रव्यको न ग्रहण करे ॥ १२० ॥

तुलायां न्यायमार्गेण देशधर्मानुसारतः ।
प्रस्तरादिषु मानेषु न्यूनाधिक्यं न कारयेत् ॥ १२१ ॥

नोट—१. यह श्लोक अशुद्ध मालूम पड़ता है। इससे इसका भाव ठीक ठीक नहीं निकलता। अनु०

तराजू तथा अपने देश-धर्मके अनुसार प्रचलित पत्थर लोहा आदिके सेर, पावसेर, पाई, पायली आदि तौलने-मापनेके बांटोंको कम ज्यादा न करे ॥ १२१ ॥

न्यूनं दीयेत न क्वापि गृह्णीयान्नाधिकं कदा।
घृतं गुडादि तैलं च धान्यं तु न कदाचन ॥ १२२ ॥

घी, गुड़, तेल, अनाज आदि पदार्थ न तो किसीको तोलमें कमती दे, और न आप किसीसे बढ़ती ले ॥ १२२ ॥

मधु च मधुपुष्पाणि कुसुम्भं धायपुष्पकम्।
अहिफेनं विषं क्षारं सूक्ष्मधान्यं तिलादिकम् ॥ १२३ ॥
घुणितं सकलं धान्यं लाक्षां लोहं च साबुकम्।
लोहशस्त्राणि सर्वाणि जीर्णघृतं सतैलकम् ॥ १२४ ॥
पौस्तं माञ्जिष्ठकं क्षेत्रं कूपं जलप्रवाहजम्।
इक्षुयन्त्रं तैलयन्त्रं नावं च चर्मभाजनम् ॥ १२५ ॥
लशुनं शृङ्गबेरं च निशाक्षेत्रं च चालजम्।
कन्दं मूलं तथा चान्यदनन्तकायिकं परम् ॥ १२६ ॥
सिक्थं च नवनीतं च वनवाटीक्षुकाण्डकम्।
पत्राणि नागवल्याश्च वन्हिबाणस्य भेषजम् ॥ १२७ ॥
खेचरं रोम चर्मास्थि शृङ्खलं पादुकाद्वयम्।
मार्जनी च पदत्राणं हिंसोपकरणं परम् ॥ १२८ ॥
इत्यादिकमयोग्यं च पूर्वग्रन्थे निषेधितम्।
तन्न ग्राह्यं वणिग्वर्यैर्धर्मरक्षणहेतवे ॥ १२९ ॥

शहद, महुवेके फूल, कुसूमा, धायटीके फूल, अफीम, विष, क्षार, तिल आदि बारीक अनाज, घुने हुए सब तरहके अनाज, लाख, लोहा, साबूदाना, सब तरहके लोहेके हथियार, पुराना घी, पुराना तेल, पोस्ते, मंजीठाका खेत, कुआ, अरहट (कुएसे पानी खींचनेका रहट), गन्नेका रस निकालनेका यंत्र, घानी, नाव, चमड़ेके मशक आदि बर्तन, लहसन, बेर, हल्दीका खेत, चालज, कन्द, मूल (जड़) तथा दूसरे अनन्तकायिक पदार्थ, मोम, मक्खन, बाग-बगीचे, गन्नेके पेड़, पान, छोड़नेकी दारू, पारा, ऊन, चमड़ा, हड्डी, लोहेकी सांकल, खड़ाऊ, बुहारी, जूते, हिंसाके योग्य अस्त्र-शस्त्र इत्यादि अयोग्य पदार्थोंका, जिनका कि प्राचीन ग्रन्थोंमें निषेध किया गया है, बनिये अपने धर्मकी रक्षाके लिए देन लेन न करें ॥ १२३-२९ ॥

अजाघ्नगोघ्नमत्स्यघ्नाः कल्लालाश्चर्मकारकाः।
पापर्धिकः सुरापायी एतैर्वक्तुं न युज्यते ॥ १३० ॥

बकरी, गाय मारनेवाले कसाई, मच्छी मारनेवाले ढीमर, शराब बेंचनवाले कलार, चमार, पातकी और मदिरा पीनेवाले, इत्यादि नीच लोगोंके साथ बात भी न करे ॥ १३० ॥

एतान्किमपि नो देयं स्पर्शनीयं कदाऽपि न ।
न तेषां वस्तुकं ग्राह्यं जनापवाददायकम् ॥ १३१ ॥

इन लोगोंको कुछ भी न दे, न उनकी कोई वस्तु ले और न कभी उनको छुए । क्योंकि ऐसा करनेसे संसारमें अपनी बदनामी होती है ॥ १३१ ॥

रजको रञ्जकश्चैव भाडिभुञ्जतिलन्तुदौ ।
चक्राग्निभस्मपाषाणचूर्णं न कारयेत्क्रियाम् ॥ १३२ ॥

धोबी, रँगरेज़, भड़भूंजे और तेलीको उनके कामोंके बारेमें उत्तेजना न करे । तथा गाड़ीका चाक, अग्नि, भस्म, पत्थर फोड़ना आदि कार्य करनेको किसीसे न कहें ॥ १३२ ॥

विप्रक्षत्रियवैश्यैश्च स्पृश्यशूद्रैस्तथा सह ।
व्यापारकरणं युक्तं नीचैर्नीचत्वमुद्भवेत् ॥ १३३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और स्पृश्य शूद्रोंके साथ व्यापार करना चाहिए । नीचोंके साथ व्यापार करनेसे अपनेमें नीचता आती है ॥ १३३ ॥

काछिकमालिकौ कांस्यकनकलोहकारकाः ।
सूत्रधारः सूचीधारः कुविन्दः कुम्भकारकः ॥ १३४ ॥
रङ्गकारः कुटुम्बी च भाडभुञ्जस्तिलन्तुदः ।
ताम्बूली नापितश्चैव स्पृश्यशूद्राः प्रकीर्तिताः ॥ १३५ ॥

काछी, माली, कसेरे-ठटेरे, सुनार, लुहार, सिलावट, सूचीधार, हिन्दू जुलाहे, कुम्हार, रंगरेज, कुटुंबी, भड़भूंजे, तेली, तमोली, नाई इत्यादि लोग स्पृश्य शूद्र माने गये हैं ॥ १३४-१३५॥

योग्यायोग्यमिदं दृष्ट्वा व्यापारः क्रियते बुधैः ।
दूरदेशगमार्थं च वृषभं वाहयेन्नरः ॥ १३६ ॥
अल्पभारं परिक्षिप्य शनैः सञ्चालयेद्बुधः ।
आहारोदकपूरेण यावत्तृप्ति तु पूरयेत् ॥ १३७ ॥
पृष्ठे शोफादिके जाते कृपया परिच्छेदयत् ।
उपशमो न यावच्च तावद्भारं न धारयेत् ॥ १३८ ॥

बुद्धिमान् वैश्योंका कर्तव्य है कि वे उपर्युक्त योग्य और अयोग्य लोगोंका विचार कर उनके साथ व्यापार-धंधा करें । यदि व्यापारके लिए देशान्तरोंको जाना हो तो बैलोंपर लाद कर माल ले जावे । जिन बैलोंपर माल ले जावे उनपर थोड़ा (माफिकका) बोझा लादे और उन्हें धीरे धीरे चलावे । उनको खाने पीनेके लिए घांस-पानी आदि भर पेट देवे । यदि उनकी पीठ वगैरहपर सूजन आदि आ गई हो तो दया-पूर्वक उसका इलाज करे । जबतक उनका रोग दूर न हो तबतक उनपर बोझा न लादे ॥ १३६-१३८ ॥

जलयाने सदाचारं रक्षयेद्धर्महेतवे ।
कदाचित्कर्मयोगेन मग्नं चेत्संस्मरेज्जिनम् ॥ १३९ ॥

व्यापारके लिए यदि नाव आदिमें बैठकर द्वीपान्तरोंको जावे, तो वहांपर धर्मके निमित्त अपने शुद्ध आचरणकी रक्षा करता रहे। यदि कदाचित् दैवयोगसे समुद्रमें डूबनेका मौका आ जाय तो जिनदेवका स्मरण करे ॥ १३९ ॥

व्यापारो वणिजां प्रोक्तः संक्षेपेण यथागमम्।
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शूद्रास्तु सेवका मताः ॥ १४० ॥

यहांतक संक्षेपमें आगमके अनुसार वैश्योंका कर्तव्य-कर्म कहा। अब शूद्रोंका कर्तव्य-कर्म कहा जाता है। शूद्र लोग, ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्योंके सेवक होते हैं ॥ १४० ॥

तेषु नानाविधं शिल्पं कर्म प्रोक्तं विशेषतः।
जीवदयां तु संरक्ष्य तैश्च कार्यं स्वकर्मकम् ॥ १४१ ॥

शूद्रोंके लिए तरह २ के शिल्प-कर्म विशेष रीतिसे कहे गये हैं। वे जीवोंकी दयाका पालन करते हुए अपने अपने कार्यको करें ॥ १४१ ॥

विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमाः ॥ १४२ ॥
लाभालाभे समं चित्तं रक्षणीयं नरोत्तमैः।
अतितृष्णा न कर्तव्या लक्ष्मीर्भाग्यानुसारिणी ॥ १४३ ॥

ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों वर्ण अपनी अपनी क्रियाओंके भेदसे कहे गये हैं। ये सब जैनधर्मके पालन करनेमें दत्तचित्त रहते हैं, इसलिए सब भाई-बंधुके समान हैं। सबको नफा नुकसानमें समचित्त रहना चाहिए। तथा व्यापारमें अधिक लालसा भी न करना चाहिए; क्योंकि लक्ष्मी (धन) की प्राप्ति अपने अपने भाग्यके अनुसार होती है ॥ १४२-१४३ ॥

उद्यमेषु सदा सक्त आलस्यपरिवर्जितः।
सदाचारक्रियायुक्तो धनं प्राप्नोति कोटिशः ॥ १४४ ॥

जो पुरुष आलस्य छोड़कर निरन्तर उद्योग करता रहता है और सदाचरणका पालन करनेमें तत्पर रहता है उसे करोड़ों रुपये प्राप्त हो जाते हैं ॥ १४४ ॥

सद्व्यापारे तथा धर्मे आलस्यं न हि सौख्यदम्।
उद्योगः शत्रुवन्मित्रमालस्यं मित्रवद्रिपुः ॥ १४५ ॥

उत्तम व्यापार तथा धर्ममें आलस्य (सुस्ती) करना सुखकर नहीं है। उद्योग कटु वचन बोलनेवाले शत्रुकी तरह मित्र है, और आलस्य मीठे वचन बोलनेवाले मित्रकी तरह शत्रु है। भावार्थ—यद्यपि उद्योग करनेसे कई तरहकी आपत्तियां झेलनी पड़ती हैं, परन्तु आखिर वह उद्योग मित्रोंके सरीखा ही कार्य करता है—अपना सहायक होता है। और यद्यपि आलस्य करनेसे अर्थात् सोते पड़े रहनेसे शरीरको आराम मिलता है, परन्तु वह आराम आराम नहीं है; वास्तवमें वह आराम दुःखदायी है ॥ १४५ ॥

पीडायामद्भुते जृम्भे स्वेष्टार्थप्रक्रमे क्षुते ।
शयनोत्थानयोः पादस्खलने संस्मरेज्जिनम् ॥ १४६ ॥

किसी तरहकी पीड़ा होनेपर, विचित्र जँभाई–उवासीके आनेपर, उत्तम कार्य करनेका प्रारंभ करनेमें छींक आनेपर, सोने, उठने तथा पैरके लड़खड़ा जाने या धक्का लग जानेपर जिनदेवका स्मरण करे ॥ १४६ ॥

अश्रद्धेयमसत्यं च परनिन्दात्मशंसने ।
मध्येसभं न भाषेत कल्युत्पादवचः सदा ॥ १४७ ॥
अर्थनाशं मनस्तापं गृहदुश्चरितानि च ।
मानापमानयोर्वाक्यं न वाच्यं धूर्तसन्निधौ ॥ १४८ ॥

पुरुष सभाओंमें तथा अन्यत्र ऐसे वचन न बोले, जिससे दूसरे लोग अपना विश्वास न करें। झूठ न बोले, अपनी प्रशंसा और दूसरोंकी निन्दा न करे, तथा कलहकारी वचन न बोले । अपने द्रव्यकी हानि, मनका संताप, घरके दुश्चरित्र और मान अपमानके वचन धूर्त लोगोंके सामने न कहे ॥ १४७–१४८ ॥

सम्पत्तौ च विपत्तौ च समचित्तः सदा भवेत् ।
स्तोकं कालोचितं ब्रूयाद्वचः सर्वहितं प्रियम् ॥ १४९ ॥
न्यायमार्गे सदा रक्तश्चोरबुद्धिविवर्जितः ।
अन्यस्य चात्मनः शत्रुं भावात्प्रकाशयेन्न हि ॥ १५० ॥

सम्पत्ति और विपत्तिमें सदा समचित्त रहे, समयके अनुकूल थोड़ा प्रिय और हितकारी वचन बोले, हमेशह नीतिपर डटा रहे, चोरी करनेके परिणाम कभी न करे, और अपने तथा परके शत्रुका प्रकाशन न करे ॥ १४९–१५० ॥

वैराग्यभावनाचित्तो धर्मोदेशवचो वदेत् ।
लोकाकूतं समालोच्य चरेत्तदनुसारतः ॥ १५१ ॥
सत्त्वे मैत्री गुणे हर्षः समता दुर्जनेतरे ।
कार्यार्थं गम्यते तस्य गेहं नोचेत्कदा च न ॥ १५२ ॥

निरन्तर वैराग्यभावनामें लौ लगाये रहे, धर्मोपदेशी वचन बोले, लोगोंके विचारोंको अच्छी तरह समझ–बूझकर उनके अनुसार आचरण करे, संसारभरके प्राणियोंपर मित्रभाव रक्खे; गुणी जनोंको देखकर हर्ष प्रकट करे, दुर्जन और सज्जन पर सम भाव रक्खे, और कार्यके निमित्त ही दूसरेके घरपर जावे अर्थात् विना कार्यके दूसरेके घर कभी न जावे ॥ १५१–५२ ॥

हिंसापापकरं वाक्यं शास्त्रं वा नैव जल्पयेत् ।
द्रोहस्य चिन्तनं क्वापि कस्यापि चिन्तयेन्न हि ॥ १५३ ॥

जिन वचनोंके बोलनेसे हिंसा–पाप हो वैसे वचन कभी न बोले और न ऐसा शास्त्र किसीको सुनावे । तथा कहीं पर भी किसीके वैरकी चिन्तना न करे ॥ १५३ ॥

दारिद्र्यशोकरोगार्तांस्तोषयेद्भेषजादिना ।
स्वस्य यदनिष्टं स्यात्तन्न कुर्यात्परे क्वचित् ॥ १५४ ॥

दरिद्रियों, शोकसे व्याकुल और रोग पीड़ितोंको औषधि आदिके द्वारा सन्तुष्ट करे। जिस कार्यको आप बुरा समझता हो उस कार्यको किसी दूसरेके निमित्त भी न करे ॥ १५४ ॥

समीपोक्तौ हासे श्वासे जृम्भे कासे क्षुते तथा ।
धूमधूलिप्रवृत्तौ च छादयेद्वाससाऽऽननम् ॥ १५५ ॥

दूसरेके अत्यन्त समीप खड़े रहकर बातचीत करते समय, हँसते समय, सांस लेते समय, जँभाई लेते समय और छींक लेते समय कपड़ेसे अपना मुंह ढँक ले। तथा धुएँमें जाना हो या जहाँपर धूल-गर्दा उड़ रहा हो वहाँ जाना हो तो भी अपना मुँह ढँक ले ॥ १५५ ॥

कूपकण्ठे च वल्मीके चोरवेश्यासुराशिनाम् ।
सन्निधौ मार्गमध्ये तु न स्वपेत्तु जलाशये ॥ १५६ ॥

कुएके किनारे (पार) पर, साँप, चूहे आदिके बिलोंपर, चोर, वेश्या और मद्य पीनेवाले पुरुषोंके घरपर, रास्तेके बीचमें तथा तालाब आदि जलके स्थानोंमें न सोवे—निद्रा न लेवे ॥ १५६ ॥

नैको मार्गे व्रजेन्नैकः स्वपेत्क्षेत्रे शवान्तिके ।
अविज्ञातोदके नैव प्रविशेद्वा गिरौ न हि ॥ १५७ ॥

अकेला रास्ता न चले, खेतमें अथवा मुर्देके पास अकेला न सोवे, अपरिचित कुआ, नदी, तालाब आदिमें अकेला न घुसे और पर्वतपर अकेला न चढ़े ॥ १५७ ॥

दातारं पितृबुद्ध्या च सेवेत् क्षेमहेतवे ।
पठितान्यपि शास्त्राणि पुनः पुनः प्रचिन्तयेत् ॥ १५८ ॥

अपने सुख और फायदेके लिए जो अपनेको खाने-कमानेको रुपया पैसा देता हो उसकी पिता-बुद्धिसे सेवा करे—उसे पिताके तुल्य समझे। पढ़े हुए शास्त्रोंका वारवार चिन्तवन-मनन करे ॥ १५८ ॥

सूक्ष्मवस्तु तथा सूर्यं नैकदृष्ट्या विलोकयेत् ।
पादत्राणं विना मार्गे गच्छेन्न हि सुधार्मिकः ॥ १५९ ॥

अत्यन्त बारीक वस्तु तथा सूर्यको एक दृष्टिसे न देखे। जूता पहिने बिना रास्ता न चले ॥ १५९ ॥

मूर्खैः सह वदेन्नैव नोल्लङ्घयेद्गुरोर्वचः ।
दुर्वाक्यं यदि वा मूर्खैर्दत्तं तत्सहेत स्वयम् ॥ १६० ॥

मूर्ख पुरुषोंके साथ बातचीत न करे, पिता आदि बड़ोंके वचनोंका उल्लंघन न करे; और यदि मूर्ख आदमी अपनेको कटु वचन भी कहे तो उन्हें शान्तिके साथ सह ले ॥ १६० ॥

व्यवहाराद्विवादे वा कालुष्यं नाद्वहेद्धृदि ।
नाकारणं हसेदास्यं नासारन्ध्रं न घर्षयेत् ॥ १६१ ॥

व्यावहारिक कामोंमें यदि किसीके साथ विवाद हो गया हो–झगड़ा पड़ गया हो, तो उसके कारण अपने हृदयमें कलुषता धारण न करे, प्रयोजनके बिना न हँसे, मुखपर वारवार हाथ न फेरे, और न नाकमें वारवार उंगली ठूँसे ॥ १६१ ॥

ब्रूयात्कार्यं दृढीकृत्य वचनं निर्विकारतः ।
वृथा तृणादि न छेद्यं नांगुल्याद्यैश्च वादनम् ॥ १६२ ॥

किसी भी कार्यका पुख्ता विचार कर उसके विषयमें ऐसे वचन कहे जिनके सुननेसे दूसरोंके हृदयमें क्षोभ पैदा न हो। विना प्रयोजन तृण (तिनके) आदिको न छेदे। और न व्यर्थ उंगलियां चटकावे। अथवा अपने शरीरपर विना प्रयोजन हाथ उंगली आदिके द्वारा वाजा न वजावे ॥ १६२ ॥

मात्रा पुत्र्या भगिन्या वा नैको रहसि जल्पयेत् ।
आसने शयने स्थाने याने यत्नपरो भवेत् ॥ १६३ ॥

माता, पुत्री अथवा बहिनके साथ एकान्तमें अकेला बैठकर बातचीत न करे। बैठने, सोने, खड़े रहने और सवारी आदि पर चढ़नेके समय सावधान रहे ॥ १६३ ॥

जीवधनं स्वयं पश्येत् समीपे कारयेत्कृषिम् ।
वृद्धान् बालाँस्तथा क्षीणान् बान्धवान्परितोषयेत् ॥ १६४ ॥

गाय, भैंस, बैल, घोड़े आदि जीवित धनकी स्वयं देख-रेख रक्खे। खेती वगैरह अपने ग्रामके पासमें ही करावे। बूढ़ों, बालकों, शक्तिहीन दुर्बल और बांधवोंको सन्तुष्ट रक्खे ॥ १६४ ॥

जिनादिप्रतिमाया वा पूज्यस्यापि ध्वजस्य वा ।
छायां नोल्लङ्घयेन्नीचच्छायां च स्पर्शयेत्तनुम् ॥ १६५ ॥

जिनादि प्रतिमाकी या पूज्य जिन मंदिरपर लगी हुई ध्वजाकी छायाका उल्लंघन न करे और नीच पुरुषोंकी छायासे अपने शरीरका स्पर्श न होने दे ॥ १६५ ॥

अदानाक्षेपवैमुख्यमर्थिजनेषु नाचरेत् ।
अपकारिष्वपि जीवेषु ह्युपकारपरो भवेत् ॥ १६६ ॥

अर्थी जनोंको कुछ न देना, उनका तिरस्कार करना, उन्हें वापिस लौटा देना आदि कार्य न करे। अपना अपकार करनेवाले–अपना बुरा चाहनेवाले मनुष्योंपर भी उपकार ही करे ॥ १६६ ॥

निद्रा स्त्रीभोगभुक्त्यध्वयानं सन्ध्यासु वर्जयेत् ।
साधुजनैर्विवादं तु मूर्खैः प्रीतिं तु नाचरेत् ॥ १६७ ॥

सन्ध्याके समय निद्रा न ले, स्त्री-संभोग न करे, भोजन न करे और न रास्ता चले। सज्जनोंके साथ वाद-विवाद न करे और मूर्खोंके साथ प्रीति न करे ॥ १६७ ॥

छात्रागारे नृपागारे शत्रुवेश्यागृहे तथा ।
क्रीतान्नसदने नीचार्चकागारे न भुञ्जयेत् ॥ १६८ ॥

शिष्य, राजा, शत्रु, तथा वेश्याके घरपर भोजन न करे। तथा ढाबे, होटल आदिमें, नीच पुरुषोंके यहां, और पुजारियोंके घर भोजन न करे ॥ १६८ ॥

नखिनां च नदीनां च शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
वनितानां नृपाणां च चोराणां व्यभिचारिणाम् ॥ १६९ ॥
खलानां निन्दकानां च लोभिनां मद्यपायिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यो वञ्चकानां च पापिनाम् ॥ १७० ॥

नखोंसे प्रहार करनेवाले जानवरों, नदियों, सींगवाले जानवरों, हथियार धारण किये हुए मनुष्यों, स्त्रियों, राजाओं, चोरों, व्यभिचारी पुरुषों, दुष्टों, निंदकों, लोभी मनुष्यों, शराब पीनेवाले मनुष्यों, ठगियों और पापियोंका कभी विश्वास न करे ॥ १६९–१७० ॥

मध्ये न पूज्ययोर्गच्छेन्न पृच्छेदप्रयोजनम् ।
बहिर्देशात्समायातः स्नात्वाऽऽचम्य विशेद्गृहम् ॥ १७१ ॥

पूज्य पुरुषोंके बीचमें होकर गमन न करे। प्रयोजनके विना किसीसे कुछ न पूछे। बाहिर देशसे आया हो तो स्नान–आचमन कर घरमें प्रवेश करे ॥ १७१ ॥

आरम्भे तु पुराणस्यान्यव्यापारस्य कस्यचित् ।
नमः सिद्धेभ्य इत्युच्चैर्नम्रीभूतो वदेद्वचः ॥ १७२ ॥

शास्त्रके प्रारंभमें अथवा और किसी कार्यके शुरुवातमें नम्रताके साथ "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" इस पदका उच्चारण करे ॥ १७२ ॥

भुञ्जानोऽप्यैहिकं सौख्यं परलोकं विचिन्तयेत् ।
स्तनमेकं पिबन्बालोऽन्यस्तनं मर्दयेद्भुवि ॥ १७३ ॥

इस लोक सम्बन्धी सुखोंको भोगते हुए भी परलोक सम्बन्धी सुखका चिंतवन करे। जैसे कि बालक अपनी माताके एक स्तनको पीता रहता है और दूसरेको अपने हाथसे पकड़े रहता है। भावार्थ–मनुष्योंको अपने उभय (दोनों) लोक सम्बन्धी सुखका चिंतवन करना चाहिए ॥ १७३ ॥

कृत्वैवं लौकिकाचारं धर्मं विस्मारयेन्न हि ।
सन्ध्यादिवन्दनां कुर्याद्दीपं प्रज्वलयेद्गृहे ॥ १७४ ॥

इस तरह लौकिक आचरणका पालन करता हुआ गृहस्थधर्मको न भूले, सन्ध्यावन्दना आदि करता रहे; और शामको घरमें दीपक जलावे ॥ १७४ ॥

रवेरस्तं समारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत् ।
यस्य तिष्ठेद्गृहे दीपस्तस्य नास्ति दरिद्रता ॥ १७५ ॥
आयुष्ये प्राङ्मुखो दीपो धनायोदङ्मुखो मतः ।
प्रत्यङ्मुखोऽपि दुःखाय हानये दक्षिणामुखः ॥ १७६ ॥

सूर्यास्तसे लेकर सूर्योदय पर्यन्त जिसके घरमें दीपक जलता रहता है उसके घरमें कभी दरिद्रताका प्रवेश नहीं हो पाता है। दीपकका मुख पूर्व दिशाकी ओर करनेसे आयु बढ़ती है, उत्तरकी तरफ मुख करनेसे धन–लक्ष्मी बढ़ती है, पश्चिमकी ओर मुख करनेसे दुःख होता है और दक्षिणकी तरफ मुख करनेसे हानि होती है ॥ १७५–१७६ ॥

चतुर्दिक्षु तु ते दीपाः स्थापिताः सन्ति चेदहो ।
शुभदास्तु ततो विघ्ने न हि दोपस्तु कश्चन ॥ १७७ ॥

चार दिये चारों दिशाओंमें मुखकर धरनेसे शुभ देनेवाले होते हैं। इसमें पहले कहे हुए कोई दोष नहीं लगते। ॥ १७७ ॥

इत्येवं कथितस्त्रिवर्णजनितो व्यापारलक्ष्म्यागमो ।
ये कुर्वन्ति नरा नरोत्तमगुणास्तं ते त्रिवर्गार्थिनः ॥
भोगानत्र परत्रजन्मनि सदा सौख्यं लभन्ते पर-
मन्ते कर्मरिपुं निहत्य विमलं मोक्षं व्रजन्त्यक्षयम् ॥ १७८ ॥

इस तरह तीनों वर्णोंका आचार व्यवहार, लक्ष्मीकी प्राप्ति आदिका वर्णन किया। धर्म, अर्थ और काम—इन तीन पुरुषार्थोंके चाहनेवाले जो सज्जन इस त्रैवर्णिक आचरणको करते हैं वे इस जन्ममें उत्तम भोगोंको भोगते हैं और पर जन्ममें भी हमेशा परम सुख पाते हैं। तथा अन्तमें कर्म रूपी वैरियोंको जीतकर वे अक्षय-निर्मल-मोक्षस्थानको जाते हैं ॥ १७८ ॥

त्रिवर्णसल्लक्षणलक्षिताङ्गो । योऽभाणि चातुर्यकलानिवासः ।
व्यापाररूपः स च सप्तमोऽसा-। वध्याय इष्टो मुनिसोमसेनैः॥१७९॥

तीनों वर्णोंके आचार-व्यवहारसे परिपूर्ण, चातुर्य कलाका निवास—ऐसा यह सदाचारात्मक सातवां अध्याय मुझ सोमसेनमुनिने निरूपण किया ॥ १७९ ॥

आठवाँ अध्याय।

मंगलाचरण।

हरिवंशोदयपर्वतसूर्योऽजेयप्रतापपरिभाव्यः।
जयति सदरिष्टनेमिस्त्रिभुवनराजीवकाल्हादी ॥ १ ॥

जो हरिवंशरूपी उदयाचल पर उदय हुए सूर्यके समान हैं, अजेय कान्तिसे युक्त हैं, तीन भुवनके भव्यजनरूपी कमलोंका विकास करनेवाले हैं, ऐसे श्रीअरिष्टनेमि जिनेश्वर जयवन्त रहें ॥ १ ॥

चन्द्रप्रभं जिनं वन्दे चन्द्राभं चन्द्रलाञ्छनम्।
भव्यकुमुदिनीचन्द्रं लोकालोकविकाशकम् ॥ २ ॥

मैं उन चन्द्रप्रभ जिनेश्वरको नमस्कार करता हूँ, जिनके शरीरकी कान्ति चन्द्रमाकी कान्तिके समान पीतवर्ण है, जिनके चन्द्रमाका चिन्ह है, जो भव्यरूपी कमलिनीका विकास करनेको चन्द्रमा सदृश हैं, और जो लोक और अलोकका प्रकाशन करनेवाले हैं ॥ २ ॥

कथन-प्रतिज्ञा।

गर्भाधानादयो भव्यास्त्रित्रिंशत्सुक्रिया मताः।
वक्ष्येऽधुना पुराणे तु याः प्रोक्ता गणिभिः पुरा ॥ ३ ॥

गर्भाधान आदि जिन उत्तम तैंतीस सुक्रियाओंका प्राचीन महर्षियोंने शास्त्रोंमें कथन किया है उसको अब मैं यहांपर कहता हूँ ॥ ३ ॥

तैंतीस क्रिया।

आधानं प्रीतिः सुप्रीतिर्धृतिर्मोदः प्रियोद्भवः।
नामकर्म बहिर्यानं निषद्या प्राशनं तथा ॥ ४ ॥
व्युष्टिश्च केशवापश्च लिपिसंस्थानसंग्रहः।
उपनीतिर्व्रतचर्या व्रतावतरणं तथा ॥ ५ ॥
विवाहो वर्णलाभश्च कुलचर्या गृहीशिता।
प्रशान्तिश्च गृहत्यागो दीक्षाद्यं जिनरूपता ॥ ६ ॥
मृतकस्य च संस्कारो निर्वाणं पिण्डदानकम्।
श्राद्धं च सूतकद्वैतं प्रायश्चित्तं तथैव च ॥ ७ ॥
तीर्थयात्रेति कथिता द्वात्रिंशत्संख्यया क्रियाः।
त्रयस्त्रिंशच्च धर्मस्य देशनाख्या विशेषतः ॥ ८ ॥

१ गर्भाधान, २ प्रीति, ३ सुप्रीति, ४ धृति, ५ मोद, ६ प्रियोद्भव, ७ नामकर्म, ८ बहिर्यान, ९ निषद्या, १० अन्नप्राशन, ११ व्युष्टि, १२ केशवाप, १३ लिपि-संग्रह, १४ उपनयन, १५ व्रत-चर्या, १६ व्रतावतरण, १७ विवाह, १८ वर्णलाभ, १९ कुलचर्या, २० गृहीशिता, २१ प्रशान्ति,

२२ गृहत्याग, २३ दीक्षा, २४ जिनरूपता, २५ मृतकसंस्कार, २६ निर्वाण, २७ पिण्डदान, २८ श्राद्ध, २९ जननाशौच, ३० मृतकाशौच, ३१ प्रायश्चित्त, ३२ तीर्थयात्रा और ३३ धर्मोपदेश—ये तैंतीस क्रियाएं हैं ॥ ४–८ ॥

गर्भाधान क्रिया।

ऋतुमती स्वहस्ते तु यावद्दिनचतुष्टयम् ।
मल्लिकादिलतां धृत्वा तिष्ठेदेकान्तसद्मनि ॥ ९ ॥
चतुर्थे वासरे पञ्चगव्यैः संस्नापयेच्च ताम् ।
हरिद्रादिकसद्वस्तुसुगन्धैरनुचर्चयेत् ॥ १० ॥

रजस्वला स्त्री, चार दिन तक अपने हाथमें मल्लिका (मोगरा-वेला) आदिकी वेल लिये हुए एकान्त स्थानमें बैठी रहे, चौथे दिन पंचगव्यसे स्नान कर हल्दी आदि मंगल द्रव्य तथा सुगन्धित पदार्थोंका शरीरपर लेप करे ॥ ९–१० ॥

प्रथमर्तुमती नारी भवत्यत्र गृहाङ्गणे ।
ब्रह्मस्थानात्पृथग्भागे कुण्डत्रयं प्रकल्पयत् ॥ ११ ॥
पूर्ववत्पूजयेत्सूरिः प्रतिमां वेदिकास्थिताम् ।
चक्रच्छत्रत्रयोपेतां यक्षयक्षीसमन्विताम् ॥ १२ ॥

जब स्त्री पहले-ही पहले रजस्वला हो तब अपने घरके आँगनमें ब्रह्म–स्थानको छोड़कर किसी दूसरे स्थानमें पहलेकी तरह तीन कुंड बनावे और वहां वेदीके ऊपर तीन चक्र, तीन छत्र और यक्षयक्षीसे युक्त जिनप्रतिमा विराजमान कर गृहस्थाचार्य पूजा करे ॥ ११–१२ ॥

ततः कुण्डस्य प्राग्भागे हस्तमात्रं सुविस्तरम् ।
चतुरस्रं परं रम्यं सँस्कुर्याद्वेदिकाद्वयम् ॥ १३ ॥
पञ्चवर्णैस्ततस्तत्र संलिखेदग्निमण्डलम् ।
अष्टदिशासु पद्माष्टं मध्ये कर्णिकया युतम् ॥ १४ ॥

इसके बाद कुंडसे पूर्व दिशाकी ओर एक हाथ लम्बी चौड़ी चौकोन दो वेदिकाएँ बनावे। पश्चात् उनके ऊपर पांच रंगके चूर्णसे अग्निमंडल लिखे। उस अग्निमंडलकी आठों दिशाओंमें बीचमें कर्णिका-युक्त आठ पाँखुरीवाले आठ कमल बनावे। ॥ १३–१४ ॥

चतुर्थ वाऽह्नि सुस्नातौ जायापती निवेश्य च ।
तत्र चालङ्कृतौ वृद्धस्त्रीभिश्च क्रियते क्रिया ॥ १५ ॥
मृदा संलिप्य सद्भूमिं निशाचूर्णैश्च तण्डुलैः ।
तयोरग्रे लिखेद्यन्त्रं स्वस्तिकाकारमुत्तमम् ॥ १६ ॥
तत्र सपल्लवं कुम्भं मालावस्त्रसुसूत्रितम् ।
स्थापयेन्मङ्गलार्थं तु सस्त्रं विधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

चौथे दिन वृद्ध सुवासिनी स्त्रियां उन पति-पत्नीको स्नान करावें। फिर वे उन्हें गहनों-कपड़ोंसे अच्छी तरह सजा कर अग्निमंडलोंपर बैठावें और सब क्रियाएँ करें। उनके आगेकी जमीन मिट्टीसे लीपकर हल्दी और चांवलोंसे स्वस्तिकके आकारवाला एक उत्तम यंत्र लिखें। उसपर मंगलके लिए विधिपूर्वक एक कलश स्थापन करें। उस कलशके मुखको पाँच पत्ते, माला, वस्त्र और सूतके धागेसे सुशोभित करें॥ १५-१७॥

आचार्यस्तं करे धृत्वा पुण्याहवचनैर्वरैः।
सिञ्चयेद्दम्पती तौ च पुण्यक्षेमार्थचिन्तकः॥ १८॥

इसके बाद गृहस्थाचार्य कलशको हाथमें लेकर, इनका कल्याण हो, पुण्य बढ़े और इन्हें सम्पत्ति प्राप्त होवे—ऐसा मनमें चिन्तवन करता हुआ पुण्याहवचनों द्वारा उस कलशके जलसे उन दोनों पति-पत्नीका अभिषेक करे॥ १८॥

त्रिःपरीत्य ततो वह्निं तत्र चोपाविशेत्पुनः।
सौभाग्यवनिताभिश्च कुङ्कुमैः परिचर्चयेत्॥ १९॥
नीराजनां ततः कृत्वा वर्धयेच्च जलाक्षतैः।
वस्त्रताम्बूलभूषाभिः पूज्यौ तौ ताभिरादरात्॥ २०॥

इसके बाद उनसे अग्निकी तीन प्रदक्षिणा दिलाकर वहीं पर बैठा दे। पश्चात् सौभाग्यवती स्त्रियाँ उनके कुंकुमका तिलक करें, आरती उतारें और जल-अक्षत उनके सिरपर डालकर, तुम वृद्धिको प्राप्त होओ—फलो फूलो, ऐसा कहें। इस अवसरपर वे स्त्रियाँ वस्त्र, ताम्बूल, आभूषण आदिसे उनका सत्कार करें—कोई वस्त्र, कोई तांबूल, कोई आभूषण आदि अपनी २ शक्तिके अनुसार उन पति-पत्नीको देकर खुश करें॥ १९-२०॥

वरवध्वौ युवाभ्यां भो अस्मद्वंशोऽस्तु वृद्धिमान्।
इत्याशीर्वचनैस्तौ च संन्तोषाद्वा विसर्जयेत्॥ २१॥

और हे वधू-वरो! तुम्हारे द्वारा यह हमारा वंश वृद्धिको प्राप्त होवे, इत्यादि आशीर्वाद देकर उन्हें सन्तोषपूर्वक वहाँसे घर भेजें॥ २१॥

स्वजातीयांस्ततः सर्वानन्नदानैश्च तर्पयेत्।
सद्गन्धैः पूजयेत्प्रीत्या ताम्बूलाम्बरभूषणैः॥ २२॥

इसके बाद अपने सब जातीय लोगोंको भोजन करावे और तिलक लगाकर तांबूल, कपडे और आभूषणोंसे बड़े प्रेमके साथ उनका सत्कार करे॥ २२॥

इत्यादिकविधिः कार्यः प्रथमर्तौ स्त्रियो गृहे।
ततः सन्तानवृद्धिः स्यात्केवलं धर्महेतुका॥ २३॥

स्त्रियां जब पहले पहल रजस्वला होवें तब उपर कहे अनुसार सम्पूर्ण विधि करें। इससे केवल धार्मिक सन्तानकी वृद्धि होती है॥ २३॥

स्वगृहे प्राक् शिरः कुर्याच्छ्वाशुरे दक्षिणामुखः।
प्रत्यङ्मुखः प्रवासे च न कदाचिदुदङ्मुखः॥ २४॥

सोते समय अपने घरमें पूर्व दिशाकी तरफ, ससुरालमें दक्षिणकी तरफ और प्रवासमें पश्चिमकी तरफ सिर करके सोवे। उत्तर दिशाकी तरफ कभी भी सिर न करे ॥ २४ ॥

तृणे देवालये चैव पाषाणे चैव पल्लवे।
अङ्गणे द्वारदेशे तु मध्यभागे गृहस्य च ॥ २५ ॥
रिक्तभूमौ तथा लोष्टे पार्श्वे चोच्छिष्टसन्निधौ।
शून्यालये स्मशाने च वृक्षमूले चतुष्पथे ॥ २६ ॥
भूतस्थानेऽहिगेहे वा परस्त्रीचोरसन्निधौ।
कुलाचाररतो नित्यं न स्वपेच्छ्रावकः क्वचित् ॥ २७ ॥

तृणोंपर, मंदिरमें, पत्थरोंपर, पत्तोंपर, आँगनमें, दरवाजेके बीच, घरके बीचमें, खाली जमीनमें, मिट्टीके ढेलोंपर, उच्छिष्ट (झूठन) के समीप, शून्यस्थानमें, स्मशानमें, वृक्षकी जड़ोंमें, चौराहेमें, भूतके स्थानोंमें, सर्पोंके बिलोंपर, पराई स्त्रीके पास और चोरोंके पास अपने कुलपरंपरागत आचरणमें तत्पर श्रावक कभी न सोवे। भावार्थ—इन स्थानोंमें कभी नहीं सोना चाहिए ॥२५-२७॥

ऋतुमत्यां तु भार्यायां तत्र सङ्गादिकं चरेत्।
अनृतुमत्यां भार्यायां न सङ्गमिति केचन ॥ २८ ॥

स्त्रीके ऋतुमती होनेपर संभोग आदि क्रिया करे। और उसके ऋतुमती न होने तक संभोग न करे, ऐसा किन्हीं किन्हींका कहना है। भावार्थ—जब तक स्त्री रजस्वला न हो तब तक उससे समागम न करना चाहिए। जब वह रजस्वला हो तभी उसके साथ समागम करना चाहिए, ऐसा किसी किसी शास्त्रकारका मत है ॥ २८ ॥

गर्भाधानाङ्गभूतं यत्कर्म कुर्याद्दिवैव हि।
रात्रौ कुर्याद्विधानेन गर्भबीजस्य रोपणम् ॥ २९ ॥

गर्भाधान सम्बन्धी जो होमादि क्रियाएं करना हों वे सब दिनमें ही कर लें। रात्रिमें विधिपूर्वक गर्भबीजका रोपण करे ॥ २९ ॥

मूत्रादिकं ततः कृत्वा क्षालयेत्त्रिफलाजलैः।
योनिं रात्रौ गते यामे सङ्गच्छेद्रतिमन्दिरम् ॥ ३० ॥

एक पहर रात्रि बीत चुकने पर, स्त्रियाँ पेशाब आदि करके हरड़ा, बहेड़ा और आँवला—इस त्रिफलाके जलसे योनि—जननेंद्रियको धो लें। पश्चात् वे शयनागारमें जावें ॥ ३० ॥

पादौ प्रक्षालयेत्पूर्वं पश्चाच्छय्यां समाचरेत्।
मृदुशय्यां स्थितः शेते रिक्तशय्यां परित्यजेत् ॥ ३१ ॥

शयनागारमें जाकर प्रथम अपने पैरोंको जलसे धोवें। पश्चात् शय्यापर पैर रक्खें। कोमल शय्यापर सोवें। जो शय्या कोमल न हो—कड़ी हो—कठोर हो, उसपर न सोवें ॥ ३१ ॥

उपानहौ वेणुदण्डमम्बुपात्रं तथैव च।
ताम्बूलादिसमस्तानि समीपे स्थापयेद्गृही ॥ ३२ ॥

वहां शयनागारमें गृहस्थ अपने जूते, वांसकी लकड़ी, पानीका लोटा और ताँबूल आदि उपयोगी सामान अपने पासमें एक ओर रख ले ॥ ३२ ॥

कुङ्कुमं चाञ्जनं चैव तथा हारीतसुंदरम् ।
धौतवस्त्रं च ताम्बूलं संयोगे च शुभावहम् ॥ ३३ ॥

केशर, काजल, हरा रंगा हुआ कपड़ा, और पानकी सामग्री ये चीजें स्त्री-समागमके समय मंगल-कारक होती हैं ॥ ३३ ॥

भर्तुः पादौ नमस्कृत्य पश्चाच्छय्यां समाविशेत् ।
सा नारी सुखमाप्नोति न भवेद्दुःखभाजनम् ॥ ३४ ॥

जो स्त्री पतिके दोनों चरणोंको नमस्कार करके शय्यापर बैठती है वह सुखको प्राप्त होती है। वह कभी दुःखका भाजन नहीं बनती ॥ ३४ ॥

स्वपेत् स्त्री प्राक् शिरः कृत्वा प्रत्यक्पादौ प्रसारयेत् ।
ताम्बूलचर्वणं कृत्वा सकामो भार्यया सह ॥ ३५ ॥
चन्दनं चानुलिप्यांगे धृत्वा पुष्पाणि दम्पती ।
परस्परं समालिंग्य प्रदीपे मैथुनं चरेत् ॥ ३६ ॥
दीपे नष्टे तु यः सङ्गं करोति मनुजो यदि ।
यावज्जन्म दरिद्रत्वं लभते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥
पादलग्नं तनुश्चैव ह्युच्छिष्टं ताडनं तथा ।
कोपो रोपश्च निर्भर्त्सः संयोगे न च दोषभाक् ॥ ३८ ॥

पति-पत्नी दोनों पान खाकर पूर्व दिशाकी ओर सिर और पश्चिमकी ओर पैर करके सोवें। दोनों अपने शरीरमें चन्दनका लेप करें और गलेमें पुष्पमाला पहनें। दोनों परस्पर आलिंगन कर मैथुन करें। मैथुनके समय दिया न बुझावें। जो पुरुष दिया बुझा कर संभोग करता है वह अपने जीवनकालतक दरिद्री रहता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। संभोगके समय परस्पर एक दूसरेके पैरोंका लग जाना, परस्परमें उच्छिष्ट-झूठनका सम्बन्ध हो जाना, ताड़न करना, कोप करना, रोष करना, तिरस्कार करना दोष नहीं हैं। दूसरे समयमें इनका होना सदोष है ॥ ३५-३८ ॥

ताम्बूलेन मुखं पूर्णं कुंकुमादिसमन्वितम् ।
प्रीतमाल्हादसंयुक्तं कृत्वा योगं समाचरेत् ॥ ३९ ॥
विना ताम्बूलवदनां नग्नामाक्रान्तरोदनाम् ।
दुर्मुखां च क्षुधायुक्तां संयोगे च परित्यजेत् ॥ ४० ॥
भुक्तवानुपविष्टस्तु शय्यायामभिसम्मुखः ।
संस्मृत्य परमात्मानं पत्न्या जंघे प्रसारयेत् ॥ ४१ ॥

अलोमशां च सद्वृत्तामनार्द्रां सुमनोहराम् ।
योनिं स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं पवित्रं पुत्रदायकम् ॥ ४२ ॥

स्त्रियां मुखमें पान खा कर, ललाट (कपाल) पर केशर आदिका तिलक लगा कर और अपने पतिको आनन्दित कर संभोग करे। जिस स्त्रीने पान न खाया हो, जो नग्न हो, मुंहसे बकझक करती हो, रोती हो, दुर्मुखा हो—अप्रिय वचन बोलनेवाली हो और भूखी हो, ऐसी स्त्रीके साथ पुरुष संयोग न करे। स्त्रीसंभोगकी इच्छा करनेवाला पुरुष भी भूखा न हो। वह भी भोजन करके शय्यापर आरूढ़ होवे। बाद परमात्माका स्मरण कर ब्यालीसवें श्लोकमें लिखी हुई क्रियाओंको करता हुआ नीचे लिखा हुआ पुत्रदायक मंत्रका जाप करे ॥ ३९-४२ ॥

मंत्र—ॐ ह्रीँ क्लीँ ब्लूँ योनिस्थदेवते मम सत्पुत्रं जनयस्व अ सि आ उ सा स्वाहा ।

इति मंत्रेण गोमयगोमूत्रक्षीरदधिसर्पिःकुशोदकैर्योनिं सम्प्रक्षाल्य श्रीगन्धकुंकुमकस्तूरिकाद्यनुलेपनं कुर्यात् ।

अर्थात्—यह मंत्र पढ़कर गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घी, डाभ, और जलसे जननेंद्रियका प्रक्षालन कर उसपर गंध, केशर, कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्योंका लेप करे।

योनिं पश्यन् जपेन्मन्त्रानर्हदादिसमुद्भवान् ।
मादृशस्तु भवेत्पुत्र इति मत्वा स्मरेज्जिनम् ॥ ४३ ॥

मेरे सरीखा हो मेरे यहां पुत्र होवे ऐसा मानकर फिर नीचे लिखे अर्हदादि मंत्रोंको पढ़े ॥ ४३ ॥

मंत्र—ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो नमः। ॐ ह्रीँ सिद्धेभ्यो नमः। ॐ ह्रूँ सूरिभ्यो नमः। ॐ ह्रौँ पाठकेभ्यो नमः। ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः ॥

फिर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर स्त्रीका आलिंगन करे ॥

मंत्र—ॐ ह्रीँ श्रीजिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा ।

ओष्ठावाकर्षयेदोष्ठैरन्योन्यमवलोकयेत् ।
स्तनौ धृत्वा तु पाणिभ्यामन्योन्यं चुम्बयेन्मुखम् ॥ ४४ ॥
बलं देहीति मन्त्रेण योन्यां शिश्नं प्रवेशयेत् ।
योनेस्तु किंचिदधिकं भवेल्लिङ्गं बलान्वितम् ॥ ४५ ॥

इन दोनों श्लोकोंमें बतलाई गई सामान्य विधिके अनुसार स्त्रीमें कामकी इच्छा उत्पन्न करे।

मंत्र—ॐ ह्रीँ शरीरस्थायिनो देवता मां बलं ददतु स्वाहा ।

इस मंत्रको पढ़कर संभोग करना चाहिए।

नोट—१. अश्लीलता और अशिष्टाचारका दोष आनेके सबब ४२ वें श्लोकमें कही गई क्रियाओंका भाषानुवाद नहीं किया गया है। इसी प्रकार ४४ वें और ४५ वें श्लोकका अर्थ भी नहीं लिखा गया है। प्रकाशक।

मंत्रका भाव यह है कि मेरे शरीरका अधिष्ठाता देव मुझे बल प्रदान करे। इससे मालूम पड़ता है कि स्त्री-पुरुषोंके शरीर व सम्पूर्ण अंग उपांगोंके अधिष्ठाता देव होते हैं। स्त्री-समागमके समय पढ़ने योग्य मंत्रोंसे भी यही मालूम पड़ता है। ये मंत्र ग्रंथकर्त्ताके जन्मसे पहलेके लिखे हुए अन्य ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं। ऋषिप्रणीत आगमसे भी निश्चित है कि हरएक स्त्री पुरुषके शरीर आदि अंगके अधिष्ठाता देव हुआ करते हैं। ये देव प्रायः व्यन्तर जातिके हैं। इनका हर तरहका स्वभाव होता है। अपने २ कर्मोदयसे ये भिन्न २ स्वभाव वाले होते हैं। कितने ही लोग ऐसी बातोंके सम्बन्धमें एक भारी तमूल उत्पन्न कर देते हैं। कई स्थानोंमें बतलाया गया है कि अच्छेसे अच्छे और बुरेसे बुरे स्थानोंमें रहनेका उनका स्वभाव है। अच्छीसे अच्छी और बुरीसे बुरी चीजोंसे प्रेम करना भी उनके लिये स्वभाविक है। लेकिन सबका एकसा स्वभाव नहीं होता है। किसीका कैसा ही है तो किसीका कैसा ही। जैसे किन्हीं देवोंका नियोग है कि वे सूर्य-चंद्रमाके विमानोंके वाहन बन कर उनको खींचते हैं। उन देवोंको उनके कर्मोंका फल उसी प्रकारसे प्राप्त होता है। इसी प्रकार व्यन्तर आदि देवोंका नियोग है कि कोई स्त्री पुरुषोंके शरी आदि अंगोंमें निवास करते हैं; और कोई कहीं अन्यत्र निवास करते हैं। सारे मध्यलोकमें सब जगह उनका निवास है। उनके अनेक प्रकारके नियोग हैं। ये मनुष्योंके कर्मोदयके अनुसार उनके सहायक भी होते हैं। यदि कोई यह शंका उठावे कि जब ये मनुष्योंके सहायक हैं तो हर समय उनकी सहायतामें उन्हें तत्पर रहना चाहिए और कभी किसीका अनिष्ट नहीं होना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि इष्ट अनिष्ट-की प्राप्ति अपने अपने पहले किये हुए कर्मोंके अनुसार होती है। उसमें अनेक बाह्य कारण भी अवलंबन होते हैं। उनकी कोई गिनती नहीं है। अतः संभव है कि वे मनुष्योंके खास खास कार्योंमें सहायक होते हों॥ ४४-४५॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ ४६॥
इच्छापूर्वं भवेद्यावदुभयोः कामयुक्तयोः।
रेतः सिञ्चेत्ततो योन्यां तस्माद्गर्भं बिभर्ति सा॥ ४७॥

जिस स्त्रीसे पुरुष और जिस पुरुषसे स्त्री सन्तुष्ट होती है उसके कुलमें निरन्तर कल्याण की वृद्धि होती रहती है। कामयुक्त स्त्री और पुरुष दोनोंके वीर्यका जब एक साथ क्षरण होता है तब उससे वह स्त्री गर्भ धारण करती है॥ ४६-४७॥

ऋतुकालोपगामी तु प्राप्नोति परमां गतिम्।
सत्कुलः प्रभवेत्पुत्रः पितॄणां स्वर्गदो मतः॥ ४८॥

इस तरह जो पुरुष ऋतु-समयमें स्त्रीसंगम करता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है; और उसके उत्तम कुलीन तथा अपने मातापिताओंको स्वर्ग प्राप्त करा देनेवाला पुत्र होता है॥ ४८॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पितृभिः सह मज्जति॥ ४९॥

स्त्रीके ऋतुस्नान होनेपर जो पुरुष उस स्त्रीके पास नहीं जाता है वह अपने माता पिताके साथ साथ भ्रूणहत्याके घोर पापमें डूबता है । भावार्थ–कितने ही लोग ऐसी बातोंमें आपत्ति करते हैं । इसका कारण यही है कि वे आजकल स्वराज्यके नसेमें चूर हो रहे हैं । अतः हरएकको समानता देनेके आवेशमें आकर उस क्रियाके चाहनेवाले लोगोंको भड़काकर अपनी ख्याति–पूजा आदि चाहते हैं । उन्होंने धार्मिक विषयोंपर आघात करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझ लिया है ॥ ४९ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी पतिं नैवोपविन्दति ।
शुनी वृकी शृगाली स्याच्छूकरी गर्दभी च सा ॥ ५० ॥

जो स्त्री ऋतुस्नान कर पतिके पास नहीं जाती है वह मरकर कुत्ती, भेड़ या हिरनी, शृगालिनी (सियारनी), शूकरी और गदही होती है ॥ ५० ॥

कामयज्ञमिति प्राहुर्गृहिणां सर्वदैव च ।
अनेन लभते पुत्रं संसारार्णवतारकम् ॥ ५१ ॥

ऊपर यह जो गर्भाधानकी विधि बताई गई है उसे गृहस्थोंका कामयज्ञ कहते हैं । इस विधिसे पिता संसार–समुद्रसे तारनेवाला पुत्र प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥

मोद क्रिया ।

गर्भे स्थिरेऽथ सञ्जाते मासे तृतीयके ध्रुवम् ।
प्रमोदेनैव संस्कार्यः क्रियामुख्यः प्रमोदकः ॥ ५२ ॥

इस तरह गर्भ रह जानेपर तीसरे महीने बड़े हर्षके साथ मोदनामकी दूसरी क्रिया करे ॥ ५२ ॥

तृतीये गर्भसंस्कारो मासे पुंसवनं च सः ।
आद्यगर्भो न विज्ञातः प्रथमे मासि वै यदि ॥ ५३ ॥

यदि पहले महीनेमें गर्भवतीका पहला गर्भ न जाना जाय तो तीसरे महीनेमें गर्भसंस्कार करे । वही संस्कार पुरुषचिन्हसे युक्त होता है ॥ ५३ ॥

तैलाभ्यङ्गं जलैरादौ गर्भिणीं स्नापयेच्च ताम् ।
अलङ्कृत्य च सद्वस्त्रैः करे फलं समर्पयेत् ॥ ५४ ॥
उपलेपं शरीरे तु संस्कुर्याच्चन्दनादिना ।
पूर्ववद्धोमसत्कार्यं जिनपूजापुरःसरम् ॥ ५५ ॥

प्रथम उस गर्भवती स्त्रीके तेलकी मालिश कर जलसे स्नान करावे । उसे अच्छे अच्छे कपड़ोंसे अलंकृत करे । उसके हाथमें एक फल दे । उसके शरीरमें चन्दन, केशर आदिका उपलेप–चर्चन करे । फिर पहलेकी तरह जिनपूजा, होमादि सम्पूर्ण कार्य करे ॥ ५४–५५ ॥

वेदिकाग्रे जिनागारे काष्ठनिर्मितपीठयोः ।
दम्पती तौ च संस्कृत्य भूषणैरुपवेशयेत् ॥ ५६ ॥
अग्रे स्वस्तिकमालेख्यं चन्दनैस्तण्डुलैः पुरः ।
पूर्ववत्कलशं रम्यं स्थापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ ५७ ॥
जिनेन्द्रसिद्धसूरींश्च पूजयेद्भक्तितः परान् ।
वहुधा धूपदीपैश्च पक्वान्नैः सत्फलैरपि ॥ ५८ ॥
यक्षीयक्षादिदेवानां पूर्णाहुतिमतः परम् ।
आचार्यः स्वकरे धृत्वा कल्याणकलशं वरम् ॥ ५९ ॥
पुण्याहवाचनैरम्यैर्गर्भिणीं तां प्रसिञ्चयेत् ।
शान्तिभक्तिं ततश्चोक्त्वा देवान् सर्वान् विसर्जयेत् ॥ ६० ॥

पहिले उन दोनों पति-पत्नियोंको जेवर आदिसे भूषित कर जिन मन्दिरमें वेदीके सामने लकड़ीके पाटोंपर बैठावे। उनके सामने गन्ध और चाँवलोंका सांथिया बनावे। उसके ऊपर मंत्रका उच्चारण कर पहलेकी तरह एक सुन्दर कलश धरे। फिर अर्हन्त, सिद्ध, आचार्योंकी बड़ी भक्ति-भावसे नाना प्रकारके दीप, धूप, नैवेद्य, फल आदि अष्टद्रव्योंसे पूजा करे। बाद यक्षी यक्ष आदि देवतोंको पूर्णाहुति देवे। पश्चात् गृहस्थाचार्य उस कल्याणकारी कलशको हाथमें लेकर पुण्याहवचनों द्वारा उस गर्भिणीका अभिषेक करे-उसपर जलधारा छोड़े। तदनन्तर शान्तिपाठ पढ़कर सब देवोंका विसर्जन करे ॥५६-६०॥

ततो गन्धोदकै रम्यैर्गर्भिणी स्वोदरं स्पृशेत् ।
कलिकुण्डादि सद्यन्त्रं रक्षार्थं बन्धयेद्गले ॥ ६१ ॥
सौभाग्यवत्यः सन्नार्यश्चानादिना प्रतोषयेत् ।
सुप्रमोदश्च सर्वेषां जातीनां समुत्पादयेत् ॥ ६२ ॥

पश्चात् वह गर्भिणी स्त्री गन्धोदक लेकर अपने उदरपर लगावे और अपने गलेमें गर्भ-रक्षाके अर्थ कलिकुंड आदि यंत्र बांधे। फिर घरका मालिक सौभाग्यवती उत्तम स्त्रियोंको भोजन, कपड़े आदिसे सन्तुष्ट करे और अपने सम्पूर्ण जातिके लोगोंमें हर्ष उत्पन्न करे ॥ ६१-६२ ॥

मंत्र—ॐ कं ठं व्हः पः अ सि आ उ सा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा ।

इति होमान्ते गन्धोदकेन प्रसिञ्च्य स्वपत्न्युदरं स्वयं स्पृशेद्भर्ता ।

अर्थात्—होम हो चुकनेके बाद यह मंत्र पढ़कर गन्धोदक सिंचन कर पति अपनी उस गर्भिणी स्त्रीके उदरका स्पर्शन करे।

पुंसवन क्रिया।

सद्गर्भस्याथ पुष्टयर्थं क्रियां पुंसवनाभिधाम् ।
कुर्वन्तु पञ्चमे मासि पुमांसः क्षेममिच्छवः ॥ ६३ ॥

शुचिभिः सलिलैः स्नातो धौतवस्त्रसमन्वितः ।
स्वभार्यायां क्रियाः कुर्यादाचार्योक्तित आदरात ॥ ६४ ॥
जिनपूजां च होमं च गृहे कुर्यात्स पूर्ववत् ।
आचार्यः कुलवृद्धाभिः स्त्रीभिः सह सुमार्गगः ॥ ६५ ॥
संस्नाप्य गर्भिणीं तां तु भूपयेद्वस्त्रभूपणैः ।
उपलेपादिकं कुर्याच्चन्दनादिसुवस्तुभिः ॥ ६६ ॥
काष्ठपीठे जिनाग्रे तु रक्तवस्त्रप्रच्छादिते ।
सिन्दूराञ्जनसंयुक्तां गर्भिणीं तां निवेशयेत् ॥ ६७ ॥
पुण्याहवाचनैः सूरिः सन्मन्त्रैस्तां प्रसिञ्चयेत् ।
पुरुषेण करे तस्याः पूगीपत्राणि दीयन्ते ॥ ६८ ॥
यवाङ्कुरैस्तथा पुष्पैः पल्लवैर्दर्भसंयुतैः ।
मालां कृत्वा तु कण्ठेऽस्या अर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ६९ ॥
यक्षादीनां तु पूर्णार्घं दत्वा शान्तिं पठेद्बुधः ।
ताम्बूलादिफलैर्वस्त्रैर्विप्रादींस्तोपयेद्गुरुः ॥ ७० ॥

अपना भला चाहनेवाला पुरुष पांचवें महीनेमें गर्भकी पुष्टिके लिए पुंसवन नामकी क्रिया करे। पवित्र प्रासुक जलसे स्नान कर धुले हुए साफ-सुथरे कपड़े पहनकर गृहस्थाचार्यके कहे अनुसार पति स्वयं अपनी भार्यामें सादर पुंसवन क्रिया करे। पहलेकी तरह अपने घरपर जिनपूजा होम आदि करे। सुमार्गगामी गृहस्थाचार्य कुलकी स्त्रियों द्वारा उस गर्भिणीको स्नान कराकर वस्त्र-आभूषणोंसे सुसज्जित करे। उसके चन्दन केशर आदिका लेप करे। ललाटमें तिलक लगाये हुई, आंखोंमें काजल आंजे हुई उस गर्भिणीको जिन भगवानके सामने लाल कपड़ेसे ढके हुए लकड़ीके पटा पर बैठावे। गृहस्थाचार्य पुण्याहवचनों द्वारा मंत्रोच्चारण पूर्वक उसका अभिषेक करे, और उसके पति द्वारा उसके हाथोंमें तिल और पान दिलावे। जवके अंकुर, पुष्प, कोमल पत्ते और डाभकी माला बनाकर उसके पतिके हाथसे उसके गलेमें विधिपूर्वक पहनवावे। बाद गृहस्थाचार्य यक्ष यक्षी आदिको पूर्णाहुति देकर शान्तिपाठ पढे। घर-मालिक उस समय वहां उपस्थित ब्राह्मणोंको ताम्बूल, फल, वस्त्र आदि देकरके खुश करे ॥ ६३–७० ॥

मंत्र—ॐ झं वं ह्वीं क्ष्वीं हं सः कान्तागले यवमाला क्षिपामि झौं स्वाहा ।

यह मंत्र पढ़कर पति स्त्रीके गलेमें माला डाले।

मंत्र—ॐ झं वं ह्वः पः हः अ सि आ उ सा कान्तापुरतः पायस दध्योदनहरिद्राम्बुकलशान् स्थापयामि स्वाहा ।

अनेन तस्या अग्रे पायसदध्योदनहरिद्राम्बुकलशान स्थाप्य बालिकाकरेण स्पर्शयेत। तत्र पायसस्पर्शे पुत्रलाभः । दध्योदनस्पर्शे पुत्रीलाभः । हरिद्राम्बुकलशस्पर्शे उभयोरलाभः ।

यह मंत्र पढ़कर गर्भिणीके सामने दूध, दही, भात और हल्दीके पानीसे भरे हुए तीन कलश स्थापन कराकर छोटी बालिकाके हाथसे उन कलशोंका स्पर्शन करावे। वह बालिका यदि दूध भरे कलशको हाथ लगावे तो पुत्रोत्पत्ति समझना। यदि वह दही भात भरे कलशको हाथ लगावे तो पुत्री समझना। और यदि हल्दीके जलसे भरे हुए कलशको हाथ लगावे तो दोनोंकी अप्राप्ति समझे अर्थात् या तो नपुंसक हो, या बीचहीमें गर्भ गिर जाय, या होकर मर जाय, इत्यादि समझना।

ततः प्रभृति गेहे स्वे वाद्यघोषं प्रघोपयेत्।
गीतं च नर्तकीनृत्यं दानं कुर्याद्दिनं प्रति ॥ ७१ ॥

उस दिनसे हर रोज अपने घर पर बाजे बजवावे, गीत गवावे, नाचनेवालियोंका नाच करावे और प्रतिदिन दान करता रहे ॥ ७१ ॥

सीमन्त क्रिया।

अथ सप्तमके मासे सीमन्तविधिरुच्यते।
केशमध्ये तु गर्भिण्याः सीमा सीमन्तमुच्यते ॥ ७२ ॥
शुभेऽन्हि शुभनक्षत्रे सुवारे शुभयोगके।
सुलग्ने सुघटिकायां सीमन्तविधिमाचरेत् ॥ ७३ ॥

सातवें महीनेमें सीमंतविधि की जाती है। गर्भिणी स्त्रीके सिरके केशोंके बीचमें मांग पाड़नेको सीमंत कहते हैं। यह विधि शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ वार, शुभ योग, शुभ लग्न और शुभ मुहूर्तमें की जाना चाहिए ॥ ७२–७३ ॥

स्नातां प्रसादितां कान्तमन्तर्वत्नीं च सत्प्रियाम्।
प्रत्यगासनगां कृत्वा होमं प्राग्वत्प्रकल्पयेत् ॥ ७४ ॥
पतिपुत्रवती वृद्धा स्वजातीया कुलोद्भवा।
गर्भिण्याः केशमध्ये तु सीमन्तं त्रिः समुन्नयेत् ॥ ७५ ॥

स्नान कराकर वस्त्र आभूषण आदिसे सुसज्जित कर उस कमनीय सुन्दर गर्भवतीको पति अपने पास अलग आसनपर बैठाकर पहलेकी तरह होमादि कार्य करे। और सधवा पुत्रवती अपनी जातिकी कुलीन वृद्ध स्त्रियाँ उस गर्भवती स्त्रीके सिरमें तीन बार मांग पाड़े ॥ ७४–७५ ॥

साधनं फलवद्गुच्छद्वयदर्भत्रयान्विता।
शलाका खादिराऽऽज्याक्ता सीमन्तोन्नयने भवेत् ॥ ७६ ॥
समिद्वा कुड्मलाभाग्रा शमीवृक्षसमुद्भवा।
त्रिस्थानधवलाकारा शलली वा तथा भवेत् ॥ ७७ ॥
तेन तैलार्द्रसिन्दूरैः सीमन्तं चोन्नयेच्च सा।
धवस्त्वौदुम्बरं चूर्णं क्षिपेत्तन्मूर्ध्नि चोदरे ॥ ७८ ॥
तदुम्बरकृतां मालां सीमन्तिन्या गले गुरुः।
क्षिप्त्वा स्विष्टकृताद्यन्यत्सर्वं प्राग्वत्प्रकल्पयेत् ॥ ७९ ॥

मांग पाड़नेके साधन ये हैं। फलोंवाली छोटी छोटी दो टहनियां (डालियां) और तीन दर्भसे युक्त घृतमें भिजोई हुई खदिरवृक्ष (खैर) की सलाईस मांग पाड़े । अथवा शमीवृक्षकी समिधा (लकड़ी) से मांग पाड़े । उस समिधाका अग्रभाग मुकुलित[1] होना चाहिए, तथा वह सेहीके परोंके समान तीन जगह सफेद होना चाहिए, जिस वस्तुने मांग पाड़े उसके अग्रभागमें तेलसे गीला किया हुआ सिन्दूर लगा ले। इस तरह मांग पाड़ चुकनेके बाद उसका पति उसके पेट और सिरपर उदुंबर (गूलर) का क्षेपण करे। आचार्य उदुंबरके फलोंकी माला बनाकर उस गर्भिणीके गलेमें पहनावे। शिष्टाचार आदि सम्पूर्ण कार्य पहलेकी तरह किये जावें ॥७६-७९॥

पुण्याहवाचनैराचार्यो गर्भिणीं सिञ्चयेत् ।

अर्थात् पुण्याहवाचनके द्वारा आचार्य गर्भिणीका अभिषेक करे।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं अ सि आ उ सा उदुम्बरफलचूर्णं समस्ते जठरे चेयं क्ष्वीं क्ष्वीं स्वाहा ।

अनेनोदरं वा मस्तकं वा उदुम्बरचूर्णेन सेचयेत् ।

अर्थात् इस मंत्रके द्वारा पेटपर अथवा मस्तकपर उदुंबर चूर्णसे अभिषेचन करे।

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते उदुम्बरफलाभरणेन बहुपुत्रा भवितुमर्हा स्वाहा ।

अनेनोदुम्बरफलमालां कण्ठे क्षिपेत् पुरुषः ।

अर्थात् इस मंत्रको पढ़कर उदुंबर फलोंकी माला उसके गलेमें पहनावे।

विशेष।

गर्भाधानं प्रमोदश्च सीमन्तः पुंसवं तथा ।
नवमे मासि चैकत्र कुर्यात्सर्वं तु निर्धनः ॥ ८० ॥
अन्नप्राशनपर्यन्ता गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।
उक्तकाले भवन्त्येता दोषो नाषाढपुष्ययोः ॥ ८१ ॥
मासप्रयुक्तकार्येषु अस्तत्वं गुरुशुक्रयोः ।
न दोषकृत्तदा मासो रक्षको बलवानिति ॥ ८२ ॥
पुंसवने च सीमन्ते चौलोपनयने तथा ।
गर्भाधाने प्रमोदे च नान्दीमङ्गलमाचरेत् ॥ ८३ ॥

जो पुरुष निर्धन है वह नियत समयमें बारबार इन क्रियाओंको न कर सकता हो तो गर्भाधान, प्रमोद, सीमन्त, और पुंसवन–इन सब क्रियाओंको एक साथ नववें महीनेमें करे। गर्भाधानको आदि लेकर अन्नप्राशन पर्यन्तकी कुल क्रियायें अपने अपने नियत समयमें होती हैं। इनके लिये आषाढ़ और पूषका दोष नहीं गिना जाता। जिस समयमें जो क्रिया करनेकी है उस समय, यदि बृहस्पति और शुक्रका अस्त हो तो भी कोई दोष नहीं है। उस वक्त वही महीना बल-

नोट—१ कुछ मुड़ी हुई नोंक, जैसी कि अधफूले फूलकी पांखुरीकी नोंक भीतरको कुछ मुड़ी रहती है। प्र०

वान रक्षक है। पुंसवन, सीमंत, चौल, उपनयन, गर्भाधान और प्रमोद इन क्रियाओंके समय नान्दी मंगल अवश्य करे ॥ ८०–८३ ॥

गर्भिणीके धर्म।

भूम्यां चैवोच्चनीचायां आरोहणविरोहणे ।
नद्युत्तरणं चैव शकटारोहणं तथा ॥ ८४ ॥
उग्रौषधं तथा क्षारं मैथुनं भारवाहनम् ।
कृते पुंसवने चैव गर्भिणी परिवर्जयेत् ॥ ८५ ॥

पांचवें महीनेमें पुंसवन क्रिया हो चुकनेके बाद गर्भवती स्त्री ऊंची नीची जमीनपर न चढ़े-उतरे, बहती हुई नदीको पार न करे, गाड़ीपर न चढ़े, तेज औषधि सेवन न करे, खारे पदार्थ न खावे, मैथुन सेवन न करे, और बोझा न उठावे ॥ ८४–८५ ॥

पतिके धर्म।

पुंसो भार्या गर्भिणी यस्य चासौ। सूनोश्चौलं क्षौरकर्मात्मनश्च ॥
गेहारम्भं स्तम्भसंस्थापनं च। वृद्धिस्थानं दूरयात्रां न कुर्यात् ॥ ८६ ॥

जिस पुरुषकी स्त्री गर्भवती हो वह अपने पुत्रका चौलकर्म न करे, आप स्वयं हजामत न बनवावे, नया घर न बंधवावे, स्तंभ (खंभा) खड़ा न करे और बहुत लंबा सफर न करे ॥ ८६ ॥

शवस्य दाहनं तस्य दहनं सिन्धुदर्शनम् ।
पर्वतारोहणं चैव न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ॥ ८७ ॥
मासात्तु पञ्चमादूर्ध्वं तस्याः सङ्गं विवर्जयेत् ।
ऋतुद्वये व्यतीते तु न कुर्यान्मौञ्जीबन्धनम् ॥ ८८ ॥
गर्भिण्यामपि भार्यायां वीर्यपातं विवर्जयेत् ।
अष्ट मासात्परं चैव न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम् ॥ ८९ ॥
क्षौरं चौलं मौञ्जिबन्धं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ।
भिन्नभार्यासुतस्येह न दोषश्चौलकर्मणि ॥ ९० ॥

गर्भिणी स्त्रीका पति मुर्देको कन्धेपर न ले जाय, उसको अपने हाथसे न जलावे, समुद्र न देखे, पर्वतपर न चढ़े, पांचवें महीनेके बाद गर्भिणी स्त्रीसे समागम न करे, चार महीने हो चुकनेपर अपने पुत्रका उपनयन संस्कार न करे, गर्भवती स्त्रीमें किसी भी तरह वीर्यपात न करे, आठवें महीनेके बाद श्राद्धका भोजन न करे, और क्षौर, चौल और उपनयनकर्म न करे। अपनी दूसरी स्त्रीके पुत्रका चौलकर्म करनेमें दोष नहीं है। सारांश—जिस स्त्रीके पहलेका लड़का हो और वह गर्भवती हो तो उसका पति उस पहले लड़केका चौलसंस्कार आदि न करे। यदि उसके दूसरी स्त्री हो, जिसके कि गर्भ न हो, उसके पुत्रका वह चौलकर्म करे तो कोई दोष नहीं है ॥ ८७–९० ॥

प्रीति, सुप्रीति और प्रियोद्भव क्रियाएं।

पुत्रजन्मनि सञ्जाते प्रीतिसुप्रीतिके क्रिये ।
प्रियोद्भवश्च सोत्साहः कर्तव्यो जातकर्मणि ॥ ९१ ॥

सज्जनेषु परा प्रीतिः पुत्रे सुप्रीतिरुच्यते ।
प्रियोद्भवश्च देवेषूत्साहस्तु क्रियते महान् ॥ ९२ ॥

पुत्र पैदा होनेके बाद, प्रीति, सुप्रीति और प्रियोद्भव क्रियाएं बड़े उत्साहके साथ करे। सज्जनोंमें प्रीति करना प्रीतिक्रिया है। पुत्रमें प्रीति करनेको सुप्रीतिक्रिया कहते हैं। और देवोंमें उत्साह फैलाना प्रियोद्भव-क्रिया है ॥ ९१-९२ ॥

पुत्रे जाते पिता तस्य कुर्यादाचमनं मुदा ।
प्राणायामं विधायोच्चैराचमं पुनराचरेत् ॥ ९३ ॥
पूजावस्तूनि चादाय मङ्गलं कलशं तथा ।
महावाद्यस्य निर्घोषं व्रजेद्धर्मजिनालये ॥ ९४ ॥
ततः प्रारभ्य सद्विप्रान् जिनालये नियोजयेत् ।
प्रतिदिनं स पूजार्थं यावन्नालं प्रच्छेदयेत् ॥ ९५ ॥
दानेन तर्पयेत्सर्वान् भट्टान् भिक्षुजनान् पिता ।
वस्त्रभूषणताम्बूलैः स्वजनात् सकलानपि ॥ ९६ ॥
मुखमालोक्य पुत्रस्य पात्रे क्षीराज्यशर्कराः ।
संमिश्र्य पञ्चकृत्वस्तं प्राशयेत्काञ्चनेन सः ॥ ९७ ॥
स्त्रीपुत्रयोश्च कर्मैवं कर्तव्यं द्रव्यमात्रकम् ।
ब्रह्मसूत्रे धृतं नालं तेनावेष्ट्य निकृन्तयेत् ॥ ९८ ॥

पुत्रका जन्म होनेपर उसका पिता बड़े हर्षसे प्रथम आचमन करे। बाद प्राणायाम करके फिर आचमन करे। फिर पूजा-सामग्री और मंगल-कलश लेकर गाजेबाजेके साथ जिन-मंदिर जावे। उस दिनसे जबतक नालछेद क्रिया न हो तबतक प्रतिदिन पूजा करनेके लिए सदाचारी ब्राह्मणोंकी नियोजना करे, भाटों भिक्षुकों आदिको दान देकर सन्तुष्ट करे, और अपने सारे कुटुंबी जनोंको वस्त्र आभूषण और तांबूलसे संतुष्ट करे। पुत्रका मुख देखकर एक पात्रमें दूध घी और शक्कर मिलाकर सोनेकी चिमची अथवा दूसरे किसी सोनेके पात्रसे पांच दफे उस बच्चेके मुंहमें डाले। यह विधि पुत्रीके लिए भी मंत्र आदिका उच्चारण न कर सिर्फ क्रियामात्ररूप की जाय। इसके बाद नालको ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) में लपेटकर नालच्छेद करे ॥ ९३-९८ ॥

ततस्तन्नाभिनालं तु शुचिस्थाने निवेशयेत् ।
रत्नमुक्ताफलद्रव्यैर्युक्तं भूमौ मुदा पिता ॥ ९९ ॥

पश्चात् पिता हर्षयुक्त होकर उस नालको रत्न और मोतीके साथ पवित्र भूमिमें गाड़े ॥ ९९ ॥

प्रसूतौ वनिताऽगारे चतुरङ्गुलमात्रकम् ।
त्यक्त्वा मृदं मृदा शुच्या गोमयेन तु लेपयेत् ॥ १०० ॥
पञ्चकल्कजलैरुष्णैः सा संस्नायात्सुतान्विता ।
तौ तृतीये तृतीयेऽन्हि शुचित्वमेवमाचरेताम् ॥ १०१ ॥

वस्त्रभूषणशय्याश्च भोग्यभोजनपात्रकम् ।
क्षालयेच्छुचिभिस्तोयै रजकेन यथाविधि ॥ १०२ ॥
जन्मादिपञ्चमे षष्ठे निशीथे बलिमाहरेत् ।
अर्चयेदष्टदिक्पालान्गीतवाद्यसशस्त्रकैः ॥ १०३ ॥
कृत्वा जागरणं रात्रौ दीपैश्च शान्तिपाठकैः ।
द्वारे द्वितीयभागे तु सिन्दूरैश्चापि कज्जलैः ॥ १०४ ॥

प्रसूतिगृहमें चार अंगुल प्रमाण मिट्टी डालकर मिट्टी और गोबरसे लीपे। पांच कल्कयुक्त उष्ण जलसे उस बच्चे और प्रसूताको स्नान करावे। यह स्नान पवित्रताके लिए तीन तीन दिन बाद प्रसवसे दशवें दिन तक करावे। प्रसूताके कपड़े, आभूषण, पलंग, भोजन करनेके बर्तन आदिको विधिपूर्वक पवित्र जल तथा मिट्टीसे धोवे और मांजे। धोबीसे धुलवाने योग्य वस्तुओंको धोबीसे धुलावे। जन्मके पांचवें अथवा छठे दिन दशदिक्पालोंकी पूजा कर बलि दे। रात्रिमें दीपक लगाकर शान्तिपाठों द्वारा जागरण करे। दरवाजेके दूसरी ओर सिन्दूर तथा कजलकी टिपकी वगैरह लगावे ॥ १००–१०४ ॥

जननाशौच (जन्मके सूतक) की मर्यादा।

प्रसूतेर्दशमे चाह्नि द्वादशे वा चतुर्दशे ।
सूतकाशौचशुद्धिः स्याद्विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥ १०५ ॥

प्रसूतिके दशवें दिन ब्राह्मणों, बारहवें दिन क्षत्रियों और चौदहवें दिन वैश्योंकी जननाशौच-जन्मके सूतककी शुद्धि होती है। भावार्थ पुत्र–पुत्रीका जन्म होने पर दश दिनतक ब्राह्मणोंके, बारह दिनतक क्षत्रियोंके और चौदह दिनतक वैश्योंके सूतक रहता है ॥ १०५ ॥

प्रसूतिगृहे मासैकं दायादानां गृहेषु च ।
दशदिनावधिं यावन्न गच्छेदभुक्तये यतिः ॥ १०६ ॥

प्रसूतिके घरपर एक महीनेतक और उसके दायादों–भाई-बांधवोंके घरपर दश दिन तक मुनि आहारके लिए न जावें। ॥ १०६ ॥

पञ्च दिनानि चेटीनां सूतकं परिकीर्तितम् ।
स्वामिगृहे प्रसूताश्चेद्घोटकीनां तथैव च ॥ १०७ ॥
उष्ट्री गौर्महिषी छागी प्रसूता चेद्गृहे यदा ।
दिनमेकं परित्याज्यं बहिश्चेन्न हि दोषभाक् ॥ १०८ ॥

यदि कोई दासी अपने स्वामीके घरपर प्रसूत हुई हो तो उस घरमें पांच दिनतक सूतक रहता है। इसी तरह घोड़ीका भी पांच दिनतक सूतक रहता है। उँटनी, गाय, भैंस और बकरीका एक एक दिनका सूतक रहता है। यदि ये सब स्वामीके घरसे बाहर प्रसूत हुई हों तो कुछ भी सूतक नहीं है ॥ १०७–१०८ ॥

बर्तन-शुद्धि।

भाजनानि मृदां यानि पुराणानि तु सन्त्यजेत्।
धातुभाण्डानि वस्त्राणि क्षालनाच्छुचितां नयेत्॥ १०९॥
दद्यात्तु प्रथमे दानं षष्ठे वा पञ्चमेऽपि वा।
दशमे देवपूजा स्यादन्नदानं तथा बलिः॥ ११०॥

प्रसूतिके समय जिन बर्तन-कपड़ों आदिसे स्पर्श हुआ हो उनमेंसे मिट्टीके बर्तनोंको तो फेंक दे, तांबे पीतल आदि धातुके बर्तन और कपड़े मांजने-धोनेसे शुद्ध होते हैं। पहले दिन, छठे दिन अथवा पांचवें दिन भी दान देवे। दशवें दिन देवपूजा, आहारदान और बलिदान करे॥ १०९-११०॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नानानुजानुप्रजो भवभव अ सि आ उ सा स्वाहा।

अनेन पुत्रमुखमवलोकयेत। अर्थात् यह मंत्र पढ़कर बालकका मुख देखे।

ततश्चैत्यालये पूजाहोमादिकं विधाय तद्गन्धोदकेन स्त्रीपुत्रौ गृहं प्रसिञ्च्य स्वजनान् भोजयेत्।

अर्थात् इसके बाद जिन-मन्दिरमें होम आदि करके गन्धोदकसे स्त्रीपुत्र और घरको सींचकर अपने बन्धुवर्गको भोजन करावे।

नामकर्म-विधि।

द्वादशे षोडशे विंशे द्वात्रिंशे दिवसेऽपि वा।
नामकर्म स्वजातीनां कर्तव्यं पूर्वमार्गतः॥ १११॥
द्वात्रिंशद्दिवसादूर्ध्वं यावत्संवत्सरं भवेत्।
नामकर्म तदा कार्यमिति कैश्चिदुदीरितम्॥ ११२॥
कृत्वा होमं जिनेन्द्रार्चां शुभेऽन्हि श्रीजिनालये।
स्वगृहे वा ततो भक्त्या महावाद्यानि घोषयेत्॥ ११३॥
सुपीठे दम्पती तौ च सपुत्रौ भूषणान्वितौ।
निवेश्य सेचयेत्सूरिःपुण्याहवचनैः परैः॥ ११४॥

जन्मके बारहवें, सोलहवें, बीसवें अथवा बत्तीसवें दिन अपनी कुलपरंपराके अनुसार नामकर्म विधि करे। बालकका नाम रखनेको नामकर्म विधि कहते हैं। यदि बत्तीसवें दिन नामकर्म विधि न कर सके तो फिर जब एक वर्ष पूरा हो जाय तब करे, ऐसा भी किसी २ का कहना है। इस विधिमें भी शुभ दिनमें जिनमन्दिर अथवा अपने घरमें भक्तिभावसे होम और जिनपूजा करे तथा बाजे बजवावे। और दोनों पति-पत्नी तथा पुत्रको कपड़े गहने आदिसे सजाकर अच्छी चौकी-पर बैठाकर पुण्याहवचनों द्वारा गृहस्थाचार्य उनका सेचन करे॥ १११-११४॥

जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि।
व्रतरोपे च चौले च पत्नीपुत्रौ स्वदक्षिणे॥ ११५॥

गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा।
वधूप्रवेशने शूद्रापुनर्विवाहमण्डने ॥ ११६ ॥
पूजने कुलदेव्याश्च कन्यादाने तथैव च।
कर्मस्वेतेषु वै भार्यां दक्षिणे तूपवेशयेत् ॥ ११७ ॥
कन्यापुत्रविवाहे तु मुनिदानेऽर्चने तथा।
आशीर्वादाभिषेके च प्रतिष्ठादिमहोत्सवे ॥ ११८ ॥
वापीकूपतडागानां वनवाट्याश्च पूजने।
शान्तिके पौष्टिके कार्ये पत्नी तूत्तरतो भवे ॥ ११९ ॥

जातकर्म, नामकर्म, अन्नप्राशनकर्म, व्रतग्रहणकर्म और चौलकर्ममें पत्नी और पुत्रको अपनी दाहिनी ओर बैठावे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, वधूप्रवेश, शूद्रापुनर्विवाह, कुलदेवताकी पूजा और कन्यादानके समय पत्नीको दाहिनी ओर बैठावे तथा पुत्रविवाह, पुत्रीविवाह, मुनिदान अर्चन, आशीर्वादग्रहण, अभिषेक, प्रतिष्ठादि महोत्सव, बावड़ी, कुआ, तालाव और बागीसेके मुहूर्त, शान्तिकर्म और पौष्टिक कर्मके समय पत्नीको अपनी बाईं ओर लेकर बैठे। भावार्थ—श्लोक नं० ११७ में 'शूद्रापुनर्विवाहमंडने' यह पद पड़ा हुआ है। इस परसे शायद यह खयाल किया जाय कि इस ग्रन्थमें पुनर्विवाहका मंडन भी पाया जाता है, पर यह खयाल ठीक नहीं है। क्योंकि शूद्रोंके दो भेद हैं—सच्छूद्र और असच्छूद्र या भोज्यशूद्र और अभोज्यशूद्र। जिनमें एक वार ही विवाह करनेकी रिवाज है—जो दूसरी बार विवाह (धरेजा) नहीं करते हैं वे सच्छूद्र होते हैं। तदुक्तं—

सकृत्परिणयनव्यवहाराः सच्छूद्राः।
—सोमनीति।

इससे विपरीत जिनमें धरेजा प्रचलित है वे असच्छूद्र होते हैं। तथा जिनका अन्न पान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लेते हैं वे भोज्यशूद्र होते हैं। इनसे विपरीत अभोज्य शूद्र होते हैं। तदुक्तं—

भोज्याः—यदन्नपान ब्राह्मणक्षत्रियविट्छूद्रा भुज्यन्ते, अभोज्याः—तद्विपरीतलक्षणाः।
—नान्दिगुरु।

इससे यह नतीजा निकला कि सच्छूद्र प्रशस्त और भोज्य होते हैं। इसमें हेतु पुनर्विवाहका न होना ही है। जब शूद्रोंमें भी सर्वांशसे विधवाविवाहका उपदेश नहीं है तब एकदम उच्च जातिवालोंके लिये ग्रन्थकारने " शूद्रापुनर्विवाहमंडने " इस पद द्वारा विधवाविवाहका उपदेश दिया है यह कहना नितांत भूल भरा है। असल बात यह है कि इस ग्रन्थमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके आचारका मुख्यतासे वर्णन किया है। और बीच बीचमें दोनों तरहके शूद्रोंका आचरण भी यत्र तत्र गौणतासे बताया है। असच्छूद्रोंमें पुनर्विवाह (धरेजा) की प्रवृत्ति प्रचलित है, अतः प्रकरणवश असच्छूद्रोंके इस कर्तव्यका भी कथन कर दिया है। एतावता विधवाविवाह सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि विधवाविवाह आगमसे विरुद्ध पड़ता है। आगममें विधवाविवाह कहीं भी नहीं लिखा है। जैन आगममें ही नहीं, बल्कि ब्राह्मण सम्प्रदायके आगममें भी विधवाविवाहकी विधि नहीं कही गई है। इस विषयमें मनुका कहना है कि "न विवाह विधावुक्तं विधवावेदनं पुनः" अर्थात् विवाहविधिमें विधवाका विवाह कहा ही नहीं गया है। जिस

अनर्थका बाह्य लोग भी निषेध करते हैं उसका जैन ऋषि कभी भी विधान नहीं करेंगे। यह बात आबालगोपाल प्रसिद्ध है कि विवाहविधिमें सर्वत्र कन्याविवाह ही बताया गया है, विधवाविवाह नहीं। विधवाविवाहसे तो प्रत्युत उसमें घृणा प्रकट की गई है। आदिपुराणके ४४ वें पर्वमें षट्-खंडाधिपति भरत चक्रीके पुत्र अर्ककीर्ति महाराज विधवासे इस प्रकार घृणा करते हैं—

नाहं सुलोचनार्थ्यस्मि मत्सरी मच्छरैरयं।
परासुरधुनैव स्यात् किं मे विधवया तया॥

मैं सुलोचनाको नहीं चाहता, क्योंकि इस मत्सरी जयकुमारके प्राण मेरे बाणोंसे अभी व्यापत हुए जाते हैं, तब मुझे उस विधवा सुलोचनासे प्रयोजन ही क्या है?

पद्मपुराणसे भी विधवा-विवाहका निषेध होता है—जिस समय खरदूषण शूर्पणखाको हर-कर ले भगे तब महाराज रावणने उनसे युद्ध करनेकी ठान ली। उस समय मंदोदरी महादेवी रावण महाराजसे कहती है कि—

कथंचिच्च हतेऽप्यस्मिन् कन्याहरणदूषिता।
अन्यस्मै नैव विश्राण्या केवलं विधवी भवेत्॥

हे प्राणनाथ! आप किसी तरह युद्धमें खरदूषणको मार भी देंगे तो भी कन्या हरणसे दूषित हो चुकी है, अब वह दूसरेको देने योग्य नहीं रही है। अतएव वह खरदूषणके मारे जाने पर केवल विधवा ही कही जायगी।

महापुराण और पद्मपुराण ये दोनों पुराण जैनोंके आर्ष ग्रंथ कहे जाते हैं। इनकी प्रमाणता भी जैनोंकी नस नसमें ठसी हुई है। अतः इन दोनों आर्ष ग्रन्थोंसे निश्चित होता है कि विधवाविवाह एक निंद्य वस्तु है और वह आगमविरुद्ध भी है। ग्रन्थकर्ता सोमसेन महाराजके अभिप्राय भी आगमानुकूल हैं। विधवाविवाहकी ओर उनके परिणाम जरा भी विचलित नहीं हैं। ग्रन्थकारने विधवाके लिए आगे तेरहवें अध्यायमें दो ही मार्ग बताये हैं, एक जिन-दीक्षा ग्रहण करना और दूसरा वैधव्य दीक्षा लेना. उन्होंने इन दो मार्गोंके अलावा तीसरा विधवा-विवाह नामका मार्ग नहीं बतलाया है। अतः निश्चित होता है कि ग्रन्थकारका आशय विधवाविवाहके अनुकूल नहीं है, वे तो विधवा-विवाहको एक निंद्य वस्तु समझते हैं अन्यथा वे उक्त दो मार्गोंके अलावा वहीं पर एक विधवाविवाह नामका तीसरा मार्ग और बतला देते। ग्यारहवें अध्यायके कुछ श्लोकों परसे भी विधवाविवाहका आशय निकाला जाता है वह भी ठीक नहीं है उन श्लोकोंका स्पष्टीकरण भी वहीं करेंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि शूद्रापुनर्विवाहमंडने इस पदपरसे या और भी कई श्लोकों और पदोंपरसे ग्रंथकारका आशय विधवाविवाहरूप सिद्ध नहीं होता॥ ११५-११९॥

निश्छिद्रे निस्तुषे ताले[1] शिशोः प्रस्तीर्य तत्पिता।
निजनाम लिखेत्तत्र स्वाभीष्टं जन्मनाम च॥ १२०॥
क्षीरसर्पिर्युते पात्रे निधाय भूषणानि वै।
तत्ताले पूर्वताले च गन्धपुष्पकुशान् क्षिपेत्॥ १२१॥
मस्तके कर्णयोः कण्ठे भुजयुग्मे च वक्षसि।
साज्यं पयः कुशैः सिक्त्वा भूषणैर्भूषयेच्छिशुम्॥ १२२॥

१ 'निस्तुषानक्षतांस्ताले' इति पाठः साधुः।

अष्टोत्तरसहस्रेण नामभिर्यो विराजते।
स देवोऽस्मै कुमाराय शुभं नाम प्रयच्छतु ॥ १२३ ॥
इति सम्प्रार्थ्य देवं तं त्रिवारं च द्विजैः सह।
यदायाति स तन्नाम घोषयित्वा नमेज्जिनम् ॥ १२४ ॥
पूर्णार्घं यक्षदेवानां दत्वा कर्णौ निशामुखे।
संछेद्यान्दोलके रात्रौ बालं प्रीत्या निवेशयेत् ॥ १२५ ॥

लड़केका पिता किसी बर्तनमें छिलके–रहित चाँवलोंको इस तरकीबसे बिछावे कि बीचमें कोई छिद्र न रहे–कोई जगह खाली न रहे। उनमें उंगलीसे पहिले अपना नाम लिखे। फिर अपनेको जो इष्ट हो वही नाम उस लड़केका लिखे। दूसरे बर्तनमें दूध और घी मिलाकर उसमें लड़केके आभूषण (जेवर) धरे। फिर इसमें तथा पहलेके बर्तनमें गन्ध, पुष्प और कुश धरे। मस्तक, दोनों कान, कण्ठ, दोनों भुजाएं और छातीपर घृत, दूध और कुशका सेचन कर उस बालकको दागीनोंसे सजावे। बाद "जो एक हजार आठ नाम कर विराजमान है वह देव इस बालकको शुभ नाम प्रदान करे।" इस तरह ब्राह्मणोंके साथ साथ तीन बार उस देवकी प्रार्थना करे। बाद लड़केका जो नाम रखना हो उस नामकी जोरसे घोषणा कर जिनदेवको नमस्कार करे और यक्षोंको पूर्णार्घ देवे। उसी दिन शामके समय बालकके दोनों कान छेदकर रातको पालनेमें उसे प्रीतिपूर्वक सुला दे ॥ १२०–१२५ ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं बालकस्य नामकरणं करोमि। अभिनन्दन-नाम्ना आयुरारोग्यैश्वर्यवान् भव भव। अष्टोत्तरसहस्राभिधानार्हो भव भव क्ष्रौं क्ष्रौं अ सि आ उ सा स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर नामकर्म करे। "अभिनन्दननाम्ना" के आगे लड़केका जो नाम रखना हो उसे जोड़ दे।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं बालकस्य ह्रः कर्णनासावेधनं करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर बालकका कर्णवेध करे।

मंत्र—ॐ ह्रीं क्ष्रौं क्ष्रौं क्ष्वीं क्ष्वीं आन्दोलं बालकमारोपयामि तस्य सर्वरक्षा भवतु क्ष्रौं क्ष्रौं स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर बालकको झूलेपर सुलावे।

बहिर्यान–क्रिया।

गृहान्निष्क्रमणं सूनोश्चतुर्थे मासि कारयेत्।
जिनार्कदर्शनार्थं च तृतीये प्रथमेऽपि वा ॥ १२६ ॥
शुक्लपक्षे सुनक्षत्रे स्नातं भूषणभूषितम्।
पुण्याहवचनैर्बालं सिञ्चयेच्च कुशोदकैः ॥ १२७ ॥

विधाय वक्षसि बालं महावाद्यसमन्वितम् ।
निष्क्रमेद्बन्धुभिः सार्कं माता पिताऽथवा गृहात् ॥ १२८ ॥
भक्त्या चैत्यालयं गत्वा त्रिः परीत्य प्रपूज्यच ।
शिशोः सन्दर्शयेत्प्रीत्या वृद्धये जिनभास्करम् ॥ १२९ ॥
संघं सम्पूज्य सद्वस्त्रैः शेषाँस्ताम्बूलचन्दनैः ।
शेषाशिषं समादाय पूर्ववच्च व्रजेद्गृहम् ॥ १३० ॥

चौथे महीने बालकको जिन-भास्करका दर्शन करानेको घरसे बाहर निकाले । तीसरे या पहिले महीने भी निकाल सकते हैं । यह विधि इस तरह करे कि, शुक्लपक्षमें अच्छे ग्रह नक्षत्र आदि देखकर उस दिन बालकको स्नान करावे और वस्त्र आभूषण पहनाकर पुण्याहवचनोंद्वारा कुश और जलसे बालकका अभिषेचन करे । बाद लड़केकी मा अथवा पिता उसे गोदमें लेकर बहुत गाजे-बाजेके साथ अपने भाईबन्धुओं सहित घरसे बाहर निकले । भक्तिभावसे चैत्यालयको जाकर जिन भगवान्की तीन प्रदक्षिणा देकर उनकी पूजा करे और बालकको उसकी वृद्धिके लिये जिन-सूर्यका दर्शन करावे । फिर अपने कुटुंबियोंको वस्त्र आभूषण पहनावे, अन्य जातीय लोगोंका तांबूल चंदन आदिसे सत्कार करे तथा आशिका लेकर जिस तरह चैत्यालयको आये थे उसी तरह घरको वापिस जावें ॥ १२६-१३० ॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय तव मुखं बालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

यह मंत्र पढ़कर बालकको जिन भगवानका दर्शन करावे ।

उपवेशन-क्रिया ।

पञ्चमे मासि कर्तव्यं शिशोश्चैवोपवेशनम् ।
सम्पूज्य श्रीजिनं भूमिं कुमारान् पञ्च पूजयेत् ॥ १३१ ॥
व्रीहिश्यामाकगोधूममाषमुद्गतिला यवाः ।
एभिः संलेख्य रङ्गावलीं च वस्त्रं प्रसारयेत् ॥ १३२ ॥
स्नापयित्वा शिशुं सम्यक् भूषणैश्च विभूषयेत् ।
गृहे पद्मासनस्थाने सुमुहूर्ते निवेशयेत् ॥ १३३ ॥
पूर्वमुखे विधायास्यमधःस्थं वामपादकम् ।
उपरि दक्षिणाङ्घ्रिः स्यादुपर्यस्य करद्वयम् ॥ १३४ ॥
नीराजनं ततः कुर्याद्द्विभैराशीर्वचः परम् ।
तद्दिने सज्जनान् सर्वान् भोजयेत्प्रीतिपूर्वकम् ॥ १३५ ॥

बालकके जन्मके पांचवें महीनेमें उपवेशन (बालकको बिठलानेकी क्रिया) करनी चाहिये । वह इस तरह कि, अपने घरमें श्रीजिनदेव, बालकके बैठानेकी भूमि और पांच कुमारोंकी यथायोग्य पूजा करे । चांवल, गेहूं, उड़द, मूंग, तिल और जौ की एक रंगावली खींचकर उसपर एक कपड़ा

बिछावे। बालकको स्नान कराकर वस्त्र आभूषण पहनावे। फिर अच्छे मुहूर्तमें उस कपड़ेपर बालकको पद्मासन बैठावे। पद्मासन बैठानेकी विधि यह है कि बालकका मुख पूर्व दिशाकी ओर करे, बांयें पैरको नीचे और दाहिने पैरको ऊपर करे, तथा पैरोंके ऊपर उसके दोनों हाथ धरे। इस तरह बैठाकर उसकी आरती उतारे और विप्रगण आशीर्वाद दें। उस दिन सब सज्जनोंको प्रीतिपूर्वक भोजन करावे। " सम्पूज्य श्रीजिनभूमिकुमारान् पंच पूजयेत " ऐसा भी पाठ है, जिसका अर्थ होता है कि पांच कुमार बालब्रह्मचारी जिनोंकी पूजा करे ॥१३१-१३५॥

मंत्रः—ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा बालकमुपवेशयामि स्वाहा।

इस मंत्रको बोलकर बालकको बैठावे।

अन्नप्राशन-क्रिया।

तथा च सप्तमे मासे शुभर्क्षे शुभवासरे।
अन्नस्य प्राशनं कुर्याद्बालस्य वृद्धये पिता ॥ १३६ ॥
जिनेन्द्रसदने पूजा महावैभवसंयुता।
आदौ कार्या ततो गेहे शुद्धान्नं क्रियते बुधैः ॥ १३७ ॥
ततः प्राङ्मुखमासित्वा पिता माताऽथवा सुतम्।
दक्षिणाभिमुखं कृत्वा वामोत्सङ्गे निवेशयेत् ॥ १३८ ॥
क्षीरान्नं शर्करायुक्तं घृताक्तं प्राशयेच्छिशुम्।
दध्यन्नं च ततः सर्वान्बान्धवानपि भोजयेत् ॥ १३९ ॥

बालकको पहले-पहल अन्न खिलानेको अन्नप्राशन कहते हैं। सातवें महीने शुभ नक्षत्र और शुभ दिनमें बालककी वृद्धिके लिए पिता इस विधिको करे। प्रथम भारी ठाठ-बाटके साथ जिनमंदिरमें जिनदेवकी पूजा करे। बाद अपने घरमें शुद्ध भोजन तैयार करावे। इसके बाद माता अथवा पिता दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर बैठे, और बालकका पूर्वदिशाकी ओर मुखकर उसे अपनी बाईं गोदमें बैठाकर घी शक्कर मिला हुआ, खीर, दही और मिष्टान्न खिलावे। बाद सब बान्धवोंको भोजन करावे ॥ १३६-१३९ ॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते भुक्तिशक्तिप्रदायकाय बालकं भोजयामि पुष्टिस्तुष्टिश्चारोग्यं भवतु भवतु क्ष्वीं क्ष्वीं स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर बालकको अन्न खिलावे।

पादन्यासक्रिया (गमन-विधि)

अथास्य नवमे मासे गमनं कारयेत्पिता।
गमनोचितनक्षत्रे सुवारे शुभयोगके ॥ १४० ॥
पूजां होमं जिनावासे पिता कुर्याच्च पूर्ववत्।
पुत्रं संस्नाप्य सद्वस्त्रैर्भूषयेद्भूषणैः परम् ॥ १४१ ॥

पूर्वादिपूर्वपर्यन्तं गुर्वग्निब्राह्मणान्परान् ।
प्रदक्षिणाक्रमेणैव धौतवस्त्रं प्रसारयेत् ॥ १४२ ॥
तस्योपरिस्थितं पुत्रमुदङ्मुखं मुदा पिता ।
गमयेद्दक्षिणांघ्र्यग्रं भुजौ सन्धृत्य पाणिना ॥ १४३ ॥
सव्यभागेऽग्निकुण्डं तत्सन्त्यज्य त्रिप्रदक्षिणाः ।
दत्वाऽग्निगुरुवृद्धेभ्यः प्रणतिं कारयेत्पिता ॥ १४४ ॥

नवमें महीनेमें गमनके योग्य शुभ नक्षत्र शुभ दिन और शुभ योगमें पिता बालकको गमन करावे-गमनविधि करे। पहलेकी तरह इस विधिमें भी जिनमंदिरमें पूजा और होम करे। बालकको स्नान कराकर वस्त्र-आभूषणसे खूब सजावे। गुरु, अग्नि और ब्राह्मणोंके चारोंतरफ प्रदक्षिणाके क्रमसे पूर्व दिशासे पूर्व दिशातक एक सफेद धोया हुआ वस्त्र बिछावे। उसके ऊपर पिता बालकको उत्तरकी ओर मुखकर खड़ा करे और अपने हाथोंसे बालककी दोनों भुजाएं पकड़कर गमन करावे। गमनके समय पहिले बालकका दाहिना पैर आगे बढ़ावे। दाहिनी ओरके अग्निकुंडको छोड़कर तीन प्रदक्षिणा दिलाकर बाद अग्नि, गुरु और ब्राह्मणोंको उस बालकसे नमस्कार करावे ॥ १४०-१४४ ॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते महावीराय चतुस्त्रिंशदतिशययुक्ताय बालकस्य पादन्यासं शिक्षयामि तस्य सौख्यं भवतु भवतु क्ष्वीं क्ष्वीं स्वाहा ।

गमन कराते समय पिता यह मंत्र बोले।

व्युष्टिक्रिया।

ततोऽस्य हायने पूर्णे व्युष्टिर्नाम क्रिया मता ।
वर्षवर्धनपर्यायशब्दवाच्या यथाश्रुतम् ॥ १४५ ॥
तत्रापि पूर्ववद्दानं जैनी पूजा च पूर्ववत् ।
इष्टबन्धुसमाव्हानं सन्मानादिश्च लक्ष्यते ॥ १४६ ॥

पूरा एक वर्षका बालक होजानेपर व्युष्टिक्रिया की जाती है, जिसका दूसरा नाम वर्षवर्धन—जन्मगांठ है। इस क्रियामें भी पहिलेकी तरह जिनपूजा, दान, होम करना और इष्टबन्धुओंको बुलाकर उनका यथायोग्य सन्मान आदि किया जाता है ॥ १४५-१४६ ॥

चौलकर्म।

मुण्डनं सर्वजातीनां बालकेषु प्रवर्तते ।
पुष्टिबलप्रदं वक्ष्ये जैनशास्त्रानुमार्गतः ॥ १४७ ॥
तृतीये प्रथमे चाब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ।
चौलकर्म गृही कुर्यात्कुलधर्मानुसारतः ॥ १४८ ॥
चूलाकर्म शिशोर्मातरि गर्भिण्यां यदि वा भवेत् ।
गर्भस्य वा विपत्तिः स्याद्विपत्तिर्वा शिशोरपि ॥ १४९ ॥

शिशोर्मातरि गर्भिण्यां चूलाकर्म न कारयेत् ।
गते तु पञ्चमे वर्षे दोषयेन्न हि गर्भिणी ॥ १५० ॥
आरभ्याधानमाचौलं कर्मातीतं तु यद्भवेत् ।
आज्यं व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १५१ ॥

चौल नाम बालकके मुंडन (जडूला उतारने) का है । यह मुंडन प्रायः सभी जातियोंमें होता है, जो बालकको पुष्ट और बलिष्ठ बनाता है, उसीका जैनशास्त्रोंके अनुसार कथन किया जाता है । पहले, तीसरे, पांचवें अथवा सातवें वर्षमें गृहस्थ अपनी कुलपरंपराके अनुसार बालकका चौल कर्म करें । बालककी माताके गर्भवती होनेपर चौलकर्म करनेसे या तो माताका गर्भ गिर जाता है या वह बालक मर जाता है । इसलिए माताके गर्भवती होते हुए बालकका चौलकर्म न करे । हां, यदि बालक पांच वर्षका हो गया हो और माता गर्भवती हो तो चौलकर्म करनेमें कोई दोष नहीं है । गर्भाधानसे लेकर चौलकर्मतक की क्रियाएं यदि न हुई हों तो व्याहृति मंत्रके द्वारा आज्याहुति देकर प्रायश्चित्त ले ले ॥ १४७–१५१ ॥

चौलार्हं बालकं स्नायात्सुगन्धशुभवारिणा ।
भेऽन्हि शुभनक्षत्रे भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ॥ १५२ ॥
पूर्ववद्धोमं पूजां च कृत्वा पुण्याहवाचनैः ।
उपलेपादिकं कृत्वा शिशुं सिञ्चेत्कुशोदकैः ॥ १५३ ॥
यवमापतिलव्रीहिशमीपल्लवगोमयैः ।
शरावान् पट् पृथक्पूर्णान् विन्यस्येदुत्तरादिशि ॥ १५४ ॥
धनुःकन्यायुग्ममत्स्यवृषमेपेषु राशिषु ।
ततो यवशरावादीन् विन्यस्येत्परितः शिशोः ॥ १५५ ॥
क्षुरं च कर्तरीं कूर्चसप्तकं घर्षणोपलम् ।
निधाय पूर्णकुम्भाग्रे पुष्पगन्धाक्षतान् क्षिपेत् ॥ १५६ ॥
मात्रङ्कस्थितपुत्रस्य स धौतोऽग्रे स्थितः पिता ।
शीतोष्णजलयोः पात्रे सिञ्चेच्च युगपज्जलैः ॥ १५७ ॥
निशामस्तु दधि क्षिप्त्वा तज्जले तैः शिरोरुहान् ।
सव्यहस्तेन संसेच्य प्रादक्षिण्येन घर्षयेत् ॥ १५८ ॥
नवनीतेन संघर्ष्य क्षालयेदुष्णवारिणा ।
मङ्गलकुम्भनीरेण गन्धोदकेन सिञ्चयेत् ॥ १५९ ॥

जिस बालकका मुंडन करना है उसे शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें सुगन्धित जलसे स्नान करावे और आभूषण पहनावे । पहलेकी तरह होम और पूजा कर चन्दनादिकका उपलेप वगैरह करके उस बालकका पुण्याहवचनोंद्वारा कुश और जलसे अभिषेचन करे । इसके बाद धनु, कन्या मिथुन, मीन वृष और मेष राशियोंमें जव, उड़द, तिल, चाँवल, शमीवृक्षके पत्ते और गायके

गोबरसे छह मिट्टीके दियोंको पूरे भरकर उत्तर दिशामें जुदा जुदा रख दे। और फिर उन्हें उठाकर बालकके चारों ओर रख दे। फिर छुरा, कैंची, डाभके सात तिनके और उस्तरा घिसनेकी शिलको जलसे भरे कलशके ऊपर रखकर उनपर पुष्प, गन्ध और अक्षत डाले। बालकका पिता स्नान कर माताकी गोदमें बैठे हुए बालकके सामने खड़ा होकर ठंडे और गर्म जलके दोनों पात्रोंको दोनों हाथोंमें लेकर दूसरे वर्तनमें एक साथ उनमेंका जल गेरे। फिर उसमें हल्दी और दही डालकर उस जलको बायें हाथसे बालकके सिरके केशोंपर सींचे और दाहिने हाथसे उन केशोंको धोवे। बाद मक्खनसे घिसकर गर्म जलसे बालोंको धोवे। और फिर उस मांगलीक कलशके जलसे धोकर गन्धोदकसे सींचे-धोवे ॥ १५२-१५९ ॥

ततो दक्षिणकेशेषु स्थानत्रयं विधीयते।
प्रथमस्थानके तत्र कर्तनाविधिमाचरेत् ॥ १६० ॥
शालिपात्रं निधायाग्रे खदिरस्य शलाकया।
पञ्चदर्भैः सुपुष्पैश्च गन्धद्रव्यैः क्षुरेण च ॥ १६१ ॥
वामकरेण केशानां वर्तिं कृत्वा च तत्पिता।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिश्चैतद्धृत्वा हस्तेन कर्तयेत् ॥ १६२ ॥

इसके बाद दाहिनी तरफके केशोंके तीन स्थान बनावे। उनमेंसे पहले स्थानके केशोंको कैंचीसे कतरे। उस समय बालकके साम्हने शालिके चाँवलोंसे भरा हुआ बर्तन रखकर खदिरवृक्षकी एक समिधा, पांच दर्भ, पुष्प, गन्ध और छुरा बायें हाथमें लेकर उस बालकके केशोंकी बटकर बत्ती बनाकर, पिता उन केशोंको अंगूठे और उंगलीसे दबाकर दाहिने हाथमें कैंची लेकर कतरे ॥ १६०-१६२ ॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनेश्वराय मम पुत्र उपनयनमुण्डमुण्डितो महाभागी भवतु भवतु स्वाहा।

इत्युच्चरन्केशाँसंच्छिद्य शमीपर्णैः सह भार्यायै दद्यात्। साऽपि तथा भवतु इत्युक्त्वा क्षीरघृतमिश्रितान् कृत्वा गोमयशरावे क्षिपेत्।

अर्थात् बाल कतरते समय 'ॐ नमोऽर्हते' इत्यादि मंत्र पढ़कर बाल कतरे। उन कतरे हुए केशोंको शमीवृक्षके पत्तोंके साथ बालककी माताके हाथमें देवे। माता भी 'तथा भवतु' कहकर उन केशोंको दूध और घी लगाकर गोबरसे भरे हुए दियेमें छोड़ दे।

द्वितीयस्थाने तिलपात्रमग्रे निधाय पूर्वोक्तशस्त्रशेषैश्च—'ॐ नमः सिद्धपरमेष्ठिने मम पुत्रो निर्ग्रन्थमुण्डभागी भवतु स्वाहा।' इत्युक्त्वा केशान् प्रच्छिद्य तस्यै दद्यात्। सा तथा करोतु।

अर्थात् दूसरे स्थानके केशोंको कतरते समय तिलोंसे भरा हुआ पात्र बालकके सामने धरकर पहलेकी तरह छुरा वगैरह हाथमें लेकर 'ॐ नमः सिद्धपरमेष्ठिने' इत्यादि मंत्र पढ़कर केशोंको कतरे और माताके हाथमें देवे। माता भी पहलेकी तरह विधि करे।

तृतीयस्थाने यवशरावमग्रे निधाय पूर्वोक्तशस्त्रशेषैश्च–' ॐ ह्रीं नमः आचार्यपरमेष्ठिने मम पुत्रो निष्क्रान्तिमुण्डभागी भवतु स्वाहा।' इत्युक्त्वा केशान् संछिद्य पूर्ववत्कुर्यात्।

तीसरे स्थानके केश कतरते समय जवके दियेको बालकके सामने रखकर पहलेकी तरह छुरा वगैरह हाथमें लेकर ' ॐ नमः आचार्यपरमेष्ठिने ' इत्यादि मंत्र पढ़कर केशोंको कतरकर पहलेकी तरह सारी विधि करे।

वामभागे केशानां भागद्वयं कृत्वा तत्र प्रथमभागे माषपात्रमग्रे निधाय शस्त्रशेषैश्च–'ॐ नमः उपाध्यायपरमेष्ठिने मम पुत्र ऐन्द्रभागी भवतु स्वाहा। इत्युच्चार्य पूर्ववत् कुर्यात्।

बाईं तरफके केशोंके दो भाग कर प्रथम भागको कतरते समय उड़दका दिया बालकके सामने रखकर पूर्वोक्त छुरा वगैरह हाथमें लेकर 'ॐ नमः उपाध्याय परमेष्ठिने ' इत्यादि मंत्र पढ़कर केशोंको कतरकर माताके हाथमें देवे। माता ' तथा भवतु ' कहकर केशोंको दूध और घी लगाकर गोबरके दियेमें गेरे।

द्वितीयस्थाने शमीपल्लवपात्रं निधाय शस्त्रशेषैश्च–'ॐ ह्रीं नमः सर्व साधुपरमेष्ठिने मम पुत्रः परमराज्यकेशभागी भवतु स्वाहा।' इत्युक्त्वा पूर्ववत्कुर्यात्।

दूसरे स्थानके केश कतरते समय शमीपत्रके पत्तोंके दियेको बालकके सामने रखकर छुरा वगैरह हाथमें लेकर ' ॐ नमः सर्वसाधुपरमेष्ठिने ' इत्यादि मंत्र पढ़कर पूर्वोक्त सारी विधि करे।

तत्रोष्णोदकेन केशान् प्रक्षाल्य–' ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिप्रसादात् केशान्वय शिरो रक्ष कुशली कुरु नापित।' इत्युक्त्वा नापिताय पिता क्षुरं दद्यात्। नापितोऽपि ' भवदीप्सितार्थो भवतु ' इत्युक्त्वा शिखां परिरक्ष्य शेषकेशान् मुण्डयेत्। ततस्तान् केशान् क्षीरघृतधान्यगोमयपात्राणि च महावाद्यविभवेन नद्यां क्षिपेत्। ततः कुमारं स्नापयित्वा वस्त्रभूषणैरलंकृत्य गृहमानीय यक्षादीनामर्घ्यं दत्वा पुण्याहवाचनैः पुनः सिंचयित्वा सज्जनान् भोजयेत्।

बाकी बचे हुए केशोंको गर्म जलसे धोकर " ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठि० " इत्यादि मंत्र पढ़कर बालकका पिता वह छुरा नाईको दे देवे। नाई भी ' आपका अभीप्सित हो ' ऐसा कहकर चोटी छोड़कर बाकीके केशोंका मुंडन करे। इसके बाद उन केशोंको और दूध, घी, धान्य तथा गोमयके दियेंको भारी गाजे बाजेके साथ नदीमें प्रवाहित करे। बाद बालकको स्नान कराकर वस्त्र–आभूषणसे अलंकृत करे और घरमें लाकर यक्ष आदिको अर्घ देकर पुण्याहवचनोंद्वारा पुनः बालकका सेचन कर सज्जनोंको भोजन करावे।

लिपिसंख्यान कर्म।

द्वितीयजन्मनः पूर्वमक्षराभ्यासमाचरेत्।
मौञ्जीबन्धनतः पश्चाच्छास्त्रारम्भो विधीयते ॥ १६३ ॥
पञ्चमे सप्तमे चाब्दे पूर्वं स्यान्मौञ्जिबन्धनात्।
तत्र चैवाक्षराभ्यासः कर्तव्यस्तूदगयने ॥ १६४ ॥

द्वितीय जन्मके पहले अर्थात् उपनयन–संस्कारकी क्रिया करनेके पहले बालकको अक्षराभ्यास कराना चाहिए। क्योंकि उपनयनके बाद तो शास्त्रारंभ किया जाता है। उपनयनसे पहले पांचवें अथवा सातवें वर्षमें बालकको अक्षराभ्यास करावे। अक्षराभ्यास उत्तरायणमें करावे ॥१६३–१६४॥

मृगादिपञ्चस्वपि तेषु मूले। हस्तादिके च क्रियतेऽश्विनीषु।
पूर्वात्रये च श्रवणत्रये च। विद्यासमारम्भमुशन्ति सिद्ध्यै ॥ १६५ ॥

मृग, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मूल, हस्त, चित्रा, अश्विनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, श्रवण, धनिष्ठा, और शततारका, इन नक्षत्रोंमें विद्यासिद्धिके लिए बालकको विद्या सिखाना प्रारंभ किया जाय, ऐसा बुद्धिमानोंका कहना है ॥ १६५ ॥

आदित्यादिषु वारेषु विद्यारम्भफलं क्रमात्।
आयुर्जाड्यं मृतिर्मेधा सुधीः प्रज्ञा तनुक्षयः ॥ १६६ ॥
अनध्यायाः प्रदोषाश्च षष्ठी रिक्ता तथा तिथिः।
वर्जनीया प्रयत्नेन विद्यारम्भेषु सर्वदा ॥ १६७ ॥
विद्यारम्भे शुभा प्रोक्ता जीवज्ञसितवासराः।
मध्यमौ सोमसूर्यौ च निन्द्यश्चैव शनिः कुजः ॥ १६८ ॥
उदग्गते भास्वति पञ्चमेऽब्दे। प्राप्तेऽक्षरस्वीकरणं शिशूनाम् ॥
सरस्वतीं क्षेत्रसुपालकं च। गुडौदनाद्यैरभिपूज्य कुर्यात् ॥ १६९ ॥

आदित्यादिवारोंको विद्या सिखाना आरंभ करनेका फल क्रमसे इस प्रकार जानना। रविवारको विद्या सिखाना प्रारंभ करनेसे आयुष्य बढ़ती है, सोमवारको बुद्धि मोटी हो जाती है, मंगलवारको मृत्यु प्राप्त होती है, बुधवारको मेधा बढ़ती है अर्थात् धारणाशक्ति उत्पन्न होती है, गुरुवारको सुधीः–बुद्धि कुशल होती है, शुक्रवारको प्रज्ञा अर्थात् ऊहापोह (तर्कवितर्क रूप शक्ति उत्पन्न होती है,) और शनिवारको विद्या प्रारंभ करनेसे शरीर क्षीण होता है। अनध्यायके दिनोंको, प्रदोषके समय, छठको, रिक्तातिथि अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीको विद्या प्रारंभ न करावे। विद्या प्रारंभ करानेके लिए बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार शुभ माने गये हैं, सोमवार और रविवार मध्यम हैं, और शनिवार और मंगलवार निकृष्ट हैं। बालकको पांचवां वर्ष लगनेपर सूर्यके उत्तरायण होनेपर अक्षराभ्यास करानेका मुहूर्त करे। उस समय सरस्वती और क्षेत्रपालकी गुड़, चाँवल आदिसे पूजा करे ॥ १६६–१६७ ॥

एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भं तु कारयेत्।
विधाय पूजामम्बायाः श्रीगुरोश्च श्रुतस्य च ॥ १७० ॥

पूर्ववद्धोमपूजादि कार्यं कृत्वा जिनालये।
पुत्रं संस्नाप्य सद्भूषैरलंकृत्य विलेपनैः॥ १७१॥
विद्यालयं ततो गत्वा जयादिपञ्चदेवताः।
सम्पूज्य प्रणमेद्भक्त्या निर्विघ्नग्रन्थसिद्धये॥ १७२॥
वस्त्रैर्भूषैः फलैर्द्रव्यैः सम्पूज्याध्यापकं गुरुम्।
हस्तद्वयं च संयोज्य प्रणमेद्भक्तिपूर्वकम्॥ १७३॥

इस तरह ऊपर बताये हुए किसी एक मुहूर्तमें विद्या प्रारंभ करावे। उस दिन माता, गुरु और शास्त्र-सरस्वतीकी पूजा करे। पहलेकी तरह जिनालयमें आकर होम, जिनपूजा आदि करे। बाद बालकको स्नान कराकर, वस्त्र आभूषण पहनाकर, ललाटमें तिलक लगाकर विद्यालय—स्कूलमें ले जावे। वहां जाकर निर्विघ्न रीतिसे विद्या समाप्त होनेके लिए जयादि पांच देवतोंकी पूजा कर उन्हें भक्ति भावसे उस बालकसे नमस्कार करावे। बाद वस्त्र, आभूषण फल और रुपये वगैरहसे अध्यापककी पूजाकर दोनों हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बालक अध्यापकको नमस्कार करे॥ १७०—१७३॥

प्राङ्मुखो गुरुरासीनः पश्चिमाभिमुखः शिशुः।
कुर्यादक्षरसंस्कारं धर्मकामार्थसिद्धये॥ १७४॥
विशालफलकादौ तु निस्तुषाखण्डतण्डुलान्।
उपाध्यायः प्रसार्याथ विलिखेदक्षराणि च॥ १७५॥
शिष्यहस्ताम्बुजद्वन्द्वधृतपुष्पाक्षतान् सितान्।
क्षेपयित्वाऽक्षराभ्यर्णे तत्करेण विलेखयेत्॥ १७६॥
हेमादिपीठके वाऽपि प्रसार्य कुङ्कुमादिकम्।
सुवर्णलेखनीकेन लिखेत्तत्ताक्षराणि वा॥ १७७॥
नमः सिद्धेभ्य इत्यादौ ततः स्वरादिकं लिखेत्।
अकारादि हकारान्तं सर्वशास्त्रप्रकाशकम्॥ १७८॥

विद्या सिखानेवाला गुरु पूरवकी ओर मुखकर बैठे। बालकको पश्चिमकी ओर मुखकर बैठावे। बाद धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिए अक्षर-संस्कार करे। वह इस तरह कि एक मोटी पट्टीपर छिलके—रहित अखंड चाँवलोंको बिछाकर उपाध्याय प्रथम आप खुद अक्षर लिखे। बाद उन अक्षरोंके पास बालकके हाथसे सफेद फूल और अक्षतोंको क्षेपण करा कर उसके हाथको अपने हाथसे पकड़-कर उससे अक्षर लिखवावे। अथवा सोना, चांदी आदिके बने हुए पाटेपर कुंकुम, केशर आदि बिछाकर सोनेकी लेखनीसे उसपर अक्षर लिखे और बालकसे लिखावे। अक्षर लिखते समय सबसे पहले 'नमः सिद्धेभ्यः' लिखे। इसके बाद अकारको आदि लेकर हकारपर्यंतके संपूर्ण शास्त्रोंको प्रकाश करनेवाले स्वर और व्यंजन लिखे और बालकसे लिखावे॥ १७४—१७८॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते नमः सर्वज्ञाय सर्वभाषाभाषितसकलपदार्थाय बालकमक्षराभ्यासं कारयामि द्वादशाङ्गश्रुतं भवतु भवतु ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा।

अक्षर लिखाते समय यह मंत्र पढ़े।

पुस्तकग्रहण विधि।

ततश्चाधीतसर्वाणि चाक्षराणि गुरोर्मुखात्।
सुदिने पुस्तकं ग्राह्यं होमपूजादि पूर्ववत् ॥ १७९ ॥
उपाध्यायं च सम्मान्य वस्त्रभूषैश्च पुस्तकम्।
हस्तौ द्वौ मुकुलीकृत्य प्राङ्मुखश्च समाविशेत् ॥ १८० ॥
उपाध्यायेन तं शिष्यं पुस्तकं दीयते मुदा।
शिष्योऽपि च पठेच्छास्त्रं नान्दीपठनपूर्वकम् ॥ १८१ ॥

इसके बाद वह बालक गुरुमुखसे उन अक्षरोंको सीखकर शुभ मुहूर्तमें पुस्तक पढ़ना प्रारंभ करे। इस समय भी पहलेकी तरह होमादि कार्य करे। बालक वस्त्र आभूषण आदिके द्वारा अपने गुरुका सन्मान कर और पुस्तककी पूजा कर दोनों हाथ जोड़ पूरबकी ओर मुख कर बैठे। पाठक महोदय बड़े हर्षसे उस बालकके हाथमें पुस्तक दे और वह बालक—शिष्य भी नान्दीमंगलके पठन पूर्वक उस पुस्तकको पढ़ना आरंभ करे ॥ १७९–८१ ॥

उपसंहार।

गर्भाधानसुमोदपुंसवनकाः सीमन्तजन्माभिधाः।
बाह्येयानसुभोजने च गमनं चौलाक्षराभ्यासनम् ॥
सुप्रीतिः प्रियसूद्भवो गुरुमुखाच्छास्त्रस्य संग्राहणं।
एताः पञ्चदश क्रियाः समुदिता अस्मिन् जिनेन्द्रागमे ॥ १८२ ॥
कुर्वन्ति धन्याः पुरुषाः प्रवीणाः। आचारशुद्धिं च शिवं लभन्ते।
भुक्त्वेह लक्ष्मीविभवं गुणाढ्याः। श्रीसोमसेनैरुपसंस्तुतास्ते ॥ १८३ ॥

गर्भाधान, मोद, पुंसवन, सीमन्त, प्रीति सुप्रीति प्रियोद्भव, जातकर्म, नामकर्म, बहिर्यान, उपवेशन, अन्नप्राशन, गमनविधि, व्युष्टिक्रिया, चौलकर्म, अक्षरसंस्कार और पुस्तक-ग्रहण, ये पन्द्रह क्रियाएं इस अध्यायमें कही गई हैं। भावार्थ—यद्यपि ये क्रियाएं गिनतीमें सत्रह होती हैं, परन्तु प्रीति, सुप्रीति और प्रियोद्भव इन तीन क्रियाओंका एकहीमें समावेश किया गया है। क्योंकि ये क्रियाएं एक साथ ही की जाती हैं, अन्य क्रियाओंकी तरह जुदे जुदे समयोंमें नहीं की जातीं। अतः तीनोंका एकहीमें समावेश कर श्लोकका अर्थ घटित कर लेना चाहिए। अथवा "एता सप्तदशक्रियाः समुदिता अस्मिन् जिनेन्द्रागमे।" इस तरह दूसरे पाठके अनुसार सत्रह क्रियाएं समझना चाहिए। जिन क्रियाओंका नाम श्लोकमें नहीं है, परंतु उनका वर्णन हो चुका है, अतः चकारोंसे उनका भी समावेश कर लेना चाहिए। जो चतुर पुण्यवान पुरुष इन उपर्युक्त पन्द्रह क्रियाओंको करते हैं वे इस लोकमें अटूट संपत्तिका भोगकर आचारशुद्धिको प्राप्त करते हैं और क्रमसे मुनि सोमसेनके द्वारा पूजित होकर मोक्ष-सुखको प्राप्त करते हैं।

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारकथने भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते गर्भाधानादिपञ्चदशक्रियाप्ररूपणो नामाष्टमोऽध्यायः समाप्तः।

नववाँ अध्याय ।

मंगलाचरण ।

वन्दे श्रीसुमहेन्द्रकीर्तिसुगुरुं विद्याब्धिपारप्रदं ।
कालेऽद्यापि तपोनिधिं गुणगणैः पूर्णं पवित्रं स्वयम् ॥
नग्नत्वादिकदुष्टसत्परिषहैर्भग्नो न यो योगिराट् ।
पायान्मां स कुबुद्धिकष्टकुहरात्संसारपाथोनिधेः ॥ १ ॥

मैं, विद्यारूपी समुद्रके पार पहुंचानेवाले, गुणोंकर परिपूर्ण, पवित्र और इस कलिकालमें अद्वितीय तपके खजानेरूप श्रीमहेन्द्रकीर्ति सद्गुरुको बन्दना करता हूं। जो योगीश्वर नग्नता आदि परीषहोंसे भग्न नहीं हुआ है--जिसने नग्नता आदि दुष्ट परीषहोंको जीत लिया है, वह श्री महेन्द्रकीर्ति गुरु दुर्बुद्धिरूपी अत्यन्त कष्टदायी गढ़ेरूप संसारसमुद्रसे मेरी रक्षा करें ॥ १ ॥

अजितं जितकामारिं मुक्तिनारीसुखप्रदम् ।
यज्ञोपवीतसत्कर्म नत्वा वक्ष्ये गुरुक्रमात् ॥ २ ॥

मैं, जिनने कामरूपी शत्रुओंको जीत लिया है--अपने वशमें कर लिया है और जो मुक्ति-स्त्रीको सुख देनेवाले हैं, उन श्रीअजितनाथ जिनेन्द्रको प्रणामकर गुरुपरंपराके अनुसार यज्ञोपवीत नामके सत्कर्म (सत्क्रिया) को कहूंगा ॥ २ ॥

उपनयन क्रिया ।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३ ॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ४ ॥

ब्राह्मणके लड़केका गर्भसे लेकर आठवें वर्षमें, क्षत्रियका गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें और वैश्यका गर्भसे बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत संस्कार करे । विद्या अधिक चाहनेवाले ब्राह्मण--पुत्रका पांचवें वर्षमें, बलके चाहनेवाले क्षत्रिय--पुत्रका छठे वर्षमें और व्यापारकी इच्छा रखनेवाले वैश्य--पुत्रका आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत संस्कार किया जाय ॥ ३-४ ॥

आ षोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशात्तु वत्सरात् ॥
ब्रह्मक्षत्रविशां कालो ह्युपनयनजः परः ॥ ५ ॥
अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः ।
प्रतिष्ठादिषु कार्येषु न योज्या ब्राह्मणोत्तमैः ॥ ६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके उपनयन संस्कारका अंतिम काल क्रमसे सोलह वर्ष, बाईस वर्ष और चौबीस वर्ष तकका है। यदि इस समय तक इनका यज्ञोपवीत संस्कार न हो तो इसके

बाद वे धार्मिक कृत्योंसे बहिष्कृत समझे जायँ। उत्तम ब्राह्मणोंका फर्ज है कि ऐसे पुरुषोंको प्रतिष्ठादि शुभकार्योंमें नियुक्त न करें ॥ ५-६ ॥

अथाचार्यः-पितैवोपनयेत्पूर्वं तदभावे पितुः पिता।
तदभावे पितुर्भ्राता सकुल्यो गोत्रजो गुरुः ॥ ७ ॥
व्रतबन्धं कुमारस्य विना पितुरनुज्ञया।
यः करोति द्विजो मोहान्नरकं सोऽधिगच्छति ॥ ८ ॥

लड़केका उपनयन संस्कार पिता ही करावे। यदि पिता न हो तो पितामह (बापका बाप), पितामह न हो तो पिताका भाई (चाचा), चाचा भी न हो तो उसके वंशका कोई पुरुष, और यदि वह भी न हो तो उसके गोत्रका कोई पुरुष उसका यज्ञोपवीत संस्कार करावे। पिताकी अनुज्ञाके बिना यदि कोई दूसरा पुरुष अज्ञानवश द्विजके बालकका यज्ञोपवीत संस्कार करे तो वह नरकको जाता है ॥ ७–८ ॥

ऐसी आज्ञाओंको देखकर प्रायः कितनेही लोग आश्चर्य करने लग जाते हैं और अपनी मोहनी लेखनीयों द्वारा ऊटपटांग मीठी मीठी तर्कें सुनाकर भोले जीवोंकी जिनमतसे श्रद्धा हटाया करते हैं। वे कहते हैं, इस तरहकी बातें लिखनेवालेने जैनियोंकी कर्म-फिलासफीको तो उठाकर ताकमें रख दिया है। पर हम उनसे पूछते हैं कि योग्यता मिलनेपर ऐसे कर्मोंसे क्या नरककी आयु नहीं बँध सकती। क्या आप यह चाहते हैं कि ऐसे कार्य करानेके बाद शीघ्र ही उसे नरकको चला जाना चाहिए। यदि ऐसे कामोंसे नरकायुका बन्ध नहीं हो सकता तो वे कौनसे ऐसे कार्य हैं जिनके जरिये ही नरकायुका बन्ध होता है, अन्यसे नहीं। यदि मान लो कि ऐसे कर्मोंसे नरकायुका बन्ध न होता तो भी जब आप कर्म-फिलासफीको मानते हैं तो कोई न कोई कर्मका बन्ध अवश्य होगा। तब बताइये कि पुण्यबन्ध होगा या पापबन्ध? यदि मर्यादा उल्लंघन करनेवालेको भी पुण्यबन्ध होगा तो उमास्वामी, समन्तभद्र आदि महर्षियोंने विरुद्ध राज्यातिक्रम नामका चौरीका अतीचार क्या यों ही बतला दिया? कल्पना करो कि सरकारने कोई एक नियम बनाया। उसका किसीने उल्लंघन किया। इससे उसे जेल जाना पड़ा। तब बताइये, वह नियमके तोड़नेसे ही जेल गया या कर्मके उदयसे? यदि कहेंगे कि नियम तोड़नेसे गया; तो आपने भी कर्म-फिलासफीको ताकमें रख दी। यदि कहें कि कर्मके उदयसे जेल गया तो उस कर्मका बन्ध उसने कब और किन २ कृत्योंसे किया था! यदि कहेंगे कि कभी किन्हीं कृत्योंसे हुआ होगा, जिसके फलस्वरूप जेल जाना पड़ा। तो यहांपर भी ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि ऐसे कार्योंसे नरकायुका बन्ध हो जाय और कालान्तरमें उसके उदयसे नरक जाना पड़े। मर्यादा उल्लंघन करनेवालेको पुण्यबन्ध होने लगे तो जो प्रत्यक्षमें राजकीय कानूनोंको उल्लंघन कर जेल जाते हैं उन्हें भी पुण्यबन्ध ही होता होगा। धन्य है ऐसे पुण्यबन्धको! जिसका बुरा फल प्रत्यक्षमें भोग रहे हैं और फिर भी वह पुण्य बन्ध ही रहा। अतः मानना पड़ेगा कि ऐसे कर्मोंसे पापबन्ध ही होता है। मान लें कि ऐसे कामोंसे नरकायुरूप महापापका बन्ध नहीं होता तो भी अन्य पाप कर्मोंका बन्ध अवश्य होगा। और उन पापकर्मोंका उदय आनेपर उनके निमित्तसे यह जीव भारी अनर्थ कर बैठे तब तो उनके नरकायुका बन्ध अवश्य हो जायगा। ऐसी हालतमें कहना पड़ेगा कि उसी पापबन्धके परंपरा फलसे ऐसी हालत हुई। तो कारणमें कार्यका या कारण-कारणमें कार्यका उपचार कर

ऐसा कहना अयुक्त नहीं है। यदि आपका यह कहना हो कि ऐसे कार्य करनेके अनन्तर ही नरकको चला जाना चाहिए तो जिसको आप महापापी समझते हैं वह भी क्या महापापके अनन्तर ही नरक चला जाता है ? यदि कहेंगे कि नियम नहीं तो बस ठीक है, यहां भी ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि उसी समय चला जाय या कालान्तरमें चला जाय, कोई नियम नहीं। ग्रन्थकारका सिर्फ आशय इतना ही है कि मर्यादा उल्लंघन करना अच्छा नहीं है, जिसका फल नरकादि गतियोंमें जाना है। इसमें उनने कर्म-फिलासफीको उठाकर कैसे ताकमें रख दिया है सो कुछ समझमें ही नहीं आता। जो बात युक्तियुक्त है उनमें भी व्यर्थकी ऊटपटांग शंकायें उठाई जाती हैं। यह सब कर्मफिलासफीके न समझनेका ही फल प्रतीत होता है।

पुत्रनिश्चयः—स्वाङ्गजः पुत्रिकापुत्रो दत्तः क्रीतश्च पालितः ।
भगिनीजः शिष्यश्चेति पुत्राः सप्त प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

अपनेसे उत्पन्न हुआ पुत्र, पुत्रीका पुत्र, दत्तक पुत्र, खरीदा हुआ पुत्र, पाला हुआ पुत्र, भाँजा और शिष्य, ऐसे सात प्रकारके पुत्र होते हैं ॥ ९ ॥

सूत्रं वलं हस्तमानं चत्वारिंशच्छताधिकम् ।
तत्रैगुण्यं बहिर्वृत्त्याऽन्तर्वृत्त्या त्रिगुणं पुनः ॥ १० ॥
गृहभार्या समादाय स्वयं हस्तेन कर्तयेत् ।
तेन सूत्रेण संस्कार्यं शुभ्रं यज्ञोपवीतकम् ॥ ११ ॥

रुईके एक सौ चालीस हाथ लंबे सूतको तिहराकर उसे बाहरकी तरफसे बंटे। फिर उसे तीन लड़ाकर भीतरकी तरफसे बटे। यज्ञोपवीतके सूतको गृहपत्नी स्वयं अपने हाथसे काते। उसी सूतका सफेद यज्ञोपवीत बनावे ॥ १०–११ ॥

नान्दीश्राद्धे कृते पश्चादुल्कापाताग्निवृष्टिषु ।
सूतकादिनिमित्तेषु न कुर्यान्मौञ्जीबन्धनम् ॥ १२ ॥
यस्य माङ्गलिकं कार्यं तस्य माता रजस्वला ।
तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं हि तत् ॥ १३ ॥
मात्रा सहैव भुञ्जीत ऊर्ध्वं माता रजस्वला ।
व्रतबन्धः प्रशस्तः स्यादित्याह भगवान्मुनिः ॥ १४ ॥
नान्दीश्राद्धे कृते पश्चात्कन्यामाता रजस्वला ।
कन्यादानं पिता कुर्यादित्यादि जिनभाषितम् ॥ १५ ॥

नान्दीश्राद्ध हो चुकनेपर, उल्कापात, अग्निप्रवेश, अतिवृष्टि और सूतक आदि कारण आ उपस्थित हों तो मौंजी-बन्धन-संस्कार न करे। जिस बालकका यज्ञोपवीत-मंगल करनेका है उस बालककी माता यदि रजस्वला हो जाय तो उसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह बालककी आयुका विनाश करनेवाला है। यज्ञोपवीतके समय माताके साथ बैठकर भोजन करनेकी विधि होती है। उसके हो चुकनेके बादमें माता यदि रजस्वला हो जाय तो कोई हानि

नहीं है। ऐसा पूर्वाचार्योंका कहना है। कन्याके विवाहके समय नान्दीश्राद्ध हो चुकनेपर यदि कन्याकी माता रजस्वला हो जाय तो उस समय कन्याका पिता कन्या-दान करे। इत्यादि जिनेन्द्र देवका कहना है ॥ १२–१५ ॥

शुभे ग्रहे शुभे योगे मौञ्जीवन्धोचितं सुतम् ।
संस्नाप्य भूषयित्वा तं मात्रा सह तु भोजयेत् ॥ १६ ॥
केशानां मुण्डनं कृत्वा शिखाशेषं तु रक्षयेत् ।
हरिद्राज्यसुसिन्दूरदूर्वादिकं विलेपयेत् ॥ १७ ॥
पुनः संस्नाप्य पुण्याहवाग्भिः सिक्त्वा कुशाम्बुभिः ।
आज्यभागावसानान्तैः सुगन्धिभिर्विलेपयेत् ॥ १८ ॥
नान्दीश्राद्धं च पूजां च होमं च वाद्यघोषणम् ।
सर्वं कुर्याच्च तस्याग्रे पूर्ववद्गुरुपूजनम् ॥ १९ ॥

मौंजीवन्धन करने योग्य बालकको शुभग्रह और शुभयोगमें स्नान कराकर, उसे कपडे, आभूषण पहनाकर माताके साथ भोजन करावे। चोटी छोड़कर उसके केशोंका मुंडन करावे। हल्दी, घी, सिंदूर, दूब आदिका उसके सिरपर लेप करे। उसके बाद उसे फिर स्नान कराकर पुण्याहवचनों द्वारा कुश और जलसे सेचन कर आज्यभागके अन्तिम सुगन्ध (चंदन) से बालकके लेप करे। फिर इस बालकके सामने पहलेकी तरह नान्दीश्राद्ध, पूजा, होम, और वाद्य-घोषण (बाजा बजवाना), गुरुपूजन आदि सब कार्य करे ॥ १६–१९ ॥

आसन्ने सुमुहूर्ते तु ग्रहस्तोत्रादिकं पठेत् ।
परमेष्ठिनमस्कारमन्त्रं च संस्मरेत्सदा ॥ २० ॥
पद्मासनस्थः पुत्रोऽसौ प्रसाद्यमुदगाननः ।
निर्निमेषं निरीक्षेत पित्रास्यं जन्मशुद्धये ॥ २१ ॥
पुत्रस्य सम्मुखं स्थित्वा तत्पिता सुमुहूर्तके ।
पुत्रास्यं दृष्ट्वा गन्धेन ललाटे तिलकं न्यसेत् ॥ २२ ॥

इसके बाद समीपवर्ती सुमुहूर्तमें ग्रहस्तोत्रोंका पाठ करे। और हमेशह पंचनमस्कारको स्मरण करे। वह बालक उत्तरकी ओर मुख कर पद्मासन (पलाठीमार) बैठकर अपने द्वितीय जन्मकी शुद्धिके लिए निर्निमेष अर्थात् आंखोंकी पलकोंको न झपकाते हुए प्रसन्नतायुक्त पिताके मुखका निरीक्षण करे। बालकका पिता भी अच्छे मुहूर्तमें पुत्रके सामने खड़ा होकर पुत्रके मुखको देखे और उसके ललाटपर तिलक लगावे ॥ २०–२२ ॥

मुञ्जत्रिवर्तिवलितां मौञ्जीं त्रिगुणितां शुभाम् ।
कौपीनकटिसूत्रोर्ध्वं कटिलिंगं प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं कटिप्रदेशे मौंजीबन्धं प्रकल्पयामि स्वाहा। इत्युक्त्वा कट्यां त्रिलिङ्गसमन्वितां मौंजीं बध्नीयात् ।

मौंजकी तीन लड़ी एक रस्सी बनावे। उसे तिगुनी कर एक मौंजीबन्धन बनावे। उसे कौपीन और कटिसूत्रके ऊपर कटिलिंग कल्पित करे। बाद " ॐ ह्रीं कटिप्रदेशे " इत्यादि मंत्र पढ़कर उसके तीन गांठ लगाकर उस मौंजीबन्धनको कमरके चारों ओर बांधे ॥ २३ ॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबन्धनं करोमि पुण्यबन्धो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा। इति कट्यां मुञ्जीं धृत्वा पुष्पाक्षतान् क्षिपेत्।

अर्थात्—" ॐ नमोऽर्हते " इत्यादि मंत्र पढ़कर मौंजीको हाथमें लेकर उसपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे।

रत्नत्रयात्मकं सूत्रं यज्ञसूत्रं सुनिर्मलम्।
हरिद्रागन्धसाराक्तमुरोलिङ्गं प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

मंत्र—ॐ नमः परमशान्ताय शांतिकराय पवित्रीकृतार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा। इत्यनेन यज्ञोपवीतमुरसि धारयेत्।

यह निर्मल यज्ञसूत्र रत्नत्रयस्वरूप है। इसे हल्दी और चन्दनसे रंगे और इसमें उरोलिंग की कल्पना करे। भावार्थ-यह यज्ञोपवीत छातीका चिन्ह है, ऐसा समझे। और " ॐ नमः परमशान्ताय " इत्यादि मन्त्रको पढ़कर उस यज्ञोपवीतको छातीमें धारण करे-पहने ॥ २४ ॥

जिनराजपदाम्भोजशेषसंसर्गपावनीम्।
ब्रह्मग्रन्थिं शिखामेव शिरोलिंगं प्रकल्पयेत् ॥ २५ ॥

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रपरमेष्ठिने ललाटे शेखरं शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा। अनेन शिरसि पुष्पमालां धृत्वा तिलकं कृत्वा नवीनवस्त्रोत्तरीयपरिधानं कुर्यात्।

जो जिनदेवके चरण-कमलसम्बन्धी गन्ध, अक्षत आदि पदार्थोंके स्पर्शसे पवित्र हुई ब्रह्मग्रन्थियुक्त (जिसमें ब्रह्मगांठ लगी हुई है) अपनी चोटीमें ही शिरोलिंगकी कल्पना करे। भावार्थ-अपनी चोटीको ही शिरोलिंग समझे और उसमें ब्रह्मगांठ लगावे। ॥ २५ ॥

" ॐ नमोऽर्हते " इत्यादि मन्त्र पढ़कर सिरमें पुष्पमाला धारण कर और तिलक लगाकर नई धोती और दुपट्टा पहने।

अन्तरीयोत्तरीये द्वे नूत्ने धृत्वा स मानवः।
आचम्य तर्पणान्यर्घ्यानपि कृत्वा यथाविधि ॥ २६ ॥
ततोञ्जलिं च संयोज्य गन्धाक्षतफलान्वितम्।
आचार्यं याचयेत्पुत्रो व्रतानि मुक्तिहेतवे ॥ २७ ॥
तच्छ्रुत्वा श्रावकाचाराद्व्रतानि गुरुरादिशेत्।
गृह्णीयात्तानि सम्प्रीत्या बीजमंत्रं गुरोर्मुखात् ॥ २८ ॥

वह बालक, एक धोती और एक दुपट्टा पहनकर आचमन, तर्पण और अर्घ्यदान यथाविधि करे। पश्चात अंजलि बनाकर उसमें गन्ध अक्षत और फल लेकर मुक्तिकी इच्छासे व्रतग्रहण करनेकी आचार्यसे प्रार्थना करे। उसकी प्रार्थना सुनकर आचार्य महाराज श्रावकाचारके अनुसार उसे व्रतग्रहण करावे। वह बालक बड़ी प्रीतिके साथ आचार्य महाराजके दिये हुए व्रतोंको और बीजमंत्रोंको ग्रहण करे ॥ २६–२८ ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कुमारस्योपनयनं करोमि अयं विप्रोत्तमो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा। इति त्रिरुच्चार्य अघोरं पञ्चनमस्कारमुपदिशेत्।

आचार्य तीन बार इस मंत्रको उच्चारकर उसे व्रत और पंचनमस्कारमंत्रका उपदेश करे।

शुद्धं विवाहपर्यन्तं ब्रम्हचर्यं परिव्रजेत्।
त्रैवर्ण्याचारसूत्रं च छत्रदण्डसमन्वितम् ॥ २९ ॥
विप्रादीनां तु पालाशखदिरोदुम्बराः क्रमात्।
दण्डाः स्वोच्चास्तुरीयांशबद्धहारिद्रकर्पटाः ॥ ३० ॥
अग्नेरुत्तरतः स्थित्वा प्राङ्मुखीस्त्रिजलाञ्जलीन्।
पुष्पाक्षतान्वितान् कृत्वा वटुस्तिष्ठेन्निजासने ॥ ३१ ॥
होमपूजादिकं कार्यं कृत्वा पूर्णाहुतिं गुरुः।
अग्रे यद्यत् कर्तव्यं तत्तु तस्मै निवेदयेत् ॥ ३२ ॥

जबतक विवाह न हो तबतक निर्दोष ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करे। तीन वर्णोंके आचरणके योग्य यज्ञोपवीत पहने तथा छत्र और दण्डा हाथमें रक्खे। ब्राह्मण तो पलाशकी लकड़ीका, क्षत्रिय खदिरकी लकड़ीका और वैश्य उदुंबरकी लकड़ीका दण्डा रक्खे। दण्ड अपनी उंचाईके बराबर ऊंचा होना चाहिए। जिस तरफसे दण्डको हाथमें पकड़ते हैं उस तरफ उसकी उंचाईके चतुर्थांश (चार हिस्सोंमेंसे एक हिस्से) पर हल्दीसे रंगा हुआ कपड़ा चारों ओर लपेटा हुआ होना चाहिए। बाद वह बालक पूर्वकी तरफ मुख कर (अग्निसे उत्तरकी तरफ) खड़ा होवे और पुष्प-अक्षतयुक्त जलकी तीन अंजलि देकर अपने आसनपर बैठे। बाद गुरु होम पूजा आदि कर पूर्णाहुति दे। इसके बाद जो विधि करना हो वह सब गुरु उस बालकको पहले कहता जाय कि अब यह विधि होगी, अब यह होगी, इत्यादि ॥ २९–३२ ॥

निर्गत्य सदनाच्छिष्यस्त्वङ्गणे ह्याचमं परम्।
कृत्वा सूर्यं समालोक्य एकमर्घं समुत्तरेत् ॥ ३३ ॥
शमीव्रीह्यक्षतैर्लाजैः क्षीराज्यचरुभिस्तथा।
संसिञ्च्य जुहुयादग्नौ शान्त्यर्थं तिस्र आहुतीः ॥ ३४ ॥
संवृतौष्ठद्वयं वक्त्रं धौतं तापितपाणिना।
त्रिः समृज्याग्न्युपस्थानं कृत्वाऽग्निं विसृजेत्पुनः ॥ ३५ ॥
आविद्याभ्यसनं चान्ते भिक्षावृत्तिप्रयोजनम्।
गुरोरादेशमाकाङ्क्ष्य बहिर्गच्छेत्स पात्रयुक् ॥ ३६ ॥

वह बालक होमशालासे निकलकर बाहर आँगनमें आवे। वहांपर आचमन कर और सूर्यको देखकर एक अर्घ दे। बाद अग्निके चारों ओर पानीकी धारा देकर उसमें शान्तिके अर्थ शमीकी समिधा, शालीके चांवल, लाज (लाई) दूध, घी और नैवेद्यकी तीन आहूतियां छोड़े। बाद मुखको धोकर दोनों ओठोंको मिलाकर अपने मुखपर अग्निसे हाथ तपा तपाकर तीन बार फेरे। बाद अग्निकी उपस्थापना कर उसका विसर्जन करे। पश्चात् विद्याभ्यासपर्यंत भिक्षा मांगकर भोजन करना उस बालकका कर्तव्य है; इसलिए वह गुरुसे आज्ञा लेकर पात्र-सहित घरसे बाहर निकले ॥ ३३–३६ ॥

सव्यपादं विधायाग्रे शनैर्गच्छेद्गृहाद्बहिः।
ब्राह्मणानां गृहे गत्वा भिक्षां याचेत शिक्षया ॥ ३७ ॥
भिक्षाकाले तु निःशङ्को भिक्षां देहीति वाग्वदेत्।
यथा शृण्वन्ति गेहस्थास्त्रिवर्णाचारसंयुताः ॥ ३८ ॥
प्रथमकरणादी द्वौ चरणद्रव्ययुग्मकम्।
अनुयोगाश्च चत्वारः शाखा विप्रमते मताः ॥ ३९ ॥
तासां मध्ये तु या शाखा यस्य वंशे प्रवर्तते।
तामुक्त्वा गृहिणी तस्मै सन्दद्यात्तण्डुलाञ्जलिम् ॥ ४० ॥

वह बालक अपने दाहिने पैरको प्रथम आगे बढ़ाकर धीरे धीरे घरसे बाहर निकले। ब्राह्मणोंके घरपर जाकर गुरुकी शिक्षाके अनुसार भिक्षा मांगे। भिक्षाके समय निःशंक अर्थात् लाज छोड़कर "भवति भिक्षां देहि" इस तरहके वचन बोले। अपने मुखसे इस तरहके वचन बोले कि जिन्हें तीन वर्णोंके आचरणयुक्त गृहस्थ स्पष्ट सुन लें। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, और द्रव्यानुयोग, ये चार शाखाएं ब्राह्मणोंके मतमें मानी गई हैं। उनमेंसे जो शाखा जिस ब्राह्मणके घरमें चली आई हो उसे बोलकर गृहिणी उस बालकको अंजलिभर चावलोंकी भिक्षा देवे ॥ ३७–४० ॥

भिक्षायाचनकं दृष्ट्वा बन्धुवर्गो वदेदिदम्।
दूरदेशान्तरे पुत्रमागच्छ त्वं तु बालकः ॥ ४१ ॥
अत्रैव गुरुसान्निध्ये विद्याभ्यासं सदा कुरु।
मध्ये कुटुम्बवर्गस्य सर्वेषां सुखदायकः ॥ ४२ ॥
अङ्गीकृत्य वचस्तेषां गच्छेच्चासौ जिनालयम्।
क्रियां कुर्यात्तु होमादिसम्भवां जिनपूजनम् ॥ ४३ ॥
ब्राह्मणादींस्ततः सर्वान् भोजयित्वा यथाविधि।
वस्त्रभूषणताम्बूलैः पुण्यार्थं परिपूजयेत् ॥ ४४ ॥

उस बालककी भिक्षाकी याचनाको देखकर बंधुवर्ग इस तरहके वचन बोलें कि, हे बालक! तू अभी बालक है, दूर देशोंको मत जा, यहींपर गुरुके निकट हमेशह विद्याभ्यास कर, और

कुटुंबमें रहकर सबको सुखी कर। इन वचनोंको सुनकर वह बालक उसे स्वीकार करे और चैत्यालयमें जावे। वहांपर होम जिनपूजन आदि क्रियाएं करे। इसके बाद ब्राह्मण आदि सारे मनुष्योंको भोजन कराकर, पुण्यके अर्थ वस्त्र, आभूषण और तांबूलद्वारा विधिपूर्वक उनका यथायोग्य सत्कार करे ॥ ४१-४४ ॥

बोधि-पूजन।

चतुर्थवासरे चापि संस्नातः पितृसन्निधौ।
संक्षिप्तहोमपूजादि कर्म कुर्याद्यथोचितम् ॥ ४५ ॥
शुचिस्थानस्थितं तुङ्गं छेददाहादिवर्जितम्।
मनोज्ञं पूजितुं गच्छेत्सुयुक्त्याऽश्वत्थभूरुहम् ॥ ४६ ॥
दर्भपुष्पादिमालाभिर्हरिद्राक्तसुतन्तुभिः।
स्कन्धदेशमलंकृत्य मूलं जलैश्च सिंचयेत् ॥ ४७ ॥
वृक्षस्य पूर्वदिग्भागे स्थण्डिलस्थाग्निमण्डले।
नव नव समिद्भिश्च होमं कुर्याद्घृतादिकैः ॥ ४८ ॥
पूतत्वयज्ञयोग्यत्वबोधित्वाद्या भवन्तु मे।
त्वद्वद्बोधिद्रुमत्वं च मद्वच्चिन्हधरो भव ॥ ४९ ॥
तं वृक्षमिति सम्प्रार्थ्य सर्वमंगलहेतुकम्।
वृक्षं वन्हिं त्रिः परीत्य ततो गच्छेद्गृहं मुदा ॥ ५० ॥
एवं कृते न मिथ्यात्वं लौकिकाचारवर्तनात्।
भोजनानन्तरं सर्वान् सन्तोष्य निवसेद्गृहे ॥ ५१ ॥
प्रतिमासं क्रियां कुर्याद्धोमपूजापुरःसराम्।
श्रावणे तु विशेषेण सा क्रियाऽऽवश्यकी मता ॥ ५२ ॥

चौथे दिन वह बालक, अच्छी तरह स्नानकर पिताके निकटमें संक्षेपसे यथायोग्य होम पूजा आदि कर्म करे। पवित्र स्थानमें खड़ा हो, ऊंचा हो, छिन्नभिन्न न हो, और जला हुआ न हो, ऐसे एक मनोहर पीपलके वृक्षको देखकर उसकी पूजाके लिए वह बालक जावे। दर्भ, फूलमाला हल्दीसे रंगे हुए सूतसे उस वृक्षके स्कंधको सुशोभित कर उसकी जड़को जलसे सींचे। उस वृक्षकी पूर्व दिशामें एक चौकोन चबूतरा बनाकर उसमें गोल अग्निकुंड बनावे। उसमें अग्नि तैयार कर नौ नौ समिधाओं और घृत आदिसे होम करे। और हे वृक्ष! तेरी तरह मुझमें भी पवित्रता हो, यज्ञयोग्यता हो, जिस तरह तुझे बोधि नाम प्राप्त है उसी तरह मुझे बोधि-रत्नत्रयकी प्राप्ति हो और तू भी मेरे समान चिन्हका धारण करनेवाला हो। इस प्रकार सम्पूर्ण मंगलोंके कारण उस वृक्षराजसे प्रार्थना करे। पश्चात् उसके तीन प्रदक्षिणा देकर सहर्ष घरपर आवे। इस तरह इस लौकिक आचरणके करनेसे मिथ्यापन नहीं है। घरपर आकर भोजनके बाद सबको संतोषित कर घरमें रहे। यह क्रिया हर महीनेमें करता रहे। परंतु श्रावण महीनेमें यह क्रिया अवश्य की जानी चाहिए ॥ ४५-५२ ॥

भावार्थ–सूर्यको अर्घ देना, संक्रान्तिके दिन दान देना, गंगादि नदियोंमें स्नान करना, वृक्षकी पूजा करना, सरोवरकी पूजा करना, इनको लोकमूढ़ता आगममें कहा है। यहांपर ग्रंथकारने वृक्षपूजन बताया है, इसलिए इसका लोकमूढ़तामें अन्तर्भाव होना चाहिए। किन्तु ग्रन्थकार लिखते हैं कि इस लौकिक आचरणके करनेसे मिथ्यात्व नहीं है। इससे यह मालूम होता है कि इसमें कुछ थोड़ासा रहस्य है। सिर्फ जिस तरह शरीरकी निर्मलताके लिए कुए बावड़ीपर स्नान करते हैं उसी तरह गंगा यमुना आदि नदियोंमें स्नान करना लोकमूढ़ता नहीं है। किंतु वर (वांछित फलको प्राप्त करने) की इच्छासे उनमें स्नान करना लोकमूढ़ता है। यदि हम घरपर स्नान करते हैं और उसमें भी हम इस इच्छासे स्नान करें कि इससे हमें स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होगी तो यह इच्छा भी परमार्थके प्रतिकूल होनेसे मिथ्या ही है। इसलिए यहांपर ऐसा समझना चाहिए कि जो ऐसे अभिप्रायोंको धारण कर गंगा यमुनामें स्नान करें तो उसे लोकमूढ़ताका सेवन करनेवाला कहना चाहिए और जो सामान्यसे अर्थात् घरपर जिस तरह नित्य स्नान करता है उसी तरह स्नान करे तो वह मिथ्यापन नहीं है। यह न्याय नहीं है कि कोई अपनी नित्यक्रियाके अनुसार या वैसे ही गंगामें स्नान कर रहा हो और उसे चटसे मिथ्याती कह दें। केवल कहनेसे कुछ नहीं होता, होता है स्नान करनेवालेके अभिप्रायोंसे। स्वर्गमोक्षकी इच्छासे सूर्यको अर्घ देना मिथ्या है। किन्तु प्रतिष्ठादिके समय विशेष विधिके अनुसार सूर्यको अर्घ देना मिथ्या नहीं है, जो अखिल प्रतिष्ठापाठोंमें प्रसिद्ध ही है। स्वर्ग मोक्षकी इच्छासे संक्रांतिके दिन दान देना मिथ्या है, परंतु जो स्वतःस्वभाव प्रतिदिन भक्तिदान या करुणादान करता है और वह उस दिन भी अपने हमेशहकी तरह दान देवे तो उसे भी मिथ्यादृष्टि कहने लग जायें, यह न्याय नहीं है। सरोवरकी पूजा करना मिथ्या है, परंतु प्रतिष्ठादिकोंके समय जो सरोवरकी पूजा की जाती है वह मिथ्या नहीं है। काली, चंडी, मुंडी देवियोंका सत्कार करना मिथ्या है। परंतु प्रतिष्ठादिकके समय इनका भी यथायोग्य सत्कार किया जाता है वह मिथ्या नहीं है। इसे सम्पूर्ण प्रतिष्ठापाठोंके ज्ञाता पुरुष स्वीकार करेंगे। जो लोग किसीभी शास्त्रको नहीं मानते हैं उनके लिए हमारा कुछ कहना नहीं है। परन्तु हमारे बड़े बड़े दिग्गज विद्वान और धर्मके ज्ञाता पुरुष प्रतिष्ठापाठोंको प्रमाण मानते हैं और उनके अनुसार प्रतिष्ठा कराते हैं। वे तो इन उपर्युक्त बातोंको अवश्य ही स्वीकार करेंगे। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि विशेष विशेष विधियोंमें स्वर्ग मोक्ष आदिकी इच्छा न कर शान्तिके लिए ऐसा करना मिथ्या नहीं है। इसी तरह इस यज्ञोपवीत नामकी विशेष विधिमें बोधिकी इच्छासे बोधिवृक्षकी पूजा करना मिथ्या नहीं होना चाहिए। हां, यहांपर यह शंका हो सकती है कि उस जड़ पदार्थसे बोधि–ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? इसका समाधान यह है कि ज्ञानप्राप्तिमें अंतरंग कारण उसका क्षयोपशम है और बाह्य कारण अनेक हैं। संभव है कि जिस तरह क्षेत्रको निमित्त लेकर ज्ञानका क्षयोपशम हो जाता है, वैसे ही ऐसा करनेसे भी ज्ञानका क्षयोपशम हो जाय। वह क्षेत्र भी जड़ ही है। जैसे पुस्तक आदि जड़ पदार्थसे ज्ञानका क्षयोपशम होता है, वैसे ही उस वृक्षके निमित्तसे भी क्षयोपशम हो सकता है। जड़ वस्तुएँ आत्माके ऊपर अपना असर डाला करती हैं। इसके अनेकों दृष्टान्त भरे पड़े हैं। संभव है कि उस वृक्षके निमित्तसे भी आत्मापर एक

ऐसा असर पड़ जाय जिससे उसकी आत्मामें विलक्षणता आ जाय। केवल जड़ कहकर हरएककी अवहेलना करना ठीक नहीं है। मंदिरोंको, सिद्धस्थानोंको, समवशरणको, परमात्मासंबंधी हरएक उपकरणको, गन्धोदकको आदि अनेक जड़ पदार्थोंको नमस्कार करते ही हैं। जिन अभिप्रायोंसे यह ठीक है वैसे ही इस समयके अभिप्रायोंसे यह भी ठीक हो सकता है। हां, यदि इस इच्छासे प्रेरित होकर हमेशह ही या स्वर्गादिककी इच्छासे या उस वृक्षको ही कर्त्ता हर्त्ता मानकर जब कभी वह दृष्टिगोचर हो तभी उसे हाथ जोड़ना—नमस्कार करना अवश्य मूढ़ता है। लोग जो हमेशह या विशेष विशेष दिनोंमें पीपल पूजन करते हैं वह भी मूढ़ता है। इन बातोंसे तो ग्रन्थकारका कहना अयुक्त मालूम नहीं पड़ता। जो लोग वीतराग प्रतिमाको, उसके स्तोत्रोंको, प्रतिष्ठा-पाठोंको अयुक्त बतलाते हैं उनके लिए तो सभी अयुक्त ही है। वे तो वृक्ष-पूजन दूर रहे, यज्ञोपवीत संस्कारको ही अयुक्त बताते हैं। कहनेका सारांश यह है कि, हरएक कथन आपेक्षिक हुआ करता है। यदि उनमेंसे अपेक्षा हटा दी जाय और विचार किया जाय तो जैनमतके सभी विषयोंमें परस्पर विरोध झलकने लगेगा। और यदि उसीको अपेक्षासे विचार करेंगे तो विरोधका पता भी नहीं चलेगा। जैसे व्यवहारनय और निश्चयनयको ही लीजिये। व्यवहारके बिना निश्चय कार्य-कारी नहीं है और निश्चयके बिना व्यवहार कार्यकारी नहीं है। एक स्थानमें गृहस्थाश्रमकी-पुत्र आदिकी भारी प्रशंसा की गई है। दूसरे स्थानोंमें उनको हेय बतलाया है। क्या यह परस्पर विरोध नहीं है। परंतु अपेक्षासे विचार किया जाय तो रंचभर भी परस्परमें विरोध नहीं है। इसी तरह जिन अपेक्षा-ओंसे सूर्यको अर्घ देना, वृक्षपूजन करना, संक्रातिमें दान देना, गंगायमुना आदिमें स्नान करना बुरा बताया गया है उन अपेक्षाओंसे इन कार्योंको करना अवश्य बुरा है। और जिन अपेक्षाओंसे इनका निषेध नहीं है, उन अपेक्षाओंसे इनका करना बुरा भी नहीं है; सिर्फ स्थान का विचार कर लेना आवश्यक है।

वर्षेऽतीते त्रिकालेषु सन्ध्यावन्दनसत्क्रियाम्।
सदा कुर्यात्स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः ॥ ५३ ॥

यज्ञोपवीत धारण किये हुए एक वर्ष व्यतीत होजानेपर यज्ञोपवीत धारण करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष तीनों कालोंमें अर्थात् सुबह, दोपहर और शामको संध्या, वंदन आदि उत्तम क्रियाएं करे ॥ ५३ ॥

उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते।
एकमेव महत्पूतं सावधिब्रह्मचारिणाम् ॥ ५४ ॥
यज्ञोपवीते द्वे धार्ये पूजायां दानकर्मणि।
तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ ५५ ॥
रन्ध्रादिनाभिपर्यन्तं ब्रह्मसूत्रं पवित्रकम्।
न्यूने रोगप्रवृत्तिः स्यादधिके धर्मनाशनम् ॥ ५६ ॥
आयुःकामः सदा कुर्यात् द्वित्रियज्ञोपवीतकम्।
पञ्चभिः पुत्रकामः स्याद्धर्मकामस्तथैव च ॥ ५७ ॥

यज्ञोपवीतेनैकेन जपहोमादिकं कृतम्।
तत्सर्वं विलयं याति धर्मकार्यं न सिद्ध्यति॥ ५८॥

पतितं त्रुटितं वाऽपि ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत्।
नूतनं धारयेद्विप्रः स्नानसङ्कल्पपूर्वकम्॥ ५९॥

यज्ञोपवीतमेकैकं प्रतिमन्त्रेण धारयेत्।
आचम्य प्रतिसङ्कल्पं धारयेन्मुनिरब्रवीत्॥ ६०॥

एकमन्त्रैकसङ्कल्पं धृतं यज्ञोपवीतकम्।
एकस्मिँस्त्रुटिते सर्वं त्रुटितं नात्र संशयः॥ ६१॥

बालकके लिए एक यज्ञोपवीत होना चाहिए। गृहस्थ और वानप्रस्थके लिए दो यज्ञोपवीत होना आवश्यक है। सावधि (नियत समयतक) ब्रह्मचारी रहनेवालेके लिए एक ही यज्ञोपवीत परम पवित्र है। पूजा करते समय और दान देते समय दो यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। तीसरा यज्ञोपवीत उत्तरीय-वस्त्रके लिए होता है। वह वस्त्रके अभावमें वस्त्रकी पूर्तिस्वरूप होता है। तालुके छेदसे लेकर नाभिपर्यन्त लंबा यज्ञोपवीत होना चाहिए। इस प्रमाणसे छोटा यज्ञोपवीत रहनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है और बड़ा रहनेसे धर्मका नाश होता है। अपनी आयुष्यकी खैर-ख़्‌वाही चाहनेवाला हमेशह दो या तीन यज्ञोपवीत पहना करे। पुत्र चाहनेवाला तथा धर्म चाहनेवाला पुरुष पांच यज्ञोपवीत पहने। एक यज्ञोपवीत पहन कर जप होम आदि करनेसे वह सब निष्फल होता है। इससे कुछ भी धर्मकार्य सिद्ध नहीं होते। यदि यज्ञोपवीत गिर पड़े या टूट जाय तो स्नान-संकल्पपूर्वक नया यज्ञोपवीत धारण करे। जिसे जितने यज्ञोपवीत पहनने हों उसे चाहिए कि एक एक यज्ञोपवीतके प्रति जुदा जुदा मंत्र पढ़कर पहने। और हरएक संकल्पके प्रति आचमन कर यज्ञोपवीत पहने। ऐसा पूर्व मुनियोंका कहना है। एक मंत्र और एक संकल्पपूर्वक यदि यज्ञोपवीत पहना जाय तो एकके टूट जानेपर सभी टूटेहुए समझना चाहिए, इसमें संशय नहीं है। क्योंकि एक मंत्र और एक संकल्पसे पहनेहुए सबके सब यज्ञोपवीत एक सरीखे ही हो जाते हैं॥ ५४–६१॥

यज्ञोपवीतं चानन्तं मुञ्जीं दण्डं च धारयेत्।
नष्टे भ्रष्टे नवं धृत्वा नष्टं चैव जले क्षिपेत्॥ ६२॥

यज्ञोपवीत, अनंत, मुंजी, और दण्डको वह बालक हमेशह अपने पास रखे। यदि ये चीजें टूट-फूट जायँ तो नई धारण करे और टूटी-फूटीको जलमें क्षेपण करे॥ ६२॥

सदोपवीतवद्धार्यं वासः सकलकर्मसु।
सह यज्ञोपवीतेन बध्नीयाज्जलकर्मणि॥ ६३॥

जैसे सम्पूर्ण कृत्योंमें यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, वैसे ही सारे कामोंमें एक दुपट्टा भी, जैसा कि शरीरमें यज्ञोपवीत पहना गया है उसी तरह धारण करे। और जलकृत्योंमें उसे और यज्ञोपवीतको बांधे॥ ६३॥

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्वं त्रिवृद्धृतम् ।
हेमसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्य पट्टसूत्रकम् ॥ ६४ ॥
उच्छिष्टं तोरणं छिन्नं द्विकृतं विधवाकृतम् ।
भुक्तोत्तरे त्वनध्याये सप्ततन्तु न धारयेत् ॥ ६५ ॥
सूतके पातके म्लाने तैलस्याभ्यङ्गके तथा ।
कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः ॥ ६६ ॥

ब्राह्मण रुईका, क्षत्रिय सुवर्णका और वैश्य पट्टसूत्रका यज्ञोपवीत धारण करें। जो किसी तरह जूंठा होगया हो, तोरणरूप किया गया हो-दोनों हाथोंसे पकड़कर गलेके बाहर निकाल लिया गया हो, टूट गया हो, दो बार सूत कातकर बनाया गया हो, विधवाके द्वारा बनाया गया हो, भोजनके बाद बनाया गया हो और अनध्यायके दिनोंमें बनाया गया हो, ऐसा सात तंतुका यज्ञोपवीत नहीं पहनना चाहिए। सूतक होनेपर, पातक होनेपर, मैला हो जानेपर और शरीरमें तैल मर्दन करनेपर उस यज्ञोपवीतको गलेसे बाहर निकालकर जलसे अच्छी तरह धोवें ॥ ६४-६६ ॥

व्रतचर्या विधि ।

व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपविभ्रतः ।
कट्यूरूरःशिरोलिङ्गमनूचानव्रतोचितम् ॥ ६७ ॥

अब उत्तम व्रतके योग्य कटि, उरु, हृदय और मस्तकके चिन्होंको धारण करनेवाले इस बालककी व्रतचर्या नामकी क्रिया कही जाती है ॥ ६७ ॥

कटिलिङ्गं भवेदस्य मौञ्जीबन्धं त्रिभिर्गुणैः ।
रत्नत्रयविशुद्ध्यङ्गं तद्धि चिन्हं द्विजन्मनाम् ॥ ६८ ॥

तीन लड़का बना हुआ मौजीबंध ही इस बालकका कटिलिंग है, जो रत्नत्रयकी विशुद्धिका कारण है और द्विजन्मी पुरुषोंका चिन्ह है—उससे यह जाना जा सकता है कि, इसके गर्भजन्म और यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्म इस तरह दो जन्म, हो चुके हैं ॥ ६८ ॥

तच्चेष्टमूरुलिंगं च सधौतसितशाटकम् ।
आर्हतानां कुलं पूतं विशालं चेति सूचने ॥ ६ ॥

धोई हुई जो सफेद धोती पहनी जाती है वही इसके उरुलिंग है, जो आर्हत्पुरुषोंका-जैनोंका कुल पवित्र और बड़ा है, ऐसा सूचित करता है ॥ ६९ ॥

उरोलिङ्गमथास्य स्याद्ग्रन्थितं सप्तभिर्गुणैः ।
यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्थानसूचकम् ॥ ७० ॥

सात धागेका बना हुआ जो यज्ञोपवीत पहना जाता है वही इसके उरोलिंग-हृदयका चिन्ह है, जो आगे कहे जानेवाले सात परमस्थानोंको सूचित करनेवाला है ॥ ७० ॥

शिरोलिंगं च तस्येष्टं परं मौण्ड्यमनाविलम् ।
मौण्ड्यं मनोवचःकायगतमस्योपबृंहितम् ॥ ७१ ॥

निर्दोष—विकाररहित जो शिरका मुंडन है वही उस बालकके परम शिरोलिंग है, जो मन वचन और कायकी शुद्धिको बढ़ाता है ॥ ७१ ॥

एवम्प्रायेण लिङ्गेन विशुद्धं धारयेद्व्रतम् ।
स्थूलहिंसाविरत्यादि ब्रह्मचर्योपबृंहितम् ॥ ७२ ॥

ऊपर बताये गये चारों लिंगयुक्त वह बालक स्थूल हिंसाका त्याग, ब्रह्मचर्य वगैरह निर्मल व्रत धारण करे ॥ ७२ ॥

दन्तकाष्ठग्रहो नास्य न ताम्बूलं न चाञ्जनम् ।
न हरिद्रादिभिः स्नानं शुद्धिस्नानं दिनम्प्रति ॥ ७३ ॥
न खट्वाशयनं तस्य नान्याङ्गपरिघट्टनम् ।
भूमौ केवलमेकाकी शयीत व्रतशुद्धये ॥ ७४ ॥

यह ब्रह्मचारी काष्ठ (लकड़ी) से दतौन न करे, तांबूल न खावे, आखोंमें काजल न आंजे, हल्दी वगैरहका उबटन न करे, केवल दिनमें एक बार मनःशुद्धिके अर्थ शुद्ध जलसे स्नान करे, खाटपर न सोवे, और औरोंके शरीरसे अपने शरीरका घर्षण न करे—दूसरेके शरीरसे अपना शरीर न मिलावे। वह केवल अपने व्रतोंकी शुद्धिके लिए जमीनपर अकेला सोवे ॥ ७३–७४ ॥

व्रतावतरण ।

श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे पूर्ववत्क्रियाम् ।
पूर्वहोमादिकं कुर्यान्मौञ्जीं कट्याः परित्यजेत् ॥ ७५ ॥
तत आरभ्य वस्त्रादीन् गृह्णीयात्परिधानकम् ।
शय्यां शयीत ताम्बूलं भक्षयेद्गुरुसाक्षितः ॥ ७६ ॥

वह बालक श्रावण महीनेके श्रवण नक्षत्रमें पहलेकी तरह होम, जिनपूजा वगैरह करके कमरमें जो मौंजीबन्धन बँधा था उसे अलहदा करे। उसी वक्तसे लेकर गृहस्थके पहनने योग्य वस्त्र पहने, शय्यापर सोवे और तांबूल भक्षण करे। यह व्रतावरण क्रिया गुरुसाक्षिपूर्वक करे ॥ ७५–७६ ॥

अथवा—यावद्विद्यासमाप्तिः स्यात्तावदस्येदृशं व्रतम् ।
ततोऽप्यूर्ध्वं व्रतं तु स्याद्यन्मूलं गृहमेधिनाम् ॥ ७७ ॥

अथवा जबतक इस बालकके विद्याकी समाप्ति होती है तबतक उसके ऊपर बताये हुए व्रत रहते हैं। इसके बाद भी व्रत तो रहते हैं, परन्तु वे व्रत रहते हैं जो गृहस्थोंके योग्य होते हैं। भावार्थ—विद्यासमाप्तिपर्यन्त तो ऊपर बताये हुए व्रत रहते हैं। बादमें व्रत छूट जाते हैं और गृहस्थके योग्य अष्टमूलगुणादि व्रत उसके होते हैं ॥ ७७ ॥

सूत्रमौपासकं चास्य स्यादध्येयं गुरोर्मुखात् ।
विनयेन ततोऽन्यच्च शास्त्रमध्यात्मगोचरम् ॥ ७८ ॥

इस बालकको अपने गुरुमुखसे विनयपूर्वक श्रावकाचार पढ़ना चाहिए। इसके बाद अन्य अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन करना चाहिए ॥ ७८ ॥

नं० ७७ और ७८ वें श्लोक आदिपुराणके हैं। इसके बाद आदिपुराणमें इसी क्रियामें यह और भी बताया है कि अपने सुसंस्कारोंका उद्बोधन करनेके लिए और वैयात्यकी ख्यातिके लिए भी इसे व्याकरणशास्त्र और न्यायशास्त्रका अध्ययन करना चाहिए। श्रावकाचार पढ़नेके बाद इनके पढ़नेमें कुछ दोष नहीं है। ज्योतिःशास्त्र, छन्दशास्त्र, शकुनशास्त्र, और गणितशास्त्र भी उसे विशेष रीतिसे पढ़ने चाहिए। जब वह विद्या पढ़ चुके उसके बाद उसके व्रतावतरण-पूर्वोक्त व्रत छूट जाते हैं। क्योंकि वे व्रत एक विशेष विषयको लिये हुए थे। बाद वह अपने स्वाभाविक व्रतोंमें स्थित होजाता है। मधुत्याग, पंचउदुंबर फलोंका त्याग, और स्थूल-हिंसादि पंच पापोंका त्याग ये सब व्रत उसके सार्वकालिक जन्मपर्यन्त होते हैं।

व्रतावतरणं चेदं गुरुसाक्षिकृतार्चनम् ।
वत्सरात् द्वादशादूर्ध्वमथवा षोडशात्परम् ॥ ७९ ॥
वस्त्राभरणमाल्यादिग्रहणं गुर्वनुज्ञया ।
शस्त्रोपजीविवर्ग्यश्चेद्धारयेच्छस्त्रमप्यदः ॥ ८० ॥
वैश्यश्चेद्व्यवहारादिव्यापारं कारयेन्मुदा ।
दोषे जाते त्रयो वर्णाः प्रायश्चित्तं हि कुर्वते ॥ ८१ ॥

बारहवें अथवा सोलहवें वर्षके बाद यह व्रतावतरण क्रिया होती है। इसमें भी गुरुकी साक्षीसे पूजा, होम आदि किये जाते हैं। गुरुकी सम्मतिके अनुसार वस्त्र, आभूषण, माला आदि ग्रहण करे। और यदि वह क्षत्रिय हो तो शस्त्र धारण करे, और वैश्य हो तो व्यापार करे। तीनों वर्णके मनुष्य यदि कोई उनके हाथसे अपराध हो गया हो तो प्रायश्चित्त लें ॥ ७८-८१ ॥

दोष और प्रायश्चित्त।

मद्यमांसमधुं भुंक्ते अज्ञानात्पलपञ्चकम् ।
उपवासत्रयं चैकभक्तं द्वादशकं तथा ॥ ८२ ॥
अन्नदानाभिषेकाश्च प्रत्येकाष्टोत्तरं शतम् ।
तीर्थयात्राद्वयं पुष्पाक्षतान्दद्यात्स्वशक्तितः ॥ ८३ ॥

यदि अज्ञानवश बीस तोलापर्यन्त मद्य, मांस और मधु खा लिया गया हो तो तीन उपवास, बारह एकाशन, एक सौ आठ अन्नदान और इतने ही स्नान करे; दो बार तीर्थयात्रा करे और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्प और अक्षत देवे ॥ ८२-८३ ॥

म्लेच्छादीनां च गेहे तु भुक्ते त्रिंशदुपोषणम् ।
एकभुक्त त्रिपञ्चाशत्पात्रदानशतद्वयम् ॥ ८४ ॥
एका गौः पंच कुम्भाश्चाभिषेकानां शतद्वयम् ।
पुष्पाक्षतं तीर्थयात्राद्वयं कुर्याद्विशेषतः ॥ ८५ ॥

म्लेच्छादि अर्थात् नीच लोगोंके घरपर भोजन कर लिया गया हो तो तीस उपवास, तिरेपन एकाशन, और दो सौ पात्रको दान करे; एक गाय, पांच कलश देवे, दो सौ बार जलस्नान करे, पुष्प और अक्षत देवे तथा दो बार तीर्थयात्रा करे ॥ ८४-८५ ॥

विजातीयानां गेहे तु भुक्ते चोपोषणं नव।
एकभुक्ताश्च पञ्चाशदत्राभिषेकाः समाः ॥ ८६ ॥

विजातीय लोगोंके घरपर भोजन कर लिया हो तो नौ उपवास, पचास एकाशन और इतने ही अभिषेक करे ॥ ८६ ॥

मृतेऽग्नौ पातके भोक्ताः प्रोषधाः पञ्चविंशतिः।
एकभुक्त्यन्नदानाभिषेकपुष्पशतत्रयम् ॥ ८७ ॥

अग्निमें जलकर मरजाने वालेके शरीर-संस्कार करने वालेकी शुद्धि, पचीस उपवास करने, तीन सौ एकाशन करने, तीन सौ अन्नदान देने, तीन सौ बार जल-स्नान करने और तीन सौ पुष्प देनेसे होती है ॥ ८७ ॥

गिरेः पातोऽहिदष्टश्च गजादिपतनान्मृतः।
प्रोषधाः पञ्च पात्रान्नयात्राभिषेकविंशतिः ॥ ८८ ॥
तीर्थयात्राञ्च गोदानं गन्धपुष्पाक्षतादयः।
यथाशक्ति गुरोः पूजा द्रव्यदानं जिनालये ॥ ८९ ॥

पर्वतपरसे गिरनेसे, सांपके डस लेनेसे, हाथी वगैरह परसे गिरनेसे यदि कोई मरगया हो, तो उसके शरीरका संस्कार करने वालेकी शुद्धि पांच प्रोषधोपवास करनेसे, बीस सत्पात्रोंको दान करनेसे, बीस बार जल-स्नान करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे और अपनी शक्ति-अनुसार जिन-मंदिरमें द्रव्य देनेसे होती है ॥ ८८-८९ ॥

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु शिरोमुण्डं विधीयते।
काश्मीरागुरुपुष्पादिद्रव्यदानं स्वशक्तितः ॥ ९० ॥
ग्रहपूजा यथायोग्यं विप्रेभ्यो दानमुत्तमम्।
संघपूजा गृहस्थेभ्यो ह्यन्नदानं प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥

सब तरहके प्रायश्चित्तोंमें शिरका मुंडन करावे, अपनी शक्ति-अनुसार केशर, अगुरु, पुष्प-अक्षत आदि द्रव्योंका दान करे, जो ग्रह जैसे हों उनका उन्हींके योग्य सत्कार करे, ब्राह्मणोंको दान दे, संघकी पूजा करे और गृहस्थोंको भोजन करावे ॥ ९०-९१ ॥

चाण्डालादिकसंसर्गं कुर्वन्ति वनितादिकाः।
पञ्चाशत्प्रोषधश्चैकभक्ताः पञ्चशतानि च ॥ ९२ ॥
सुपात्रदानं यात्राश्च पञ्चाशत्पुष्पचन्दनम्।
संघपूजा च जापं च द्रव्यदानं जिनालये ॥ ९३ ॥

यदि श्रावकोंकी स्त्री वगैरहका चांडालादिसे स्पर्श होगया हो तो वे पचास प्रोषधोपवास, और पांचसौ एकाशन करें, सुपात्रोंको दान दें, तीर्थयात्रा करें, पचास पुष्प-चंदन देवें, चारों संघकी पूजा करें, जाप जपें और जिनालयमें द्रव्य देवें ॥ ९२-९३ ॥

मालीकादिकसंसर्गं कुर्वन्ति वनितादयः।
प्रोषधाः पञ्च चैकान्नदश पात्राणि विंशतिः ॥ ९४ ॥

यदि स्त्री आदिकोंका माली आदि स्पर्श्य शूद्रोंसे संसर्ग होगया हो तो वे पांच प्रोषधोपवास और दश एकाशन करें तथा बीस पात्रोंको दान देवें ॥ ९४ ॥

सूतके जन्ममृत्योश्च प्रोषधाः पंच शक्तितः ।
एकभक्ता दशैकाद्यपात्रदानं च चन्दनम् ॥ ९५ ॥

जन्म और मृत्युसंबंधी सूतकवालेसे संसर्ग होजाय तो अपनी शक्तिके अनुसार पांच प्रोषधोपवास करे, एकसे लेकर दशपर्यंत एकाशन करे, इतने ही पात्रोंको दान और चंदन देवे ॥ ९५ ॥

आयाते मुखेऽस्थिखण्डे चोपवासास्त्रयो मताः ।
एकभुक्ताश्च चत्वारो गन्धाक्षताः स्वशक्तितः ॥ ९६ ॥

यदि मुंहमें हड्डीका टुकड़ा चला जाय तो तीन उपवास और चार एकाशन करे। तथा अपनी शक्तिके अनुसार गन्ध अक्षत देवे ॥ ९६ ॥

स्पर्शितेऽस्थिकरे स्वाङ्गे स्नात्वा जपशतत्रयम् ।
अस्थि यथा तथा चर्मकेशश्लेष्ममलादिकम् ॥ ९७ ॥

जिसने अपने हाथमें हड्डी ले रखी हो उससे या वैसे ही हड्डीसे अपने शरीरका स्पर्श होजाय तो स्नान कर तीन सौ जाप करे। जैसा हड्डीसे छू जानेका प्रायश्चित्त है वैसा ही चमड़ा, केश, श्लेष्म (खकार), मल, मूत्र आदिसे छू जानेका समझना चाहिए ॥ ९७ ॥

गर्भस्य पातने पापे प्रोषधा द्वादश स्मृताः ।
एकभक्ताश्च पञ्चाशत् पुष्पाक्षताश्च शक्तितः ॥ ९८ ॥

गर्भपातका पाप होनेपर बारह प्रोषधोपवास, पचास एकाशन और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्प-अक्षत माने गये हैं ॥ ९८ ॥

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा विकलत्रयघातने ।
प्रोषधा द्वित्रिचत्वारो जपमालास्तथैव च ॥ ९९ ॥

अज्ञानसे अथवा प्रमादसे दो-इंद्रिय, तीन-इंद्रिय और चार-इंद्रिय जीवका घात होगया हो तो क्रमसे दो उपवास, तीन उपवास और चार उपवास करे, तथा दो बार, तीन बार और चार बार जाप करे ॥ ९९ ॥

घातिते तृणभुग्जीवे प्रोषधा अष्टाविंशतिः ।
पात्रदानं च गोदानं पुष्पाक्षतः स्वशक्तितः ॥ १०० ॥

तृण-चारी जीवका घात हो जानेपर अट्ठाईस प्रोषधोपवास करे और अपनी शक्ति-अनुसार पात्र-दान, गो-दान तथा पुष्प-अक्षत देवे ॥ १०० ॥

जलस्थलचराणां तु पक्षिणां घातकः पुमान् ।
गृहे मूषकमार्जारश्वादीनां दन्तदोषिणाम् ॥ १०१ ॥
प्रोषधा द्वादशैकाश्चाभिषेकाश्चातु षोडश ।
गोदानं पात्रदानं तु यथाशक्ति गुरोर्मुखात् ॥ १०२ ॥

जलचर स्थलचर पक्षियों और अपने घरमें रहनेवाले दन्तदोषी चूहे, बिल्ली, कुत्ते आदिका घात करनेवाले मनुष्यकी शुद्धि बारह प्रोषधोपवास, सोलह एकाशन और सोलह स्नान तथा गुरुके कथनानुसार यथाशक्ति गो-दान और पात्र-दान करनेसे होती है ॥ १०१-१०२ ॥

गोमहिषीछागीनां वधकर्ता त्रिविंशतिः।
प्रोषधानेकभक्तानां शतं दानं तु शक्तितः॥ १०३ ॥

गाय, भैंस और बकरीका वध करनेवाला पुरुष तेईस उपवास, सौ एकाशन और शक्तिके अनुसार दान करे ॥ १०३ ॥

मनुष्यघातिनः प्रोक्ता उपवासाः शतत्रयम्।
गोदानं पात्रदानं तु तीर्थयात्राः स्वशक्तितः॥ १०४ ॥

मनुष्यका वध करनेवाले पुरुषकी शुद्धि तीन सौ उपवास करनेसे तथा अपनी शक्तिके अनुसार गो-दान, पात्र-दान और तीर्थयात्रा करनेसे होती है ॥ १०४ ॥

यस्योपरि मृतो जीवो विषादिभक्षणादिना।
क्षुधादिनाऽथवा भृत्ये गृहदाहे नरः पशुः॥ १०५ ॥
कूपादिखनने वाऽपि स्वकीयेऽत्र तडागके।
स्वद्रव्ये द्रव्यगे भृत्ये मार्गे चौरेण मारिते॥ १०६ ॥
कुड्यादिपतने चैव रण्डावन्हौ प्रवेशने।
जीवघातिमनुष्येण संसर्गे क्रयविक्रये॥ १०७ ॥
प्रोषधाः पञ्च गोदानमेकभक्ता द्विपञ्चकाः।
संघपूजा दयादानं पुष्पं चैव जपादिकम्॥ १०८ ॥

यदि कोई मनुष्य अपने निमित्तसे विष आदि खाकर मरगया हो अथवा भूख वगैरहसे कोई नौकर मरगया हो, अपने घरमें लाय लगजानेसे मनुष्य अथवा पशुका मरण होगया हो, अपने कुआ बावड़ी आदिके खोदते समय अथवा अपने तालाब आदिमें डूबकर कोई मरगया हो, अपना द्रव्य लेकर जानेवाले नौकरको रास्तेमें चोरोंने मार दिया हो, अपने घरकी दीवाल आदिके गिरनेसे कोई मरगया हो, अपने निमित्त कोई रंडा अग्निमें जल गई हो, कसाई पुरुषसे संसर्ग होगया हो और उसके साथ लेन देन व्यवहार होगया हो, तो पांच उपवास करे, गो-दान दे, बावन एकाशन करे, संघकी पूजा करे, दया-दान करे, पुष्प देवे और जप आदि करे ॥ १०५-१०८ ॥

स्वतोऽन्यैः स्पर्शितं भाण्डं मृण्मयं चेत्परित्यजेत्।
ताम्रारलोहभाण्डं चेच्छुद्ध्यते शुद्धभस्मना॥ १०९ ॥
वह्निना कांस्यभाण्डं चेत्काष्ठभाण्डं न शुद्ध्यति।
कांस्यं ताम्रं च लोहं चेदन्यभुक्तेऽग्निना वरम्॥ ११० ॥

अपने रसोई बनाने व पानी भरने आदिके मिट्टीके बर्तन दूसरे विजातीयसे छू जांय, तो उन्हें पृथक् (अलहदे) कर देना चाहिये। यदि तांबे, पीतल और लोहेके बर्तन अपनी जातिके स्त्री-पुरुषोंको छोड़कर दूसरी जातिके स्त्री-पुरुषोंसे छू जायँ तो शुद्ध राखसे माँज लेनेसे शुद्ध होजाते हैं। कांसेके वर्तन अग्नि डालकर माँज लेनेसे शुद्ध होते हैं। लकड़ीके वर्तन किंवा वस्त्र

शुद्ध नहीं होते। और काँसा, तांबा, लोहा, पीतल वगैरहके बर्तनोंमें दूसरे विजातिने जीमा हो तो अग्नि डालकर माँज लेनेसे शुद्ध होजाते हैं॥ १०९–११०॥

यद्भाजने सुरामांसविण्मूत्रश्लेष्ममाक्षिकम्।
क्षिप्तं ग्राह्यं न तद्भाण्डमन्यायः श्रावकोत्तमैः॥ १११॥

जिस बर्तनमें शराब, मांस, शहत, विष्टा, मूत्र, खँकार आदि रख दिये गये हों उस बर्तनको उत्तम श्रावक-गण कभी काममें न लें। ऐसे बर्तनोंको काममें लेना एक प्रकारका अन्याय है॥१११॥

चालनी वस्त्रं शूर्पं च मुसलं घटयन्त्रकम्।
स्वतोऽन्यैः स्पर्शितं शुद्धं जायते क्षालनात्परम्॥ ११२॥

चालनी, वस्त्र, सूप, मूसल और चक्की, ये वस्तुएं अपने सिवा अन्य विजातिसे छू जांय, तो जलसे धोलेनेसे शुद्ध हो जाती हैं॥ ११२॥

स्वप्ने तु येन यद्भुक्तं तत्त्याज्यं दिवसत्रयम्।
मद्यं मांसं यदा भुङ्क्ते तदोपवासकद्वयम्॥ ११३॥

सुपनेमें कोई भी चीज खाली हो तो उसका तीन दिनतक त्याग कर दे—उस चीजको तीन दिनतक न खावे। मद्य–मांस यदि सुपनेमें खाये हों तो दो उपवास करे॥ ११३॥

ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु निद्रायां परवशतः।
सहस्रैकं जपेज्जापमेकभक्तत्रयं भवेत्॥ ११४॥

निद्रामें परवश ब्रह्मचर्यका भंग होगया हो, तो एक हजार जाप जपे और तीन एकाशन करे।

मातः तथा भगिन्या च समं संयोग आगते।
उपवासद्वयं स्वप्ने सहस्रैकं जपोत्तमम्॥ ११५॥

सुपनेमें माता तथा बहिनके साथ संयोग हुआ हो,तो दो उपवास करे और एक हजार जाप जपे।

मिथ्यादृशां गृहे रात्रौ भुक्तं वा शूद्रसद्मनि।
तदोपवासाः पञ्च स्युर्जाप्यं तु द्विसहस्रकम्॥ ११६॥

मिथ्यादृष्टियोंके घरपर अथवा शूद्रके घरपर रात्रिमें भोजन किया हो तो पांच उपवास करे और दो हजार जाप जपे॥ ११६॥

इत्येवमल्पशः प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः स्फुटम्।
अन्यो विस्तरतो ज्ञेयः शास्त्रेष्वन्येषु भूरिषु॥ ११७॥

इस तरह यह थोड़ीसी प्रायश्चित्त विधि बताई गई है। बाकी विस्तारसे जानना हो, तो अन्य शास्त्रोंसे जानना॥ ११७॥

इत्थं मौञ्जीबन्धनं पालनीयं। प्रायश्चित्तं वर्जयेत्को नु पापः।
धर्म्यं कर्म प्रायशो रक्षणीयं। पुण्याश्लिष्टैः सोमसेनैर्मुनीन्द्रैः॥ ११८॥

इस तरह मौंजीबंधन व्रतका पालन करना चाहिए और पातक होजानेपर प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए; तथा पुण्य चाहनेवाले सोमसेन मुनीको धार्मिक कृत्योंका रक्षण करना चाहिए। सारांश पुण्यार्थी लोगोंको धर्मकृत्य करना उचित है॥ ११८॥

दशवाँ अध्याय।

मंगलाचरण।

भुवनकमलमित्रः सर्वदा यः पवित्रः। सुकृतकरचरित्रः पालितानेकमित्रः।
स जयति जिनदेवः सद्य एवैन्मुदं वः। शिवपदमपि भक्त्या धर्मनाथो जिनेन्द्रः॥ १॥

जो तीन-भुवन-रूपी कमलके मित्र हैं, जो सदा पवित्र हैं, जिसका चारित्र पुण्यको करनेवाला है, और जिसने अनेक श्रद्धानी भव्योंका पालन-पोषण किया है, वह श्रीजिनेंद्रदेव जयवंत रहें और शीघ्र ही तुम्हारे हर्ष बढ़ावें। तथा भक्तिद्वारा श्रीधर्मनाथ-जिनेन्द्र शिव-पद भी देवें—तुम्हारा कल्याण करें॥ १॥

व्रत-ग्रहण-विधि।

अथोपवीतान्वित एव शिष्यो। महागुणाढ्यो विभवैरुपेतः।
व्रजेज्जिनेन्द्रालयमुन्नताङ्गं। समावृतोऽसौ परितः कुटुम्बैः॥ २॥

व्रतावतरण क्रियाके बाद यज्ञोपवीतयुक्त महा गुणवान और अनेक प्रकारके विभवसे परिपूर्ण वह शिष्य अपने कुटुंबियों-सहित श्रीजिन-मन्दिरको जावे॥ २॥

पादौ प्रक्षाल्य जैनेन्द्रं प्रविशेत्सदनं शनैः।
पूजां शान्तिं विधायात्र सङ्गच्छेद्गुरुसन्निधौ॥ ३॥

पैर धोकर जिनमंदिरमें प्रवेश करे। वहाँ पूजा और शान्ति करके गुरुके पास जावे॥ ३॥

फलं धृत्वा गुरोरग्रे महाभक्तिसमन्वितः।
पंचाङ्गं नमनं कुर्यात्करयुग्मशिरः स्थितः॥ ४॥
समाधानं च सम्पृच्छ्योपविशेद्विनयाद्भुवि।
धर्मवृद्ध्यादिना सोऽपि तोषयेच्छिष्यवर्गकम्॥ ५॥

बहुत भक्ति-पूर्वक गुरुके सामने फल रखकर पंचांग नमस्कार करे, दोनों हाथ जोड़ शिरपर लगावे। फिर कुशल मंगल पूछकर विनयके साथ भूमिपर बैठे। गुरु भी धर्मवृद्धि आदिके द्वारा शिष्य-वर्गको सन्तुष्ट करे॥ ४-५॥

स्वामिन् ब्रूहि कृपां कृत्वा श्रावकाचारविस्तरम्।
तच्छ्रुत्वा श्रीगुरुश्चापि ब्रूयाद्धर्मं तु तम्प्रति॥ ६॥

हे स्वामिन्! कृपाकर विस्तारपूर्वक श्रावकोंके आचरणको समझाइये। शिष्यके इस नम्र निवेदनको सुनकर श्रीगुरु भी उसे श्रावक-धर्म अच्छी तरह समझावें॥ ६॥

धर्म कथन।

मिथ्यात्वत्यजनं पूर्वं सम्यक्त्वग्रहणं तथा।
द्वादशभेदभिन्नानां व्रतानां परिपालनम्॥ ७॥

हे भव्य-वर्ग! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे कल्याणको करनेवाले श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मको प्रतिपादन करता हूं। संसारी प्राणियोंको सबसे पहिले मिथ्यात्वका त्यागकर सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिए; और पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत–इन बारह व्रतोंका पालन करना चाहिए ॥ ७ ॥ उक्तंच–यही ग्रन्थान्तरोंमें कहा है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं पि जहा जुरिदो ॥ ८ ॥

मिथ्यात्वको अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धान करनेवाला होता है। उसे समीचीन धर्म नहीं रुचता–वह समीचीन धर्मसे भारी द्वेष करता है। जैसे रोगीको मीठा रस भी कडुआ लगता है ॥ ८ ॥

नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतसः।
पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्तचेतनाः ॥ ९ ॥

जिनकी चेतना मिथ्यात्वसे ग्रसित है वे मनुष्य होकर भी पशुओंके समान आचरण करते हैं। और जिनकी चेतना सम्यक्त्वसे व्यक्त है वे पशु होकर भी मनुष्योंके समान आचरण करते हैं ॥ ९ ॥

मिथ्यात्वके तीन भेद।

केषांचिदन्धतमसायते गृहीतं ग्रहायतेऽन्येषाम्।
मिथ्यात्वमिह गृहीतं शल्यति सांशयिकं परेषाम् ॥ १० ॥

मिथ्यात्वके तीन भेद हैं–एक अगृहीत, दूसरा गृहीत और तीसरा सांशयिक। दूसरेके उपदेशके विना अनादि परंपरासे चले आये आत्माके अतत्व श्रद्धानरूप परिणामोंको अगृहीत-मिथ्यात्व कहते हैं। ऐसा मिथ्यात्व किन्हीं किन्हीं एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवोंतक गाढ़ अन्धकारकासा काम देता है–यह मिथ्यात्व उन्हें कभी भी सत्तत्वोंका श्रद्धान नहीं होने देता। दूसरेके उपदेशसे अतत्वोंमें श्रद्धान हो उसे गृहीत-मिथ्यात्व कहते हैं। ऐसा मिथ्यात्व संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवोंको चढ़े हुए भूतोंकी तरह उन्मत्त बना देता है। सम्यग्दर्शनादि मोक्षके कारण हैं या नहीं—ऐसी दोलायमान प्रतीतिका नाम संशय है। यह संशय-मिथ्यात्व किन्हीं किन्हीं श्वेतांबरीय मतानुयायी इन्द्रचन्द्रनागेन्द्र गच्छके स्वामी इन्द्राचार्य आदिकोंके हृदयमें शल्य–बाणके समान चुभता रहता है ॥ १० ॥

कुधर्मस्थोऽपि सद्धर्मं लघुकर्मतयाऽद्विषन्।
भद्रः स देश्यो द्रव्यत्वान्नाभद्रस्तद्विपर्ययात् ॥ ११ ॥

जिसके सच्चे धर्मसे द्वेष करनेका कारण मिथ्यात्व-कर्म हलका पड़ गया है, वह, मिथ्या-धर्ममें आसक्त होकर भी प्रमाणसे अबाधित सद्धर्मसे द्वेष-भाव नहीं रखता है। ऐसे पुरुषको भद्र-मिथ्यादृष्टि कहते हैं। यह भद्र-मिथ्यादृष्टि आगामी कालमें सम्यक्त्व-गुणका पात्र होनेके कारण जैनधर्मसम्बन्धी उपदेशके योग्य है। और जो अभद्र है–जो मिथ्यात्व-कर्मका तीव्र उदय होनेके कारण जैनधर्मसे प्रचुर द्वेष करता है, वह उपदेशके योग्य नहीं है ॥ ११ ॥

मिथ्यात्वके पांच भेद।

एयंतबुद्धदरसी विवरीओ बंभ तावसो विणओ।
इंदो वि य संसयिदो मक्कडिओ चेव अण्णाणी॥ १२॥

सर्वथा क्षणिकको एकान्त कहते हैं। इस एकान्त मिथ्यात्वका माननेवाला बौद्ध है। ब्राह्मण विपरीत-मिथ्यादृष्टि है, जो यज्ञमें प्राणियोंको मारनेसे मुक्ति बताता है। तापस, विनय-मिथ्यादृष्टि है, जो हरएककी विनय करनेसे ही मुक्ति होना स्वीकार करता है। इंद्रचन्द्रनागेन्द्र गच्छका स्वामी इन्द्राचार्य संशय-मिथ्यादृष्टि है, जो इस प्रकारके सन्देहमें ही झूलता रहा है कि, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र मुक्तिके कारण हो सकते हैं या नहीं? इसीलिए वह सभी मतोंसे मुक्ति स्वीकार करता है। श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरके तीर्थमें उत्पन्न हुआ द्वादशांगका वेत्ता मस्करी मुनि अज्ञान-मिथ्यादृष्टि है, जो अज्ञानसे मुक्ति मानता है॥ १२॥

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण।

आसन्नभव्यताकर्महानिसञ्ज्ञित्वशुद्धिभाक्।
देशनाद्यस्तमिथ्यात्वो जीवस्सम्यक्त्वमश्नुते॥ १३॥

जो आसन्न-भव्य है, जिसके मिथ्यात्वादि कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोटाकोटी प्रमाण होगई है, जो संज्ञी है, जो विशुद्ध परिणामोंका धारण करनेवाला है, और उपदेश, जातिस्मरण आदिके द्वारा जिसका मिथ्यात्व नष्ट होगया है, वह जीव सम्यक्त्वके योग्य होता है। भावार्थ—आसन्न-भव्यता आदि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं॥ १३॥

मतेषु विपरीतेषु यदुक्तं दुष्टबुद्धिभिः।
श्रद्धेयं न कदा तत्त्वं हिंसापातकदोषदम्॥ १४॥

विपरीत-मतोंमें दुष्ट-बुद्धि पुरुषोंने जो हिंसा आदि पापोंके करनेवाले तत्त्वोंका कथन किया है उन तत्त्वोंका कभी भी श्रद्धान—विश्वास नहीं करना चाहिए॥ १४॥

सच्चे देवका लक्षण।

सर्वदर्शी च सर्वज्ञः सिद्ध आप्तो निरञ्जनः।
अष्टादशमहादोषै रहितो देव उच्यते॥ १५॥

जो सर्वदर्शी है, सर्वज्ञ है, कृतकृत्य है, अवंचक है—संसारी जीवोंको वंचनारहित हितका उपदेश करनेवाला है, चार घातिया कर्मोंसे रहित है और क्षुधा—तृषा आदि अठारह महादोषोंसे रहित—निर्दोष है, उसे देव कहते हैं॥ १५॥

अठारह दोषोंके नाम।

क्षुत्तृड्रुग्भयरागरोषमरणस्वेदाश्च खेदारतिः।
चिन्ताजन्मजराश्च विस्मयमदौ निद्रा विषादस्तथा॥
मोहोऽष्टादशदोषदुष्टरहितः श्रीवीतरागो जिनः।
पायात्सर्वजनान् दयाङ्कुरघतो जन्तोः परं दैवतम्॥ १६॥

क्षुधा, तृषा, रोग, भय, राग, द्वेष, मरण, स्वेद (पसीना), खेद, अरति, चिन्ता, जन्म, जरा (बुढ़ापा), विस्मय (आश्चर्य), मद (गर्व), निद्रा, विषाद और मोह—इन अठारह दोषोंसे रहित वीतराग दयालु जिनदेव, जो प्राणियोंका उत्कृष्ट देवता है, सब संसारी जीवोंकी पापसे रक्षा करें ॥ १६ ॥

सच्चे शास्त्रका स्वरूप।

पूर्वापराविरुद्धं यदाप्तोदिष्टं सुबुद्धिमत् ।
यथार्थवाचकं शास्त्रं तदध्येयं शिवाप्तये ॥ १७ ॥

जो पूर्वापरसे अविरुद्ध है, सर्वज्ञ—वीतराग—परम-हितोपदेशीका कहा हुआ है, यथार्थ उपदेशका करनेवाला है, मिथ्या बुद्धिको नष्ट कर सुबुद्धिका देनेवाला है, वह शास्त्र है। ऐसे ही शास्त्रका मोक्षकी प्राप्तिके लिए अध्ययन करना चाहिए। भावार्थ—जो इन लक्षणोंसे युक्त है वह आगम है। इसके विपरीत जो संसारमें रुलाने (भटकाने) वाला है, विषयोंका उपदेश करनेवाला है, वह आगमाभास है। जो आगमसरीखा दिखता हो, परंतु आगमके उक्त लक्षणसे रहित हो, उसे आगमाभास कहते हैं। आरातीय आचार्य एकदेश-वीतराग हैं, आप्त हैं, संसारी-जीवोंका हित चाहनेवाले हैं, और वास्तविक उपदेशके करनेवाले हैं; इसलिए उनके बनाये हुए आगमका भी अपने कल्याणके निमित्त भक्ति-पूर्वक अध्ययन करना चाहिए ॥ १७ ॥

गुरुका लक्षण।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १८ ॥

जो पांच इन्द्रियोंके भले-बुरे विषयोंकी वासनाके वशसे रहित हैं, चौवीस प्रकारके परिग्रहोंसे रहित हैं, कृषि आदि आरंभसे पराङ्मुख हैं, और ज्ञान तथा तपमें रात-दिन लीन रहते हैं, वे गुरु प्रशंसनीय हैं—ऐसे तपस्वी गुरु हो सकते हैं ॥ १८ ॥

सम्यग्दृष्टिका लक्षण।

एतेषां निश्चयो यस्य निःशङ्कत्वेन वर्तते ।
सम्यग्दृष्टिः स विज्ञेयः शङ्काद्यष्टकवर्जितः ॥ १९ ॥

इस प्रकारके सच्चे देव, गुरु, शास्त्रका जिसके हृदयमें निःशंक निश्चय है, उसे शंकादि आठ दोषों-रहित सम्यग्दृष्टि समझना। भावार्थ—शंकादि आठ दोषों-रहित सच्चे देव, गुरु और शास्त्रका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ॥ १९ ॥

निःशंकित अंगका लक्षण।

देवे मंत्रे गुरौ शास्त्रे क्वचिदातिशयो न चेत् ।
फल्गुदोषान्न कर्तव्यः संशयः शुद्धदृष्टिभिः ॥ २० ॥

देव, शास्त्र, गुरु और इनके बताये हुए मंत्रोंमें अतिशय है या नहीं—ऐसे व्यर्थके दोषोंका उद्भावन कर शुद्ध सम्यग्दृष्टियोंको आप्त आदिमें संशय नहीं करना चाहिए। भावार्थ—आप्त आदिमें अतिशय है या नहीं—इस तरह संशय न करना निःशंकित अंग है ॥ २० ॥

निष्कांक्षित अंगका लक्षण।

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धाऽनाकाङ्क्षणा स्मृता ॥ २१ ॥

जो कर्मोंके उदयके आधीन है, अन्तसहित है, बीचबीचमें दुःखोंके उदयसे मिला हुआ है, और पापका कारण है, ऐसे सांसारिक सुखमें अनित्यरूप श्रद्धान करना—उसकी चाह न करना निष्कांक्षित अंग है ॥ २१ ॥

निर्विचिकित्सित अंगका लक्षण।

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥ २२ ॥

स्वभावसे अपवित्र, किन्तु रत्नत्रयके द्वारा पवित्र हुए शरीरमें ग्लानिरहित होकर गुणोंमें प्रीति करना निर्विचिकित्सित अंग माना गया है ॥ २२ ॥

अमूढदृष्टि अंगका लक्षण।

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असम्पृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ २३ ॥

दुःखोंके कारण मिथ्या मतोंमें, और उन मिथ्या मतोंमें स्थित मिथ्यादृष्टि मनुष्योंमें मनसे सम्मत न होना, कायसे सराहना न करना और वचनोंसे प्रशंसा न करना अमूढदृष्टि अंग कहा जाता है॥२३॥

उपगूहन अंगका स्वरूप।

स्वयंशुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ २४ ॥

स्वतः-स्वभावसे निर्दोष जैनधर्मसे अज्ञ—धर्मसे पूरी पूरी वाकफियत न रखनेवाले और उसके पालन करनेसे असमर्थ मनुष्योंके जरिये उत्पन्न हुई निन्दाके दूर करनेको उपगूहन अंग कहते हैं ॥ २४ ॥

स्थितीकरणका लक्षण।

दर्शनाच्चरणाद्वाऽपि चलतां धर्मवत्सलैः।
प्रत्युपस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥ २५ ॥

सम्यग्दर्शन अथवा सम्यक्चारित्रसे च्युत (भ्रष्ट) होनेवाले मनुष्योंको धर्ममें प्रेम रखनेवाले पुरुषोंद्वारा फिरसे उसीमें स्थिर कर देनेको विद्वान पुरुष स्थितीकरण अंग कहते हैं ॥ २५ ॥

वात्सल्य अंगका लक्षण।

जैनधर्मयुतान् भव्यान् रोगचिन्तादिपीडितान्।
वैयावृत्यं सदा कुर्यात्तद्वात्सल्यं निगद्यते ॥ २६ ॥

रोग, चिन्ता आदिसे पीड़ित और जैनधर्मसे युक्त भव्य पुरुषोंके वैयावृत्य करनेको वात्सल्य अंग कहते हैं ॥ २६ ॥

प्रभावना अंगका स्वरूप।

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ २७ ॥

अज्ञानरूपी अन्धकारके फैलावको दूर कर जैसे बने वैसे जिनशासनका महात्म्य-प्रभाव पर-मतावलंबियोंके सामने जाहिर करना प्रभावना अंग है ॥ २७ ॥

अष्टाङ्गैः पालितं शुद्धं सम्यक्त्वं शिवदायकम्।
न हि मंत्र्योऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥ २८ ॥

उक्त आठ अंगोंके साथ साथ निरतिचार पालन किया हुआ सम्यग्दर्शन मोक्षको देनेवाला है। यदि इनमेंसे एक भी अंग हीन हो तो वह सम्यग्दर्शन संसारकी संतति-परिपाटीको छेदनेमें समर्थ नहीं है। जैसे विषको उतारनेवाला मंत्र यदि एक अक्षरसे भी न्यून हो तो वह विषकी दाहको दूर नहीं कर सकता ॥ २८ ॥

सम्यक्त्वके पचीस मल।

मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथाऽनायतनानि षट्।
अष्टौ शंकादयो दोषाः सम्यक्त्वे पञ्चविंशतिः ॥ २९ ॥

तीन मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन, और शंका आदि आठ दोष, ये सम्यक्त्वके पचीस दोष हैं। भावार्थ—इन दोषोंसे सम्यक्त्व मलिन होता है; अतः इनसे बचना चाहिए ॥ २९ ॥

लोकमूढ़ता।

गोयोनिं गोमयं मूत्रं चन्द्रसूर्यादिपूजनम्।
अग्नौ गिरेः प्रपातश्च विज्ञेया लोकमूढ़ता ॥ ३० ॥

धर्म समझकर गायकी जननेन्द्रियका स्पर्शन करना—वंदना-नमस्कार करना, उसके गोबर और मूत्रका सेवन करना, चंद्र-सूर्य आदिका पूजन करना, अग्निमें गिरकर सती होना, और पर्वतसे गिरकर मरना लोकमूढ़ता है ॥ ३० ॥

इनके अलावा गहते ग्रहणमें स्नान करना, संक्रांतिके दिन सोना, चांदी, तांबा आदिका दान करना, संध्याकी उपासना करना, अग्निको देव मानकर सत्कार करना, शरीरकी पूजा करना, मकानकी पूजा करना, रत्न, वाहन (बैलआदि), भूमि, वृक्ष, शस्त्र, पर्वत इत्यादि वस्तुओंकी उपासना-पूजा करना; नदी, समुद्रोंमें स्नान करना इत्यादि और भी अनेक लोकमूढ़ता है। गायका गोबर आठ प्रकारकी शुद्धियोंमें माना गया है। वहाँपर उसका निषेध सेवन, पूजन करने आदिका है—लोग गोमय और गोमूत्रके सेवन, पूजन आदिमें धर्म मानते हैं, उसका निषेध है। कोई २ गोबरको सर्वथा अशुद्ध-अपवित्र कहते हैं, यह कथन भी ठीक नहीं है। क्योंकि आठ प्रकारकी लौकिक शुचिमें उसका पाठ है। यदि वह सर्वथा अशुद्ध ही हो तो उससे लिपी हुई जमीनको शुद्ध नहीं मानना चाहिए,और नीराजना (आरती) आदिमें उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। यथाः—

लौकिकं शुचित्वं कालाग्निभस्ममृत्तिकागोमयसलिलज्ञाननिर्विचिकित्सत्वभेदादष्टविधं।

—चारित्रसार।

अर्थात् कालशुद्धि, अग्निशुद्धि, भस्मशुद्धि, मृत्तिकाशुद्धि, गोमयशुद्धि, जलशुद्धि, ज्ञानशुद्धि और निर्विचिकित्सलशुद्धिके भेदसे लौकिक शुचिता—पवित्रता आठ प्रकारकी है।

यद्यपि गोमय शरीरसे उत्पन्न होता है, तथापि वह लोकमें पवित्र माना गया है। यथाः—

शरीरजा अपि गोमय-गोरोचना-दंतिदन्त-चमरीबाल-मृगनाभि-खड्गिविषाण-मयूरपिच्छ-सर्पमणि-शुक्ति-मुक्ताफलादयो लोकेषु शुचित्वमुपागताः। —चारित्रसार।

इसका आशय यह है कि, प्राणियोंके शरीरसे उत्पन्न होते हुए भी गोमय, गोरोचना, हाथीके दांत, चमरी गायके बाल, कस्तूरी, गेंडेके सींग, मयूरपंखकी पिच्छि, सर्पके मस्तककी मणि, सीप, मोती आदि वस्तुएं लोकमें शुचिता—पवित्रताको प्राप्त हुई हैं। आदि शब्दसे शंख, रेशम आदि भी समझना चाहिये।

इससे यह फलितार्थ निकला कि, लोग गोमय और गोमूत्रको पवित्र मानकर देवता मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं, यह लोकमूढ़ता है। उससे भूमि-शुद्धि करना आदि लोकमूढ़ता नहीं है। जैसी लोकमें चंद्रसूर्यकी पूजा की जाती है वैसी पूजा करना लोकमूढ़ता है। पर जिनप्रतिष्ठा आदिके समय उनका सत्कार करना लोकमूढ़ता नहीं है। यहां अभिप्रायका भेद है। सर्वसाधारण अग्निको देवमानकर नमस्कारादि करना लोकमूढ़ता है। परंतु जिनयज्ञ-संबंधी आहिताग्नि आदि तीन तरहकी अग्निकी पूजा करना, उसकी भस्मको शिरपर चढ़ाना, नमस्कार करना लोकमूढ़ता नहीं है। इसी तरह सर्वसाधारण पर्वतोंकी पूजा करना लोकमूढ़ता है। परंतु सम्मेदशिखर, गिरनार, शत्रुंजय, तारंगा आदि पर्वतोंकी पूजा करना लोकमूढ़ता नहीं है। यज्ञोपवीत संस्कारके समय बोधि (बड़) वृक्षकी पूजा, चैत्यवृक्षकी पूजा, जिन-मंदिरकी भूमिकी पूजा करना आदि भी लोकमूढ़ता नहीं है। सर्वसाधारण अग्नि, वृक्ष, पर्वत आदि पूज्य क्यों नहीं और विशेष विशेष कोई कोई पूज्य क्यों हैं? इसका उत्तर यह है कि जिनसे जिनभगवानका संबंध है वे पूज्य हैं; अन्य नहीं। अस्तु, लोकमूढ़ताकी संभवता—असंभवताका विचार बुद्धिमानोंको स्वयं कर लेना चाहिए।

देवमूढ़ता।

वरोपलिप्सयाऽऽशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २१ ॥

वरकी इच्छासे आशावान् होकर राग-द्वेषसे महामलीन कुदेवोंकी उपासना-भक्ति करनेको देवमूढ़ता कहते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—मुझे अपने वांच्छित इष्ट फलकी प्राप्ति हो, ऐसी इसलोक-संबंधी फलकी इच्छा कर रागद्वेषसे मलीन देवोंकी उपासना करनेको स्वामिसमन्तभद्राचार्य देवमूढ़ता बतलाते हैं। वह अक्षरशः ठीक है। इसमें कोई भी तरहकी बाधा नहीं है। परंतु विचार यह है कि ऋषिप्रणीत हमारे बड़े बड़े पूजाशास्त्रों, स्नानशास्त्रों, प्रतिष्ठापाठ आदिमें सर्वत्र शासनदेवोंका पूजन पाया जाता है। पूजनका क्रम इस विषयके सभी शास्त्रोंमें वैसा ही है, जैसा इस शास्त्रके चतुर्थ अध्यायमें बताया गया है। फर्क है तो सिर्फ इतना ही कि, किसीमें विस्तारको लिये हुए और किसीमें संक्षेपताको लिये हुए वर्णन किया गया है। तब यह विचार उपस्थित होता है कि शास्त्रोंमें यह परस्पर विरोध कैसा? परंतु पक्षपातको छोड़कर विचार किया जावे तो, यद्यपि यह निर्विचार

पुरुषोंको विरोध मालूम पड़ता है, तथापि कुछ विरोध नहीं है। प्रथम कथनका अभिप्राय समझ-लेना चाहिए कि यह निषेध किस अभिप्रायसे है और यह विधान किस अभिप्राय-अपेक्षासे है ! श्रीप्रभाचन्द्राचार्यने रत्नकरंडके इसी श्लोककी टीकामें स्पष्ट कर दिया है । यदि केवल उसीका पूर्ण विचारके साथ मनन किया जाय तो सब तरहकी शंकाओंका उत्तर थोड़ेमें मिल जाता है। वे लिखते हैं कि वरकी इच्छासे शासन-देवोंकी उपासना करना देवमूढता है। परंतु शासनदेवोंको शासनदेव मानकर—उनको सद्धर्मके भक्त मानकर उनका सत्कार करना देवमूढ़ता नहीं है। आचार्य महाराजके इस कथनसे किसी भी शंकाका उत्तर बाकी नहीं रह जाता है। इसीसे सबका समाधान हो जाता है। कितने ही लोग श्रीप्रभाचंद्रके इस कथनको स्वामी समन्तभद्राचार्यके विरुद्ध बतलाते हैं। हम उनसे पूछते हैं कि इसमें विरुद्धता ही क्या है ! वे कहेंगे कि श्रीसमन्तभद्राचार्य देवोंके पूजनेका निषेध करते हैं और श्रीप्रभाचंद्राचार्य उसका विधान करते हैं। इसका समाधान यह है कि स्वामी समंतभद्राचार्य वरकी इच्छासे रागद्वेषसे मलीन अर्थात् मिथ्यादृष्टि देवोंके पूजनेका निषेध करते हैं। उसका प्रभाचंद्राचार्य भी निषेध करते हैं। रहा शासनदेवोंको शासनदेव मानकर उनके सत्कारका विधान; सो इसका तो समन्तभद्राचार्य भी निषेध नहीं करते। क्योंकि उन्होंने श्लोकमें 'वरोपलिप्सया' और 'आशावान' ये दो पद दिये हैं। जिससे मालूम पड़ता है कि स्वामिसमंतभद्राचार्य शासनदेवोंके सत्कारका निषेध नहीं करते। हां यदि वरकी इच्छासे शासन-देवोंका सत्कार किया जाय तो कदाचित् देव-मूढ़ताका दोष आ सकता है। अतः इस विषयमें श्रीसमंतभद्राचार्य और श्रीप्रभाचंद्राचार्यका मत परस्पर विरुद्ध नहीं है। दूसरी बात यह है कि यदि शासन-देवोंका सत्कार अन्य ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें नहीं पाया जाता और इसका नया ही जिकर श्रीप्रभाचंद्राचार्यने किया होता, तो कदाचित् कह सकते थे कि श्रीसमंतभद्राचार्य और श्रीप्रभाचंद्राचार्यका मत परस्पर विरुद्ध है। श्रीसोमदेवसूरिप्रणीत यशस्तिलक-चंपू, श्रीदेवसेनसूरिप्रणीत प्राकृत भावसंग्रह, वसुनंदि-सिद्धान्तचक्रवर्तिप्रणीत उपासकाध्ययन, प्रतिष्ठासार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ऋषिप्रणीत बड़े बड़े ग्रन्थोंमें उनके सत्कारका उल्लेख है। शासनदेव जिनभक्त होते हैं। जो जिनभक्त होते हैं वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। शासन-देव जिनभक्त हैं, इसका उल्लेख समंतभद्राचार्यसे भी पूर्ववर्ती ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें पाया जाता है। हरिवंशपुराणमें तो शासनदेवोंसे बड़ी बड़ी प्रार्थनाएं की गई हैं। भैरव-पद्मावतीकल्प, ज्वालामालिनीकल्प, सिद्धचक्रकल्प आदि अनेक ऋषिप्रणीत मंत्रशास्त्र हैं, जिनसे भी शासन-देवोंका सत्कार सिद्ध होता है। अस्तु, शासन-देवोंके सत्कारकी जैसी विधि आगममें बताई गई है तदनुसार करना देवमूढ़ता नहीं है। और न समंतभद्राचार्य तथा प्रभाचंद्राचार्यके वचनोंमें परस्पर विरोध ही है।

पाखंडिमूढ़ता।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेया पाखण्डिमूढता ॥ ३२ ॥

जो नाना प्रकारके परिग्रह रखते हैं, अनेक तरहके आरंभ करते हैं, हिंसासे परिपूर्ण हैं, और संसारके चक्करमें—मोह-फाँसमें फँसे हुए हैं, उन पाखंडियोंको संसारसमुद्रसे पार करनेवाले गुरु मान उनका सत्कार करना पाखंडिमूढ़ता है। भावार्थ—जो अपने धर्मोपदेशके द्वारा भव्य जीवोंको संसार-समुद्रसे पार करनेवाला है और जो स्वयं संसार-समुद्रसे पार होनेवाला है, वह स्वपरका कल्याण

करनेवाला गुरु हो सकता है। इसके विपरीत जो स्वयं अनेक प्रकारके कुकृत्य करता है, सांसारिक चक्रोंमें खूब गोता लगा रहा है, इंद्रियोंके विषयोंमें हरावोर हो रहा है, जिसके वचन पूर्वापर विरोधको लिये हुए हैं, जो जीवोंको मिथ्या उपदेश देकर कुमार्गकी ओर खेंचे ले जा रहा है, वह गुरु नहीं है—वह वास्तवमें पत्थरकी नौका है। जो स्वयं पानीमें डूबती और दूसरोंको भी डूबो देती है। ऐसे पत्थरकी नौकासे समुद्र पार करना कठिन ही नहीं, बल्कि महा कठिन है। अतः ऐसे पुरुषोंके लुभानेवाले वचनोंसे मोहित होकर सुख चाहनेवाले प्राणियोंको अपनी आत्माको उनके वाग्जालमें न फँसाना चाहिए ॥ ३२ ॥

आठ मद।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो तनुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं श्रीयते तन्मदाष्टकम् ॥ ३३ ॥

ज्ञानं, पूजां, कुलं, जातिं, बलं, ऋद्धिं, तपश्चरणं, और शरीरं, इन आठोंको गर्व करना—घमंड करना, आठ मद हैं ॥ ३३ ॥

छह अनायतन।

कुदेवस्तस्य भक्तश्च कुशास्त्रं तस्य पाठकः।
कुगुरुस्तस्य शिष्यश्च षण्णां सङ्गं परित्यजेत् ॥ ३४ ॥

कुदेव और कुदेवभक्त, कुशास्त्र और कुशास्त्र-पाठक-भक्त, तथा कुगुरु और कुगुरुभक्त, ये छह अनायतन हैं। इन छहोंके साथ संगति नहीं करना चाहिए। भावार्थ—धर्मके आलम्बनोंको आयतन कहते हैं। सच्चा देव, सचा गुरु और सच्चा शास्त्र, ये तीन तथा तीन इनके भक्त, इस-तर, ये छह धर्मके आलम्बन हैं। इनसे विपरीत जो ऊपर श्लोकमें बताये हैं वे धर्मके आलंबन नहीं हैं। अतः उन्हें अनायतन कहते हैं। इन छहोंकी संगति करनेसे धर्म-सम्यक्त्व मलिन होता है। अतः सम्यग्दृष्टियोंको इन छहोंकी संगति नहीं करना चाहिए ॥ ३४ ॥

शंकादि आठ दोष।

शङ्काऽऽकांक्षा जुगुप्सा च मौढ्यमनुपगूहनम्।
अस्थितीकरणं चाप्यवात्सल्यं चाप्रभावना ॥ ३५ ॥
एतेऽष्टौ मिलिता दोषास्त्याज्याः सम्यक्त्वधारिभिः।
सदैव गुरुशास्त्राणां भक्तिः कार्या निरन्तरम् ॥ ३६ ॥

शंका—निर्दोष जिनमतमें खाँमुखाँ शंका करना; आकांक्षा—अच्छे अच्छे विषयभोगोंकी चाहना करना; जुगुप्सा—धर्मात्माओंसे ग्लानि करना, मूढ़दृष्टि—कुमार्गमें तथा कुमार्गमें रहनेवाले पुरुषोंमें सहमत रहना, उनकी प्रशंसा करना-सराहना करना; अनुपगूहन—निर्दोष परम पवित्र संपूर्ण जीवोंके हित करनेवाले जिनमार्गकी निंदा करना; अस्थितीकरण—धर्ममें आसक्त पुरुषोंको धर्ममें झूठे दोष दिखादिखाकर धर्मसे चिगाना; अवात्सल्य—धर्मके धारी श्रद्धानी पुरुषोंसे द्वेष करना, उनकी झूठी निंदाकर लोगोंको भड़काना; और अप्रभावना—जैनधर्मकी प्रतिष्ठा न करना—उसकी झूठी निंदा फैलाना; ये सम्यक्त्वके आठ दोष हैं। सम्यग्दृष्टिको इन आठ दोषोंका त्याग करना चाहिए, और हमेशह सच्चे देव, गुरु, शास्त्रकी भक्ति करना चाहिए ॥ ३५—३६ ॥

सम्यक्त्वके तीन भेद।

सम्यक्त्वं त्रिविधं ज्ञेयं क्षायिकं चौपशामिकम्।
क्षायोपशमिकं चेति उत्तमाधममध्यमम् ॥ ३७ ॥

सम्यक्त्व तीन प्रकारका जानना-पहला क्षायिक सम्यक्त्व, दूसरा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और तीसरा औपशमिक सम्यक्त्व। इनमेंसे क्षायिक सम्यक्त्व उत्तम है। क्षायोपशमिक मध्यम है, और औपशमिक जघन्य है ॥ ३७ ॥

तीनों सम्यग्दर्शनोंकी उत्पत्ति।

मिथ्यासमयमिथ्यात्वसम्यक्प्रकृतयस्त्रयः।
आद्यं कषायतुर्यं च चतुःप्रकृतयः पुनः ॥ ३८ ॥
क्षायिकं च क्षयात्तासां शमनाच्चौपशमिकम्।
मिश्रात्तन्मिश्रसम्यक्त्वमिति मोक्षप्रदायकम् ॥ ३९ ॥

मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन; और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार-इस प्रकार सात कर्मोंके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है। इन सातोंके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व होता है। और इन सातोंके क्षयोपशमसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। ये तीनों ही सम्यक्त्व मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ॥३८-३९ ॥

सम्यक्त्वके आठ गुण।

उक्तं च-संवेउ णिव्वेउ णिंदा गरहा च उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अणुकंपा अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते ॥ ४० ॥

संवेग, निर्वेग, अपनी निन्दा, अपनी गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकंपा, ये सम्यक्त्वके आठ गुण हैं।

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं।
अणुव्वयमहव्वयाइं ण हवइ देवाउगं मोत्तुं ॥ ४१ ॥
छसु हिट्ठिमासु पुढविसु जोइसवणभवणसव्वइत्थीसु।
वारसमिच्छोवाये सम्माइट्ठे ण होदि उववादो ॥ ४२ ॥
पंचसु थावरवियले असण्णिणिगोयम्मि छक्कुभोगेसु।
सम्मादिट्ठी जीवो उववज्जदि ण णियमेण ॥ ४३ ॥

नरकक्षेत्र, तिर्यक्क्षेत्र, मनुष्यक्षेत्र और देवक्षेत्र, इन चारों क्षेत्रसम्बन्धी आयुकर्मके बंध जानेपर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति तो हो जाती है, किन्तु देवायुको छोड़ अन्य तीन क्षेत्रसंबंधी आयुका बंध हो जानेपर अणुव्रत-देशविरत नामका पंचम गुणस्थान और महाव्रत-छठे सातवें गुणस्थान नहीं होते। देवायुके बंध जानेपर तो अणुव्रत महाव्रत हो जाते हैं। सम्यग्दृष्टि मरकर रत्नप्रभा नामकी प्रथम नरकभूमिके सिवाय बाकीकी छह पृथ्वियोंमें; ज्योतिषी, व्यंतर और भवनवासी, इन तीन तरहके देवोंमें, और सब स्त्रियोंमें-देवांगना, मनुष्यनियाँ और तिर्यचनियाँ, इन तीन तरहकी स्त्रियोंमें-इस तरह बारह मिथ्यादृष्टियोंके उत्पन्न होनेके स्थानोंमें उत्पन्न नहीं होता। इन बारह स्थानोंमें नियमसे मिथ्यादृष्टि ही मरकर पैदा होता है। हां, इन स्थानोंमें उत्पन्न होनेके बाद सम्यक्त्वोत्पत्तिकी योग्यता

मिलनेपर उनके सम्यग्दर्शन हो सकता है। सम्यग्दृष्टि मरकर नियमसे पांच थावरों, तीन विकलेंद्रियों, असंज्ञी पंचेंद्रियों, निगोदियों और कुभोग-भूमियोंमें भी उत्पन्न नहीं होता है; और न इन जीवोंमें सम्यग्दर्शन होता है ॥ ४१-४३ ॥

क्षायोपशमिक-सम्यक्त्वका स्वरूप।

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चलमलिणमगाढं तं वेदगसम्मत्तमिदि जाणे ॥ ४४ ॥

दर्शनमोहनीय-सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे आत्मामें जिनोक्त पदार्थोंका जो श्रद्धान होता है उसे वेदक-क्षायोपशमिक-सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यक्त्व चल, मलिन और अगाढ़रूप रहता है। इनका स्वरूप गोम्मटसार जीवकांडसे जानना ॥ ४४ ॥

औपशमिक-सम्यक्त्वका लक्षण।

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
उवसमसम्मत्तमिदं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥ ४५ ॥

दर्शन मोहनीय-मिथ्यात्वकर्म, सम्यक्मिथ्यात्वकर्म, सम्यक्त्वकर्म, अनंतानुबंधिक्रोध, अनंतानुबंधिमान, अनंतानुबंधिमाया और अनंतानुबंधिलोभ, इन सात प्रकृतियोंके उपशम होनेसे आत्मामें पदार्थोंका जो श्रद्धान उत्पन्न होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। जैसे मलिन जलमें फिटकड़ी वगैरहके डालनेसे मल नीचेको बैठ जाता है और ऊपरसे पानी निर्मल हो जाता है, उसी तरह यह सम्यक्त्व कर्म-मलोंके फल न देनेसे-उदय न आनेसे, अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त निर्मल होता है ॥ ४५ ॥

क्षायिक-सम्यक्त्वका स्वरूप।

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होइ।
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥ ४६ ॥

ऊपर कहे हुए सात प्रकारके क्षय होनेपर आत्मामें जो निर्मल पदार्थका श्रद्धान उत्पन्न होता है, उसे क्षायिक-सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यक्त्व नित्य है-एकवार उत्पन्न होकर फिर कभी नहीं छूटता है। यह कर्मोंके क्षय करनेमें कारण है ॥ ४६ ॥

वयणेहि वि हेदूहिं वि इंदियभयआणयेहि रूवेहिं।
वीभच्छजुगुंच्छाहि वि तेलोयेण वि ण चालेज्जो ॥ ४७ ॥

यह सम्यक्त्व वचनोंसे, हेतुओंसे, इन्द्रियोंको भय उपजानेवाले रूपोंसे, बीभत्स्य पदार्थोंके देखनेसे, जुगुप्सासे, और तो क्या तीन लोकसे भी चलायमान नहीं होता। भावार्थ-इस सम्यक्त्वको भ्रष्ट करनेके लिए कितने ही कारण क्यों न मिल जायें, पर तौ भी यह सम्यक्त्व कभी भी नष्ट नहीं होता है-हमेशह आत्मामें प्रकाशमान रहता है ॥ ४७ ॥

दंसणमोहक्खवणा पट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु।
मणुजो केवलिमूले णिट्ठवगो होइ सव्वत्थ ॥ ४८ ॥

कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य ही केवली अथवा श्रुतकेवलीके निकट दर्शन-मोहनीयके क्षय करनेका प्रारंभ करता है और उसका निष्ठापन-पूर्ति सब जगह करता है ॥ ४८ ॥

दंसणमोहक्खविदे सिज्झदि एकेव तिदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेससम्मं वा ॥ ४९ ॥

दर्शन-मोहका क्षय हो जानेपर एक ही भवमें मुक्ति हो जाती है अथवा तीसरे या चौथे भवमें मुक्ति होती है। परंतु चौथे भवका कभी उल्लंघन नहीं होता—चौथे भवमें नियमसे मुक्ति हो ही जाती है। जैसे औपशमिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होकर छूट जाते हैं, वैसे यह क्षायिक सम्यक्त्व एक बार होकर कभी नहीं छूटता है। भावार्थ—जैसे किसी मनुष्यके क्षायिक सम्यक्त्व हुआ और वह यदि चरम-शरीरी है तो उसी भवसे मुक्ति हो जाती है। इस अपेक्षा एक ही भवसे मुक्ति होती है। यदि उसके पहले नरककी आयु बंध गई हो तो नरकको, और यदि आयु न बंधी हो तो स्वर्गको जाता है। वहांसे च्युत हो, मनुष्य होकर मुक्ति जाता है। इस तरह दो मनुष्य-भव और एक नरक या देव-भव, इन तीन भवोंमें मुक्ति चला जाता है। यदि किसी मनुष्यको तिर्यंच या मनुष्यकी आयुका बंध हो चुकनेके बाद क्षायिक सम्यक्त्व हुआ है तो वह मरकर भोग-भूमिमें मनुष्य या तिर्यंच-पुरुष (पुरुष लिंगधारी तिर्यंच) होता है। वहांसे मरकर वह सीधा स्वर्गको जाता है। वहांसे च्युत हो मनुष्य-भव प्राप्त कर मुक्तिको जाता है। इस अपेक्षा चार भव होते हैं—एक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेका मनुष्य-भव, दूसरा भोगभूमिका भव, तीसरा देव-भव और चौथा फिर मनुष्य-भव। दूसरे भवमें कभी मुक्ति नहीं होती है ॥ ४९ ॥

व्रताद्भ्रष्टस्य सम्यक्त्वं वर्तते यदि चेतसि ।
आर्द्रः सिध्यति भव्यः स चारित्रधरणक्षणे ॥ ५० ॥

जो मनुष्य चारित्रसे भ्रष्ट है, परन्तु यदि उसकी आत्मामें सम्यग्दर्शन मौजूद है तो, वह भव्य अपने परिणामोंसे आर्द्र है; इसलिए वह नियमसे चारित्र धारणकर नियमसे सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

सम्यक्त्वकी प्रशंसा।

विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ५१ ॥

सम्यक्त्वके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और मोक्षप्राप्ति-रूप फलकी प्राप्ति नहीं होती है। जैसे बीजके बिना न तो वृक्ष ही ऊगता है, न उसकी पृथ्वीपर स्थिति ही रह सकती है, न वह बढ़ ही पाता है, और न उसके फल ही लगते हैं ॥ ५१ ॥

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ५२ ॥

तीनों कालोंमें और तीनों जगतोंमें प्राणियोंका भला करनेवाला सम्यक्त्वके बराबर न तो कोई हुआ है, न है, और न होगा। और मिथ्यात्वके बराबर जीवका न कोई दूसरा दुश्मन हुआ, न है, और न होगा। अतः मिथ्यात्वको त्यागना चाहिए और सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहिए ॥ ५२ ॥

दुर्गतावायुषो बन्धात्सम्यक्त्वं यस्य जायते।
गतिच्छेदो न तस्यास्ति तथाऽप्यल्पतरा स्थितिः ॥ ५३ ॥

जिस मनुष्यके दुर्गति सम्बन्धी आयुका बंध हो जानेके पीछे सम्यक्त्व होता है, उसके उस गतिका छेद नहीं होता–उसे उस गतिमें अवश्य जाना ही पड़ता है। तौभी उसके आयुकर्मकी स्थिति बहुत ही थोड़ी रह जाती है ॥ ५३ ॥

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥ ५४ ॥

जो जीव व्रतोंसे रहित हैं, जिनके कोई तरहका व्रत नहीं है, किन्तु सम्यग्दर्शनसे पवित्र हैं, वे मरकर नरक और तिर्यंच गतिमें नहीं जाते, स्त्री और नपुंसक नहीं होते, खोटे कुलमें उत्पन्न नहीं होते, विकृत शरीरवाले नहीं होते, अल्प आयुवाले नहीं होते, और न दरिद्री होते हैं। किन्तु—॥ ५४ ॥

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः।
उत्तमकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥ ५५ ॥

वे सम्यग्दर्शनसे परम पवित्र जीव, मनुष्य-गतिमें भारी कान्तिमान, महा तेजस्वी, परिपूर्ण विद्यावान, उत्कृष्टशक्तिशाली, भारी यशस्वी और प्रचुर सम्पत्तिके स्वामी होते हैं, उत्तम कुलमें जन्म लेते हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी साधना करनेवाले होते हैं, और मनुष्योंमें, सिरके तिलकके समान, श्रेष्ठ होते हैं ॥ ५५ ॥

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥ ५६ ॥
अणिमा महिमा लघिमा गरिमाऽन्तर्धानकामरूपित्वम्।
प्राप्तिः प्राकाम्यवशित्वेशित्वाप्रतिहतत्वमिति वैक्रियकाः ॥ ५७ ॥

स्वर्गमें वे जिनभक्त सम्यग्दृष्टि जीव आठ ऋद्धियोंकी पुष्टिसे सन्तुष्ट और प्रचुर शोभासे युक्त होते हैं। तथा वे देव और देवांगनाकी सभाओंमें बहुत कालपर्यन्त आनंदसे क्रीड़ा करते हैं। १ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गरिमा, ५ अंतर्धान, ६ कामरूपित्व, ७ प्राप्ति, ८ प्राकाम्य ९ वशित्व, १० ईशित्व, और ११ अप्रतिहतत्व, ये ग्यारह ऋद्धियां हैं, जिनमेंसे स्वर्गमें आठ प्राप्त होती हैं ॥ ५६–५७ ॥

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम्।
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥ ५८ ॥

ये सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य-गतिमें और भी भारी प्रभावशाली होते हैं। यहां वे नवनिधियों और चौदह रत्नोंके अधिपति होते हैं; षट्खंड पृथ्वीके स्वामी होते हैं, पृथ्वीतलपर एकछत्र राज्य करते हैं, और जिनके चरणोंमें बत्तीस हजार राजे-महाराजे सिर झुकाते हैं। इसके अलावा और भी कई तरहके उत्तम कार्योंको प्राप्तकर वे इस सम्यग्दर्शनके बलसे मुक्तितक जाते हैं ॥ ५८ ॥

सम्यग्ज्ञानका लक्षण।

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ५९ ॥

जो वस्तुस्वरूपको जितना उसका स्वरूप है उससे न तो न्यून जानता है, न अधिक जानता है, और न विपरीत जानता है; किन्तु जैसी उसकी असलियत है वैसा ही संदेहरहित जानता है, उसे आगमके वेत्ता पुरुष सम्यग्ज्ञान कहते हैं। भावार्थ-संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरहित वस्तुके स्वरूपका जानना सम्यग्ज्ञान है ॥ ५९ ॥

प्रथमानुयोग-ज्ञान।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥ ६० ॥

जो सम्यग्ज्ञान, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चार पुरुषार्थोंका भले प्रकार निरूपण करनेवाले पुण्यमयी (अर्थात् जिनके सुननेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है) चरित्र और पुराणको जानता है और जो रत्नत्रय तथा ध्यानका खजाना है उसे प्रथमानुयोग-ज्ञान कहते हैं। भावार्थ—भगवान् समन्तभद्रस्वामी परिपूर्ण परीक्षाप्रधानी थे। उनने हरएक पदार्थकी खूब अच्छी तरह जांच की है, जो उनके बनाये हुए आप्तमीमांसा ग्रन्थसे प्रकट है। उन्हींका कहना है कि, जिसमें एक पुरुषकी जीवनी लिखी जाती है उसे चरित कहते हैं; और जिसमें तिरेसठ शलाकाके पुरुषोंकी जीवनी लिखी जाती है उसे पुराण कहते हैं। ऐसे चरित्र और पुराणोंमें चारों पुरुषार्थोंका कथन रहता है। इन पुराणोंके पढ़नेसे पढ़नेवालोंको पुण्यकी प्राप्ति होती है। इनके पढ़नेसे रत्नत्रय और ध्यानकी प्राप्ति होती है। इसलिए पुराणोंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए; इन्हें गप्प नहीं समझना चाहिए। ये वस्तुके वास्तविक स्वरूपको प्रकट करनेवाले हैं। इसीलिए इनका ज्ञान प्रथमानुयोग नामका ज्ञान है, और वह सम्यग्ज्ञान है ॥ ६० ॥

करणानुयोग-ज्ञान।

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोगं च ॥ ६१ ॥

जो सम्यग्ज्ञान लोक और अलोकके विभागको, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-रूप युगोंकी उलटा-पलटीको और चारों गतियोंकी व्यवस्थाको दर्पणकी भांति स्पष्ट दिखाता है उसे करणानुयोग ज्ञान कहते हैं। भावार्थ—जैसे दर्पण अपने सामने रक्खे पदार्थको स्पष्ट दिखाता है वैसे ही करणानुयोग शास्त्र इन बातोंको स्पष्ट दिखाते हैं। इनके ज्ञानको करणानुयोग-ज्ञान कहते हैं ॥ ६१ ॥

चरणानुयोग-ज्ञान।

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥ ६२ ॥

सम्यग्ज्ञान, गृहस्थों और मुनियोंके चारित्रकी उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षाके कारण चरणानुयोग शास्त्रको जानता है। भावार्थ—जिसमें मुनि और गृहस्थोंके चारित्रका कथन हो, उसकी वृद्धि और

रक्षाका उपाय बताया गया हो वह चरणानुयोग शास्त्र है। इस शास्त्रके ज्ञानको चरणानुयोग-ज्ञान कहते हैं; और यह ज्ञान, सम्यग्ज्ञान है ॥ ६२ ॥

द्रव्यानुयोग-ज्ञान।

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ६३ ॥

द्रव्यानुयोग नामका दीपक, जीव, अजीव सुतत्त्वोंको, पुण्य और पापको, बंध और मोक्षको तथा श्रुतविद्या-भावश्रुतके प्रकाशको विस्तारता है। भावार्थ—जिनमें मुख्य करके इन विषयोंका वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग-शास्त्र कहते हैं। इनके ज्ञानका नाम द्रव्यानुयोग-ज्ञान है। यह ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है। सारांश—ये चारों जातिके शास्त्र सम्यक्शास्त्र हैं, और इनका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्चारित्र।

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ६४ ॥

पापास्रवके कारण हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील-सेवन और परिग्रह, इन पांच पापोंसे विरक्त होना सम्यग्ज्ञानियोंका चारित्र है ॥ ६४ ॥

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् ॥ ६५ ॥

यह चारित्र दो प्रकारका है, एक सकल चारित्र और दूसरा विकल-एकदेश चारित्र। सकल चारित्र सब तरहके परिग्रहोंसे रहित महामुनियोंके होता है। और विकल चारित्र परिग्रहयुक्त गृहस्थोंके होता है ॥ ६५ ॥

सागार-गृहस्थका लक्षण।

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुःसंज्ञाज्वरातुराः।
शश्वत्स्वज्ञानविमुखाः सागारा विषयोन्मुखाः ॥ ६६ ॥

जो अनादिकालीन अविद्यारूप वात, पित्त और कफ, इन तीन दोषोंसे उत्पन्न हुए आहार, भय, मैथुन और परिग्रह, इन चार संज्ञारूपी ज्वरसे पीड़ित हैं, अतएव सदा अपने आत्मज्ञानसे विमुख हैं और सांसारिक विषयोंमें लीन हैं, वे सागार-घर-कुटुंबमें रहनेवाले गृहस्थ होते हैं॥ ६६ ॥

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ६७ ॥

जो गृहस्थ होकर भी निर्मोह है—घर-कुटुम्बादिमें ममत्वपरिणामरहित है, वह मोक्षमार्गमें स्थित है। और जो मुनि होकर भी नाना मोहजालमें फंसा हुआ है वह मोक्षमार्गमें स्थित नहीं है। इसलिए मोही मुनिसे निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ होता है ॥ ६७ ॥

सम्यग्दृष्टि श्रावकका लक्षण।

अष्टमूलगुणाधारो सप्तव्यसनदूरगः।
सद्गुरुवचनासक्तः सम्यग्दृष्टिः स उच्यते ॥ ६८ ॥

जो आठ मूलगुणोंका धारी है, सात व्यसनोंका त्यागी है और सद्गुरुके वचनोंमें आसक्त है, वह सम्यकदृष्टि कहा जाता है ॥ ६९ ॥

आठ मूलगुणोंके नाम।

तत्रादौ श्रद्दधज्जैनीमाज्ञां हिंसामपासितुम् ।
मद्यमांसमधून्युज्झेत्पंचक्षीरफलानि च ॥ ६९ ॥

गृहस्थोंको सबसे पहले जिन-आज्ञाका श्रद्धान करते हुए हिंसाको त्यागनेके लिए मद्य, मांस, मधु और पांच क्षीरफलोंका त्याग करना चाहिए। इनका स्वरूप पहले लिख आये हैं ॥ ६९ ॥

अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूलवधादि वा ।
फलस्थाने स्मरेत् द्यूतं मधुस्थान इहैव च ॥ ७० ॥

भगवत्सोमदेव सूरि, अमृतचंद्र सूरि आदि आचार्य इन ऊपर कहे आठोंको मूलगण कहते हैं। भगवान समन्तभद्राचार्य पांच क्षीरफलोंके स्थानमें स्थूल-वधादिके त्यागको अर्थात् पांच अणुव्रतोंका धारण और तीन मकारके त्यागको अष्ट मूलगुण कहते हैं। और भगवज्जिनसेनाचार्य, समन्तभद्रस्वामीके बताये हुए अष्ट मूलगुणोंमें मधुके स्थानमें जूएके त्यागको अर्थात् पांच अणुव्रतोंके धारण, मद्यके त्याग, मांसके त्याग और जुआ खेलनेके त्यागको अष्ट मूलगुण कहते हैं। तथा-॥७०॥

मद्यपलमधुनिशाशनपञ्चफलीविरतिपञ्चकाप्तनुती ।
जीवदया जलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥ ७१ ॥

किन्हीं किन्हीं ग्रन्थोंमें मद्यविरति, मांसविरति, मधुविरति, रात्रिभोजन विरति, पंच-क्षीरफलोंका त्याग, पांच आप्तोंकी नुति, जीवदया, और जल छानकर पीना, ये आठ मूलगुण बताये हैं ॥ ७१ ॥

आचार्योंके बताये हुए इन मूलगुणोंमें कोई विरोध नहीं है। सबका उद्देश वही हिंसाके त्यागका है। जबकि गृहस्थोंका चारित्र देश-चारित्र है, और देशके अनेक भाग होते हैं, तब मूलगुणोंमें अनेक भेदोंका जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट-रूप हो जाना आश्चर्यकारक नहीं है। हां, मुनियोंका चारित्र सकल-चारित्र है। उनके बाह्य मूल चारित्रमें कुछ भेद नहीं होता। गिरस्तोंके चारित्रमें अनेक भेद होते हैं। अन्यथा वह देश-चारित्र ही नहीं हो सकता। सबमें उत्तरोत्तर हिंसात्यागकी प्रकर्षता है। वह प्रकर्षता मुनियोंके चारित्रमें अन्त्य दर्जेको पहुंच जाती है। इसलिये आचार्य वचनोंमें कुछ भी विरोध नहीं समझना चाहिए।

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम् ॥ ७२ ॥

गिरस्तोंका चारित्र तीन प्रकारका है—अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत। ये क्रमसे पांच, तीन और चार भेदरूप हैं ॥ ७२ ॥

पांच अणुव्रतोंका स्वरूप।

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥ ७३ ॥

स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल कुशील-सेवन और स्थूल परिग्रह, इन पांच पापोंके त्याग करनेको अणुव्रत कहते हैं ॥ ७३ ॥

भाव-हिंसा।

स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं हिनस्त्यात्मा कषायवान् ।
पूर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चात्स्याद्वा न वा वधः ॥ ७४ ॥

यह आत्मा जब कषाययुक्त होता है तब प्रथम स्वयं अपने द्वारा अपना ही घात कर लेता है। पश्चात् अन्य प्राणियोंकी हिंसा हो या न हो।

भावार्थ—क्रोधादि कषायोंके उत्पन्न होनेको हिंसा कहते हैं। जब यह आत्मा क्रोध करता है तब अपनेही स्वरूपका घात कर लेता है। ऐसी अवस्थामें बाह्य प्राणोंका व्यपरोपण-घात हो या न हो, किन्तु भाव-हिंसा तो हो ही जाती है। इसलिए कषायोंका त्याग करना उचित है ॥ ७४ ॥

बाह्य स्थूल हिंसाका त्याग।

सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥ ७५ ॥

संकल्प-पूर्वक मन, वचन, काय, और कृत, कारित, अनुमोदनासे त्रस जीवोंके नहीं मारनेको निपुण पुरुष स्थूल अहिंसाणुव्रत कहते हैं ॥ ७५ ॥

अहिंसाणुव्रतके पांच अतीचार।

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणाऽपि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥ ७६ ॥

द्विपद अथवा चतुष्पद जीवोंके नाक कान छेदना, उन्हें रस्सी वगैरहसे बांधना, उन्हें चाबुक वगैरहसे पीटना, उनपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझ लादना, और उन्हें खानेको रोटी, पानी, घास वगैरह न देना, ये अहिंसाणुव्रतके पांच अतीचार हैं। अहिंसाणुव्रत पालन करनेवालेको इन पांच अतीचारोंका भी त्याग करना चाहिए ॥ ७६ ॥

सत्याणुव्रतका स्वरूप।

स्थूलमलीकं न वदति न परान्वादयति सत्यमपि विपदे ।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ७७ ॥

स्थूल—मोटी झूंठ न बोलना और न दूसरोंसे बुलवाना, तथा जिसके बोलनेसे किसीके ऊपर विपत्ति आ जावे ऐसी सत्य भी नहीं बोलना, इसे सज्जन पुरुष सत्याणुव्रत कहते हैं ॥ ७७ ॥

सत्याणुव्रतके पांच अतीचार।

परिवादरहोभ्याख्यापैशुन्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारिताऽपि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥ ७८ ॥

मिथ्या उपदेश देना, किसीके गुप्त रहस्यको प्रकट करना, चुगली अथवा निन्दा करना, झूंठी बातें लिखना, और किसीका धरोहर हरना, ये पांच सत्याणुव्रतके अतीचार हैं। सत्याणुव्रतीको इनका त्याग करना चाहिए ॥ ७८ ॥

अचौर्याणुव्रतका स्वरूप।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणम् ॥ ७९ ॥

रक्खे हुए, गिरे हुए, भूले हुए, अथवा धरोहररूप रक्खे हुए पर-द्रव्यको न तो स्वयं लेना और न औरोंको देना, इसे स्थूल-चौरीसे विरक्त होना--अचौर्याणुव्रत कहते हैं ॥ ७९ ॥

अचौर्याणुव्रतके पांच अतीचार।

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसम्मिश्राः।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥ ८० ॥

औरोंको चौरीका उपाय बताना, चौरोंके द्वारा चुराई हुई वस्तुओंको लेना, सरकारी आज्ञाको न मानना—राजकीय टैक्सको चुराना, अधिक मूल्यकी वस्तुमें हीन मूल्यकी वस्तु मिलाकर बेंचना, और नापने तोलनेके गज, बांट, तराजू आदि लेनेके अधिक और देनेके कमती रखना, ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतीचार हैं। अचौर्याणुव्रतीको इनका त्याग करना चाहिए ॥ ८० ॥

ब्रह्मचर्याणुव्रतका लक्षण।

न च परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥ ८१ ॥

पापके भयसे न तो खुद परस्त्रीके साथ समागम करता है और न दूसरोंको कराता है, सो परदार-निवृत्ति व्रत है। इसका दूसरा नाम स्वदारसंतोष भी है ॥ ८१ ॥

ब्रह्मचर्य व्रतके पांच अतीचार।

अन्यविवाहकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥ ८२ ॥

औरोंके पुत्र-पुत्रियोंका विवाह करना, कामभोगके अंगोंको छोड़ भिन्न अंगोंद्वारा काम-क्रीड़ा करना, चकार, भकारादि भंड वचन बोलना, कामसेवनमें अधिक लालसा करना और परिग्रहीत किंवा अपरिग्रहीत व्यभिचारिणी स्त्रियोंके पास गमन करना, ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतीचार हैं। ब्रह्मचर्याणुव्रतीको इनका त्याग करना चाहिए ॥ ८२ ॥

परिग्रहपरिमाण व्रतका स्वरूप।

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामाऽपि ॥ ८३ ॥

धन, धान्य आदि दश प्रकारके परिग्रहका परिमाण करना कि इतना रक्खेंगे, उससे अधिककी लालसा न करना, परिग्रह-परिमाण है। इसका दूसरा नाम इच्छा-परिमाण भी है ॥ ८३ ॥

परिग्रहपरिमाणव्रतके पांच अतीचार।

अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥ ८४ ॥

अतिवाहन—लोभवश मनुष्य अथवा पशुओंको उनकी शक्तिसे अधिक चलाना; अतिसंग्रह—अमुक धान्योंमें अधिक मुनाफा होगा ऐसा समझ लोभके वशीभूत होकर उनका अधिक संचय करना; विस्मय—जो धान्य या कोई अन्य वस्तु थोड़े मुनाफेसे बेंच दी गई हो अथवा जिसका संग्रह स्वयं न कर सका हो, उस पदार्थको बेंचकर किसी दूसरेने अधिक नफा उठाया हो, उसे देखकर विषाद करना; लोभ—योग्य मुनाफा होनेपर भी और अधिक मुनाफा होनेकी आकांक्षा करना; और अति-भारारोपण—लोभके वशसे शक्तिसे अधिक बोझा लादना; ये पांच परिग्रह-परिमाण व्रतके अतीचार हैं। परिग्रहपरिमाण व्रतीको इनका त्याग करना चाहिए ॥८४॥

छह-अणुव्रत।

वधादसत्याच्चौर्याच्च कामाद्ग्रन्थान्निवर्तनम्।
पञ्चकाणुव्रतं रात्रिभुक्तिः षष्ठमणुव्रतम् ॥ ८५ ॥

ऊपर कहे हुए हिंसाविरति, असत्यविरति, चौर्यविरति, अब्रह्मविरति, परिग्रहविरति, ये पांच और छठा रात्रिभोजनत्याग, इस प्रकार छह अणुव्रत होते हैं ॥ ८५ ॥

भावार्थ—रागादि भावोंका करना हिंसा है। सभी पापोंमें रागादि भाव होनेके कारण सभी व्रतोंका हिंसाविरतिमें अन्तर्भाव हो जाता है। परंतु केवल हिंसाके त्यागको कह देनेसे मंदबुद्धि समझ नहीं सकते। इसलिए उनको समझाने वास्ते झूठका त्याग करना, चोरीका त्याग करना आदि भेद कर दिये हैं। इसी तरह शायद कोई ऐसा भी समझ लें कि रात्रिभोजनका त्याग अणुव्रतोंमें नहीं है, अतः रात्रिको भोजन करना पाप नहीं है। इससे रात्रि-भोजन-त्याग नामके अणुव्रतको पृथक कहना पड़ा। रात्रि-भोजनका हिंसामें अन्तर्भाव नहीं हो सकता, यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि यह कह चुके हैं कि रागभावका नाम हिंसा है और रात्रिमें भोजन करनेमें राग भाव भी अधिक है। अतः जहां जहां राग है वहां वहां हिंसा है। तथा रात्रिमें बाह्य प्राणियोंका घात भी अधिक होता है। अतः बाह्य हिंसा भी जियादा है। इसलिए द्रव्यहिंसा और भावहिंसा दोनोंकी ही अपेक्षासे रात्रिभोजनका हिंसामें अंतर्भाव हो जाता है। रात्रिभोजन करना, झूठ बोलना, चोरी करना, मैथुन करना, परिग्रह रखना आदि सभी आत्माके परिणामोंके विघातक होनेसे हिंसा ही हैं। केवल शिष्योंको बोध करानेके लिए भेद-रूपसे कहे जाते हैं। अतः लोग जो तर्क करते हैं कि रात्रिभोजनका हिंसामें अंतर्भाव नहीं हो सकता वह बिलकुल अलीक है। जैसे हिंसाका स्वरूप स्पष्ट समझानेके लिए झूठ बोलना, चौरी करना इत्यादि भेद जुदा जुदा कर दिया है। वैसे ही रात्रिभोजनका हिंसामें अंतर्भाव होनेपर भी कोई २ आचार्य शिष्योंका भ्रम दूर करनेके लिए उसका हिंसासे पृथक् कथन करते हैं।

अह्नो मुखेऽवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजेत्।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभोजनम् ॥ ८६ ॥

सूर्योदयके बादकी दो घड़ी और सूर्यास्तके पहलेकी दो घड़ी छोड़कर जो भोजन करते हैं—दो घड़ी दिन चढ़ जानेके बादसे लेकर दो घड़ी दिन बाकी रहे तकके समयमें जो भोजन करता है, रात्रिमें भोजन करनेको महापाप जाननेवाला वह पुरुष पुण्यभोजन करता है ॥ ८६ ॥

पांच अणुव्रत पालनेके फल।

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम्।
यत्रावधिरष्टगुणा विद्यन्ते कामदा नित्यम् ॥ ८७ ॥

अतीचार रहित पालन की हुई ये पांच अणुव्रतरूपी निधियां स्वर्गलोकको फलती हैं, जहांपर अवधिज्ञान प्राप्त होता है और अच्छे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ ८७ ॥

तीन गुणव्रत।

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यन्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥ ८८ ॥

दिग्व्रत, अनर्थदंड व्रत और भोगोपभोग-परिमाण व्रत, ये तीनों मद्यत्याग आदि आठ मूल-गुणोंकी रक्षा करते हैं—उनको निर्मल बनाते हैं, इसलिए गणधरादि महापुरुषोंने इन्हें गुणव्रत कहा है ॥ ८८ ॥

दिग्व्रतका स्वरूप।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वाऽतोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥ ८९ ॥

सूक्ष्म पापोंकी निवृत्तिके लिए मरणपर्यंत पूर्व आदि दशों दिशाओंमें अमुक परिमाणके बाहर मैं नहीं जाऊंगा, इस तरहके नियम करलेनेको दिग्व्रत कहते हैं ॥ ८९ ॥

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाम्।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥ ९० ॥

पूर्व आदि दशों दिशाओंके त्याग करनेमें प्रसिद्ध २ समुद्र, नदी, अटवी, पर्वत, देश और योजन तककी मर्यादा-सीमा कही है। भावार्थ—अमुक अमुक दिशामें अमुक अमुक समुद्रसे, नदीसे, अटवीसे, पर्वतसे, देशसे या इतने योजनोंसे परे (आगे) नहीं जाऊंगा, इस तरह पर्वतादिकों तककी सीमा की जाती है ॥ ९० ॥

दिग्विरति व्रतके पांच अतीचार।

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम्।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥ ९१ ॥

अज्ञान अथवा प्रमादवश ऊपरकी सीमाका उल्लंघन करना, नीचेकी सीमाका उल्लंघन करना, तिर्यग्रूपसे सीमाका उल्लंघन करना, की हुई मर्यादासे कुछ क्षेत्र बढ़ा लेना, और मर्यादा की हुई सीमाका स्मरण न रखना, ये पांच दिग्विरति व्रतके अतीचार हैं। दिग्विरति व्रतीको इन अतीचारोंका त्याग करना चाहिए ॥ ९१ ॥

अनर्थदण्डविरति व्रतका स्वरूप।

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥ ९२ ॥

व्रतधारी पुरुषोंमें अग्रेसर गणधरादि देव, दिशाओंकी मर्यादाके भीतर भीतर प्रयोजन-रहित पापके कारणोंसे विरक्त होनेको अनर्थदण्ड-विरति व्रत कहते हैं॥ ९२ ॥

अनर्थदण्डव्रतके पांच भेद।

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥ ९३ ॥

प्रयोजनरहित कार्योंको न करनेवाले पुरुष, पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या, इन पांचको अनर्थदण्ड कहते हैं। भावार्थ—इन पांच कामोंको करना अनर्थदण्ड है ॥ ९३ ॥

पापोपदेश।

तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम्।
कथाप्रसङ्गप्रसवः स्मर्तव्यः पाप उपदेशः ॥ ९४ ॥

तिर्यग्वणिज्या, क्लेशवणिज्या, हिंसा, आरंभ, प्रलंभन (ठगाई) आदि कथाओंके प्रसंग उठानेको पापोपदेश नामा अनर्थदण्ड कहते हैं ॥ ९४ ॥

हिंसा-दान।

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गशृङ्खलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥ ९५ ॥

फरसा, तलवार, कुदाली, अग्नि, आयुध, सींग, शांकल आदि हिंसाके कारणोंके देनेको बुद्धिमान पुरुष, हिंसादान नामा अनर्थदण्ड कहते हैं ॥ ९५ ॥

अपध्यान।

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ ९६ ॥

द्वेष तथा रागसे दूसरेकी स्त्री, पुत्र आदिके मरजाने, बँध जाने, कट जाने आदिका चिन्तवन करनेको जिन-शासनमें कुशल पुरुष अपध्यान नामा अनर्थदण्ड कहते हैं ॥ ९६ ॥

दुःश्रुति।

आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।
चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ९७ ॥

आरंभ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, मद और मदन (काम) द्वारा चित्तको मलिन करनेवाले शास्त्रोंका सुनना दुःश्रुति नामा अनर्थदण्ड है ॥ ९७ ॥

प्रमादचर्या।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥ ९८ ॥

विना प्रयोजन जमीन खोदना, पानी उछालना, अग्नि जलाना, हवा करना, वनस्पती तोड़ना, घूमना और औरोंको घुमाना, इन सबको प्रमादचर्या नामा अनर्थदण्ड कहते हैं ॥ ९८ ॥

अनर्थदण्डके अतीचार।

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥ ९९ ॥

हास्यमिश्रित चकारादि वचन बोलना, कायके द्वारा कुचेष्टा करना, वृथा बकवाद करना, बिना प्रयोजन भोगोपभोगकी सामग्री बढ़ाना, और विना विचारे किसी कार्यको करना, ये पांच अनर्थ दंडविरति व्रतके अतीचार हैं। अनर्थदंडसे विरक्त पुरुषको इनका त्याग करना चाहिए ॥ ९९ ॥

भोगोपभोगपरिमाण व्रत।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ १०० ॥

राग-भावोंको घटानेके लिए परिग्रहपरिमाण व्रतमें परिमाण किये हुए विषयोंमेंसे भी प्रयोजनभूत पंचेंद्रियोंके विषयोंका परिमाण करना भोगोपभोगपरिमाण व्रत है ॥ १०० ॥

भोग और उपभोगका लक्षण।

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥ १०१ ॥

भोजन, वस्त्र आदि पंचेन्द्रियसम्बंधी विषय, जो एक वार भोगकर त्याग देने योग्य हैं उन्हें भोग, और जो भोगकर फिर भोगनेमें आते हैं उन्हें उपभोग कहते हैं ॥ १०१ ॥

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें विशेष त्याग।

त्रसहतिपरिहारार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥ १०२ ॥

जिन भगवानकी शरण ग्रहण करनेवाले पुरुषोंको त्रसजीवोंकी हिंसाका परिहार करनेके लिए मधु और मांसका तथा प्रमाद दूर करनेके लिए मद्यका त्याग करना चाहिए ॥ १०२ ॥

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गबेराणि।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥ १०३ ॥

जिनके भक्षण करनेसे जिह्वा इन्द्रियको फल कम मिलता हो और जीवोंका घात अधिक होता हो ऐसे सचित्त अदरख, मूली, गाजर, तथा मक्खन, नीम और केतकीके फूल, इस तरहकी चीजोंका भी त्याग करना चाहिए। भावार्थ—मद्य, मांसादिकोंका त्याग यद्यपि अष्ट मूलगुणोंके समय हो चुका था, तथापि फिर यहां भोगोपभोग व्रतमें भी इनका त्याग कराया है। इसलिए यहां इनके त्यागसे अतिचारोंका त्याग समझना चाहिए। अथवा पुनः पुनः त्यागका जो कथन किया जाता है वह व्रतशुद्धि तथा त्याग करनेवालेको स्मृति बनी रहे इसलिए किया जाता है ॥ १०३ ॥

पंच उंदुबर-त्यागका कारण।

सूक्ष्माः स्थूलास्तथा जीवाः सन्त्युदुम्बरमध्यगाः।
तन्निमित्तं जिनोद्दिष्टं पञ्चोदुम्बरवर्जनम् ॥ १०४ ॥

पंच उदुंबरोंमें सूक्ष्म स्थावरजीव और स्थूल त्रसजीव बहुत होते हैं। इसलिए इन जीवोंकी रक्षाके निमित्त श्रीजिनदेवने पंच उदुंबरके त्यागनेका उपदेश दिया है ॥ १०४ ॥

फल-भक्षण-त्याग।

रससम्पृक्तफलं यो दशति त्रसतनुरसैश्च सम्मिश्रम्।
तस्य च मांसनिवृत्तिर्विफला खलु भवति पुरुषस्य ॥ १०५ ॥

जो पुरुष त्रसजीवोंके शारीरिक रससे मिले हुए रसीले फलोंको खाता है उसका मांसत्याग व्रत व्यर्थ है। भावार्थ—जिन फलोंमें त्रसजीव हों उन फलोंको नहीं खाना चाहिए ॥ १०५ ॥

छने जलकी मर्यादा।

गालितं शुद्धमप्यम्बु सम्मूर्च्छति मुहूर्ततः।
अहोरात्रात्तदुष्णं स्यात्काञ्जिकं दूरवह्निकम् ॥ १०६ ॥

छने हुए शुद्ध और किसी पदार्थद्वारा विकृत न किये गये कुए बावड़ीके जलमें दो घड़ीके बाद त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। गर्म किये हुए जलमें एक दिन-रातके बाद—आठ पहरके पीछे त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। और कांजिकमें ठँडे हो जानेके बाद ही जीव उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १०६ ॥

तिलतण्डुलतोयं च प्रासुकं भ्रामरीगृहे।
न पानीयं मतं तस्मान्मुखशुद्धिर्न जायते ॥ १०७ ॥

जिस घरमें भिक्षाके लिए जाते हैं उसको 'भ्रामरी-घर' कहते हैं। ऐसे घरमें जिससे तिल और चाँवल धोये हों वह पानी प्रासुक है; परन्तु उससे मुखशुद्धि नहीं होती, इसलिए वह पीने योग्य नहीं माना गया है ॥ १०७ ॥

जल प्रासुक करनेकी विधि।

एलालवङ्गतिलतण्डुलचन्दनाद्यैः, कर्पूरकुंकुमतमालसुपल्लवैश्च।
सुप्रासुकं भवति खादिरभस्मचूर्णैः, पानीयमग्निपचितं त्रिफलाकषायैः ॥ १०८ ॥

इलायची, लौंग, चंदन, कपूर, केसर, ताडवृक्षके कोमल पत्ते, खैर वृक्षकी लकड़ीकी राख तथा त्रिफलाके चूर्णसे, तिल चावलोंके धोनेसे और अग्निमें गर्म करनेसे पानी प्रासुक हो जाता है ॥ १०८ ॥

चम्मगदं जलणेहे उप्पज्जइ वियलतियं पंचिदियं।
संधाने पुण भुत्ते सीइज्जुए मंसवए अइचारी ॥ १०९ ॥

चमड़ेके वर्तनमें भरे हुए पानी, घृत वगैरहमें दो-इंद्रिय, तीन-इंद्रिय, चार-इंद्रिय और पांच-इंद्रिय जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इनको तथा संधान—नीबू, आम आदिका आचार खानेसे मांस-त्याग व्रतमें दोष आता है ॥ १०९ ॥

[1]शिक्षाव्रतके भेद।

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥ ११० ॥

---

१ नोट—यद्यपि क्रमानुसार यहां इस भोगोपभोगपरिमाण व्रतके और आगेके शेष व्रतोंके भी अतीचार कहने चाहिए थे। परंतु सामान्य संग्रह ग्रन्थ होनेके कारण नहीं कहे हैं।

देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, और वैयावृत्त, ये चार शिक्षाव्रत कहे गये हैं। कालके परिमाणसे प्रतिदिन बड़े बड़े देशोंके कम करनेको देशावकाशिक व्रत कहते हैं॥ ११० ॥

देशावकाशिकव्रतकी मर्यादा।

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥ १११ ॥

तपोवृद्ध गणधर दि आचार्य देशावकाशिक व्रतकी सीमा अपना घर, गली, ग्राम, क्षेत्र, नदी, अरण्य और योजन तककी बताते हैं ॥ १११ ॥

सामायिक व्रत।

आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥ ११२ ॥

सामायिक करनेवाले बड़े बड़े ऋषीश्वर मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना द्वारा सब जगह किसी नियत समय पर्यन्त पंच पापोंके त्यागको सामायिक व्रत कहते हैं। इसे ही सामान्यतया सामायिक प्रतिमा समझना चाहिए ॥ ११२ ॥

प्रोषधोपवास।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥ ११३ ॥

अष्टमी और चतुदर्शी पर्वके दिन, प्रशस्त भावोंसे चार प्रकारके आहारके त्यागको प्रोषधोपवास जानना चाहिए। यही सामान्यतया प्रोषधोपवास नामकी चौथी प्रतिमा है ॥ ११३ ॥

वैयावृत्य।

दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥ ११४ ॥

सम्यग्दर्शनादि गुणोंके खजाने, द्रव्य-भाव-घर-रहित तपोधन महामुनियोंको, धर्मके निमित्त, प्रत्युपकारकी किसी तरहकी इच्छा न रखते हुए, भारी उत्साहके साथ दान देना वैयावृत्त्य है ॥ ११४ ॥

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्त्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥ ११५ ॥

गुणोंमें प्रीति धारण कर, उन संयमी महामुनियोंकी हर प्रकारकी आपत्तिको दूर करना, उनके चरणोंको दबाना अर्थात् पांव-दाबना, तथा और भी जितनाभर उपकार अपनेसे बन सके करना, वैयावृत्त्य है ॥ ११५ ॥

दानविधि।

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥ ११६ ॥

आगेके श्लोकमें कहे हुए सात गुण—सहित, शुद्ध भावोंसे कूटने, पीसने, चूल्हा सुलगाने, पानी भरने और बुहारी देनेके आरंभसे रहित महामुनियोंका नवधा-भक्ति द्वारा आदर सत्कार करना-आहार देना दान कहा जाता है ॥ ११६ ॥

नौ पुण्य ।

स्थापनमूच्चैःस्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामश्च ।
वाक्कायहृदयैषणशुद्धय इति नवविधं पुण्यम् ॥ ११७ ॥

आहार पानी शुद्ध है, ठहरिये-ठहरिये, इस तरह पड़गाहना, बैठनेको ऊंचा आसन देना, पैर प्रक्षालन करना, पूजा करना, नमस्कार करना, मन—वचन—कायकी शुद्धि रखना, और शुद्ध आहार देना, ये नौ पुण्य हैं । इन नौ पुण्यों-पूर्वक अतिथियोंको आहार देना चाहिए ॥ ११७ ॥

दाताके सात गुण ।

श्रद्धा भक्तिस्तुष्टिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा सत्त्वम् ।
यत्रैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति ॥ ११८ ॥

जिस दातामें श्रद्धा, भक्ति, संतोष, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और धैर्य, ये सात गुण हैं, वह दाता प्रशंसाके योग्य है ॥ ११८ ॥

ग्यारह प्रतिमा ।

दंसणवयसमाइयपोसहसचित्तराइभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गहअणुमणुमुद्दिट्ठ देशविरदेदे ॥ ११९ ॥

दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्तत्याग प्रतिमा, रात्रिभक्त त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरंभत्याग प्रतिमा, परिग्रहत्याग प्रतिमा, अनुमतित्याग प्रतिमा, और उद्दिष्टत्याग प्रतिमा, ये ग्यारह प्रतिमाएं हैं, जो देशविरत—पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकोंके होती हैं ॥ ११९ ॥

दर्शनव्रतसामायिकप्रोषधोपवासकाः ।
प्रोक्ताः प्रागेव प्रोचेऽथ सचित्तव्रतलक्षणम् ॥ १२० ॥

दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा और प्रोषधोपवास प्रतिमा, इन चार प्रतिमाओंका लक्षण जो पहले कह आये हैं वही है। अब सचित्तत्याग प्रतिमाका लक्षण कहते हैं। भावार्थ—पहले जो सम्यग्दर्शन और अष्ट मूलगुणोंको कह आये हैं उसे दर्शनप्रतिमा समझना चाहिए। निरतिचार पांच व्रतों और सात शीलोंका पालना व्रत प्रतिमा है, जिनका पूर्वमें कथन कर आये हैं। जो सामायिक—शीलका पहले लक्षण कह आये हैं वही संक्षेपसे सामायिक प्रतिमा है। और जो प्रोषधोपवासशील है वही प्रोषधोपवास प्रतिमा है। अब पांचवीं सचित्त-त्याग-प्रतिमा कहते हैं ॥ १२१ ॥

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥ १२१ ॥

जो कच्चे मूल, फल, शाक, शाखा, करीर (बांसकी कौंपल वा कैर अर्थात् कैर वृक्षका फल), कन्द, पुष्प और बीज नहीं खाता है वह दया-मूर्ति इंद्रियोंकी लंपटता-रहित पुरुष, सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है ॥ १२१ ॥

सचित्तत्यागीकी प्रशंसा।

येन सचित्तं त्यक्तं दुर्जयजिव्हाऽपि निर्जिता तेन ।
जीवदया तेन कृता जिनवचनं पालितं तेन ॥ १२२ ॥

जिसने सचित्तका त्याग कर दिया, समझ लो कि, उसने अपनी दुर्जय जिह्वाको भी जीत लिया, जीवदयाका पालन कर लिया और जिन-वचनोंका भी परिपूर्ण पालन कर लिया ॥ १२२ ॥

प्रासुक द्रव्यका लक्षण।

तत्तं सुक्कं पक्कं अंबिललवणेन मीसियं दव्वं ।
जं जंतेण य छिण्णं तं दव्वं फासुयं भणियं ॥ १२३ ॥

जो अग्निसे तपाया गया हो, सूर्यकी धूप आदिसे सुखाया गया हो, पका हुआ हो, खटाई—नमक मिला हुआ हो, चाकू आदिसे छिन्न भिन्न किया गया हो वह सब द्रव्य प्रासुक—जीवरहित है॥१२३॥

रात्रि-भुक्ति-त्याग प्रतिमा।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥ १२४ ॥

जो रातमें अन्न, पान, खाद्य और लेह्य, इन चार प्रकारके आहारोंको नहीं करता है वह जीवोंपर दयालु-चित्त रात्रि-भोजन-त्याग नामकी प्रतिमाका धारी है। ॥ १२४ ॥

भावार्थ—मूलाचार आदिमें अन्न, पान, खाद्य और स्वाद्य, ये आहारके चार भेद कहे हैं। अतः स्वाद्यमें लेह्यको या लेह्यमें स्वाद्यको अन्तर्भाव कर लेना चाहिए। इन चारोंका लक्षण यह है। दाल, भात, रोटीको अन्न—अशन कहते हैं। दूध, जल आदिको पेय या पान कहते हैं। पूवे, पूरी, कचोरी, लड्डू आदिको खाद्य कहते हैं। तथा पान, सुपारी, इलायची, अनार, संतरे आदिको स्वाद्य कहते हैं। जैसे:—

मौद्गौदनाद्यमशनं क्षीरजलाद्यं मतं जिनैः पेयं ।
ताम्बूलदाडिमाद्यं स्वाद्यं खाद्यं त्वपूपाद्यं ॥

रात्रिभोजन-त्यागीकी प्रशंसा।

यो निशि भुक्तिं मुञ्चति तेनानशनं कृतं च षण्मासम् ।
संवत्सरस्य मध्ये निर्दिष्टं मुनिवरेणेति ॥ १२५ ॥

जो पुरुष रातमें नहीं खाता है, समझो कि, उसने सालभरमें छह माह उपवास किये, ऐसा मुनि लोग कहते हैं ॥ १२५ ॥

रात्रिभुक्त व्रतका दूसरा स्वरूप।

मणवयणकायकदिकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सावओ छट्ठो ॥ १२६ ॥

जो मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना, इन नौ अंगोंके द्वारा दिनमें मैथुन नहीं करता है वह छठी प्रतिमाधारी श्रावक है ॥ १२६ ॥

ब्रह्मचर्य प्रतिमाका स्वरूप।

पुव्वुत्तणवविहाणं पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इच्छकहादिणिवत्ती सत्तमं बम्हचारी सो ॥ १२७ ॥

जो ऊपर कहे हुए नौ प्रकारसे दिन और रात दोनों समयोंमें मैथुन नहीं करता है, तथा स्त्री-कथा आदिका त्यागी है, वह पूर्ण ब्रह्मचारी—ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी सातवां श्रावक है ॥ १२७ ॥

ब्रह्मचारीके भेद।

उपनयावलम्बौ चादीक्षिता गूढनैष्ठिकाः।
श्रावकाध्ययने प्रोक्ताः पंचधा ब्रह्मचारिणः ॥ १२८ ॥

उपनय ब्रह्मचारी, अवलंब ब्रह्मचारी, अदीक्षित ब्रह्मचारी, गूढ ब्रह्मचारी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ऐसे पांच प्रकारके ब्रह्मचारी होते हैं, जो श्रावकाचार पढ़नेके योग्य कहे गए हैं ॥ १२८ ॥

ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्च सप्तमे।
चत्वारो ये क्रियाभेदादुक्ता वर्णवदाश्रमाः ॥ १२९ ॥

जैसे उपासकाध्ययन नामके सातवें अंगमें क्रियाभेदसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार जुदे जुदे वर्ण कहे गए हैं, वैसे ही उसी अंगमें क्रियाभेदसे ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थ और भिक्षु, ये चार आश्रम कहे गए हैं ॥ १२९ ॥

उपनयन ब्रह्मचारीका लक्षण।

श्रावकाचारसूत्राणां विचाराभ्यासतत्परः।
गृहस्थधर्मशक्तश्चोपनयब्रह्मचारिकः ॥ १३० ॥

जो प्रथम श्रावकाचारके सूत्रोंके विचारने और अभ्यास करनेमें तत्पर रहता है और पश्चात् गृहस्थ-धर्ममें प्रविष्ट होता है, वह उपनयन ब्रह्मचारी है। भावार्थ—जो यज्ञोपवीत संस्कारसे संस्कृत होकर गुरुके पास उपासकाध्ययन शास्त्र पढ़ता है और विद्या-समाप्ति-पर्यन्त परिपूर्ण ब्रह्मचारी रहता है—विद्या समाप्त हो जानेके बाद गृहस्थ-धर्मको स्वीकार करता है-विवाहादि कार्य करता है, वह उपनयन ब्रह्मचारी है ॥ १३० ॥

अवलंबब्रह्मचारीका स्वरूप।

स्थित्वा क्षुल्लकरूपेण कृत्वाऽभ्यासं सदाऽऽगमे।
कुर्याद्विवाहकं सोऽत्रावलम्बब्रह्मचारिकः ॥ १३१ ॥

जो क्षुल्लकका वेष धारणकर आगमका अभ्यास करनेके बाद विवाह करता है वह अवलंब ब्रह्मचारी है ॥ १३१ ॥

अदीक्षाब्रह्मचारीका लक्षण।

विना दीक्षां व्रतासक्तः शास्त्राध्ययनतत्परः।
पठित्वोद्वाहं यः कुर्यात्सोऽदीक्षाब्रह्मचारिकः ॥ १३२ ॥

जो दीक्षा धारण किये विना ही व्रतोंमें आसक्त होकर शास्त्रोंका अध्ययन करनेमें तत्पर है, और शास्त्र पढ़ चुकनेके बाद विवाह-संस्कार करता है वह अदीक्षा ब्रह्मचारी है ॥ १३२ ॥

गूढ़ ब्रह्मचारीका लक्षण।

आ बाल्याच्छास्त्रसत्प्रीतः पित्रादीनां हठात्पुनः।
पठित्वोद्वाहं यः कुर्यात्स गूढब्रह्मचारिकः॥ १३३ ॥

जो बालकपनसे ही शास्त्रोंमें प्रीति करता है-शास्त्रका अध्ययन करता है और अध्ययन कर चुकनेके बाद पिता आदिके हठसे मजबूर होकर विवाह करता है वह गूढ़ ब्रह्मचारी है ॥१३३॥

नैष्ठिक ब्रह्मचारीका लक्षण।

यावज्जीवं तु सर्वस्त्रीसङ्गं करोति नो कदा।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी स एकवस्त्रपरिग्रहः॥ १३४ ॥

जो जन्मसे लेकर जीवनपर्यन्त कभी भी स्त्री संग नहीं करता है वह एक वस्त्र पहनकर जन्म वितानेवाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी है। भावार्थ—नैष्ठिक ब्रह्मचारीके सिवा बाकीके ब्रह्मचारी जो जो अवस्थाएँ उनके लिए बताई गई हैं उन उन अवस्थाओंमें रहकर शास्त्राध्ययन कर चुकनेके बाद विवाह-संस्कार कर लेते हैं, किन्तु नैष्ठिक ब्रह्मचारी विवाह नहीं करता। यही इन सबोंमें क्रिया-भेद है। इसी क्रिया-भेदके कारणसे इनमें भेद है ॥ १३४ ॥

गृहस्थका स्वरूप।

सन्ध्याध्ययनपूजादिकर्मसु तत्परो महान्।
त्यागी भोगी दयालुश्च सद्गृहस्थः प्रकीर्तितः॥ १३५ ॥

जो सन्ध्या, शास्त्रस्वाध्याय, पूजा आदि छह कर्मोंमें तत्पर है, अनिष्ट वस्तुओंका त्यागी है, इष्ट वस्तुओंका भोगी है और प्राणियोंपर दया करता है वह उत्तम गृहस्थ कहा गया है ॥१३५॥

वानप्रस्थका लक्षण।

प्रतिमैकादशधारी ध्यानाध्ययनतत्परः॥
प्राक्कषायाद्विदूरस्थो वानप्रस्थः प्रशस्यते॥ १३६ ॥

जो ग्यारहवीं प्रतिमाका धारी है, ध्यान-अध्ययनमें तत्पर है, और क्रोधादि कषायोंसे अत्यन्त दूर है-कषायभाव नहीं करता है, मंद कषायी है, वह वानप्रस्थ प्रशंसनीय है ॥ १३६ ॥

भिक्षुका स्वरूप।

सर्वसङ्गपरित्यक्तो धर्मध्यानपरायणः।
ध्यानी मौनी तपोनिष्ठः स ज्ञानी भिक्षुरुच्यते॥ १३७ ॥

जो बाह्य और आभ्यंतर परिग्रहका त्यागी है, धर्म-ध्यानमें लीन रहता है, मौनव्रत रखता है, तपमें निष्ठ है वह ज्ञानी, भिक्षु—मुनि है ॥ १३७ ॥

आरंभत्याग प्रतिमा।

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखारम्भतो व्युपरतिः।
प्राणातिपातहेतोर्याऽसावारम्भविनिवृत्तिः॥ १३८ ॥

जो जीवोंकी हिंसाके कारण नौकरी, खेती वगैरह सब तरहके व्यापार आदिसे विरक्त होता है वह आरंभत्याग-प्रतिमा-धारी श्रावक है॥ १३८॥

परिग्रह-त्याग-प्रतिमा।

मोत्तूण वत्थमेत्तं परिग्गहं जो विवज्जदे सेसं।
तत्थ वि मुच्छं ण करेदि वियाण सो सावओ णवमो॥ १३९॥

जो पहनने ओढ़नेके वस्त्रमात्रको छोड़कर बाकीके सब तरहके परिग्रहोंका त्याग करता है, और जो वस्त्र अपने पास है उनमें भी ममत्वपरिणाम नहीं करता है, वह नवमा परिग्रहत्यागी श्रावक है॥ १३९॥

बाह्य परिग्रहके भेद।

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं दासी दासश्चतुष्पदम्।
यानं शय्यासनं कुप्यं भाण्डं चेति बहिर्दश॥ १४०॥

क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, दासी, दास, चतुष्पद (चौपाये), यान-शय्या-आसन, कुप्य और भांड, ये दश बाह्य परिग्रह हैं॥ १४०॥

अन्तरंग परिग्रहके भेद।

मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयम्।
रागद्वेषौ च सङ्गाः स्युरन्तरङ्गाश्चतुर्दश॥ १४१॥

मिथ्यात्व, वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष, ये चौदह अंतरंग परिग्रह हैं॥ १४१॥

बाह्यग्रन्थविहीना दरिद्रमनुजास्तु पापतः सन्ति।
पुनरभ्यन्तरसङ्गत्यागी लोकेऽतिदुर्लभो जीवः॥ १४२॥

पापके उदयसे कई दरिद्री मनुष्य बाह्य परिग्रहसे रहित होते हैं, किंतु अभ्यन्तर परिग्रहका त्यागी जीव लोकमें अत्यंत दुर्लभ है॥ १४२॥

अनुमति-त्याग प्रतिमा।

पुट्ठो वा पुट्ठो वा णियगेहपरेहि सगिहकज्जे।
अणुमणणं जो ण कुणदि वियाण सो सावओ दसमो॥ १४३॥

जो अपने स्त्री पुत्र आदिके पूछनेपर अथवा न पूछनेपर किसी तरह भी इस लोकसंबंधी घरके कामोंमें अपनी राय नहीं देता है उसे अनुमति-त्याग नामका दशवाँ श्रावक समझना चाहिए॥ १४३॥

उद्दिष्ट-त्याग प्रतिमा।

एकादशके स्थाने सूत्कृष्टः श्रावको भवेत् द्विविधः।
वस्त्रैकधरः प्रथमः कौपीनपरिग्रहोऽन्यस्तु॥ १४४॥

ग्यारहवें स्थानवर्ती श्रावक उत्कृष्ट श्रावक कहा जाता है, जो दो तरहका है। एक खंड-वस्त्र-धारी और दूसरा कौपीन-धारी॥ १४४॥

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भिक्षाशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४५ ॥

जो घरसे निकलकर मुनिवनमें जाकर गुरुके समीप व्रत धारण कर तपश्चरण करता हुआ भिक्षाभोजन करता है और खंडवस्त्रधारी या कौपीनधारी है वह उत्कृष्ट श्रावक है ॥ १४५ ॥

अथाशाधरः-स्वयं समुपविष्टोऽद्यात्पाणिपात्रेऽथ भाजने ।
स श्रावकगृहं गत्वा पाणिपात्रस्तदङ्गणे ॥ १४६ ॥
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभं भणित्वा प्रार्थयेद्वा ।
मौनेन दर्शयित्वाऽङ्गं लाभालाभे समोऽचिरात् ॥ १४७ ॥
निर्गत्यान्यगृहं गच्छेद्भिक्षोद्युक्तश्च केनचित् ।
भोजनायार्थितोऽद्यात्तद्भुक्त्वा यद्भिक्षितं मनाक् ॥ १४८ ॥
प्रार्थयेतान्यथा भिक्षां यावत्स्वोदरपूरणीम् ।
लभेत प्रासु यत्राम्भस्तत्र संशोध्य तां चरेत् ॥ १४९ ॥

पंडितप्रवर आशाधरजी इस विषयमें कुछ विशेष कहते हैं। इस उत्कृष्ट श्रावकके दो भेद हैं। एक क्षुल्लक और दूसरा ऐलक। प्रथम क्षुल्लकके विषयमें कहते हैं कि वह बैठकर अपने हाथमें अथवा वर्तनमें भोजन करे। श्रावकके घरपर खाली हाथ जावे। श्रावकके घरके आँगनमें खड़ा रहकर 'धर्म-लाभ हो' ऐसा कहकर भिक्षाकी प्रार्थना करे अथवा मौनपूर्वक दाताको अपना शरीरमात्र दिखाकर भिक्षा मांगे। भिक्षा मिलने तथा न मिलनेपर राग-द्वेष छोड़ समता-भाव धारण करे। वहांसे निकलकर दूसरे घरमें जावे। यदि भिक्षाके समय किसी श्रावकने अपने घरपर भोजन करनेकी प्रार्थना की हो तो जो कुछ उसे पहले किसी घरपर भिक्षा मिली हो, प्रथम उसे खाकर, बाद उसके घरका अन्न-भक्षण करे। यदि किसीने भोजनकी प्रार्थना न की हो तो अपना पेट भरने लायक भिक्षा मांगे। और जिस श्रावकके घरपर प्रासुक जल मिल जाय वहीं बैठकर उस भिक्षाको देख-भालकर खावे ॥ १४६-१४९ ॥

कौपीनोऽसौ रात्रिप्रतिमायोगं करोति नियमेन ।
लोचं पिच्छं धृत्वा भुङ्क्ते ह्युपविश्य पाणिपुटे ॥ १५० ॥

दूसरा ऐलक श्रावक फक्त कौपीन पहने, नियमसे रात्रिमें प्रतिमायोग धारण करे, लोंच करे, पिच्छी रक्खे, और बैठकर पाणिपुटमें भोजन करे ॥ १५० ॥

देशविरतीका विशेष कर्तव्य ।

वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा त्रैकाल्ययोगनियमश्च ।
सिद्धान्तरहस्यादावध्ययनं नास्ति देशविरतानाम् ॥ १५१ ॥

देशविरती श्रावकोंको वीरचर्या-भ्रामरी-वृत्तिसे भोजन करने, दिन प्रतिमा, त्रिकालयोग-गर्मीमें पर्वतके ऊपर, वर्षामें वृक्षके नीचे, शीतकालमें नदी-समुद्रके किनारे अथवा चौहटमें योग धारण करने और सिद्धांतशास्त्र, प्रायश्चित्तशास्त्र आदिका अध्ययन करनेका अधिकार नहीं है॥ १५१॥

आद्याः स्युः षट् जघन्याः स्युर्मध्यमास्तदनु त्रयः।
शेषौ द्वावुत्तमावुक्तौ जैनेषु जिनशासने ॥ १५२॥

इन ग्यारह प्रतिमाओंमेंसे पहलेकी छह प्रतिमाएँ जघन्य हैं, उसके बादकी तीन मध्यम हैं, और बाकीकी दो प्रतिमाएँ जैनोंके जिनोक्त शास्त्रमें उत्तम कही गई हैं ॥ १५२ ॥

सद्व्रतानि गुरूक्तानि चेति श्रुत्वोपनीतवान्।
गृह्णीयाच्च यथाशक्ति अमुत्रात्र सुखावहम् ॥ १५३ ॥

इस तरह वह यज्ञोपवीतधारी श्रावकका बालक, इस लोक और परलोकमें सुखदेनेवाले गुरु-मुखसे सुने हुए उपरोक्त व्रतोंको यथाशक्ति ग्रहण करे ॥ १५३ ॥

वाद्यादिविभवैर्युक्तो गृहं गत्वा स धर्मधीः।
ताम्बूलैः स्वजनान् सर्वान्मानयेद्धर्महेतवे ॥ १५४ ॥

इसके बाद वह धर्म-बुद्धि बालक, गाजे-बाजे आदि विभवके साथ घरपर जाकर अपने सारे स्वजनोंका धर्मके हेतु तांबूलद्वारा सत्कार करे ॥ १५४ ॥

यज्ञोपवीतं कथितं मुनीन्द्रै, रत्नत्रयं वा व्यवहाररूपम्।
त्रिवर्गपुम्भिर्ध्रियते मनोज्ञं, धर्मार्थकामाभिमुखैः सुखाय ॥ १५५ ॥

इस यज्ञोपवीतको मुनिवरोंने बाह्य रत्नत्रय बताया है। इसलिए धर्म, अर्थ और कामके सन्मुख, तीनों वर्णोंके मनुष्योंको सुखके लिए यह परम पवित्र सुन्दर यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए ॥ १५५ ॥

विद्याभ्यासः सदा कार्यः सतां मध्ये सुभूषणम्।
सत्पुरुषैस्त्विदं प्रोक्तं सोमसेनैः शिवाप्तये ॥ १५६ ॥

मनुष्योंको विद्याका अभ्यास हमेशह करना चाहिए। यह विद्या सज्जनोंका भूषण है। इसीका सज्जन सोमदेवने सबके कल्याणके लिए कथन किया है ॥ १५६ ॥

इत्येवं कथितानि जैनसमये सारव्रतानि क्षितौ,
ये कुर्वन्ति सुधर्मसञ्चितधियो धन्यास्तु ते मानवाः।
संसाराम्बुधिपारगाः शिवसुखं प्राप्ता इव प्रस्तुता,
देवेन्द्रादिसुरैर्नराधिपगणैः श्रीसोमदेवैः पुनः ॥ १५७ ॥

इस प्रकार जिनागमके अनुसार ये उत्तम व्रत कहे गये हैं। इनका जो धार्मिक पुरुष सेवन करते हैं वे धन्यवादके पात्र हैं। वे मानों संसार-समुद्रसे पार होकर मोक्षसुखको ही प्राप्त कर चुके हैं, इस तरह इंद्रादि देवों, बड़े बड़े राजाओं तथा सोमदेवद्वारा स्तवन किये जाते हैं ॥ १५७ ॥

इतिश्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारनिरूपणे भट्टारकश्रीसोमसेन-
विरचिते व्रतस्वरूपकथनियोनाम दशमोऽध्यायः समाप्तः।

ग्यारहवाँ अध्याय।

वन्दे त्वां जिनवर्द्धमानमनघं धर्मद्रुसद्बीजकं
कर्मारातितमोदिवाकरसमं नानागुणालंकृतम्।
स्याद्वादोदयपर्वताश्रिततरं सामन्तभद्रं वचः
पायान्नः शिवकोटिराजमहितं न्यायैकपात्रं सदा॥ १॥

धर्म-वृक्षके बीजभूत, कर्म-शत्रुरूप अगाढ़ अन्धकारको नाश करनेके लिए सूर्यके समान, अनेक गुणोंसे अलंकृत और अघाति-मलरहित श्रीवर्धमान परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। तथा जो स्याद्वादरूपी उदयाचलपर आरूढ, शिवकोटि महाराजके द्वारा पूज्यपनेको प्राप्त हुए और न्यायका एक अद्भुत पात्र श्रीसमन्तभद्रके वचन सदा हमारी रक्षा करें॥ १॥

जिनसेनमुनिं नत्वा वैवाहविधिमुत्सवम्।
वक्ष्ये पुराणमार्गेण लौकिकाचारसिद्धये॥ २॥

मैं श्रीजिनसेनस्वामीको नमस्कार कर, लौकिक आचरणकी प्राप्तिके लिए, पुराणके अनुसार विवाहविधि नामके महोत्सवका कथन करता हूं॥ २॥

विवाह करनेके योग्य कन्या।

अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम्।
आयुष्मतीं गुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः॥ ३॥

जो अन्य गोत्रकी हो—अपने गोत्रकी न हो, किन्तु सजाति हो; रोगरहित हो, उत्तम लक्षणोंवाली हो, दीर्घ आयुवाली हो, विद्या, शील आदि गुणोंसे भरी-पूरी हो और अपने पिताद्वारा दी हुई हो, ऐसी कन्याके साथ 'वर' विवाह करे॥ ३॥

वरका लक्षण।

वरोऽपि गुणवान् श्रेष्ठो दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः।
सुकुली तु सदाचारो गृह्यतेऽसौ सुरूपकः॥ ४॥

वर भी गुणवान्, श्रेष्ठ, दीर्घ आयुवाला, नीरोग, उत्तम कुलका, सदाचारी और रूपवान होना चाहिए॥ ४॥

वरके गुण।

सत्यं शौचं क्षमा त्यागः प्रज्ञौजः करुणा दमः।
प्रशमो विनयश्चेति गुणाः सत्त्वानुषङ्गिणः॥ ५॥

सत्य, शौच (निर्लोभता), क्षमा, त्याग, विद्वत्ता, तेज, दयालुता, इंद्रिय-निग्रह, प्रशम और विनय, ये प्राणियोंमें रहनेवाले गुण हैं। इनका भी वरमें होना आवश्यकीय है॥ ५॥

वपुः कान्तिश्च दीप्तिश्च लावण्यं प्रियवाक्यता।
कलाकुशलता चेति शरीरान्वयिनो गुणाः॥ ६॥
कुलजातिवयोविद्याकुटुम्बरूपसम्पदः।
चारित्रं पौरुषं चेति शरीरान्वयिनो गुणाः॥ ७॥

अच्छा सुडौल दृढ़ शरीर, कान्ति, दीप्ति, सौंदर्य, मधुर वचन, कलाओंमें कुशलता, उत्तम कुल, उत्तम जाति, वय (दीर्घायु), विद्या, परिवार, रूप, सम्पत्ति, चारित्र और पौरुष (अनपुंसकता), ये शरीरसंबंधी गुण हैं, जो वरमें होने चाहिए॥ ६-७॥

पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमेव च।
आयुर्हीनजनानां च लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥ ८॥

सबसे पहले वरकी आयुकी परीक्षा करना चाहिए। बाद उसमें गुणोंकी जांच करना उचित है। क्योंकि आयुहीन मनुष्योंके लक्षणोंसे फिर प्रयोजन ही क्या है॥ ८॥

तथा विज्ञाय यत्नेन शुभाशुभमिति स्थितम्।
लक्षणं शुभकन्यायां शुभकन्यां वरेद्वरः॥ ९॥

इसी तरह वर, कन्याके भी शुभ अशुभ लक्षणोंको जानकर, उत्तम कन्याके साथ विवाह करे॥ ९॥

अशुभ लक्षणवाली कन्याका फल।

मातरं पितरं चापि भ्रातरं देवरं तथा।
पतिं विनाशयेन्नारी लक्षणैः परिवर्जिता॥ १०॥

लक्षणोंसे रहित कुलक्षणा कन्या माता, पिता, भाई, देवर तथा पतिका नाश करनेवाली होती है॥ १०॥

कन्याके परीक्षा करने योग्य चिह्न।

हस्तौ पादौ परीक्षेत अङ्गुलीश्च नखांस्तथा।
पाणिरेखाश्च जंघे च कटिं नाभिं तथैव च॥ ११॥
ऊरुश्चोदरमध्यं च स्तनौ कर्णौ भुजावुभौ।
वक्षःस्थलं ललाटं च शिरः केशांस्तथैव च॥ १२॥
रोमराजिं स्वरं वर्णं ग्रीवां नासादयस्तथा।
एतत्सर्वं परीक्षेत सामुद्रिकविदायकः॥ १३॥

सामुद्रिक शास्त्रका वेत्ता पुरुष कन्याके दोनों हाथ, दोनों पैर, उंगलियां, नख, हाथोंकी रेखाएं, दोनों घुटने, कटि, नाभि, छाती, उदरका मध्यभाग, स्तन, कान, भुजाएं, वक्षस्थल, ललाट, सिर, केश, रोमावली, स्वर, रंग, गर्दन तथा नाक आदि सारे अंगोंकी परीक्षा करे॥ ११-१३॥

कन्याके शुभाशुभ लक्षण।

पादौ समाङ्गुली स्निग्धौ भूम्यां यदि प्रतिष्ठितौ।
कोमलौ चैव रक्तौ च सा कन्या गृहमण्डिनी॥ १४॥

जिस कन्याके पैरोंकी उंगलियां बराबर हों, दोनों पैर स्निग्ध—चिकने हों, जमीन पर रखनेसे ज्योंका त्यों जिनका आकार खिंच जावे, कोमल हों और रक्तवर्ण हों, व कन्या घरकी शोभा बढ़ानेवाली है ॥ १४ ॥

अंगुष्ठेनातिरक्तेन भर्तारं चैव मन्यते ।
अल्पवृत्तः पतिं हन्याद्बहुवृत्तः पतिव्रता ॥ १५ ॥

जिसके पैरका अंगूठा खूब लाल हो वह अपने पतिको मान्य होती है । यदि अंगूठा थोड़ा गोल हो तो वह पतिका विनाश करती है और बहुत गोल हो तो पतिव्रता होती है ॥ १५ ॥

उन्नतैश्चन्द्रवत्सौख्यं मुसलैश्च तथैव च ।
सूचितैः पद्मपत्रैश्च पुत्रवत्यः स्त्रियो मताः ॥ १६ ॥

जिसके पैरोंकी उंगलियां चंद्राकार होकर ऊंची उठी हुई हों, वह सुख भोगनेवाली होती है । तथा मूसल जैसी सीधी और कमल जैसी लाल वर्ण हो तो वह पुत्रवती होती है॥ १६ ॥

चक्रं पद्मं ध्वजश्छत्रं स्वस्तिकं वर्द्धमानकम् ।
यासां पादेषु दृश्यन्ते ज्ञेयास्ता राजयोषितः ॥ १७ ॥

जिनके पैरोंमें चक्र, पद्म, धुजा, छत्र, स्वस्तिक और वर्धमानक, ये चिह्न देखे जायँ, उन्हें राज-रानियां समझनी चाहिए ॥ १७ ॥

यस्याः प्रदेशिनी चापि अङ्गुष्ठादधिका भवेत् ।
दुष्करं कुरुवे नित्यं विधवा वा भविष्यति ॥ १८ ॥

जिसकी प्रदेशिनी—अंगूठेके पासकी उंगली, अंगूठेसे अधिक लंबी हो तो समझना चाहिए कि वह दुष्कर्म करनेवाली है । अथवा वह विधवा होगी ॥ १८ ॥

यस्याः पादतले रेखा तर्जनीसुप्रकाशिनी ।
भर्तारं लभते शीघ्रं भर्तुः प्राणप्रिया भवेत् ॥ १९ ॥

जिसकी पगतलीमें तर्जनी—अंगूठेके पासकी उंगलीके नीचेकी रेखा स्पष्ट दिखती हो तो वह शीघ्र पति प्राप्त करती है । और पतिको प्राणोंसे भी प्यारी होती है ॥ १९ ॥

पादेऽपि मध्यमा यस्याःक्षितिं न स्पृशति यदि ।
द्वौ पुरुषावतिक्रम्य सा तृतीये न गच्छति ॥ २० ॥

जिसके पैरकी बीचली उंगली जमीनपर न टिकती हो तो समझना चाहिए कि वह दो पुरुषोंको छोड़कर तीसरेके पास नहीं जायगी ॥ २० ॥

अङ्गुल्यश्चाप्यतिक्रम्य यस्याः पादप्रदेशिनी ।
कुमारी रमते जारयौवने चैव का कथा ॥ २१ ॥

जिसके पैरके अंगूठेके पासकी उंगली, सारी उंगलियोंसे अधिक लंबी हो तो वह कुमारी ही यारोंके साथ रमण करती है । यौवन अवस्थामें वह क्या करेगी इसका तो कहना ही क्या है ॥२१॥

पादे मध्यमिका चैव उन्नता चाधिगच्छति।
वामहस्ते धरेज्जारं दक्षिणे तु पतिं पुनः ॥ २२ ॥

जिसके पैरकी बीचकी उंगली यदि ऊंची हो तो वह यारको बायें हाथमें और पतिको दाहिने हाथमें धारण करेगी। ऐसा जानना चाहिए ॥ २२ ॥

पादेऽप्यनामिका यस्या महीं न स्पृशति यदि।
दुःशीला दुर्भगा चैव तां कन्यां परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥

जिसके पैरकी अनामिका—छेवटकी उंगलीके पासकी उंगली यदि जमीनपर न टिकती हो तो समझना चाहिए कि वह कन्या व्यभिचारिणी—खोटे स्वभाववाली तथा दुर्भग है। ऐसी कन्याके साथ विवाह नहीं करना चाहिये ॥ २३ ॥

यस्यास्त्वनामिका ह्रस्वा तां विदुः कलहप्रियाम्।
भूमिं न स्पृशते यस्याः खादते सा पतिद्वयम् ॥ २४ ॥

जिसके पैरकी अनामिका उंगली छोटी हो तो उसे कलहकारिणी समझो। और उसकी वह उंगली यदि जमीन पर न टिकती हो तो समझो कि वह कन्या दो पतियोंको खायगी ॥ २४ ॥

पादे कनिष्ठिका यस्या भूमिं न स्पृशते यदि।
कुमारी रमते जारे यौवने का विचारणा ॥ २५ ॥

जिसके पैरकी कनिष्ठा छेवटकी उंगली यदि जमीनपर न टिकती हो तो वह कुँवारी ही यारोंसे रमती है, ऐसा समझो। न मालूम यौवनावस्थामें वह किसका क्या करेगी ॥ २५ ॥

उन्नता पार्ष्णिर्दुःशीला महापार्ष्णिर्दरिद्रता।
दीर्घपार्ष्णिरतिक्लिष्टा समपार्ष्णिः सुशोभना ॥ २६ ॥

जिसकी पार्ष्णि (पैरोंके ऊपरके दोनों तरफके उठे हुए भाग) ऊंची हो तो बुरे स्वभाववाली अथवा व्यभिचारिणी, मोटी हो तो दरिद्रा, लंबी हो तो अत्यन्त क्लेश भोगनेवाली, और बराबर हो तो अति सुंदर है; ऐसा जानना चाहिए ॥ २६ ॥

अङ्गुष्ठैर्महिषाकारैर्बन्धन कलहप्रिया।
निर्गूढगुल्फैर्या नारी सा नारी सुखमेधते ॥ २७ ॥

जिसका अंगूठा भैंसेके आकार हो तो वह पतिका बंधन करती है और कलहकारिणी है। तथा जिसके गुल्फ भीतरको धँसे हुए हों—दिखते न हों तो वह नारी परिपूर्ण सुखी है, ऐसा समझो ॥ २७ ॥

कूर्मपृष्ठं भगं यस्याः कृष्णं स्निग्धं सुशोभनम्।
धनधान्यवती चैव पुत्रान् सूते न संशयः ॥ २८ ॥

जिसकी योनि कच्छपकी पीठ ज्यों उठी हुई हो, काली हो, गुदगुदी हो, देखनेमें मनोहर हो तो वह धन धान्य, और पुत्रवाली है या होगी। इसमें कुछ भी संदेह नहीं, ऐसा समझो ॥ २८ ॥

गम्भीरनाभिर्या नारी सा नारी सुखमेधते।
रोमभिः स्वर्णवर्णैश्च निर्वृत्ता त्रिवलीयुता ॥ २९ ॥

जिसकी नाभि गहरी हो, जिसके शरीरके रोम स्वर्ण जैसे रंगके हों, और जिसके पेटमें त्रिवली हो तो वह नारी या कन्या सुखी है या होगी ॥ २९ ॥

रक्तजिव्हा सुखा नारी मुसला च धनक्षया ।
श्वेता च जनयेन्मृत्युं कृष्णा च कलहप्रिया ॥ ३० ॥

लाल जीभवाली स्त्री सुखी होती है, मूसलके आकारकी जीभवाली धनका क्षय करनेवाली होती है, सफेद जीभवाली पतिकी मृत्यु करनेवाली होती है और काली जीभवाली कलह-कारिणी होती है ॥ ३० ॥

श्वेतेन तालुना दासी दुःशीला कृष्णतालुना ।
हरितेन महपीडा रक्ततालुः सुशोभना ॥ ३१ ॥

सफेद तालुवाली दासी होती है, काले तालुवाली दुष्ट स्वभाववाली या व्यभिचारिणी होती है, हरे तालुवाली भारी रोगिणी होती है और लाल तालुवाली अच्छे लक्षणोंवाली होती है ॥३१॥

ललाटं त्र्यङ्गुलं यस्याः शिरोरोमविवर्जितम् ।
निर्मलं च समं दीर्घमायुर्लक्ष्मीसुखप्रदम् ॥ ३२ ॥

जिसका ललाट रोमरहित हो, तीन अंगुल चौड़ा हो, स्वच्छ हो, समान हो, वह कन्या दीर्घायु, सम्पत्तिवाली और भरपूर सुख देनेवाली है ॥ ३२ ॥

अतिप्रचण्डा प्रबला कपालिनी, विवादकर्त्री स्वगृहार्थचोरिणी ॥
आक्रन्दिनी सप्तगृहप्रवेशिनी, त्यजेच्च भार्यां दशपुत्रपुत्रिणीम् ॥ ३३ ॥

जो भारी प्रचंडा हो, बलवती हो, जिसका कपाल भारी मोटा हो, विवाद करनेवाली हो, घरमेंसे वस्तुएँ चुराती हो, जोर जोरसे चिल्लानेवाली हो और सात घरमें जाती हो—घर घरमें डोलती फिरती हो, ऐसी कन्याको, यदि वह आगे चलकर दश पुत्र—पुत्रीवाली भी क्यों न हो, तौ भी छोड़ देनी चाहिए ॥ ३३ ॥

पिंगाक्षी कूपगल्ला परपुरुषरता श्यामले चोष्ठजिह्वे
लम्बोष्ठी लम्बदन्ता प्रविरलदशना स्थूलजंघोर्ध्वकेशी ।
गृध्राक्षी वृत्तपृष्ठिर्गुरुपृथुजठरा रोमशा सर्वगात्रे
सा कन्या वर्जनीया सुखधनरहिता निन्द्यशीला प्रदिष्टा ॥ ३४ ॥

जिसके नेत्र पीले हों, गालोंपर खड्डे पड़ते हों, परपुरुषोंके साथ रमण करती हो, ओठ और जीभ जिसकी काली हो, लंबे ओठोंवाली हो, दांत भी जिसके लंबे हों, दूर-दूर हों, पिण्डी मोटी हो, केश ऊपरको उठे हुए हों, गीध जैसी आंखें हों, जिसकी पीठ गोल-कुबड़ी हो, पेट मोटा और चौड़ा हो, सारे शरीरमें रोमावली हों, ऐसी कन्याका दूरसे ही त्याग करना चाहिए। क्योंकि ऐसी कन्या सुख और धनसे रहित निंद्य स्वभाववाली कही गई है ॥३४॥

विवाहके योग्य कन्या।

इत्थं लक्षणसंयुक्तां षडष्टराशिवर्जिताम् ।
वर्णविरुद्धसन्त्यक्तां सुभगां कन्यकां वरेत् ॥ ३५ ॥

जो ऊपर कहे हुए शुभ लक्षणोंसे युक्त हो, पतिकी जन्म-राशिसे जिसकी जन्म-राशि छठवीं या आठवीं न पड़ती हो, और जिसका वर्ण पतिके वर्णसे विरुद्ध न हो, ऐसी सुभग कन्याके साथ विवाह करना चाहिए ॥ ३५ ॥

रूपवती स्वजातीया स्वतो लध्वन्यगोत्रजा।
भोक्तुं भोजयितुं योग्या कन्या बहुकुटुम्बिनी ॥ ३६ ॥

जो रूपवती हो, अपनी जातिकी हो, वरसे आयु और शरीरमें छोटी हो, दूसरे गोतकी हो, और जिसके कुटुंबमें बहुतसे स्त्री–पुरुष हों, ऐसी कन्या विवाहके योग्य होती है ॥ ३६ ॥

सुतां पितृष्वसुश्चैव निजमातुलकन्यकाम्।
स्वसारं निजभार्यायाः परिणेता न पापभाक् ॥ ३७ ॥

भुआकी लड़कीके साथ, मामाकी कन्याके साथ और सालीके साथ विवाह करनेवाला पातकी नहीं है।

भावार्थ—जहां जैसा रिवाज हो वहां वैसा करना चाहिए। यह कोई खास नियम-वाक्य नहीं है। सोमदेवनीतिमें मामाकी कन्याके साथ विवाह करनेमें देश और कालकी अपेक्षा बताई है। यथा "देशकालापेक्षो मातुलसम्बन्धः"। अतः जो उक्त संबंध नहीं करते हैं वे आगम वाक्यकी अवहेलना करनेवाले नहीं हैं। यह वाक्य विधि-वाक्य नहीं है, किन्तु योग्यता-सूचक है। योग्यता-सूचक वाक्य नियामक नहीं होते कि ऐसा करना ही चाहिए ॥ ३७ ॥

पुत्री मातृभगिन्याश्च स्वगोत्रजनिताऽपि वा।
श्वश्रूस्वसा तथैतासां वरीता पातकी स्मृतः ॥ ३८ ॥

अपनी मौसीकी लड़की, अपने गोतकी लड़की तथा अपनी सासकी बहनके साथ विवाह करनेवाला पातकी माना गया है ॥ ३८ ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिका धर्मशङ्कया ॥ ३९ ॥

जिस कन्याके भाई अथवा पिता न हो उस कन्यासे धर्मकी हानि होनेकी आशंका होनेके कारण बुद्धिमान पुरुष विवाह न करे ॥ ३९ ॥

स्ववयसोऽधिकां वर्षरुन्नतां वा शरीरतः।
गुरुपुत्रीं वरेन्नैव मातृवत्परिकीर्तिता ॥ ४० ॥

अपनेसे उमरमें बड़ी हो, अपने शरीरसे ऊंची हो तथा गुरुकी पुत्री हो तो इनके साथ विवाह न करे। क्योंकि ये माताके समान मानी गई हैं ॥ ४० ॥

विवाहके पांच अंग।

वाग्दानं च प्रदानं च वरणं पाणिपीडनम्।
सप्तपदीति पञ्चांगो विवाहः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥

वाग्दान, प्रदान, वरण, पाणिग्रहण और सप्तपदी, ये विवाहके पांच अंग कहे गए हैं ॥ ४१ ॥

वाग्दानम्–वाग्दान।

विवाहमासतः पूर्वं वाग्दानं क्रियते बुधैः।
कलशेन समायुक्तं सम्पूज्य गणनायकम् ॥ ४२ ॥
सन्निधौ द्विजदेवानां कन्या मम सुताय ते।
त्वयाऽद्य क्रियतामद्य सुरूपा दीयते मया ॥ ४३ ॥
पुत्रमित्रसुहृद्वर्गैः समवेतेन निश्चितम्।
कायेन मनसा वाचा सम्प्रीत्या धर्मवृद्धये ॥ ४४ ॥

विवाह-महीनेसे पहले वाग्दान करना चाहिए। उस समय कलशकी और गणनायक—आचार्यकी पूजा करना भी जरूरी है। कन्याका पिता वरके पितासे प्रार्थना करे कि मैं आग, देव और द्विजके संनिकट, पुत्र मित्र बंधु बांधवोंकी सम्मतिसे अपनी सुरूपवती गुणवती कन्याको धर्मकी बढ़वारीके निमित्त तुम्हारे पुत्रके लिए मनसे, वचनसे, कायसे प्रीतिपूर्वक देता हूं; जिसे आप स्वीकार कीजिए ॥ ४२–४४ ॥

कन्या ते मम पुत्राय स्वीकृतेयं मयाऽद्य वै।
एतेषां सन्निधावेव मम वंशाभिवृद्धये ॥ ४५ ॥

इसके बदलेमें वरका पिता बोले कि मैं आज इन सबके समक्ष अपने वंशकी वृद्धिके निमित्त तुम्हारी कन्याको अपने पुत्रके लिए स्वीकार करता हूं ॥ ४५ ॥

सम्बन्धगोत्रमुच्चार्य दद्याद्वै कन्यकां पिता।
हस्ते पितुर्वरस्याथ ताम्बूलं साक्षतं फलम् ॥ ४६ ॥
दास्येऽहं तेऽद्य पुत्राय सुरूपां मम कन्यकाम्।
आसादय विवाहार्थं द्रव्यमांगलिकानि च ॥ ४७ ॥
स्वीकृता मम पुत्राय मयाऽद्य तव पुत्रिका।
सफलं साक्षतं दद्याद्यथाचारं परस्परम् ॥ ४८ ॥

कन्याका पिता-संबंध (पितामह आदिके नाम) और गोत्रोंका उच्चारण कर कन्याको देवे और वरके पिताके हाथमें तांबूल, अक्षत और फल देवे। तथा कहे कि मैं आज तुम्हारे पुत्रके लिए अपनी सुन्दर कन्याको देता हूं। आप विवाहके अर्थ मंगल-द्रव्योंको सम्पादन कीजिए। इसके बदलेमें वरका पिता कहे हि मैंने आज तुम्हारी कन्या अपने पुत्रके लिए स्वीकार की है। अनंतर लौकिक अथवा जातीय रिवाजके अनुसार आपसमें फल अक्षत पुष्प आदि देवें। इस तरह वाग्दान अर्थात् सगाई की जाती है ॥ ४६–४८ ॥

अथ प्रदानं—प्रदानविधि।

कन्याया वरणात्पूर्वं प्रदानं चैव कारयेत्।
सम्पूज्य कन्यकां दद्याद्वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ॥ ४९ ॥
प्रदानं पट्टकूलादि कर्णकण्ठादिभूषणम्।
लब्ध्वाऽऽशिषोऽथ विप्रेभ्यस्तेभ्यो दद्यात्फलानि च ॥ ५० ॥

वाग्दानके बाद और विवाह समय होनेवाली वरणविधिसे पहले कन्याकी प्रदानविधि होती है, जो वरके पिताकी ओरसे की जाती है। कलश और आचार्यकी पूजा कर कन्याको वस्त्र-अलंकार आदिसे विभूषित करे, उसे उत्तम कीमती रेशमी कपड़े, कानोंमें पहननेके दागीने, कंठमें पहननेके दागीने, हाथ पैर शिर आदि स्थानोंमें पहनने योग्य दागीने देवे। अनन्तर ब्राह्मणोंके द्वारा दिये हुए आशीर्वादको ग्रहण कर उन्हें (ब्राह्मणोंको) फल वगैरह देवे। भावार्थ—सगाईके बाद लड़कीके लिए वरके पिताकी ओरसे गहना देनेको प्रदान-विधि कहते हैं॥ ४९-५०॥

अथ वरणं—वरणविधि।

प्रार्थयेद्गुणसम्पूर्णान् मधुपर्केण पूजितः।
मदर्थं वृणीध्वं कन्यामिति दत्वा च दक्षिणाम्॥ ५१॥
गोत्रोद्भवस्य गोत्रस्य सम्बन्धस्यामुकस्य च।
नप्त्रे पौत्राय पुत्राय ह्यमुकाय वराय वै॥ ५२॥
कन्याया अपि गोत्रस्य यथापूर्ववदुच्चरेत्।
नप्त्रीमथ च पौत्रीं च पुत्रीं कन्यां यथाविधि॥ ५३॥
कन्यासमीपमागत्य ब्राह्मणैः सह वै पिता।
इत्युक्त्वा भो द्विजा यूयं वृणीध्वं कन्यकामिमाम्॥ ५४॥
प्रत्यूचुः सज्जनाः सर्व वयं चैनां वृणीमहे।
सुप्रयुक्तेति सूक्तं वै जपेयुः सज्जनास्ततः॥ ५५॥

मधुपर्कद्वारा पूजा किया गया वर, व्रती सदाचारी गुणवान् ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा देकर, "मदर्थं कन्यां वृणीध्वं" अर्थात् "मेरे लिए आप सब लोग मिलकर कन्या स्वीकार करो" ऐसी प्रार्थना करे। बाद कन्याका पिता कन्याके समीप आकर ब्राह्मणोंके साथ इस प्रकार गोत्रोच्चारण करे कि मैं, अमुक[1] गोत्रमें उत्पन्न हुए अमुकका प्रपोता, अमुकका पोता, अमुकका पुत्र, अमुक नामवाले वरके लिए अमुककी प्रपोती, अमुककी पोती, अमुककी लड़की, अमुक नामवाली कन्याको देता हूं। हे ब्राह्मणो! आप लोग स्वीकार करो। इसके बदलेमें वे सब ब्राह्मण लोग कहें कि हम सब इस कन्याको स्वीकार करते हैं। बाद सारे सज्जन "सुप्रयुक्ता" इत्यादि सुभाषितोंको पढ़ें॥ ५१-५५॥

पाणिपीडनं—पाणि-पीड़न-विधि।

धर्मे चार्थे च कामे च युक्तेति वरिता त्वया।
इयं गृह्णाति पाणिभ्यां पाणीति पाणिपीडनम्॥ ५६॥

धर्म, अर्थ और काम, इन तीन पुरुषार्थोंसे युक्त तेरेद्वारा वरण की हुई यह कन्या तेरे हाथोंको अपने हाथोंसे पकड़ती है। इस तरह पाणिपीडन-विधि होती है। भावार्थ—वर-कन्याका हथलेवा जोड़ने (परस्पर हाथ मिलाने) को पाणिपीडन कहते हैं॥ ५६॥

---

१ इन अमुक शब्दोंकी जगह वर-कन्याके प्रपितामह आदिका नाम जोड़ लेना चाहिए।

अथ सप्तपदी—सप्तपदी-विधि।

अभुक्तामयतीशान्यां वधूं सप्तपदानि तु।
साऽभुक्ता समयेत्पूर्वं दक्षिणं पादमात्मनः॥ ५७॥

अभुक्ता (जिसने भोजन नहीं किया है) कन्याको ईशान दिशाकी ओर सात पैंड ले जाय, और वह कन्या भी प्रथम अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाकर सात पैंड जाय। इसे सप्तपदी कहते हैं। भावार्थ—यह संक्षेपसे सप्तपदीका लक्षण है। सप्त पैंड किस तरह ले जाय और किस तरह जाय यह सब प्रयोगविधि आगे कही गई है॥ ५७॥

इति प्रसंगात् पंचांगविवाहः परिकीर्तितः—इस तरह प्रसंग पाकर विवाहके पांच अंग लक्षणरूपसे कहे गए हैं। प्रयोगविधि विस्तारके साथ आगे कहेंगे।

विशेषविधि अंकुरारोपण।

विवाहस्याथ पूर्वेद्युराचार्यो बन्धुसंयुतः।
संस्नातो धौतवस्त्राङ्गो गृहयज्ञं प्रकल्पयेत्॥ ५८॥
विवाहाह्नस्तु पूर्वाह्णे वरं संस्नाप्य भूषणैः।
वस्त्रैश्च भूषयेद्रम्यैर्निशाचूर्णाद्यलंकृतम्॥ ५९॥
सौभाग्यवनिताभिश्च सह माता वरस्य वा।
घटद्वयं स्वयं धृत्वा वाद्यैर्गच्छेज्जलाशयम्॥ ६०॥
फलगन्धाक्षतैः पुष्पैः सम्पूज्य जलदेवताः।
घटान् भृत्वा जलैर्धृत्वा मूर्ध्नि गच्छेन्निजालयम्॥ ६१॥
तथाऽऽनीतमृत्तिकायां वपेद्बीजानि मङ्गलैः।
घटं संस्थाप्य वेद्यग्रे शुभद्रव्यैः समर्चयेत्॥ ६२॥
वेद्यां गृहाधिदेवं संस्थाप्य दीपं प्रज्वालयेत्।
साश्मानं वर्तुलं न्यस्येत्तत्पुरस्तन्तुभिर्वृताम्॥ ६३॥
गुडजीरकसामुद्रहरिद्राक्षतपुञ्जकान्।
पृथक्पञ्च तथा कन्यागृहेऽप्येष विधिर्भवेत्॥ ६४॥

विवाह-दिनके पहले दिन गृहस्थाचार्य स्नान कर और स्वच्छ धुले हुए कपड़े पहनकर पुरोहितजीके साथ गृहयज्ञ करे। उसी दिन प्रातःकाल वरको हल्दी आदिका उबटन लगाकर और स्नान कराकर वस्त्र-आभूषणोंसे भूषित करे। वरकी माता सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ दो कलश अपने हाथमें लेकर जलाशयपर जावे। वहां पर फल, गंध, अक्षत और पुष्पोंसे जलदेवताकी पूजा कर दोनों कलशोंको पानीसे भरे और अंकुरारोपणके लिए मिट्टी खोदे। दोनों कलशोंको सिरपर रखकर और मिट्टीको हाथमें लेकर अपने घर आवे। उस मिट्टीमें बीज बोवे और एक कलशका पानी उसमें गेरे। दूसरे कलशको वेदीके अग्रभागमें रखकर उसको शुभ मंगल-द्रव्योंसे पूजा करे। वेदीमें कुलदेवताकी स्थापना कर दीपक जोवे। एक पत्थरकी चौकी

और पत्थरके चारों तरफ सूत लपेटकर वेदीके अग्रभागमें रक्खे। उस पर गुड़, जीरा, नमक, हल्दी और अक्षत, इनके पृथक् पृथक् पांच पुंज रक्खे। यह सब अंकुरारोपण-विधि है। इसी तरहकी विधि कन्याके घर भी की जाय॥ ५८-६४॥

उस दिन वरका कर्तव्य।

वरः स्नानादियुक् पश्चात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
होमं विधाय भुञ्जीत पित्राचार्यादिसंयुतः॥ ६५॥

वर स्नान आदि कर स्वस्तिवाचन-पूर्वक गृहयज्ञ करे। अनन्तर पिता आचार्य आदिको साथ लेकर भोजन-पान करे॥ ६५॥

वरका वधूके घरपर गमन।

अपरेद्युः कृतस्नानो धौतवस्त्रधरो वरः।
स्वलंकृतः सितच्छत्रपदातिजातिबान्धवैः॥ ६६॥
वृतो वधूगृहं गच्छेद्वाद्यवैभवगर्जितः।
नीयमानो नरैः प्रीत्या तत्रस्थैः कन्यकाश्रितैः॥ ६७॥
तण्डुलादिभिराकीर्णे चन्द्रोपकादिभूषिते।
पवित्रे श्वशुरावासे सज्जनैर्निवसेद्वरः॥ ६८॥
गमागमक्रिया सर्वा विधेया वनितादिभिः।
देशकुलानुसारेण वृद्धस्त्रीभिर्निरूपिता॥ ६९॥

दूसरे दिन—विवाहके रोज वर स्नान कर, धोये हुए स्वच्छ कपड़े और आभूषण पहनकर सिरपर सफेद छतरी लगाकर, नौकरों और जातीय बांधवोंको साथ लेकर, गाजे-बाजेके ठाठसहित वधूके घरपर जावे। कन्या-पक्षके सज्जन प्रीतिपूर्वक वरको बधावें। अनंतर वर तंदुल आदिसे आकीर्ण, चंद्रोपक (चंदोवा) आदिसे सजे हुए श्वसुरके पवित्र घरपर साथवाले सज्जनोंके साथ बैठ जाय। अनंतर देश-कालके अनुसार बूढ़ी बड़ी स्त्रियां जैसा बतावें उस तरह लाने ले जाने आदिकी सारी क्रियाओंको सब स्त्रियां मिलकर संपादन करें॥ ६६-६९॥

विवाहभेदाः—विवाहके आठ भेद।

ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ ७०॥

ब्राह्मविवाह, दैवविवाह, आर्षविवाह और प्राजापत्यविवाह, ये चार धर्म्यविवाह हैं। और असुरविवाह, गांधर्वविवाह, राक्षसविवाह और पैशाचविवाह, ये चार अधर्म्यविवाह हैं। एवं विवाहके आठ भेद हैं॥ ७०॥

ब्राह्म-विवाह।

आच्छाद्य चार्हयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥ ७१॥

विद्वान् और सदाचारी वरको स्वयं बुलाकर उसको और कन्याको बहुमूल्य आभूषण पहना कर कन्या देनेको ब्राह्मविवाह कहते हैं ॥ ७१ ॥

दैव-विवाह।

यज्ञे तु वितते सम्यक् जिनार्चाकर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवो धर्मः प्रचक्ष्यते ॥ ७२ ॥

जिन-पूजारूप महान अनुष्ठानका प्रारंभकर उसकी समाप्ति होनेपर उस जिनार्चा करानेवाले साधर्मीको वस्त्र—आभूषणोंसे विभूषित कर कन्या देनेको दैवविवाह कहते हैं ॥७२॥

आर्ष-विवाह।

एकं वस्त्रयुगं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ ७३ ॥

एक या दो जोड़ी वस्त्र वरसे कन्याको देनेके लिए धर्मनिमित्त लेकर विधिपूर्वक कन्या देना आर्षविवाह है ॥ ७३ ॥

प्राजापत्य-विवाह।

सहोभौ चरतां धर्ममिति तं चानुभाष्य तु ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ७४ ॥

कन्या प्रदानके समय ' तुम दोनों साथ साथ सद्धर्मका आचरण करो ' ऐसे वचन कहकर दोनोंको वस्त्राभूषणसे सुसज्जित कर कन्या देनेको प्राजापत्यविवाह कहते हैं ॥ ७४ ॥

आसुर-विवाह।

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्यादानं यत्क्रियते चासुरो धर्म उच्यते ॥ ७५ ॥

कन्याके पिता आदिको कन्याके लिए यथाशक्ति धन देकर कन्या लेना सो आसुरविवाह है ॥ ७५ ॥

गान्धर्व-विवाह।

स्वेच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ ७६ ॥

---

१ स ब्राह्मो विवाहो यत्र वरायालङ्कृत्य कन्या प्रदीयते ।

२ स दैवो विवाहो यत्र यज्ञार्थमृत्विजः कन्याप्रदानमेव दक्षिणा ।

३ 'वस्त्रयुगं' के स्थानमें ' गोमिथुनं ' भी पाठ है, जिसका अर्थ एक गाय और एक बैल होता है। वरसे लेकर कन्याको देना या कन्याके साथ साथ एक या दो गोमिथुन देना, ये दोनों ही अर्थ स्वीकार किये गए हैं। तदुक्तं—गोमिथुनपुरःसरं कन्यादानादार्षः ।

४ विनियोगेन कन्याप्रदानात्प्राजापत्यः । त्वं भव अस्य महाभाग्यस्य सधर्मचारिणीति विनियोगः ।

५ पणबंधेन कन्याप्रदानादासुरः ।

वर और कन्याका अपनी इच्छापूर्वक जो परस्पर आलिंगनादिरूप संयोग है वह गांधर्व-विवाह है। यह विवाह माता-पिता और बंधुओंकी बिना साक्षीके कन्या और वरकी अभिलाषासे होता है। अतः यह केवल मैथुन्य-कामभोगके लिए होता है ॥ ७६ ॥

राक्षस-विवाह।

हत्वा भित्वा च छित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ७७ ॥

कन्या-पक्षके लोगोंको मारकर उनके अंगोपांगोंको छेदकर, उनके प्राकार (परकोटा), दुर्ग आदिको तोड़-फोड़कर 'हा पिता मैं अनाथिनी हरण की जा रही हूं।' इस तरह चिल्लाती हुई और आंसू डाल-डालकर रोती हुई कन्याको जबर्दस्तीसे हरण करना सो राक्षसविवाह है ॥ ७७ ॥

पैशाच-विवाह।

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः ॥ ७८ ॥

सोई हुई, नशेसे चूर, अपने शीलकी संरक्षासे रहित कन्याके साथ एकान्तमें समागम करना पिशाचविवाह है। यह विवाह पापका कारण है, और सब विवाहोंसे निंद्य है ॥ ७८ ॥

कन्यादानं निशीथे चेद्वरायोपोषिताय च।
उपोषितः सुतां दद्यात् ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि ॥ ७९ ॥

कन्यादानका मुहूर्त रात्रिका हो तो ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य, इन चार धर्म्य विवाहोंमें कन्याका पिता उपवासपूर्वक उपोषित (जिसने उपवास किया है ऐसे) वरको कन्या-दान दे॥७९॥

अन्यमतम्—मतान्तर।

कन्यादानं निशीथे चेद्दिवा भोजनमाचरेत्।
पुनः स्नात्वा जपेन्मन्त्रं पिता कन्यां प्रयच्छतु ॥ ८० ॥

कन्यादानका मुहूर्त रात्रिका हो तो दिनमें भोजन-पान कर ले, फिर स्नान कर मंत्रका जाप करे। पश्चात् कन्याका पिता कन्यादान दे ॥ ८० ॥

भुक्त्वा समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा।
गान्धर्वासुरयोरेव विधिरेष उदाहृतः ॥ ८१ ॥

वर भोजन-पान करके कन्याके साथ विवाह करे और सावित्री (यज्ञोपवीत) ग्रहण करे। यह भोजन कर विवाह करनेकी विधि गांधर्वविवाह और असुरविवाहमें ही है; अन्य विवाहोंमें नहीं ॥ ८१ ॥

कन्याके बान्धव।

पिता पितामहो भ्राता पितृव्यो गोत्रिणो गुरुः।
मातामहो मातुलो वा कन्याया बान्धवाः क्रमात् ॥ ८२ ॥

१ मातुः पितुर्बन्धूनांचाप्रामाण्यात् परस्परानुरागेणमिथः समवायाद्गांधर्वः।

२ कन्यायाः प्रसह्यादानाद्राक्षसः।

३ सुप्तप्रमत्तकन्यादानात्पैशाचः।

पिता, पितामह (पिताका पिता—आजा किंवा बाबा), भाई, पितृव्य (चाचा), गोत्रज मनुष्य, गुरु, मातामह (माताका पिता) और मामा, ये कन्याके क्रमसे बंधु हैं ॥ ८२ ॥

कन्याका अधिकार।

पित्रादिदात्रभावे तु कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् ।
इत्येवं केचिदाचार्याः प्राहुर्महति सङ्कटे ॥ ८३ ॥

विवाह करनेवाले पिता, पितामह आदि न हों, तो ऐसी दशामें कन्या स्वयं-अपने आप अपना विवाह करे। ऐसा कोई कोई आचार्य कहते हैं। यह विधि महासंकटके समय समझना चाहिए ॥ ८३ ॥

अथ विवाहकर्म-विवाह-विधि।

कन्यायाः सदनं गच्छेत् मण्डपे तोरणान्विते ।
कन्याया जननी वेगादागत्य पूजयेद्वरम् ॥ ८४ ॥
कन्यापित्रादिभिर्दत्ते चोदुम्बरादिवृक्षकैः ॥
निर्मिते चासने सम्यक् सुदृष्ट्योपविशेद्वरः ॥ ८५ ॥

वर कन्याके घरपर जावे। वहां वह तोरण आदिसे सुसज्जित मंडपमें कन्याके पिता आदि द्वारा बिछाये हुए और उदुंबर आदि वृक्षकी लकड़ीके बने हुए तख्त-पट्टेपर बैठे। पश्चात् कन्याकी माता शीघ्र आकर वरका आव-आदर करे ॥ ८४-८५ ॥

वर-पूजन।

ततः प्रक्षालयेत्पादौ वरस्यार्घ्यं विधाय च ।
यज्ञोपवीतं मुद्रादिभूषा एवार्पयेद्वरे ॥ ८६ ॥

कन्याका पिता पहले वरके पैर प्रक्षालन कर अर्घ्य चढ़ावे। अनन्तर यज्ञोपवीत मुद्रिका आदि आभूषण उसकी भेंट करे ॥ ८६ ॥

वधू-पूजन।

ततः पाद्यं समादाय कन्यकां सेचयेच्छनैः ।
अर्घ्यदानं ततो दत्वा कन्यकामपि पूजयेत् ॥ ८७ ॥

वर-पूजाके अनन्तर कन्याकी पूजा करे। वह इस तरह कि वरका चरणोदक लेकर धीरेसे कन्याका अभिषेचन करे—कन्याके पैर धोवे और एक अर्घ्य चढ़ावे ॥ ८७ ॥

अर्घ्य-दान।

तद्वरोऽपि प्रदत्तार्घ्यमञ्जल्याऽऽदाय सादरम् ।
निरीक्ष्याङ्गुलिरन्ध्रैस्तत्स्रावयेद्भाजने शनैः ॥ ८८ ॥

वह वर, जो अर्घ्य कन्याका पिता उसके हाथमें देता है उसे भारी आदरके साथ अपनी अंजलीमें लेकर और उसका अच्छी तरह निरीक्षण कर धीरेसे अंगुलियोंके छेदमें होकर पात्रमें क्षेपण करे ॥ ८८ ॥

आचमन।

सन्नालपात्रसम्पूर्णपूतशीतलवारिणा।
तद्वन्निवेद्य दत्तेन कुर्यादाचमनं ततः ॥८९॥

इसके बाद वर उत्तम भृंगार (झारी) में भरे हुए तथा पहलेकी तरह आदरपूर्वक दिये हुए पवित्र और शीतल जलसे आचमन करे॥ ८९॥

मधुपर्क।

कांस्यतालीस्थितं त्यक्तकांस्यपात्रपिधानकम्।
प्राशयेन्मधुपर्कार्थं दधि तद्वत्समंत्रकम्॥ ९०॥

अनन्तर ऊपरका ढक्कन हटाकर, काँसेके बर्तनमें रक्खा हुआ दही और शक्कर, मधुपर्कके लिए, मंत्रपूर्वक, आचमनकी तरह, वरको प्राशन करावे। वह मंत्र यह हैः—॥ ९०॥

मंत्र—ॐ ह्रीं भगवतो महापुरुषस्य पुरुषवरपुण्डरीकस्य परमेण तेजसा व्याप्तलोकस्य लोकोत्तरमङ्गलस्य मङ्गलस्वरूपस्य संस्कृत्य पादावर्थेनाभिजनेनानुकृत्याय उदवसितचत्वरेऽभ्यागतायाभियोगवयोमधुपर्काय समदत्तिसमन्वितायार्घ्यस्य पाद्यस्य विधिमाप्ताय दध्यमृतं विश्राण्यते जामात्रे अमुष्मै ॐ। इति मन्त्रयेत्।

इस मंत्रको पढ़कर दही और शक्करको मंत्रित करे।

मंत्र—ॐ नमोऽर्हते भगवते मुख्यमंगलाय प्राप्तामृताय कुमारं दध्यमृतं प्राशयामि क्ष्मं वं ह्वः अ सि आ उ सा स्वाहा। इति मधुपर्कमन्त्रः। त्रिः प्राशयेत्।

यह मंत्र पढ़कर तीन वार दही और शक्कर प्राशन करावे।

वरको वस्त्रालंकार दान।

मालाभरणवस्त्राद्यैरलङ्कृत्य वरं ततः।
कन्याभ्रात्रे प्रदद्यात्तद्वस्त्रं तेन धृतं पुरा॥ ९१॥

इस विधिके हो चुकने बाद कन्याका पिता माला, आभूषण, वस्त्र आदिसे वरको अलंकृत करे। वर जो कपड़े पहले पहने रहता है उन्हें उतारकर कन्याके भाईको दे दे॥ ९१॥

कन्याको वस्त्रालंकार दान।

वरानीतैस्तु सद्वस्त्रैर्भूषणैश्च स्रगादिभिः।
स्नातामभोजनां कन्यां पिताऽलङ्कारयेत्ततः॥ ९२॥

अनन्तर जो स्नानकर चुकी हो और भोजन न किया हो ऐसी उस कन्याको उसका पिता, वरकी ओरसे लाये हुए वस्त्रों, आभूषणों और मालाओंसे अच्छी तरह अलंकृत करे॥ ९२॥

यज्ञोपवीत ग्रहण।

पुनराचमनं कृत्वा ताम्बूलाक्षतचन्दनैः।
यज्ञोपवीतवस्त्राणि स्वीकुर्याच्च वरोत्तमः॥ ९३॥

इसके बाद फिर आचमन कर वह वर कन्याके पिता द्वारा दिये हुए तांबूल, चंदन, अक्षत, यज्ञोपवीत और वस्त्र स्वीकार करे ॥ ९३ ॥

ॐ, भूयात्सुपद्मनिधिसम्भवसारवस्त्रं, भूयाच्च कल्पकुजकल्पितदिव्यवस्त्रम् ॥
भूयात्सुरेश्वरसमर्पितसारवस्त्रं, भूयान्मयाऽर्पितमिदं च सुखाय वस्त्रम् ॥ ९४ ॥

यह वस्त्र देनेका मंत्र है। इसे पढ़कर वस्त्र प्रदान करे ॥ ९४ ॥

कन्याया मातुलस्तस्माद्वरं धृत्वा करेण वै ।
गृहस्याभ्यन्तरं प्राप्य (?) कन्यामप्यानयेत्ततः ॥ ९५ ॥

कन्याका मामा वरको हाथ पकड़कर वेदीके पास लावे। अनन्तर कन्याको भी वहां लावे ॥ ९५ ॥

वेदिकाग्रे ततः कुर्यात्स्वस्तिकं स्थण्डिलान्वितम् ।
पूर्वापरदिशो रम्यं तण्डुलपुञ्जकद्वयम् ॥ ९६ ॥

वेदीके अग्रभागमें चौकोन चबूतरेका आकार बनाकर उसपर स्वस्तिक खेंचे। पूर्व दिशामें एक और पश्चिम दिशामें एक ऐसे दो चावलोंके पुंज रक्खे ॥ ९६ ॥

वेदी लक्षणम्—वेदीका लक्षण ।

विस्तारितां हस्तचतुष्टयेन, हस्तोच्छ्रितां मन्दिरवामभागे ।
स्तम्भैश्चतुर्भिः कृतनिर्मितांगां, वेदीं विवाहे प्रवदन्ति सन्तः ॥ ९७ ॥

विवाहमें चार हाथ लंबी, तथा चार ही हाथ चौड़ी और एक हाथ ऊंची एक वेदी घरके बाएं पसवाड़े बनवावे। उसके चारों कोनोंपर चार स्तंभ (थांभ) खड़े करे ॥ ९७ ॥

अन्यमतं—दूसरा मत ।

कन्याहस्तैः पञ्चभिः सप्तभिर्वा, वेदीं कुर्यात्कूर्मपृष्ठोन्नताङ्गाम् ।
रम्ये हर्म्ये कारयेद्वामभागे, जायापत्योराशिषो वाचयित्वा ॥ ९८ ॥

वधू और वरको आशीर्वाद देकर, अपने रमणीय मकानके बाईं ओर, कन्याके हाथसे पांच हाथ अथवा सात हाथ लंबी चौड़ी तथा कच्छपकी पीठकी तरह उठी हुई एक वेदी बनवावे ॥ ९८ ॥

व्रतबन्धे वेदी—उपनयनके समयकी वेदीका स्वरूप ।

प्राक्पश्चिमोर्ध्वपदषट्कयुक्तमुदीच्ययाम्यानि पदानि पञ्च ।
एवंविधा ज्योतिषरत्ननिर्मिता, वटोः शतायुर्भवतीह वेदिका ॥ ९९ ॥

उपनयनके समय पूर्व और पश्चिम दिशामें छह पैंड लंबी, दक्षिण और उत्तर तरफ पांच पैंड चौड़ी एक वेदी होना चाहिए। इस प्रकारकी ज्योतिषशास्त्रके अनुसार बनवाई हुई वेदी बालकको शतायु—दीर्घजीवी करती है ॥ ९९ ॥

अन्यमतं—दूसरा मत ।

आचार्यस्य पदैः षड्भिः पञ्चभिर्वाऽथ सप्तभिः ।
विस्तृता चतुरस्रा च वटोर्वेदी करोन्नता ॥ १०० ॥

उपनयनके समय आचार्यके पैरोंसे छह, पांच अथवा सात पैंड लंबी चौड़ी तथा बालकके हाथसे एक हाथ ऊंची ऐसी चौकोन एक वेदी बनाई जाय ॥ १०० ॥

लम्बा भित्तिर्द्विहस्ता च ह्युन्नता त्रिंशदंगुला।
प्रत्यक् वेद्या विवाहे च विस्तृता द्वादशांगुलम् ॥ १०१ ॥
अष्टावष्टौ प्रकुर्वीत सोपानान्यथ पार्श्वयोः।
तदग्रे कलशाकारमिति पूजाविदां मतम् ॥ १०२ ॥

वेदीके पश्चिम भागमें एक दिवाल खड़ी करे। जो दो हाथ लंबी, तीस उंगल-सवा हाथ ऊंची और बारह उंगल-एक बिलस्त चौड़ी हो। उस दिवालके दोनों ओर आठ आठ सोपान (सीढ़ी) बनवावे। उन दोनों तरफके सोपानोंके सामने कलशों जैसे आकार बनवावे। ऐसा पूजाकारोंका मत है ॥ १०१-१०२ ॥

अथ पीठं-पीठका प्रमाण।

अष्टत्रिंशांगुलं दीर्घमुन्नतं स्यात्षडंगुलम्।
अष्टांगुलं च विस्तारं कुर्यादौदुम्बरादिना ॥ १०३ ॥

अड़तीस उंगल लंबा, आठ उंगल चौड़ा और छह उंगल ऊंचा ऊंबर आदिकी लकड़ीका एक पट्टा बनवावे ॥ १०३ ॥

विवाहः स्याद्दिने यस्मिन्दिवा वा यदि वा निशि।
होमस्तत्रैव कर्तव्यो यथानुक्रमणेन तु ॥ १०४ ॥

दिनमें अथवा रातमें जिस दिन विवाह हो, उसी दिन, जो जो क्रियाएं करनेकी हैं उन्हें क्रमवार करते हुए होम करे ॥ १०४ ॥

तावद्विवाहो नैव स्याद्यावत्सप्तपदी भवेत्।
तस्मात्सप्तपदी कार्या विवाहे मुनिभिः स्मृता ॥ १०५ ॥

जबतक सप्तपदी (भाँवर) नहीं होती तबतक विवाह हुआ नहीं कहा जाता। इसलिए विवाहमें सप्तपदी अवश्य होना चाहिए। ऐसा मुनियोंका कहना है ॥ १०५ ॥

विवाहहोमे प्रक्रान्ते कन्या यदि रजस्वला।
त्रिरात्रं दम्पती स्यातां पृथक्शय्यासनाशिनौ ॥ १०६ ॥

विवाहसंबंधी होम शुरु हो जानेपर यदि कन्या रजस्वला हो जाय तो तीन राततक उन दोनों दंपतियोंके शय्या, आसन, भोजन सब जुदा जुदा रहना चाहिए। भावार्थ-रजस्वलाके समय कन्याकी ये सब क्रियाएं तेहरवें अध्यायमें कही जानेवाली रजस्वला विधिके अनुसार होनी चाहिए ॥ १०६ ॥

चतुर्थेऽहनि संस्नाता तस्मिन्नग्नौ यथाविधि।
विवाहहोमं कुर्यात्तु कन्यादानादिकं तथा ॥ १०७ ॥

चौथे दिन जब वह कन्या स्नान कर चुके तब उसी अग्निमें विधिपूर्वक होम किया जाय। तथा कन्यादान आदि विधि जो रह गई हो वह भी पूर्ण की जाय ॥ १०७ ॥

चतुर्थीमध्ये कन्या चेद्भवेगाद्रजस्वला ।
त्रिरात्रमशुचिस्तत्रा चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ १०८ ॥
पूजां न होमं कुर्वीत प्रायश्चित्तं विधीयते ।
जिनं सम्पूजयद्भक्त्या पुनर्होमो विधीयते ॥ १०९ ॥

वाग्दान, प्रदान, वरण और पाणिपीड़न, इन चार क्रियाओंमेंसे चौथी पाणिपीड़न क्रियामें अथवा चौथी अर्थात् भीतरकी सातवीं भांवरके पहले यदि कन्या रजस्वला हो जाय तो वह तीन राततक अशुद्ध रहती है और चौथे दिन शुद्ध होती है । तबतक विवाहसंबंधी पूजा और होम न किया जाय, तथा प्रायश्चित्त ग्रहण करें । चौथे दिन शुद्ध हो जानेके बाद भक्तिभावसे जिनपूजा और होम फिर प्रारंभ किया जाय ॥ १०८–१०९ ॥

इति प्रसंगाद्वेदिकादि लक्षणम् । अर्थात् इस तरह प्रसंग पाकर वेदीका लक्षण कहा ।

उभयोः पार्श्वयोः काण्डसंयुक्तं पुञ्जपञ्चकम् ।
शाल्यादिपञ्चधान्यानां यावारकस्य सन्निधौ ॥ ११० ॥

वेदीके दोनों तरफ छिलके सहित शाली आदि पांच धान्यके पांच पांच पुंज (मुठी) रक्खे ॥ ११० ॥

पूर्वोक्तराश्योर्मध्ये च तथोपरि सुवस्तुकम् ।
पटं प्रसार्य ते तत्र चानयेद्वरकन्यके ॥ १११ ॥

पूर्वोक्त दोनों धान्यके ढेरोंके बीचमें एक पर्दा तानकर वहांपर वर और कन्याको लावें ॥ १११ ॥

पूर्वदिक्ताण्डुलराशौ प्रत्यङ्मुखा हि कन्यका ।
प्राङ्मुखः पश्चिमेराशाववतिष्ठति सद्वरः ॥ ११२ ॥
गुर्वादिसज्जनैः स्तोत्रं पठनीयं जिनस्य वै ।
मङ्गलाष्टकमित्यादि कल्याणसुखदायकम् ॥ ११३ ॥
कन्याया वदनं पश्येद्वरो वरं च कन्यका ।
शुभे लग्ने सतां मध्ये सुखप्रीतिप्रवृद्धये ॥ ११४ ॥
सगुडान् जीरकानास्ये ललाटे चन्दनाक्षतान् ।
कण्ठे मालां क्षिपेत्तस्याः साऽपि तस्य तदा तथा ॥ ११५ ॥

पूर्व दिशाकी ओरके चावलोंकी राशिपर पश्चिमकी तरफ मुख करके कन्या खड़ी की जाय । और पश्चिम दिशाकी राशिपर पूर्वकी ओर मुखकर वर खड़ा किया जाय । इस तरह दोनोंको खड़ा कर आचार्य आदि सज्जन पुरुष वर-कन्याको सुखी करनेवाले मंगलाष्टक आदि जिनस्तोत्र पढ़ें । बाद उस पर्देको हटाकर वर कन्याका मुख देखे और कन्या वरका मुख देखे । यह क्रिया शुभ-लग्नमें सज्जनोंके बीच सुख और प्रीति बढ़नेके लिए की जाती है । इसके बाद वर कन्याके मुखमें जीरा और गुड़ दे, ललाटपर चंदन और अक्षत लगावे और गलेमें माला पहनावे । तथा कन्या भी वरके मुखमें गुड़ और जीरा देवे, ललाटपर चन्दन और अक्षत लगावे । तथा गलेमें माला डाले ॥ ११२–११५ ॥

एतद्गोत्रे प्रजातस्यैवैतन्नाम्नः प्रपौत्रकः ।
अस्य पौत्रोऽस्य पुत्रश्चाप्येतदाख्योऽहमित्यथ ॥ ११६ ॥
एतद्गोत्रे प्रजातस्यैवैतन्नाम्नः प्रपौत्रिकाम् ।
पौत्रीमस्यास्य पुत्रीमप्येतदाख्यामिमां वृणे ॥ ११७ ॥
इति ब्रूयाच्चतुर्थी च प्रपौत्रादिपदे स्वके ।
प्रयोज्य प्रवदेत्कन्यावरणे समये वरः ॥ ११८ ॥
स्वपक्षं पूर्वमुक्त्वैवमपरं च वदन्वदेत् ।
त्वं वृणीष्वेति वा तुभ्यं प्रयच्छामीति मातुलम् ॥ ११९ ॥
दक्षिणं पाणिमेतस्याः ससुवर्णाक्षतोदकम् ।
पित्रा समन्त्रकं दत्तं गृह्णीयात्स प्रयत्नतः ॥ १२० ॥
धर्मेण पालयेत्यादि कन्यापितरि वक्तरि ।
धर्मेणार्थेन कामेन पालयामीत्यसौ वदेत् ॥ १२१ ॥

कन्यावरणके समय वर, इस गोत्रमें उत्पन्न हुआ, इसका प्रपोता, इसका पोता, इसका पुत्र इस नामवाला मैं, इस गोत्रमें उत्पन्न हुई, इसकी प्रपोती, इसकी पोती, इसकी पुत्री, इस नामवाली इस कन्याको वरता हूं, इस प्रकार अपने और कन्याके प्रपौत्रादि चारों पदोंको जोड़कर इस चतुर्थी· चारों बातोंका उच्चारण करे। बाद कन्याका पिता 'त्वं वृणीष्व' अर्थात् तुम वरो अथवा 'तुभ्यं प्रयच्छामि' अर्थात् तुम्हें यह कन्या देता हूं, इस प्रकार कहें। जब कन्याका पिता ऐसी प्रार्थना करे तब वरके मामा वगैरह वरपक्षके लोग तीन वार इस तरह कहें कि श्रीवत्स गोत्रमें उत्पन्न हुए इसके प्रपोते, इसके पोते, इसके लड़के, देवदत्त नामके इस कुमारके लिए हम सब आपकी कन्या वरते हैं। वर तरफके लोग जब ऐसा कह चुकें तब कन्यापक्षके लोग 'वृणीध्वं वृणीध्वं वृणीध्वं' अर्थात् वरो, वरो, वरो, इस तरह तीन वार कहें। इसके बाद कन्यापक्षके लोग काश्यप गोत्रमें उत्पन्न हुई, इसकी प्रपोती, इसकी पोती, इसकी लड़की, देवदत्ता नामकी इस कन्याको आप वरो, इस तरह तीन वार कहें। इसके बदलेमें वरपक्षके लोग 'वृणीमहे, वृणीमहे, वृणीमहे,' अर्थात् वरते है, वरते हैं, वरते हैं, इस तरह तीन वार कहें। पश्चात् कन्याका पिता आगे लिखे कन्याप्रदान मंत्रको बोलकर सुवर्ण अक्षत और गंधोदककी धारा छोड़ता हुआ कन्याका दाहिना हाथ वरके हाथमें सौंपे। वह वर भी यत्नपूर्वक उसके हाथको अपने हाथसे पकड़े। इसके बाद कन्याका पिता धर्म, अर्थ और कामके साथ साथ तुम इस कन्याका पालन करना ऐसा कहे। इसके बदलेमें वर धर्म, अर्थ और कामके साथ साथ मैं इस कन्याका पालन करूंगा, ऐसा कहे॥ ११६–१२१ ॥

कन्यावरण मंत्र।

ॐ एकेन प्रकाश्येन पूर्वेण पुरुषेण श्रीवत्सेन ऋषिणा प्रतीते श्रीवत्सगोत्रे प्रजाताय तस्य प्रपौत्राय तस्य पौत्राय तस्य पुत्राय देवदत्तनामधेयाय अस्मै कुमाराय भवतः कन्यां वृणीमहे इति वरसम्बन्धिभिस्त्रिः प्रार्थनीयम् । तदा कन्यासम्बन्धिभिर्वृणीध्वमिति त्रिः प्रतिवक्तव्यम् ।

" ॐ एकेन " इत्यादि मंत्रको वरपक्षके लोग तीन वार बोलें। उसके बदलेमें कन्यापक्षके लोग ' वृणीध्वं वृणीध्वं वृणीध्वं ' इस तरह तीन वार कहें।

ततः—ॐ एकेन प्रकाशेन पूर्वेण पुरुषेण काश्यपेन ऋषिणा प्रतीते काश्यपगोत्रे प्रजातां तस्य प्रपौत्रीं तस्य पौत्रीं तस्य पुत्रीं देवदत्तानामधेयां इमां कन्यां वृणीध्वं इति कन्यासम्बन्धिभिस्त्रिर्वक्तव्यम्। तदा वरसम्बन्धिभिर्वृणीमहे इति प्रतिवक्तव्यम्। इति कन्यावर मंत्रः।

इसके बाद ' ॐ एकेन प्रकाश्येन ' इत्यादि मंत्रको कन्या-पक्षके लोग तीन वार उच्चारण करें। इसके उत्तरमें वरपक्षके मनुष्य 'वृणीमहे वृणीमहे वृणीमहे' इसतरह तीन वार बोलें।

कन्यादान मंत्र।

ततश्च कन्यापिता—ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते वर्द्धमानाय श्रीबलायुरारोग्यसन्तानाभिवर्धनं भवतु। इमां कन्यामस्मै कुमाराय ददामि झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा। इत्यनेन गन्धोदकधारापूर्वकं कन्याप्रदानं कुर्यात्।

इसके बाद कन्याका पिता ' ॐ नमोऽर्हते ' इत्यादि मंत्र पढ़कर गन्धोदककी धार छोड़ता हुआ कन्या प्रदान करे।

अथ कंकणम्—कंकण-बंध।

त्रिस्त्रिरावेष्टितं सूत्रं नाभिदघ्नेऽनयोः पृथक्।
ऊर्ध्वं चाधः समादाय कृत्वा पञ्चगुणं ततः॥ १२२॥
हरिद्राकल्कमालिप्य वलित्वा तत्करेऽर्पयेत्।
मदनफलमन्यं वा मणिं सर्वेण योजयेत्॥ १२३॥
वाद्यैर्मन्त्रैः समायुक्तं सौवर्णं राजतं पिता।
ताभ्यां तौ कंकणं हस्ते बध्नीयातां मिथः क्रमात्॥ १२४॥

वधू और वरके नाभिप्रदेशके पास दोनोंके चारों ओर सूतके तीन तीन धागेके दो फेर करे। नीचेकी तीन धागेकी लरका फेर ऊपरको और ऊपरकी तीन धागेकी लरका फेर नीचेको करे। जो फेर नीचेकी ओर करे उसे पैरोंमें होकर और जो उपरकी ओर करे उसे मस्तकपर होकर निकाल ले पश्चात् उसे पचंगुणा करे। उसे हल्दीमें रंगकर और बटकर तथा उसमें मदनफल या सोने चांदीकी मुद्रिका बांधकर वधू-वरके हाथमें सौंप देवे। बाद मंत्रोच्चारण पूर्वक गाजे-बाजेसहित वधू वरके हाथमें और वर वधूके हाथमें क्रमसे उस कंकणको बांधे॥ १२२-१२४॥

अथ मन्त्रः—कंकण-बंधन मंत्र।

ॐ जायापत्योरेतयोर्गृहीतपाण्योरेतस्मात्परमा चतुर्थदिवसादाहोस्विदासप्तमादिज्यापरमस्य पुरुषस्य गुरुणामुपास्तिर्देवतानामर्थेनाऽग्निहोत्रं सत्कारोऽभ्यागतानां

१ पचगुणीकी हुई एक एक लरमें सूतके धागे छह होते हैं; एवं पांच लरोंमें तीस धागे हो जाते हैं।

विश्राणनं वनीपकानामित्येवं विधातुं प्रतिज्ञायाः सूत्रकंकणं सूत्रव्यपदेशभाक् रजनीसूत्रं मिथो मणिबन्धे प्रणह्यते। कंकणसूत्रबन्धनमन्त्रः।

'ॐ जाया पत्यो' इत्यादि मंत्र पढ़कर कंकणसूत्र बांधे।

वर्धापन विधि।

ततश्च कुलवनिता दम्पतीपरस्परहस्तपूर्णाक्षतपुञ्जं मस्तके त्रिवारं क्षेपयेत्। मन्त्राः—ॐ ऱ्हीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा। ॐ ऱ्हीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा। ॐ ऱ्हीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा। इति वर्धापयेत्।

जब कन्याके पिताकी ओरसे कन्यादान हो चुके, उसके बाद एक सुवासिनी स्त्री आवे। वह वर और कन्याके हाथमें अक्षत देकर परस्पर एक दूसरेके सिरपर तीन वार क्षेपण करावे। "ॐ ऱ्हीं" इत्यादि मंत्र हैं। इनको पढ़ते हुए वर्धापन करावे।

साज्यदुग्धार्द्रपाणिभ्यां वरस्तत्कन्यकाञ्जलिम्।
द्विरुन्मृज्य ततस्तत्र द्विः क्षिप्त्वा धवलाक्षतान्॥ १२५॥
साक्षतं स्वाञ्जलिं तत्र कन्यापित्रा निषेचितम्।
शान्त्याद्याशीभिरेवं तु क्षिपेत्तन्मूर्ध्नि साप्यथ॥ १२६॥
मूर्ध्नि तण्डुलनिक्षेपः स्याद्रत्नत्रयमन्त्रतः।
कन्याऽप्येवं द्विरुन्मृज्य मूर्ध्नि क्षेपान्तमाचरेत्॥ १२७॥

प्रथम वर, अपने दोनों हाथोंसे कन्याकी अंजलिमें दो वार घी और दूध लगाकर दो ही वार अक्षत क्षेपण करे। अनंतर कन्याका पिता वरके हाथमें घी और दूध लगाकर अक्षत क्षेपण करे। अनन्तर वर अंजलिके उन अक्षतोंको शान्ति-मंत्र, आशीर्वाद-मंत्र आदिमंत्रोंको बोलता हुआ रत्नत्रयमंत्रद्वारा कन्याके सिरपर क्षेपण करे। वह कन्या भी वरके द्वारा दिये गये अपनी अंजलिके अक्षतोंको वरके सिरपर क्षेपण करे। इस तरह दोनों परस्परमें तीन तीन बार करें। अनन्तर इसी तरह कन्या भी वरकी अंजलिमें दो वार घी और दूध लगानेको आदि लेकर सिरपर अक्षत निक्षेपण तककी क्रिया करे। भावार्थ—जैसे वर अपने हाथोंसे कन्याकी अंजलिमें दो वार घी और दूध लगाकर अक्षत छोड़ता है, अनन्तर कन्या पिताद्वारा अपनी अंजलिमें दिये हुए अक्षतोंको शान्ति आदि पाठोंका उच्चारण करता हुआ कन्याके सिरपर क्षेपण करता है, उसी तरह कन्या भी अपने हाथोंसे दो वार वरकी अंजलिमें घी और दूध लगाकर दो ही वार अक्षत क्षेपण करे। और अपने पिताद्वारा अपनी अंजलिमें दो वार घी और दूध लगाकर क्षेपण किये गये अक्षतोंको शान्ति आदि मंत्रोंका उच्चारण करती हुई रत्नत्रयमंत्रद्वारा वरके सिरपर तीन वार क्षेपण करे। वर भी जो अक्षत कन्या उसकी अंजलीमें क्षेपण करती है उनको कन्याके सिरपर तीन वार क्षेपण करे। इस प्रकार वर्धापन क्रिया करे॥ १२५-१२७॥

विवाहविधि और होमविधि।

बद्धवस्त्रान्वितौ तौ च वीक्ष्य पूर्णं घटद्वयम्।
कुण्डात्प्रत्यग्दिश्यागत्योपविशेतां समासने॥ १२८॥

नूतनौदुम्बरे पीठे धौतवस्त्रप्रसारिते ।
वामदक्षिणयोः प्रत्यक् प्राङ्मुखौ[1] तौ सुदम्पती ॥ १२९ ॥
उपाध्यायस्ततः कुर्याद्धोमं सन्मन्त्रपूर्वकम् ।
महावाद्यनिनादेन मङ्गलाष्टकपाठतः ॥ १३० ॥
कन्याया दक्षिणं पाणिं सांगुष्ठं सव्यपाणिना ।
गृहीत्वा चाथ वामस्थां कृत्वाऽन्नाहुतीर्हुनेत् ॥ १३१ ॥
पुरस्ताद्वरवध्वोश्च स्थापनां कुरु पत्रिकीं (?) ।
ततश्च होमकुण्डाग्रे सङ्कल्पः सूरिणोच्यते ॥ १३२ ॥

वधू और वरका वस्त्र बांधे—गठजोड़ा जोड़े। वे दोनों जलसे भरे दो कलश देखें। होमकुंडकी पश्चिम दिशामें नवीन उदंबर वृक्षकी लकड़ीका बैठनेके लिये एक पीठ—पट्टा बिछावे। उसपर धोया हुआ साफ वस्त्र बिछावे। उस पर आकर वधू और वर बैठें। बाई ओर वर और दाहिनी ओर वधू बैठें। दोनों पूर्व दिशाकी तरफ मुख करें। अनन्तर उपाध्याय मंत्रोच्चारणपूर्वक होम करे। उस समय बाजे बजवावें और मंगलाष्टक पढ़ें। अनंतर अंगूठे सहित कन्याका दाहिना हाथ बायें हाथसे पकड़कर उसे बाई तरफ लेवे और अन्नकी आहूति देवे। अनन्तर वर वधूके आगे अंकुरपात्र (जिसमें अंकुरारोपण किया गया है) की स्थापना करे। अनंतर होमकुंडके सामने उपाध्याय संकल्प पढ़े ॥ १२८–१३२ ॥

पूर्वोक्त विधिका क्रम।

पुण्याहवाचनां पश्चात्पञ्चमण्डलपूजनम् ।
नवानां देवतानां च पूजनं च यथाविधि ॥ १३३ ॥
तथैवाघोरमन्त्रेण होमश्च समिधाहुतिम् ।
लाजाहुतिं वधूहस्तद्वयेन च वरेण च ॥ १३४ ॥
वरस्य वामपार्श्वे तु कन्याया उपवेशनम् ।
शिला स्थाप्या तयोरग्रे मण्डले लोष्टसंयुता ॥ १३५ ॥
शिलाग्रे स्थापिताः सप्त पुञ्जा अक्षतसम्भवाः ।
एतेषां पुरतोऽत्यर्थं दम्पत्योः स्थापनं मतम् ॥ १३६ ॥
ततो दक्षिणपादस्य योऽङ्गुष्ठो यावरञ्जितः ।
गृहीतव्यो वरेणैव सप्तकृत्वो मुहुर्मुदा ॥ १३७ ॥
स्थानानां परमाणां च सप्तानां गुणवत्तया ।
सङ्कल्पेन क्रमेणैव स्प्रष्टव्याः सप्तपुञ्जकाः ॥ १३८ ॥

१ श्लोकमें ' प्रत्यक्प्राङ्मुखौ ' पाठ है, जिसका अर्थ पश्चिम दिशा और पूर्व दिशाका ओर मुख करे, होता है।

शिलायाः स्पर्शनं पश्चात्कर्तव्यं तेन यत्नतः ।
अग्नेः प्रदक्षिणं कर्म स्पर्शनं तृणजं पुनः ॥ १३९ ॥
पूर्णाहुतिस्ततः कार्या समन्तादुपवेशनम् ।
नीराजनावलोके च तथाऽऽकर्णनमाशिषः ॥ १४० ॥

पुण्याहवाचन, पंचमंडलपूजन और नव देवतोंका पूजन शास्त्रोक्त विधिके अनुसार क्रमसे करे। तथा अघोर मंत्रद्वारा होम करे और समिधाहुति दे। वर और कन्याके दोनों हाथोंसे लाजाहुति दें। वरकी बाईं तरफ कन्याको बैठावे। उन दोनोंके सामनेके मंडलपर एक शिला और पत्थर स्थापित करे। शिलाके ऊपर अक्षतके सात पुंज रक्खे। इनके सामने दंपतीको खड़ा करे। अनंतर वर, मेंदीसे रंगे हुए कन्याके दाहिने अंगूठेको पकड़कर 'ये सात परमस्थान हैं' ऐसा संकल्प कर क्रमसे उन सात पुंजोंको छुवावे। अनंतर शिला स्पर्शन करे, अग्निकी प्रदक्षिणा देवे, तृण स्पर्शन करे और पूर्णाहुति देवे। पश्चात् दोनोंको बैठा दे। बैठकर दोनों आरती देखें और आशीर्वाद सुनें। भावार्थ–ऊपरके श्लोकोंमें जो विधि बताई थी उस विधिका यह क्रम है। सो जिस क्रमसे विधि लिखी गई है उसी क्रमसे करे ॥ १३३–१४० ॥

पुण्याहवाचनका संकल्प।

अथ वेदिकादिग्भागे दम्पती उपवेश्य भूमिशुद्धिं विधाय पुण्याहवाचनां पठेत्।

मंत्रः—ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य पुरुषवरपुण्डरीकस्य परमेण तेजसा व्याप्तलोकालोकोत्तममङ्गलस्य मङ्गलस्वरूपस्य गर्भाधानाद्युपनयनपर्यन्तक्रियासंस्कृतस्यास्य देवदत्तनाम्नः कुमारस्योपनीतिव्रतसमाप्तौ शास्त्रसमभ्यसनसमाप्तौ समावर्तनान्ते ब्रह्मचर्याश्रमेनेतरे गृहस्थाश्रमस्वीकारार्थं अग्निसाक्षिकं देवतासाक्षिकं बन्धुसाक्षिकं ब्राह्मणसाक्षिकं पाणिग्रहणपुरःसरं कलत्रे गृहीते सति अनयोर्दम्पत्योः सर्वपुष्टिसम्पादनार्थं विधीयमानस्य होमकर्मणो नान्दीमुखे पुण्याहवाचनां करिष्ये।

इति मन्त्रेण पुण्याहवाचनां कृत्वा साज्यसमिधो होमयेत्। ततो व्रीहिलाजान्नहोमं कुर्यात्।

अनंतर वेदिकाके समीप वधू और वरको बैठाकर भूमिशुद्धि करे और पुण्याहवाचन पढ़े। तथा 'ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य' इत्यादि मंत्रद्वारा पुण्याहवाचन करके घृत और समिधाका होम करे। पश्चात् धान्य, लाजा और अन्नका होम करे।

सप्तपदी–मंत्र।

ततः शिलाग्रस्थापितसप्ताक्षतपुञ्जाग्रे करेण कन्यांगुष्ठस्पर्शनम्।

मंत्रः—ॐ सज्जातये स्वाहा। ॐ सद्गृहस्थ्याय स्वाहा। ॐ परमसाम्राज्याय स्वाहा। ॐ परमपारिव्राज्याय स्वाहा। ॐ परमसुरेन्द्राय स्वाहा। ॐ परमार्हन्त्याय स्वाहा। ॐ परमनिर्वाणाय स्वाहा।

इति कन्यांगुष्ठेन सप्तपरमस्थानस्पर्शनमन्त्रः।

उक्त विधिके अनन्तर शिलाके ऊपर स्थापित किये हुए अक्षतके पुंजोंको वर अपने हाथसे कन्याका दाहिना अंगुष्ठ पकड़कर स्पर्शन करावे। और 'ॐ सजातये स्वाहा' इत्यादि मंत्र पढ़े। यह सप्त परमस्थानोंको कन्याके अंगूठेसे स्पर्शन करनेका मंत्र है ॥ ६ ॥

ततः पश्चात्पूर्णाहुतिं अन्ते पुण्याहं निगद्य प्रदक्षिणां कारयेत्। शांतिधारा पुष्पाञ्जलिप्रणामौ भक्त्या क्षमापना आशिषो भस्मप्रदानम्। तद्यथा—

ॐ भगवतां महापुरुषाणां तीर्थकराणां तद्देशानां गणधराणां शेपकेवलिनां पाश्चात्यकेवलिनां भवनवासिनामिंद्रा व्यन्तरज्योतिष्का इन्द्राः कल्पाधिपा इन्द्राः सम्भूय सर्वेऽप्यागता अग्निकुंडके चतुरस्रत्रिकोणवर्तुलके वा अग्नीन्द्रस्य मौलेरुद्धृतं दिव्यमग्निं तत्र प्रणीतेन्द्रादीनां तेषां गार्हपत्याहवनीयौ दक्षिणाग्निरिति नामानि त्रिधा विकल्प्य हि श्रीखण्डदेवदार्वाद्यैस्तरां प्रज्वाल्य तानर्हदादिमूर्तीन् रत्नत्रयरूपान्विचिंत्योत्सवेन महता सम्पूज्य प्रदक्षिणीकृत्य ततो दिव्यं भस्मादाय ललाटे दोः कण्ठे हृदये समालभ्य प्रमोदेरन् तद्वदिदानीं तानग्नीन् हुत्वा दिव्यैर्द्रव्यैस्तस्मात्पुण्यं भस्म समाहृतमनयोर्दम्पत्योश्च (एताभ्यां दम्पतीभ्यां) भव्येभ्यः सर्वेभ्यो दीयते ततः श्रेयो विधेयात्। कल्याणं क्रियात्। सर्वाण्यपि भद्राणि प्रदेयात्। सद्धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

भस्मप्रदानमन्त्रोऽयम्।

सप्तपदीके अनंतर उपाध्याय पूर्णाहुति देवे। अन्तमें पुण्याहवाचन पढ़े और वर-वधूको अग्निकी प्रदक्षिणा करावे। तथा शान्तिधारा, पुष्पांजलि, प्रणाम, क्षमापना, आशीर्वाद, भस्मप्रदान आदि क्रियाएं करे। "ॐ भगवतां महापुरुषाणां तीर्थकराणां" इत्यादि मंत्र पढ़कर कुंडमेंसे भस्म लेकर दंपतिको और उपस्थित सब सज्जनोंको देवे। यह भस्म प्रदान करनेका मंत्र है।

आशीर्वाद।

मनोरथाः सन्तु मनोज्ञसम्पदः, सत्कीर्तयः सम्प्रति सम्भवन्तु वः।
व्रजन्तु विघ्ना निधनं बलिष्ठा, जिनेश्वरश्रीपदपूजनाद्वः ॥ १४१ ॥
शान्तिः शिरोधृतजिनेश्वरशासनानां, शान्तिर्निरन्तरतपोभरभावितानाम्।
शान्तिः कषायजयजृम्भितवैभवानां, शान्तिः स्वभावमहिमानमुपागतानाम् ॥ १४२ ॥
जीवन्तु संयमसुधारसपानतृप्ता, नन्दन्तु शुद्धसहजोदयसुप्रसन्नाः।
सिद्ध्यन्तु सिद्धसुखसङ्गकृताभियोगा,– स्तीव्रास्तपन्तु जगतां त्रितये जिनाज्ञाः ॥१४३॥
श्रीशान्तिरस्तु शिवमस्तु जयोऽस्तु नित्य,– मारोग्यमस्तु तव पुष्टिसमृद्धिरस्तु।
कल्याणमस्त्वभिसुखस्य च वृद्धिरस्तु, दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रधनं सदास्तु ॥१४४॥

इत्याशीर्दानमाचार्येण कार्यम्।

इन श्लोकोंको पढ़कर गृहस्थाचार्य आशीर्वाद दे। इन आशीर्वादके श्लोकोंका भाव यह है कि, मनचाही मनोज्ञ संपत्ति तुम्हारे होवे। तुम्हारी सुकीर्ति जगतमें फैले। श्री जिनदेवके चरणकमलोंकी पूजाके प्रभावसे तुम्हारे बलवान्से बलवान् विघ्न नाशको प्राप्त होवें। जिनेश्वरदेवके शासनको धारण

करनेवालोंमें शान्ति हो। जो निरंतर तपश्चरणकी भावना करते हैं–बड़े बड़े महोपवासादि तप करते हैं उनमें शान्ति हो। कषायोंके जीतनेसे जिनका वैभव बढ़ा चढ़ा है उनमें शान्ति हो। संयम-रूपी रसास्वादनसे तृप्त पुरुष सदा जीते जागते रहें। शुद्ध और स्वाभाविक उदयसे प्रसन्न पुरुष समृद्धिको प्राप्त होवें। जिन्होंने सिद्धि–सुखकी संगतिमें संकल्प कर लिया है वे सिद्धिको प्राप्त होवें। जिनेंद्रकी आज्ञा तीन जगतमें बे–रोकटोक विचरण करे। तुम्हारी शान्ति हो, तुम्हारा शिव हो, तुम्हारी निरंतर जय हो, तुम्हें आरोग्य प्राप्त हो, तुम्हारी पुष्टि–समृद्धि हो, तुम्हारा कल्याण हो, सुखकी वृद्धि हो, तुम दीर्घआयु होओ, तुम्हारे निरंतर कुल, गोत्र और धन बना रहे ॥ १४१–१४४ ॥

शिरस्यक्षतपुञ्जस्य धारणं शुद्धमानसम्।
नमस्कारोऽग्निदेवस्य मूर्ध्ना प्रणमनं परम् ॥ १४५ ॥
सभायाः पूजनं वस्त्रैस्ताम्बूलाद्यैर्विशेषतः।
सदा गुणवता चापि ध्रुवतारानिरीक्षणम् ॥ १४६ ॥
गृहस्याभ्यन्तरे घण्टाद्वयस्याप्यवलोकनम्।
तथा बन्धुजनैः सार्धं पयः प्रभृति भोजनम् ॥ १४७ ॥

आशीर्वाद हो चुकनेके अनन्तर विवाह–दीक्षामें नियुक्त वे वधू–वर अपने मस्तकपर अक्षत धारण करें, मनको नाना संकल्प–विकल्पोंसे रहित शुद्ध करें। उपाध्यायको नमस्कार करें। अग्नि-देवको सिर झुकाकर प्रणाम करें। वस्त्र तांबूल आदि द्वारा उपस्थित सभ्योंका सत्कार करें। ध्रुवताराका निरीक्षण करें। घरके भीतर टँगी हुई दो घंटाएं देखें। और बंधुजनोंके साथ साथ दुग्ध आदि भोजन करें ॥ १४५–१४७ ॥

ततः प्रभृति नित्यं च प्रभाते पौष्टिकं मतम्।
निशीथे शान्तिहोमेऽह्नि चतुर्थे नागतर्पणम् ॥ १४८ ॥
तदग्रे च प्रभाते च गृहमण्डपयोः पृथक्।
सम्मार्जनं च कर्तव्यं मृत्स्ना गोमयलेपनम् ॥ १४९ ॥
पौष्टिकहोमान्तरके सकलैः सह बन्धुभिश्च्युतोष्णीषैः।
कार्यं हि पंक्तिभोजनमप्यत एवात्र ताम्बूलम् ॥ १५० ॥

उस दिनसे लेकर प्रतिदिन प्रातःकालके समय पौष्टिक कर्म करे। रात्रिमें शान्ति होम करे। चौथे दिन नागतर्पण करे। उसके दूसरे दिन घर और मंडपको झाड़ बुहारी लगाकर साफ करावे। मिट्टी और गोबरसे लिपवावे। पौष्टिक होम हो चुकनेके पश्चात् सम्पूर्ण बंधुजनोंके साथ साथ वर नंगे सिर पंक्ति–भोजन करे। पश्चात् सबको पान–सुपारी आदि देवे ॥ १४८–१५० ॥

विशाले मनोज्ञे समे भूमिभागे, विवाहस्य सन्मण्डपे शोभमाने।
बृहत्कर्णिकं चाष्टपत्रं सुपद्मं, सरःसंयुतं वा चतुर्द्वारयुक्तम् ॥ १५१ ॥
चतुर्भिस्तथाऽस्रैरुपेतं विशेषाद्वरैः पञ्चचूर्णैर्विरच्यैव साधु।
दधन्मण्डयन्पञ्च वा कर्णिकान्तः स्थितः पालिकामूर्ध्नि तस्या विचित्रम् ॥ १५२ ॥

नवीनं घटं पंचभिश्चारुरत्नै,- स्तथा सत्यभिर्धान्यकैः पूर्यमाणम् ।
सदर्भ सदूर्वं पिधानेन युक्तं, विचित्रेण संस्थापयेच्चारु पत्नी ॥ १५३ ॥

विशाल और मनोज्ञ समान-भूमि-भागके ऊपर जो संपूर्ण शोभा-संयुक्त विवाह मंडप बनाया जाता है उसपर आठ पांखुरीका एक कमल बनावे। कमलके बीचमें एक बड़ी भारी कर्णिका बनावे। कमलके चारों तरफ पुष्करिणी (तालाव) का आकार बनावे और उसके चारों तरफ चौकोन चार दरवाजे बनावे। कमलकी पंखुरियों और दरवाजोंके ऊपर पांच तरहके रंग भरे। कर्णिकाके भीतर पांच मंडल काढ़े। उसपर वधू पांच तरहके रत्नों, सात प्रकारके धान्योंसे भरकर तथा दर्भ और दूव रखकर और ढकन लगाकर एक नवीन कलश रक्खे ॥ १५१-५३ ॥

दलेष्वष्टसु प्राक्प्रभृत्याह्वयेषु, लिखेदष्टनागान् स्वमंत्रैः प्रसिद्धान् ।
अलंकृत्य साक्षाद्बहिर्मण्डलेभ्यः, सदीशानकोणादिषु प्रायशोऽमी ॥ १५४ ॥

घटाः स्थापनीयाश्चतुःसंख्ययाऽतो, मुखेष्वप्यमीषां नवाः पल्लवाश्च ।
प्रसूनैस्तथा मालया चारुवस्त्रैः, सहादर्शकैः शोभमानान् विशेषात् ॥ १५५ ॥

बहिः प्राक्सुपूर्वेभ्य एतेभ्य एव, स्वयं द्वारकेभ्यो गजो लेखनीयः ।
सुचूर्णैर्हयो वा गजस्तद्वदुक्षा, सपुच्छः सशृङ्गः सलिङ्गः सकर्णः ॥ १५६ ॥

तथा नैर्ऋते कन्यकापित्रभीष्टप्रतापादि गोत्रं तथाऽग्नेर्दिशीह ।
ककुभ्याशुगस्यैव गोत्रं वरस्य, प्रतापादि लेख्यं तथैशानकोणे ॥ १५७ ॥

सदित्येवमेतन्महामण्डलं वेशपूजार्चनायोग सद्द्रव्यपूर्णम् ।
अमत्रैस्तथैवांकुराणां शुभानामलंकृत्य चाचार्यसाधूपदेशात् ॥ १५८ ॥

सरागेऽपि सन्ध्याभिधाने हशीह, वरस्यापि वध्वाः शुभे स्नानके वा ।
दृढं चासनं युज्यते चादरेण, सुमाङ्गल्यवादित्रगीतादिपूर्वम् ॥ १५९ ॥

क्रिया नापितस्यैव तैलावमर्दो, जलस्थानमेताद्धि पश्चाद्विधेयम् ।
अलंकारशोभा सुवस्त्रैः सुमाल्यै,- स्ततः स्थापनं पीठयुग्मं पृथक् वै ॥ १६० ॥

कमलके पूर्वादि आठों दिशाओंके आठों पत्तोंपर अपने अपने मंत्रोंसे प्रसिद्ध आठ नागोंके चित्र खेंचे। मंडलके बाहरके चतुष्कोणकी, ईशानादि चारों विदिशाओंके कोनोंपर चार कलश रक्खे। कलशोंके मुखोंको नवीन पत्तोंसे, पुष्पोंसे, मालाओंसे, वस्त्रोंसे तथा दर्पणोंसे सजावे। चौकोणकी चारों दिशाओंके चारों दरवाजोंपर चूर्णके चार चित्र खेंचे। पूर्व दिशाके द्वारपर हाथीका चित्र, दक्षिण-द्वारपर घोड़ेका चित्र, पश्चिम-द्वारपर पुनः हाथीका चित्र और उत्तर-द्वारपर पूंछ, सींग, लिंग, कर्ण आदिकी स्पष्टतासहित बैलका चित्र खेंचे। नैर्ऋत्य और आग्नेय दिशा तरफके कोणोंपर कन्याके पिताके अभीष्ट प्रताप आदि गोत्र लिखे तथा वायव्य और ईशान दिशामें वरके अभीष्ट प्रताप आदि गोत्र लिखे। वहीं मंडलपर जिनेन्द्र पूजाके योग्य उत्तम उत्तम द्रव्य रक्खे और अंकुरोंके पात्र और अन्य शुभ वस्तुओंसे गुरूपदेशके अनुसार मंडलको अच्छी तरह सजावे। जब संध्याके

समय आकाशमें कुछ कुछ लालिमा छा जाय तब वहाँ मंडपमें वर और वधूके स्नानके लिए चूर्णके दो आसन खेंचे, उन आसनोंपर दो पट्टे बिछावें। उनपर वधू और वरको बैठाकर क्रिया करें। प्रथम नाई तैल मर्दन करे। पश्चात् जल स्नान करावे। अनंतर वस्त्र, आभूषण, माला आदिसे दोनोंको अलंकृत करें। स्नानके समय सुहासिनियाँ मंगल गीत गावें और बाजे बजानेवाले बाजे बजावें। ॥ १५४—१६० ॥

अथ मंत्रः—गंध अक्षत देनेका मंत्र।

ॐ सद्दिव्यगात्रस्य गन्धधारादिक्चक्रे सुगन्धं बोभवीति सुगन्धोऽपि निजेन गन्धेन सुरादयः सर्वे भृशं जायन्ते गन्धिलाः यस्य पुनस्तंतन्यते ह्यनन्तं ज्ञानं दर्शनं वीर्यं सुखं च सोऽयं जिनेन्द्रो भगवान् सर्वज्ञो वीतरागः परा देवता तत्पदोरार्चितमार्चितप्रतिलब्धा अमी गन्धा भाले भुजयोः कण्ठे हृत्प्रदेशे त्रिपुण्ड्रादिरूपेण भाक्तिकैः प्रश्रयेण सन्धायन्ते ते भवन्तु सर्वस्मा अपि श्रेयसे लाभे (भाले) सन्धारिता अक्षता अप्येवं भवन्तु। इति गन्धाक्षतप्रदानमन्त्रः।

यह गंध अक्षत देनेका मंत्र है। इसे पढ़कर सबको गंध-अक्षत देना चाहिए। गंधको ललाट पर, दोनों भुजाओं पर, गलेपर और हृदय पर लगावें तथा अक्षतोंको सिरपर धारण करें।

ताली बांधनेकी विधि।

रात्रौ ध्रुवतारादर्शनानन्तरे विद्वद्विशिष्टबन्धुजनैश्च सभापूजा। चतुर्थदिने वधूवरयोरपि महास्नानानि च स्नपनार्चनाहोमादिकं कृत्वा तालीबन्धनं कुर्यात्। तद्यथा—

रात्रिको ध्रुवतारा देखनेके बाद विद्वानों और विशिष्ट बंधुजनोंके साथ अन्य उपस्थित मंडलीका सत्कार करे। विवाहके चौथे दिन वर और वधूको महास्नान कराकर और जिनाभिषेक, पूजा होम आदि करके तालीबंधन नामका कृत्य करे। वह इस प्रकार है—

वरेण दत्ता सौवर्णी हरिद्रासूत्रग्रन्थिता।
ताली करोतु जायाया अवतंसश्रियं सदा ॥ १६१ ॥

मंत्रः—ॐ एतस्याः पाणिगृहीत्यास्तालीं बध्नामि इयं नित्यमवतंसलक्ष्मीं विदध्यात्।

इति कन्याकण्ठे तालीबन्धमन्त्रः।

वरके द्वारा दी गई और हलदीसे रंगे हुए धागेमें गुंथी-पिरोई गई सोनेकी ताली, इस वधूके मुख्य अलंकारकी शोभा बढ़ावे। “ ॐ एतस्याः पाणिगृहीत्याः ” इत्यादि मंत्रको पूर्ण पढ़कर कन्याके गलेमें ताली बांधे। तथा यह क्रिया विवाहके चौथे दिन करे। अनन्तर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर आशीर्वाद दे ॥ १६१ ॥

ततः—

इन्द्रस्य शच्या सम्बन्धो यथा रत्या स्मरस्य च।
सम्बन्धमाला सम्बन्धं दम्पत्योस्तनुतात्तथा ॥ १६२ ॥

मंत्रः—ॐ पुलोमजापत्न्या सार्धं यथा पाकशासनस्य अमा रोहिण्या देव्या जैवातृकस्यैव यथा कन्दर्पदेवस्य साकं रत्या देव्या सम्बन्धस्तथा कल्याणसम्प्राप्तयो-र्वधूवरयोरनयोः करोतु सम्बन्धं बन्धमाला तनोतु भाग्यं सौभाग्यं च शान्तिं कान्तिं दीर्घमायुष्यमपत्यानां बहूनां लब्धिं चापि दद्यात् ।

इन दोनों दंपतियोंका संबंध ऐसा हो जैसा इंद्र और शचीका, तथा कामदेवका और रतिका। " ॐ पुलोमजा पत्न्या सार्धं " इत्यादि मंत्र पढ़कर उपाध्याय वधू और वरको आशीर्वाद देवे ॥ १६२ ॥

माला-बंधन मंत्र।

ॐ भार्यापत्योरेतयोः परिणतिं प्राप्तयोस्तुरीये घस्रे नक्तं वेलायां त्रेतासपर्यायाश्च तौ सम्बध्येते सम्बन्धमाला अतो लब्धिर्बह्वपत्यानां द्राघीयं आयुश्चापि भूयात् ।

अनेन कन्यावरयोः कण्ठे मालारोपणम् । इति मालामन्त्रः ।

" ॐ भार्यापत्योरेतयोः " इत्यादि ऊपर लिखा मंत्र पढ़कर चौथे दिनकी रात्रिके समय वधू और वरको माला पहनावें।

सुहोमावलोकः पुनर्मंगलीयं, ससूत्रं क्रमाद्बन्धयेत्कण्ठदेशे ।
स्वसम्बन्धमालापरीवेष्टनं च, सुकर्पूरगोशीर्षयोर्लेपनं च ॥ १६३ ॥

प्रथम होम करे। फिर कन्याके गलेमें वर ताली बांधे। अनन्तर उपाध्याय वर-वधूको माला पहनावे। पश्चात् नियोगी जन दोनोंके कपूर और गोरोचनाका लेप करें ॥ १६३ ॥

वधूभिर्हृयुपात्तार्घपात्राभिराभिः, प्रवेशो वरस्यैव तद्वच्च वध्वाः ।
शुभे मण्डपे दक्षिणीकृत्य तं वै, प्रदायाशु नागस्य साक्षाद्बलिं च ॥ १६४ ॥

जिन सुहासिनियोंने अर्घपात्र (आरती) हाथमें लिया है वे वर और वधूको मंडपकी प्रदक्षिणा दिलाकर उसके अन्दर ले जावें। वहां पूर्वोक्त कमलके आठ पत्तोंपर खिंचे हुए नागोंको बलिप्रदान करें ॥ १६४ ॥

स्वपितृगोत्रसुचिन्हितमण्डले हयसमीपे वधूमपि दर्शयेत् ।
स्वपितृगोत्रसुचिन्हितमण्डले वृषसमीपे वरस्य मता स्थितिः ॥ १६५ ॥

नागोंको बलि देते समय दक्षिणद्वारपर खिंचे हुए घोड़के समीप, जहां पर कि कन्याके पिताके गोत्र आदि लिखे रहते हैं वहां कन्याको खड़ी करे। तथा उत्तर द्वारपर खिंचे हुए बैलके समीप, जहां पर कि वरके पिताके गोत्र आदि लिखे रहते हैं वहां वरको खड़ा करे ॥ १६५ ॥

उपाध्यायवाग्भिः समीपे समेत्य, स्वके मंचके चोपविश्यैव साधु ।
सताम्बूलसत्तण्डुलैः प्रीत एव, च्युतं कंकणं स्थापयेत्सूत्रकं च ॥ १६६ ॥

उपाध्यायके बुलानेपर वर-वधू उसके समीप आवें। आकर अपने अपने आसनोंपर बैठें। वहीं पर तांबूल और तंडुलके साथ कंकण-मोचन विधिके द्वारा खोले हुए कंकण सूत्रको रक्खे ॥ १६६ ॥

सामित्समारोपणपूर्वकं तथा, हुताशपूजावसरार्चनं मुदा।
गृहीतवीटी च वरो वधूयुतो, विलोकनार्हं स्वपुरं व्रजेत्प्रभोः ॥ १६७ ॥
ततः शेषहोमं कृत्वा पूर्णाहुतिं कुर्यात्।
ॐ रत्नत्रयार्चनमयोत्तमहोमभूति, युष्माकमावहतु पावनदिव्यभूतिम्।
षट्खण्डभूमिविजयप्रभवां विभूतिं, त्रैलोक्यराज्यविषयां परमां विभूतिम् ॥ १६८ ॥
इति भस्मप्रदानमन्त्रः।

समिधामें अग्निकी स्थापना करके उसकी पूजा करे। अनन्तर वर सबका यथायोग्य सत्कार कर और स्वयं पान-बीड़ा लेकर वधूके साथ साथ अपने नगरको जावे।

मालाबंधनादिकके अनन्तर होमकी शेष विधिको पूर्ण कर पूर्णाहुति देवे और "ॐ रत्नत्रयार्चनमयोत्तम" इत्यादि मंत्र-श्लोक पढ़कर भस्म प्रदान करे। इस तरह यह भस्मप्रदानमंत्र है। इस मंत्रका भाव यह है कि यह रत्नत्रयकी पूजामयी उत्तम होमकी विभूति (भस्म) तुम्हें पवित्र और दिव्य विभूति देवे, षट्खंडके विजयकी संपत्ति देवे और तीन लोकके राज्यकी उत्कृष्ट अनन्त-चतुष्टय-स्वरूप लक्ष्मी देवे ॥ १६७–१६८ ॥

सुवर्णप्रदान मंत्र।

हिरण्यगर्भस्य हिरण्यतेजसो, हिरण्यवत्सर्वसुखावहस्य।
प्रसादतस्तेऽस्तु हिरण्यगर्भता, हिरण्यदानेन सुखी भव त्वम् ॥ १६९ ॥
सुवर्णविश्राणनमेव चाद्य, सुवर्णलाभं च हिरण्यकान्तिम्।
स्वर्णार्थसौख्यं परिणायमेत,-द्वधूवराभ्यां नियतं ददातु ॥ १७० ॥
हिरण्यविश्राणनमेव चाद्य, हिरण्यलाभं च हिरण्यकान्तिम्।
हिरण्यगर्भोपमपुत्रजातं, वधूवराभ्यां नियतं ददातु ॥ १७१ ॥
इतिस्वर्णदानमन्त्रः।

हिरण्यगर्भ, हिरण्यकान्ति और हिरण्यके समान सर्व सुखके धारक जिनेन्द्रके प्रसादसे तुम हिरण्यगर्भ होओ और हिरण्यका दान देकर सुखी होओ। आजके इस सुवर्णदानसे वधू और वरको सुवर्णका लाभ हो, उनकी सुवर्णकीसी कान्ति हो और उनको सुखकी प्राप्ति हो। आजका यह सुवर्णदान वधू और वरको हिरण्यलाभ, हिरण्यकान्ति और हिरण्यगर्भके सदृश पुत्र प्रदान करे। इस मंत्रको पढ़कर स्वर्णदान दे। यह स्वर्णदान करनेका मंत्र है ॥ १६९–१७१ ॥

तदनन्तरं कंकणमोचनं कृत्वा महाशोभया ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य पयःपाननिधुवनादिकं सुखेन कुर्यात्। स्वग्रामं गच्छेत्।

अनन्तर कंकण-मोचन करके भारी विभूतिके साथ ग्रामकी प्रदक्षिणा देकर, अपने ग्रामको जावे। वहां दुग्धपान, भोजन, संभोगादि क्रियाएं करें।

यहांतक विवाहविधि प्रायः पूर्ण हो चुकी। आगे ग्रन्थकार "अथ विशेषः" ऐसा लिखकर परमतके अनुसार उस विषयका कथन करते हैं जिसका जैनमतके साथ कोई विरोध नहीं है और प्रायः सर्वसाधारण है। यथा—

विवाहे दम्पती स्यातां त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणौ ।
अलंकृता वधूश्चैव सहशय्यासनाशिनौ ॥ १७२॥

विवाह हो जानेके बाद वे दंपती तीन दिनतक ब्रह्मचारी रहें-संभोगादि क्रिया न करें। अनंतर साथ सोवें, साथ बैठें और साथ भोजन करें। श्लोकके उत्तरार्धका पाठ ऐसा भी है:—

अधः शय्यासनौ स्यातामक्षारलवणासिनौ ।

अर्थात्—भूमिपर ही सोवें और भूमिपर ही बैठें। क्षार और लवणसे रहित भोजन करें ॥ १७२॥

वध्वा सहैव कुर्वीत निवासं श्वशुरालये ।
चतुर्थदिनमत्रैव केचिदेवं वदन्ति हि ॥ १७३ ॥

कोई कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि वर, वधूके साथ साथ चौथे दिन भी सुसरालमें ही निवास करे ॥ १७३ ॥

आगे " अथ परमतस्मृतिवचनं " ऐसा लिखकर ग्रन्थकार परमतकी स्मृतिके वाक्य उद्धृत करते हैं।

चतुर्थीमध्ये ज्ञायन्ते दोषा यदि वरस्य चेत् ।
दत्तामपि पुनर्दद्यात्पिताऽन्यस्मै विदुर्बुधाः ॥ १७४ ॥

पाणि-पीड़न नामकी चौथी क्रियामें अथवा सप्तपदीसे पहले वरमें जातिच्युतरूप, हीनजातिरूप या दुराचरणरूप दोष मालूम हो जांय तो वाग्दानमें दी हुई भी कन्याको उसका पिता किसी दूसरे श्रेष्ठ जाति आदि गुणयुक्त वरको देवे, ऐसा बुद्धिमानोंका मत है। सो ही याज्ञवल्क्य स्मृतिमें कहा है—

दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ।

मिताक्षराटीका—यदि पूर्वस्मात् वरात् श्रेयान् विद्याभिजनाद्यतिशययुक्तो वर आगच्छति, पूर्वस्य च पातकयोगो दुर्वृत्तत्वं वा तदा दत्तामपि हरेत्। एतच्च सप्तपदात्प्राग्द्रष्टव्यं।

इसका आशय यह है कि यदि पहले वरसे, जिसके साथ वाग्दान किया गया हो—विद्या, श्रेष्ठ-कुल-जाति आदि गुणोंसे युक्त दूसरा वर मिल जाय और पहले वरमें जातिच्युत या दुराचरण-रूप दोष हो तो वाग्दानमें दी हुई भी कन्याको पहले वरको न देवे। यह नियम सप्तपदीके पहले समझना। 'दत्ता' 'दत्वा' आदि शब्दोंका अर्थ इस प्रकरणमें टीकाकारोंने वाग्दाने दत्ता या वाचादत्ता किया है। यथा—

दत्वा कन्यां हरन् दंड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयं ।

टीका—कन्यां वाचा दत्वापहरन् द्रव्यानुबंधाद्यनुसारेण राज्ञा दंडनीयः। एतच्च अपहारकारणाभावे। सति तु कारणे 'दत्तामपि हरेत् कन्यां श्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्' इत्यपहाराभ्यनुज्ञानान्न दंड्यः। यच्च वाग्दाननिमित्तं वरेण स्वसंबंधिनां वोपचारार्थं धनं व्ययीकृतं तत्सर्वं सोदयं सवृद्धिकं कन्यादाता वराय दद्यात्।

भावार्थ—कन्याका पिता कन्याका वाग्दान करके विना ही कारण उस वरके साथ अपनी कन्याका व्याह न करे तो राजा उसके पिताको उसकी योग्यतानुसार दंड दे। परंतु 'दत्तामपि हरेत्' इत्यादि श्लोकके अनुसार न देनेका कारण उपस्थित हो तो दंड न दे। तथा वरका वाग्दानके

निमित्त अपने कुटुंबियोंका सत्कार करनेमें जो खर्च पड़ा हो वह सब मय वृद्धिके कन्यादाता वरको देवे । अतः इस श्लोकका अर्थ संप्रदायविरुद्ध नहीं है । परंतु जो लोग 'चतुर्थीमध्ये'का अर्थ विवाह हो चुकनेके बाद चौथा दिन करते हैं उनका वह अर्थ अवश्य संप्रदायके विरुद्ध है ॥ १७४॥

प्रवरैक्यादिदोषाः स्युः पतिसङ्गादधो यदि ।
दत्तामपि हरेद्दद्यादन्यस्मा इति केचन ॥ १७५ ॥

अथवा किन्हीं किन्हीं ऋषियोंका ऐसा भी मत है कि यदि पतिसंग—पाणिपीड़नसे पहले वरण-क्रियामें वर और कन्याके प्रवर (ऋषिगोत्र), गोत्र (वंशपरंपरा) आदि एक या सदृश हों तो कन्यादाता उस वाग्दत्ता कन्याको उस वरको न देकर किसी भिन्न प्रवर, गोत्र आदि गुणवाले वरको देवे ॥ १७५ ॥

कलौ तु पुनरुद्वाहं वर्जयेदिति गालवः ।
कस्मिँश्चिद्देश इच्छन्ति न तु सर्वत्र केचन ॥ १७६ ॥

कलियुगमें एक धर्मपत्नीके होते हुए दूसरा विवाह न करे, ऐसा गालव ऋषिका उपदेश है । परंतु उनके इस उपदेशको किसी किसी देशमें कोई कोई मानते हैं, सब जगह सब लोग नहीं मानते । अथवा किसी किसी देशमें कोई कोई एक धर्मपत्नीके होते हुए भी दूसरा विवाह स्वीकार करते हैं, सब देशोंमें नहीं ।

भावार्थ—ब्राह्मण समाजमें भी प्रथम विवाहिताको धर्मपत्नी माना है । उसके होते हुए द्वितीय विवाहिताको रतिवर्धिनी—भोगपत्नी कहा है । प्रथम विवाहिता सवर्णा होना चाहिए, ऐसा मनुका उपदेश है । मनुके उस उपदेशसे यह भी झलकता है कि प्रथम सवर्णाके साथ पाणिग्रहण करना ही श्रेष्ठ है और यह प्रथम विवाह ही धर्मविवाह है । उसके होते हुए अन्य विवाह काम्यविवाह है । याज्ञवल्क्यका मत है कि सवर्णा स्त्रीके होते हुए असवर्णा स्त्रीसे धर्मकृत्य न कराये जावें । सवर्णाओंमें भी धर्मकार्योंमें प्रथम विवाहिताको नियुक्त करे, मध्यमा या कनिष्ठाको नहीं । इससे यह फलितार्थ निकला कि पहला सजाति कन्याके साथ विवाह करना ही श्रेष्ठ और धर्मविवाह है, द्वितीय नहीं । अतः इसी द्वितीय विवाहका गालव ऋषि निषेध करते हैं। वे दूसरा काम्यविवाह स्वीकार नहीं करते । कोई ब्राह्मण—ऋषि दो विवाहोंको भी धर्म्यविवाह स्वीकार करते हैं और तृतीय विवाहका निषेध करते हैं। तब संभव है कि गालव ऋषि द्वितीय विवाहका भी निषेध करते हों। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। तथा ब्राह्मण संप्रदायमें कलियुगमें कई कृत्योंके करनेका निषेध किया है । जैसे—पतिके मर-जानेपर पुत्र न हो तो देवरसे एक पुत्र उत्पन्न करना, असवर्णाके साथ विवाह करना आदि । अत-

---

१—प्रथमा धर्मपत्नी स्याद्द्वितीया रतिवर्धिनी । दृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥

२—सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि । कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥

३—सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥

४—ब्रह्मचर्यं समाप्यैकां भार्यां यो द्वितीयां तथा । तृतीयां नो वहेद्विप्र इति धर्मकृतो विदुः ॥

५—विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनं । ६—कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः । न कर्तव्यः कलौ युगे इति संबंधः ।

एव निश्चित होता है कि गालव ऋषि एक सजाति धर्मपत्नीके होते हुए कलियुगमें दूसरे विवाहका निषेध करते हैं। परंतु जो लोग इस श्लोकसे स्त्रियोंका पुनर्विवाह अर्थ निकालते हैं वह बिल्कुल अयुक्त है। क्योंकि यह अर्थ स्वयं ब्राह्मण संप्रदायके विरुद्ध पड़ता है ॥ १७६ ॥

वरे देशान्तरं प्राप्ते वर्षत्रीन् सम्प्रतीक्षते।
कन्यान्यस्मै प्रदातव्या वाग्दाने च कृते सति ॥ १७७ ॥

वाग्दान हो चुका हो अनंतर वर देशांतरको चला गया हो तो तीन वर्ष तक उसके आनेकी प्रतीक्षा करना चाहिए। यदि तीन वर्ष तक वह न आवे तो कन्याको किसी दूसरे वरको दे देना चाहिए। मूल प्रतिमें इस श्लोकके नीचे 'इति परमतस्मृति वचनं' ऐसा लिखा है ॥ १७७ ॥

विवाहानन्तरं गच्छेत्सभार्यः स्वस्य मन्दिरम्।
यदि ग्रामान्तरे तत्स्यात्तत्र यानेन गम्यते ॥ १७८ ॥

विवाह हो जानेके बाद अपनी उस धर्मपत्नीको साथ लेकर अपने घरपर जावे। यदि घर दूसरे ग्राममें हो तो किसी सवारीपर चढ़कर जावे ॥ १७८ ॥

घरमें प्रवेश करनेका समय।

विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे दिने षोडशवासरावधि।
न चासमाने यदि पञ्चमेऽह्नि शस्तस्तदूर्ध्वं न दिवा प्रशस्तः ॥ १७९ ॥

विवाह दिनसे लेकर सोलह दिन तकका वधूका घरमें प्रवेश करनेका समय है। इन सोलह दिनोंमें भी युग्म (सम) तिथियोंमें घरमें प्रवेश करे। विषम तिथियोंमें नहीं। विषम तिथियोंमें सिर्फ पांचवां दिन प्रशस्त है। अतः पांचवां दिन भी घरमें प्रवेश करनेके लिए अच्छा माना गया है। इसके अलावा और कोई विषम दिनोंमें घरमें प्रवेश न करे ॥ १७९ ॥

वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
नवमे वा शुभे वर्षे सुलग्ने शशिनो बले ॥ १८० ॥

यदि विवाह-दिनसे लेकर सोलह दिनोंके पहले पहले वधूका प्रवेश कारणवश पतिके घरमें न हो सके तो पांचवें वर्षमें अथवा सातवें वर्षमें अथवा नौवें वर्षमें ज्योतिःशास्त्रोक्त शुभलग्नमें चन्द्रबल होते हुए वधूका प्रथम-प्रवेश होना चाहिए। आगे श्लोकमें प्रथम वर्ष भी प्रथम-प्रवेशके लिए अच्छा माना गया है, यह सूचित होता है। कहीं कहीं तृतीय वर्ष भी माना गया है ॥ १८० ॥

उद्वाहे चतुरष्टषड्दशदिने शस्तं वधूवेशनं
मासे तु द्विचतुःषडष्टदशसु श्रीपञ्चमायुःप्रदम्।
वर्षे तु द्विचतुःषडष्टमशुभं पञ्चाष्टमुख्यां परैः (?)
पूर्णः पुण्यमनोरथो विभवदो वध्वाः प्रवेशो भवेत् ॥ १८१ ॥

---

१ 'पंचाष्टमुख्या परैः' यह पद अशुद्ध मालूम पड़ता है। शायद इसके स्थानमें 'पंचादिमुख्या परे' इस आशयका पाठ हो तो श्लोक नं० १८० के अनुकूल हो जाता है। संग्रह श्लोकोंमें पुनरुक्तताका विचार नहीं किया जाता।

ऊपर समदिनोंमें वधू-प्रवेश प्रशस्त बताया है। वे सम दिन कौन कौनसे हैं यह इस श्लोक-द्वारा बताते हैं-सम दिनोंमें विवाह दिनसे लेकर चौथा, छठा, आठवां और दशवां दिन वधूके प्रथमा प्रवेशके लिए शुभ हैं, सम्पत्तिशाली हैं और सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। महीनोंमें दूसरा, चौथा, छठा, आठवां और दशवां शुभ हैं। पांचवां महीना भी आयुप्रद है। तथा वर्षोंमें दूसरा, चौथा, छठा और आठवां अशुभ हैं॥ १८१॥

देवोत्थापन।

समे च दिवसे कुर्याद्देवतोत्थापनं बुधः।
षष्ठे च विषमे नेष्टं त्यक्त्वा पञ्चमसप्तमौ॥ १८२॥

समदिनोंमें देव उठावे। परंतु समदिनोंमें छठा दिन प्रशस्त नहीं है। तथा पांचवें और सातवें दिनको छोड़कर शेष विषम दिन भी श्रेष्ठ नहीं हैं॥ १८२॥

प्रतिष्ठादिनमारभ्य षोडशाहाच्च मध्यतः।
मण्डपोद्वासनं कुर्यादुद्वाहे चेद्व्रतेदशम् (?)॥ १८३॥

प्रतिष्ठादिनसे लेकर सोलह दिनके पहले पहले मंडप उठा देना चाहिए। तथा विवाहमें भी विवाहदिनसे लेकर सोलह दिनके पहले पहले ही उठा देना चाहिए॥ १८३॥

विवाहात्प्रथमे पौषे त्वाषाढे चाधिमासके।
न च भर्तुर्गृहे वासश्चैत्रे तातगृहे तथा॥ १८४॥

वधूको विवाहके अनंतर पहले पूषमें, पहले अषाढ़में और अधिक मासमें पतिके घरमें निवास नहीं करना चाहिये तथा प्रथम चैत्रमें पिताके घर भी नहीं रहना चाहिए॥ १८४॥

लग्न प्रतिघात।

कृते वाग्भिश्च सम्बन्धे पश्चान्मृत्युश्च गोत्रिणाम्।
तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम्॥ १८५॥

वाग्दान हो चुकनेके बाद, यदि अपने किसी गोत्रजकी मृत्यु हो जाय तो आगे कहे जाने-वाले समयके पहले पहले विवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि उस समयके पहले विवाह करनेसे कन्या विधवा हो जाती है। भावार्थ—यद्यपि श्लोकमें सामान्य गोत्रजका ग्रहण है तो भी वर और वधकी तीसरी-चौथी पीढ़ीतकके मनुष्यका ग्रहण करना चाहिए॥ १८५॥

वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः।
एतेषां मरणे मध्ये विवाहः क्रियते न हि॥ १८६॥

वर और वधूके माता, पिता, चाचा और सहोदर भाई इनमेंसे किसीके भी मरजानेपर नीचे लिखे समयके पहले पहले विवाह न करे॥ १८६॥

पितुर्मातुश्च पत्न्याश्च वर्षमर्धं तदर्धकम्।
सूनोर्भ्रातुश्च तस्यार्धमन्येषां माससम्मतम्॥ १८७॥

तदन्ते शान्तिकं कृत्वा यथोक्तविधिना ततः ।
पुनश्चोद्वाहेऽथ वाग्दानं कृत्वा लग्नं विधीयते ॥ १८८ ॥

पिताके मरजानेपर एक वर्षतक, माताके मरजानेपर छह महीनेतक, पूर्व-पत्नीके मरजानेपर तीन महीने तक, पुत्र और भाईके मरजानेपर डेढ़ मास तक ("मासार्धं" इस पाठकी अपेक्षा अर्ध महीनेतक) तथा अन्य सपिंड गोत्रियोंके मरजानेपर एक माहतक विवाह न करे । उक्त अवधि बीत जानेके बाद शान्ति विधानपूर्वक ऊपर बताई हुई विवाह-विधिके अनुसार पुनः वाग्दान करके विवाह लग्न करे ॥ १८७-१८८ ॥

स्नानं सतैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं करकप्रदानम् ।
अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम् ॥ १८९ ॥

तैल लगाकर स्नान करना, तिल-मिश्र क्रिया करना, मरे हुएके पीछे जाना अर्थात् मृत मनुष्यादिकको जलानेके लिए जाना, तथा पहले जिनका दर्शन नहीं किया ऐसे तीर्थों और देवोंका दर्शन करना, ये कार्य विवाह-दिनसे लेकर एक वर्ष तक न करे ॥ १८९ ॥

ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्धम् ।
अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं च वधूप्रवेशश्च गृहे न चादौ ॥ १९० ॥

पुत्रके विवाहके बाद छह महीनेसे पहले कन्याका विवाह नहीं करना चाहिए और कन्याको ससुराल भेजे विना वधूका प्रथम-प्रवेश भी घरमें नहीं होना चाहिए । भावार्थ— पुत्र विवाहके बाद छह महीने तक पुत्रीका और पुत्रीके विवाहसे छह महीने पहले पुत्रका विवाह नहीं होना चाहिए ॥ १९० ॥

एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्नेव वत्सरे ।
न कुर्याच्चौलकर्माणि विवाहं चोपनायनम् ॥ १९१ ॥

एक ही मातासे उत्पन्न अनेक पुत्रोंका चौलकर्म, उपनयनसंस्कार और विवाह एक ही वर्षमें न करे ॥ १९१ ॥

न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेऽपि विवाहकार्यं दुहितुश्च कुर्यात् ।
न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दमेकम् ॥ १९२ ॥

पुरुष (पुत्र) विवाहके अनन्तर तीन ऋतु अर्थात् छह महीनेके पहले पुत्रीका विवाह न करे । तथा विवाहके पश्चात् चौलकर्म भी न करे । यह नियम गोत्रैकता अर्थात् एक मातासे उत्पन्न पुत्र-पुत्रियोंके लिए है । तथा एक ही वर्ष हो तो यह छह छह महीनेका नियम समझा जाय, वर्ष-भेद हो तो न समझा जाय । सो ही बताते हैं ॥ १९२ ॥

फाल्गुने चेद्विवाहः स्याच्चैत्रे चैवोपनायनम् ।
अब्दभेदाच्च कुर्वीत नर्तुत्रयविलम्बनम् ॥ १९३ ॥

फाल्गुनमें विवाह हो तो चैत्र महीनेमें वर्षभेद होनेके कारण उपनयनसंस्कार और चकारसे विवाह भी करें । वर्षभेदमें छह महीने तक विलम्ब करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । भावार्थ—

एक संवत्सर हो तो एक मातासे उत्पन्न दो पुत्रोंका अथवा दो पुत्रियोंका अथवा पुत्र और पुत्रीका छह महीने पहले पहले विवाह न करे। हां, यदि वर्ष-भेद हो तो छह महीनेके पहले पहले कर सकते हैं। इसी तरह पुत्र अथवा पुत्रीके विवाहके छह महीने पहले एक संवत्सरमें चौलकर्म भी न करे। वर्ष-भेद हो तो कोई हानि नहीं है। ऊपरके श्लोकोंमें पुनरुक्तताका विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि ये श्लोक भिन्न भिन्न ऋषियोंके बनाये हुए हैं, यहांपर उनका संग्रह किया गया है। अतः पुनरुक्तताका आना स्वाभाविक बात है ॥ १९३ ॥

एकमातृप्रसूतानां पुत्रीणां परिवेदने।
दोषः स्यात्सर्ववर्णेषु न दोषो भिन्नमातृषु ॥ १९४ ॥

एक मातासे उत्पन्न पुत्रियोंके परिवेदनका सभी वर्णोंमें दोष माना गया है। परन्तु भिन्न-भिन्न माताओंसे उत्पन्न पुत्रियोंके परिवेदनमें कोई दोष नहीं है। भावार्थ—बड़ी पुत्रीके विवाहके पहले छोटी पुत्रीका विवाह करनेको परिवेदन कहते हैं। एक मातासे उत्पन्न हुई दो पुत्रियोंमेंसे छोटी पुत्रीका विवाह पहले करना और बड़ी पुत्रीका बादमें करना दोष है। परन्तु भिन्न-भिन्न माताओंसे उत्पन्न हुई दो पुत्रियोंमेंसे छोटी पुत्रीका विवाह पहले कर दिया जाय और बड़ी पुत्रीका बादमें करे तो कोई दोष नहीं है ॥ १९४ ॥

कन्याका रजोदोष।

असंस्कृता तु या कन्या रजसा चेत्परिप्लुता।
भ्रातरः पितरस्तस्याः पतिता नरकालये ॥ १९५ ॥

विवाह न होनेके पहले यदि कन्या रजस्वला हो जाय तो उसके भाई और माता-पिता नरक को जाते हैं। भावार्थ-बारह वर्षसे ऊपर कन्याओंका रजोधर्मका समय है अतः उनका विवाह बारह वर्ष तक कर देना चाहिए। यद्यपि कोई कोई कन्याएं बारह वर्षसे ऊपर भी रजस्वला होती हैं, परंतु तो भी कितनी ही कन्याएं बारह वर्षमें भी हो जाती हैं अतः इस अवधिके भीतर ही विवाह कर देना चाहिए; क्योंकि विवाह पहले रजस्वला होनेमें उक्त दोष माना गया है ॥ १९५ ॥

पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्येदसंस्कृता।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥ १९६ ॥

जो कोई कन्या अपने विवाहसे पहले पहले रजोधर्मसे युक्त हो जाय तो उसको शूद्रा या रजस्वला समझना चाहिए और उसके पतिको भी शूद्राका पति या रजस्वलाका पति समझना, चाहिए ॥ १९६ ॥

अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥ १९७ ॥

प्रथम ऋतुमतीके समयसे लेकर दशवें वर्षतक जिस स्त्रीके सन्तति न हो तो उसके होते हुए दूसरा विवाह करे। तथा जिसके केवल कन्याएं ही होती हों—पुत्र न होते हों तो बारहवें वर्ष बाद दूसरा विवाह करे। तथा जिसके संतति तो होती हो पर जीती न हो तो पंद्रह वर्ष उसके होते हुए दूसरा विवाह करे। तथा जिसके संतति तो होती हो पर जीती न हो तो पंद्रह वर्ष बाद दूसरा विवाह करे। और अपुत्रवती अप्रियवादिनीके होते हुए तत्काल दूसरा विवाह करे। अप्रियवादिनीका अर्थ व्यभिचारिणी भी है ॥ १९७ ॥

व्याधिता स्त्रीप्रजा वन्ध्या उन्मत्ता विगतार्तवा ।
अदुष्टा लभते त्यागं तीर्थतो न तु धर्मतः ॥ १९८ ॥

व्याधिता—जो वर्षोंसे रोग-ग्रसित हो, स्त्रीप्रजा—जिसके केवल कन्याएं पैदा होती हों, वन्ध्या—जिसके संतति होती ही न हो, उन्मत्ता—जो नशा करनेवाली हो, विगतार्तवा—जो रजस्वला न होती हो और अदुष्टा—उत्तम स्वभाववाली हो परंतु जिसके संतति न होती हो, ऐसी स्त्रियां कामभोगके लिए त्याज्य हैं, धर्मकृत्योंके लिए नहीं । भावार्थ—ऐसी स्त्रियोंके साथ संयोगादि क्रिया न करें धर्मकृत्य करनेमें कोई हानि नहीं ॥ १९८ ॥

सरूपां सुप्रजां चैव सुभगामात्मनः प्रियाम् ।
धर्मानुचारिणीं भार्यां न त्यजेद्गृहसद्व्रती ॥ १९९ ॥

जो रूपवती हो, जिसके संतति होती हो, जो भाग्यशालिनी हो, अपनेको प्यारी हो और जो धर्मकृत्योंमें सहचारिणी हो ऐसी उत्तम स्त्रीके होते हुए दूसरा विवाह न करे ॥ १९९ ॥

प्रमदामृतवत्सरादितः पुनरुद्वाहविधिर्यदा भवेत् ।
विषमे परिवत्सरे शुभः समवर्षे तु मृतिप्रदो भवेत् ॥ २०० ॥

स्त्रीके मर जानेपर दूसरा विवाह यदि करना हो तो जिस वर्षमें वह मरी है उस वर्षसे लेकर किसी भी विषम वर्षमें विवाह करना शुभ माना गया है । तथा सम वर्षमें मृत्युप्रद माना गया है ।

मतान्तरं—दूसरा मत ।

पत्नीवियोगे प्रथमे च वर्षे नो चेद्द्विवर्षे पुनरुद्वहेत्सः ।
अयुग्ममासे तु शुभप्रदं स्याच्छ्रीगौतमाद्या मुनयो वदन्ति ॥२०१॥

पत्नीके मर जानेपर प्रथम वर्षमें विवाह करे । यदि प्रथम वर्षमें न कर सके तो दूसरे वर्षमें करे । परन्तु वह विवाह विषम महीनेमें किया हुआ शुभ करनेवाला होता है, ऐसा गौतमादि मुनि कहते हैं ॥ २०१ ॥

अपुत्रिणी मृता भार्या तस्य भर्तुर्विवाहकम् ।
युग्माब्दे युग्ममासे वा विवाहाहः शुभो मतः ॥ २०२ ॥

पुत्र उत्पन्न न हुआ हो और स्त्री मर गई हो तो उस स्त्रीके पतिका विवाह युग्म वर्ष अथवा युग्म मासमें शुभ माना गया है ॥ २०२ ॥

प्रजावत्यां तु भार्यायां मृतायां वैश्यविप्रयोः ।
प्रथमेऽब्दे न कर्तव्यो विवाहोऽशुभदो भवेत् ॥ २०३ ॥

अगर पुत्रवती स्त्री मर जाय तो ब्राह्मण और वैश्य पहले वर्षमें विवाह न करें । क्योंकि स्त्री-मरणके प्रथम वर्षमें विवाह करना उनके लिए अशुभ होता है ॥ २०३ ॥

अथ तृतीय भार्या—तीसरा विवाह ।

अकृत्वाऽर्कविवाहं तु तृतीयां यदि चोद्वहेत् ।
विधवा सा भवेत्कन्या तस्मात्कार्यं विचक्षणा ॥ २०४ ॥

प्रथम विवाहिता सजाति स्त्री धर्मपत्नी होती है और द्वितीय विवाहिता भोगपत्नी होती है। यह ऊपर कह आये हैं। इन दो स्त्रियोंके होते हुए तीसरा विवाह न करे। कदाचित् तीसरा विवाह करे भी तो अर्क-विवाह किये बिना न करे क्योंकि अर्क-विवाह किये बिना तीसरा विवाह करनेसे वह तृतीय विवाहिता वैधव्य दीक्षाको प्राप्त हो जाती है। अतः विचक्षण पुरुषोंको अर्क-विवाह करके ही तीसरा विवाह करना चाहिए ॥ २०४ ॥

अर्क-विवाह-विधि।

अर्कसान्निध्यमागत्य कुर्यात्स्वस्त्यादिवाचनाम्।
अर्कस्याराधनां कृत्वा सूर्यं सम्प्रार्थ्य चोद्वहेत् ॥ २०५ ॥

अर्क वृक्षके पास आकर स्वस्तिवाचन आदि विधि करे। अनन्तर अर्क वृक्षकी आराधना कर तथा सूर्यसे प्रार्थना कर अर्क वृक्षके साथ विवाह करे ॥ २०५ ॥

विवाहयुक्तिः कथिता समस्ता संक्षेपतः श्रावकधर्ममार्गात्।
श्रीब्रह्मसूत्रप्रथितं पुराणमालोक्य भट्टारकसोमसेनैः ॥ २०६ ॥

श्रीब्रह्मसूरि निर्मित पुराणको देखकर मुझ सोमसेन भट्टारकने श्रावकधर्मके अनुकूल यह सम्पूर्ण विवाहविधि संक्षेपसे कही है ॥ २०६ ॥

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारनिरूपणे भट्टारकसोमसेनविरचिते
विवाहविधिवर्णनो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्याय।

अथ नत्वा क्रियावन्तं कर्मातीतं जिनेश्वरम्।
क्रियाविशेषमेतर्हि वच्म्यहं शास्त्रतोऽर्थतः ॥ १ ॥

इसके अनन्तर कर्म रहित और क्रियावान जिनदेवको नमस्कार कर, शास्त्रके अनुसार सार्थक वर्णलाभ आदि क्रियाएं कही जाती हैं ॥ १ ॥

यस्य वर्णः सुवर्णाभो वर्णा येन विवर्णिताः।
स कुन्थुनाथनामा च सार्वभौमस्थितोऽर्च्यते ॥ २ ॥

जिसके शरीरका वर्ण सुवर्ण जैसा पीला है और जिसने ब्राह्मण आदि चार वर्णोंका वर्णन किया है तथा जो छह खंडका स्वामी रह चुका है उस कुन्थुनाथ नामके तीर्थंकरका स्तवन किया जाता है ॥ २ ॥

वर्णलाभ क्रिया।

इत्थं विवाहमुचितं समुपाश्रितस्य गार्हस्थ्यमेकमनुतिष्ठत एव पुंसः।
स्वीयस्य धर्मगुणसंघविवृद्धयेऽहं वक्ष्ये विधानत इतो भुवि वर्णलाभम् ॥ ३ ॥

ऊपर कहे अनुसार जिसने योग्य विवाह-विधि की है और जो गृहस्थ सम्बन्धी आचरणोंका पालन करता है उस गृहस्थके धर्म, गुण और संघकी वृद्धिके निमित्त अब विधिपूर्वक जगतमें विख्यात वर्ण-लाभ क्रिया कही जाती है ॥ ३ ॥

स ऊढभार्योऽप्यकथीह तावत्पुमान् पितुः सद्मनि चास्वतन्त्रः।
गार्हस्थ्यसिद्ध्यर्थमतो ह्यमुष्य विधीयते सम्प्रति वर्णलाभः ॥ ४ ॥

यद्यपि वह योग्य कन्याके साथ विवाह कर चुका है तो भी तबतक वह परतंत्र है जबतक कि अपने पिताके घरमें निवास करता है। इसलिए इसके गृहस्थ-धर्मकी सिद्धिके लिए वर्णलाभ नामकी क्रिया कही गई है ॥ ४ ॥

वर्णलाभ क्रियाका स्वरूप।

अनुज्ञया द्रव्यभृतः पितुः प्रभोः सुखं परिप्राप्तधनान्नसम्पदः।
पृथक्कृतस्यात्र गृहस्य वर्तनं स्वशक्तिभाजोऽकथि वर्णलाभकः ॥ ५ ॥

घर-सम्पत्तिके स्वामी अपने पूज्य पिताकी आज्ञाके अनुसार जिसने सुखपूर्वक धन-धान्य सम्पत्ति प्राप्त की है, जो पिताकी आज्ञासे ही जुदा हुआ है और स्वयं सब कार्योंके करनेमें समर्थ हो गया है ऐसे पुरुषके गृहस्थधर्मके आचरणका नाम वर्णलाभ कहा गया है। भावार्थ—पिताकी आज्ञापूर्वक उससे जुदा होकर गृहस्थधर्मका पालन करना वर्णलाभ क्रिया है ॥ ५ ॥

विधाय सिद्धप्रतिमार्चनं च क्रमेण कृत्वा परमानुपासकान्।
पितास्य पुत्रस्य धनं समर्पयेद्यथार्द्धं साक्षीकृतमुख्यसज्जनः ॥ ६ ॥

उस पुरुषका पिता, सिद्ध-प्रतिमाकी पूजा कर और श्रावकोंका यथायोग्य सत्कार कर मुख्य मुख्य सज्जनोंकी साक्षीपूर्वक अपनी सम्पत्तिका हिस्सा उसे देवे ॥ ६ ॥

धनं ह्युपादाय समस्तमेतत्स्थित्वा गृहे स्वस्य पृथग्यथास्वम् ।
कार्यस्त्वया दानपुरस्सरोऽङ्गिसुखाय साक्षात् गृहिधर्म एव ॥ ७ ॥
यथाऽस्मकाभिः सहधर्ममर्जितं यशोऽमलं स्वस्य धनेन यत्नतः ।
श्रियेऽथवाऽस्मत्पितृदत्तकेन वै तथा यशो धर्ममुपार्जय त्वकम् ॥ ८ ॥
इत्येवमेतद्धनुशिष्य चैनं नियोजयेदुत्तमवर्णलाभे ।
स चाप्यनुष्ठातुमिहार्हति स्वं धर्मं सदाचारतयेति पूर्णम् ॥ ९ ॥
इति वर्णलाभः ।

और इस प्रकार उपदेश दे कि हे पुत्र! इस अपने हिस्सेके धनको लेकर और अपने घरमें यथायोग्य अलहदा रहकर साक्षात्सुखके अर्थ दान-पूजापूर्वक गृहस्थधर्मका सेवन करना और जिस तरह हमने हमारे पिताके द्वारा दिये गये धनसे निर्मल कीर्ति और धर्मका यत्नपूर्वक उपार्जन किया है उसी तरह तू भी धर्म और यशका उपार्जन करना। इस तरह पिता अपने पुत्रको योग्य शिक्षा देकर उसे वर्णलाभ नामकी क्रियामें नियुक्त करे। वह पुत्र भी सदाचारसे परिपूर्ण अपने धर्मका अनुष्ठान करे। इस तरह वर्ण-लाभ क्रिया की जाती है ॥७-९॥

कुलचर्याका स्वरूप।

पूजा श्रीजिननायकस्य च गुरोः सेवाऽथवा पाठके
द्वेधा संयम एव सत्तप इतो दानं चतुर्धा परम् ।
कर्माण्येव षडत्र तस्य विधिवत्सद्वर्णलाभं शुभं
प्राप्तस्यैवमुशन्ति साधुकुलचर्यां साधवः सर्वतः ॥ १० ॥

जिनदेवकी पूजा करना, गुरुकी और उपाध्यायकी सेवा करना, प्राणसंयम और इंद्रियसंयम इस तरह दो प्रकारके संयमका पालना, बारह प्रकारके तपश्चरणका करना और चार प्रकारके दान का देना—इन छह कर्मोंके विधिपूर्वक करनेको साधुजन प्रशस्त और शुभ वर्णलाभ क्रियाको प्राप्त हुए पुरुषकी कुलचर्या कहते हैं। भावार्थ—देव-पूजा आदि छह कर्मोंके करनेको कुलचर्या या कुलधर्म कहते हैं। यह क्रिया वर्णलाभ क्रियाके बादमें की जाती है ॥ १० ॥

गृहीशिता क्रियाका स्वरूप।

धर्मे दार्ढ्यमथोद्वहन् स्वकुलचर्यां प्राप्तवानञ्जसा
शास्त्रेण क्रियया विवाहविधिना वृत्त्या च मन्त्रैः शुभैः।
स्वीकुर्याद्धि गृहेशितां स्वमनघं चौन्नत्यमेकं नयन्
नानाकाव्यकृतेन शुद्धयशसा लिप्सुर्यशः सुन्दरम् ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर वह कुलचर्याको प्राप्त हुआ गृहस्थ, धर्ममें दृढ़ होता हुआ शास्त्रज्ञान, क्रिया-विवाहविधि, वृत्ति, और शुभ मंत्रोंद्वारा तथा उत्तम कविता और शुद्ध यशपूर्वक अपनी एक अद्वि,

तीय निर्दोष उन्नति करता हुआ गृहीशिता अर्थात् घरका स्वामीपन स्वीकार करे। भावार्थ—कुलचर्या नामकी क्रियाके अनन्तर उक्त कथनानुसार घरका स्वामीपन धारण करना गृहीशिता नामकी क्रिया है ॥ ११ ॥

प्रशान्ति क्रियाका स्वरूप।

लब्ध्वा सूनुमतोऽनुरूपमुचितं सोऽयं गुणानां गृहं
साक्षादात्मभरक्षमं शुभतया देदीप्यमानं सदा।
तत्रारोपितसद्गृहस्थपदवीभारः प्रशान्तिप्रियः
संसाराङ्गसुभोगनिःस्पृहमतिः स्वाध्यायदीपात्तपः ॥ १२ ॥

इसके अनंतर वह पूर्वोक्त गृहस्थ, अपने सदृश, गुणोंका खजाना, अपने घरका भार धारण करनेमें समर्थ और शुभ चिन्होंसे अलंकृत योग्य पुत्रको अपनी गृहस्थीका भार सौंप दे और आप स्वयं संसारके कारण भोगोंसे निस्पृह चित्त होकर स्वाध्याय और तपश्चरण करता रहे। इसीका नाम प्रशान्ति क्रिया है। भावार्थ—अपनी गृहस्थीका भार तो अपने योग्य पुत्रको सौंप दे और आप स्वयं घरमें रहकर स्वाध्याय और व्रतोपवासादिका अभ्यास करता रहे, सांसारिक भोगोंकी लालसाको भी छोड़ दे। इस तरह शांतिपूर्वक कितना ही काल अपने घरमें ही बितावे। इसीका नाम प्रशान्ति क्रिया है ॥ १२ ॥

गृहत्याग क्रिया।

गृहाश्रमे स्वं बहुमन्यमानः कृतार्थमेवोद्यतबुद्धिरास्ते।
त्यागे गृहस्यैष विधिः क्रियायाः सिद्धार्थकानां पुरतो विधेयः ॥ १३ ॥
आहूय सर्वानपि सम्मतांश्च तत्साक्षि पुत्राय निवेद्य सर्वम्।
गृहं न्यसेच्चापि कुलक्रमोऽयं पाल्यस्त्वयाऽस्मत्कपरोक्षतोऽङ्ग ! ॥ १४ ॥
त्रिधा कृतं द्रव्यमिदत्थमेतदस्माकमत्यर्थमतो नियोज्यम्।
धर्मस्य कार्याय तथांश एको देयो द्वितीयः स्वगृहव्ययाय ॥ १५ ॥
परस्तृतीयः सहजन्मनां वा समं विभागाय विचारणीयः।
पुनः समस्तस्य च संविभागे पुत्रैः समस्त्वं सहसैवमुक्त्वा ॥ १६ ॥
ज्येष्ठः स्वयं सन्ततिमेकरूपामस्माकमप्याददतूपनीय।
श्रुतस्य वृत्तेरथवा क्रियाया मन्त्रस्य न्यासाद्विधिवित्त्वतन्द्रः ॥ १७ ॥
कुलस्य चाम्नाय इहानुपाल्यो गुरुश्च देवोऽपि सदाऽर्चनीयः।
इत्येवमव्यं ह्यनुशिष्य पुत्रं ज्येष्ठं त्यजेन्मोहकृतं विकारम् ॥ १८ ॥
दीक्षामुपादातुमतो जनोऽसौ गृहं स्वकीयं स्वयमुत्सृजेच्च।
कामार्थचित्तं परिहाय धर्मध्यानेन तिष्ठेत्कतिचिद्दिनानि ॥ १९ ॥

गृहाश्रममें अपनेको कृतार्थ मानता हुआ वह प्रशान्त क्रियाको प्राप्त हुआ गृहस्थ जब घर छोड़नेके लिए उद्यमी होता है तब उसकी वह गृहत्याग नामकी क्रिया की जाती है। इस क्रियाको करनेके पहले उसे सिद्धप्रतिमाकी पूजा करना चाहिए। बाद वह अपनेको सम्मत योग्य पुरुषोंको बुलाकर उनको साक्षी-पूर्वक अपने ज्येष्ठ पुत्रको इस प्रकार शिक्षा दे कि, हे पुत्र! तुझे हमारे पीछे कुलपरंपरासे चले आये धर्म, क्रिया, संस्कार आदिका योग्य रीतिसे पालन करना चाहिए और हमने जो इस द्रव्यको तीन हिस्सोंमें बांट दिया है उसका इस प्रकार विनियोग करना—एक भाग धर्म-कार्योंमें खर्च करना, दूसरा भाग कुटुंबके भरण-पोषणमें लगाना और तीसरे भागको अपने भाइयोंमें बराबर बराबर बांट देना। और हे पुत्र! तू सबमें बड़ा है, इसलिए हमारी इस सन्ततिका अच्छी तरह पालन करना। तू स्वयं शास्त्रोंको, आजीविकाके साधनोंको, गृहस्थसम्बन्धी क्रियाओंको और (क्रियासम्बन्धी) मंत्रोंको भले प्रकार जाननेवाला है इसलिए कुलपरंपराका अच्छी तरह पालन करना, प्रतिदिन गुरुकी उपासना करना और देव-आप्तकी पूजा करना। इस प्रकार अपने ज्येष्ठ पुत्रको शिक्षा देकर मोहजन्य विकारका अर्थात् घर-कुटुंब आदिमें लगे हुए ममत्वका त्याग करे। और वह गृहस्थ स्वयं दीक्षाधारण करनेके लिए अपने घरको छोड़े तथा काम और अर्थकी लालसाको छोड़कर कितनेही दिनों पर्यन्त धर्मध्यानपूर्वक निवास करे। इसीको गृहत्याग क्रिया कहते हैं ॥ १३-१९ ॥

दीक्षाधारण करनेकी विधि।

किञ्चित्समालोक्य सुकारणं तद्वैराग्यभावेन गृहान्निसृत्य।
गुरोः समीपं भवतारकस्य व्रजेच्छिवाशाकृतचित्त एकः॥ २० ॥

नत्वा गुरुं भावविशुद्धबुद्ध्या प्रयाय दीक्षां जिनमार्गगां सः।
पूजां विधायात्र गुरोर्मुखाच्च कुर्याद्व्रतानि प्रथितानि यानि ॥ २१ ॥

कुछ विरागताके कारणोंको देखकर वैराग्यपनेको प्राप्त होकर घरसे बाहर निकले और सिर्फ मोक्षकीही वांछा धारण कर संसार-समुद्रसे पार करनेवाले गुरुके पास जाय। वहां जाकर मन, वचन और कायकी विशुद्धिपूर्वक गुरुको नमस्कार करे और जिनेन्द्र भगवानद्वारा कही गई जिन-दीक्षा धारण करे। पश्चात् गुरुकी पूजा करे और उनके मुखसे व्रताचरणका स्वरूप समझकर उनका पालन करे ॥ २०-२१ ॥

व्रतोंके नाम।

महाव्रतानि पञ्चैव तथा समितयः शुभाः।
गुप्तयस्तिस्र इत्येवं चारित्रं तु त्रयोदश ॥ २२ ॥

पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति इस तरह चारित्र तेरह प्रकारका है ॥ २२ ॥

पांच महाव्रतोंके नाम।

हिंसासत्याङ्गनासङ्गस्तेयपरिग्रहाच्च्युतः।
व्रतानि पञ्चसंख्यानि साक्षान्मोक्षसुखाप्तये ॥ २३ ॥

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रहसे विरक्त होना व्रत हैं। ये व्रत पांच हैं, जो साक्षात् मोक्ष सुखकी प्राप्तिके कारण हैं ॥ २३ ॥

पांच समितियोंके नाम।

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपमलमोचनाः।
पञ्च समितयः प्रोक्ता व्रतानां मलशोधिकाः ॥ २४ ॥

ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदाननिक्षेपसमिति और उत्सर्गसमिति—इस तरह समिति पांच प्रकारकी कही गई है, जो व्रतोंमें लगे हुए दोषोंको दूर करनेवाली है अर्थात् व्रतोंका रक्षण करनेवाली हैं ॥ २४ ॥

पांचों समितियोंका जुदा जुदा लक्षण।

युगान्तरदृष्टितोऽग्रे गच्छेदीर्यापथे प्रभुः।
भाषा विचार्य वक्तव्या वस्तु ग्राह्यं निरीक्ष्य च ॥ २५ ॥
प्रासुका भुज्यते भुक्तिर्निर्जन्तौ मुच्यते मलः।
समितयश्च पञ्चैता यतीनां व्रतशुद्धये ॥ २६ ॥

सामनेकी चार हाथ जमीनको देखकर चलनेको ईर्यासमिति, विचारकर हित-मित बोलनेको भाषासमिति, देख-शोधकर वस्तुके रखने और उठानेको आदान-निक्षेपसमिति, प्रासुक आहार ग्रहण करनेको भिक्षा या एषणासमिति और जीव-जन्तु-रहित स्थानमें मल-मूत्र करनेको उत्सर्ग-समिति कहते हैं। ये पांचों समितियां मुनियोंके व्रतोंको शुद्ध करनेके लिए हैं ॥ २५-२६ ॥

गुप्ति और तपोंके भेद।

यत्नेन परिरक्षेत मनोवाक्कायगुप्तयः।
द्वादशधा तपः प्रोक्तं कर्मशत्रुविनाशकम् ॥ २७ ॥
अनशनावमोदर्यं तृतीयं वस्तुसंख्यकम्।
रसत्यागं पृथक्शय्यासनं भवति पञ्चमम् ॥ २८ ॥
कायक्लेशं भवेत्षष्ठं पोढा बाह्यतपः स्मृतम्।
विनयः प्रायश्चित्ताख्यं वैयावृत्यं तृतीयकम् ॥ २९ ॥
कायोत्सर्गं तथा ध्यानं षष्ठं स्वाध्यायनामकम्।
अभ्यन्तरमिति ज्ञेयमेवं द्वादशधा तपः ॥ ३० ॥

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति—इस तरह गुप्तिके तीन भेद हैं। मुनियोंको इन तीन गुप्तियोंका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए। तप बारह प्रकारका है, जो कर्मरूपी शत्रुओंको जड़-मूलसे नष्ट करनेवाला है। इसके दो भेद हैं—एक बाह्य तप और दूसरा आभ्यन्तर तप। पहला अनशन, दूसरा अवमोदर्य, तीसरा व्रतपरिसंख्यान, चौथा रसत्याग, पांचवां विविक्तशय्यासन और छठा कायक्लेश—इस तरह बाह्य तप छह प्रकारका है। विनय, प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, कायोत्सर्ग, ध्यान और स्वाध्याय—ऐसे छह प्रकारका आभ्यन्तर तप है। दोनों मिलकर बारह प्रकारके हैं ॥ २७-३० ॥

बाईस परीषहोंके नाम।

वृद्ध्यर्थं तपसां साध्याः क्षुधादिकपरीषहाः।
क्षुत्तृट्शीतोष्णदंशाश्च रत्यरतिश्च नग्नता ॥ ३१ ॥
नारी चर्या निषद्या च शय्याक्रोशवधास्तथा।
याञ्चालाभतृणस्पर्शा मलरोगाविति द्वयम् ॥ ३२ ॥
सत्कारश्च पुरस्कारः प्रज्ञाज्ञानमदर्शनम्।
एते द्वाविंशतिर्ज्ञेयाः परीषहा अघच्छिदः ॥ ३३ ॥

तपश्चरणकी वृद्धिके लिए पापोंका नाश करनेवाली बाईस क्षुधादि परीषहोंको सहन करना चाहिए। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, अरति, नग्नता, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, तृणस्पर्श, मल, रोग, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन-ये उनके नाम हैं ॥ ३१-३३ ॥

मुनियोंके अठाईस मूलगुणोंके नाम।

अष्टाविंशतिसंख्याता मूलगुणाश्च योगिनः।
व्रतसमितीन्द्रियनिरोधाः पृथक् ते पञ्चपञ्चधा ॥ ३४ ॥
षडावश्यकका लोचोऽदन्तवणमचेलता।
स्थितिभोजनं भूशय्या अस्नानमेकभोजनम् ॥ ३५ ॥

मुनियोंके अठाईस मूलगुण होते हैं। वे ये हैं—पांच महाव्रत, पांच समिति, पांचों इन्द्रियोंका निरोध, छह आवश्यक, केशलोंच, अदन्तवन, अचेलकत्व, स्थितिभोजन, भूशयन, अस्नान और एकभक्त ॥ ३४-३५ ॥

छह आवश्यक क्रियाओंके नाम।

सामायिकं तनूत्सर्गः स्तवनं वन्दनास्तुतिः।
प्रतिक्रमश्च स्वाध्यायः षडावश्यकमुच्यते ॥ ३६ ॥

सामायिक, कायोत्सर्ग, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण और स्वाध्याय-ये छह आवश्यक क्रियाएं हैं ॥ ३६ ॥

उत्तम-क्षमा आदि दशधर्म।

सर्वैः सह क्षमा कार्या दुर्जनैः सज्जनैरपि।
मृदुत्वं सर्वजीवेषु मार्दवं कृपयान्वितम् ॥ ३७॥
कपटो न हि कर्तव्यः शत्रुमित्रजनादिषु।
दयाहेतुवचो वाच्यं सत्यरूपं यथार्थकम् ॥ ३८ ॥
देवपूजादिकार्यार्थं विधेयं शौचमुत्तमम्।
पञ्चेन्द्रियनिरोधो यो दयाधर्मस्तु संयमः ॥ ३९ ॥

द्वादशभेदभिन्नं हि शरीरशोषकं तपः ।
विद्यादिदानं पात्रेभ्यो दत्तं चेत्त्याग उच्यते ॥ ४० ॥
बाह्यान्तर्भेदसंयुक्तं परिग्रहं परित्यजेत् ।
सर्वस्त्री जननीतुल्या ब्रह्मचर्यं भवेदिति ॥ ४१ ॥
दशलक्षणधर्मोऽयं मुनीनां मुक्तिदायकः ।
निश्चयव्यवहाराभ्यां द्विविधोऽपि जिनागमे ॥ ४२ ॥

सज्जनों और दुर्जनोंपर क्षमा करना, सम्पूर्ण जीवोंपर कृपापूर्वक कोमल परिणाम रखना, शत्रु, मित्र आदिके साथ कपट न करना, सत्यरूप दयाका कारण यथार्थ वचन बोलना, देवकी पूजा आदिके निमित्त उत्तम शुद्धि करना, पांच इंद्रियोंको विषयोंसे रोकना और जीवोंपर दया करना, शरीरको कृश करनेवाला बारह प्रकारका तपश्चरण करना, पात्रोंको विद्या आदि दान देना, बाह्य-आभ्यंतर परिग्रहका त्याग करना और सम्पूर्ण स्त्रियोंको माताके तुल्य समझना सो क्रमसे क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य—इस प्रकार दशलक्षण धर्म है, जो जिनागममें निश्चय और व्यवहारके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। तथा वह दोनों ही प्रकारका धर्म मुनियोंको मुक्ति देनेवाला है ॥ ३७–४२ ॥

पांच आचारोंके नाम और स्वरूप ।

सम्यक्त्वं निर्मलं यत्र दर्शनाचार उच्यते ।
द्वादशाङ्गश्रुताभ्यासो ज्ञानाचारः प्रकीर्तितः ॥ ४३ ॥
सुनिर्मलं तपो यत्र तपआचार एव सः ।
तपस्सु क्रियते शक्तिर्वीर्याचार इति स्मृतः ॥ ४४ ॥
चारित्रं निर्मलं यत्र चारित्राचार उत्तमः ।
पञ्चाचार इति प्रोक्तो मुनीनां नायकैः परः ॥ ४५ ॥

अतीचार-रहित सम्यक्त्वका पालन करना दर्शनाचार कहा जाता है, द्वादशाङ्गका अभ्यास करना ज्ञानाचार कहा गया है, निर्मल तप करना तपाचार माना गया है, तपश्चरण करनेमें जो शक्ति है उसे वीर्याचार कहते हैं और निर्मल चारित्रका आचरण करना चारित्राचार है—यह मुनियोंका पंचाचार है, जो गणधर देवोंद्वारा कहा गया है ॥ ४३–४५ ॥

आचार्योंके छत्तीस गुण ।

द्वादशधा तपोभेदा आवश्यकाः परे हि षट् ।
पञ्चाचारा दशधर्मास्तिस्रः शुद्धाश्च गुप्तयः ॥ ४६ ॥
आचार्याणां गुणाः प्रोक्ताः षट्त्रिंशच्छिवदायकाः ।
द्वात्रिंशदन्तरायाः स्युर्मुनीनां भोजने मताः ॥ ४७ ॥

बारह तप, छह आवश्यक, पांच आचार, दशधर्म और तीन गुप्ति—ये आचार्योंके मोक्ष-सुखके देनेवाले छत्तीस गुण हैं। तथा मुनियोंके भोजनके बत्तीस अन्तराय माने गये हैं ॥ ४६–४७ ॥

यति-भोजनके अन्तराय।

मौनत्यागे शिरस्ताडे मार्गे हि पतितं स्वयम् ।
मांसामेध्यास्थिरक्तादिसंस्पृष्टे शवदर्शने ॥ ४८ ॥
ग्रामदाहे महायुद्धे शुना दष्टे त्विदं पथि ।
सचित्तोदे करे क्षिप्ते शङ्कायां मलमूत्रयोः ॥ ४९ ॥
शोणितमांसचर्मास्थिरोमाविट्पूयमूत्रके ।
दलने कुट्टने छर्दिर्दीपप्रध्वंसदर्शने ॥ ५० ॥
ओतौ स्पृष्टे च नग्नस्त्रीदर्शने मृतजन्तुके ।
अस्पृश्यस्य ध्वनौ मृत्युवाद्ये दुष्टविरोदने ॥ ५१ ॥
कर्कशाक्रन्ददुःशब्दे शुनकस्य ध्वनौ श्रुते ।
हस्तमुक्ते व्रते भग्ने भाजने पतितेऽथवा ॥ ५२ ॥
पादयोश्च गते मध्ये मार्जारमूषकादिके ।
अस्थ्यादिमलमिश्रान्ने सचित्तवस्तुभोजने ॥ ५३ ॥
आर्तरौद्रादिदुर्ध्याने कामचेष्टोद्भवेऽपि च ।
उपविष्टे पदग्लानात्पतने स्वस्य मूर्च्छया ॥ ५४ ॥
हस्ताच्च्युते तथा ग्रासेऽव्रतिनः स्पर्शने सति ।
इदं मांसेति सङ्कल्पेऽन्तरायाश्च मुनेः परे ॥ ५५ ॥

मस्तकमें किसी तरहका आघात पहुंचनेसे मौन छोड़ देनेपर, आप स्वयं मार्गमें गिर पड़नेपर, मांस, अपवित्र वस्तु, हड्डी, खून आदिका स्पर्श होजानेपर, मरा मुर्दा देखलेनेपर, ग्रामदाह होनेपर, बड़े भारी युद्धके होनेपर, मार्गमें चलते समय कुत्तेके काट खानेपर, सचित्त पानीसे हाथ धोकर भोजन परोसनेपर, आहारग्रहण करते समय मलमूत्रकी बाधा आ उपस्थित होनेपर, रक्त, मांस, चमड़ा, हड्डी, बाल, विष्टा, पीप और मूत्रके देखनेपर, जिस घरमें भोजन कर रहे हों वहां पर दलने और कूटनेकी आवाज आनेपर, वमन देखनेपर, दीपकको बुझता हुआ देखनेपर, बिल्लीका स्पर्श होजानेपर, नंगी स्त्रीके देखनेपर, मरे हुए प्राणीके देखनेपर, अस्पर्श्य जातिके प्राणीकी आवाज सुन लेनेपर, मरे मुर्दके बाजे बजनेकी आवाज आनेपर, बुरी तरहसे रोनेकी आवाज आनेपर, अत्यंत कठोर अश्रुपूर्ण रुदनकी आवाज आनेपर, कुत्तेकी चिल्लाहट सुननेपर, हाथकी अंजलीके छूट जाने पर, व्रतभंग हो जानेपर, पात्रके गिर पड़नेपर, पैरोंके बीचमें होकर बिल्ली चूहे आदिके निकल जाने पर, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओंसे मिला हुआ भोजन होनेपर, सचित्त-अप्राशुक वस्तुके खा लेनेपर, आर्त्त-ध्यान रौद्र-ध्यान आदिके हो जानेपर, कामचेष्टाके उत्पन्न हो जानेपर, पैरोंमें कमजोरी होनेके कारण बैठ जानेपर, मूर्च्छा खाकर गिरपड़नेपर, हाथमेंसे ग्रास गिर पड़नेपर, अव्रती मनुष्यका स्पर्श होनेपर और यह मांस है इस तरहकी कल्पना होजानेपर मुनिके भोजनमें अन्तराय हो जाते हैं। भावार्थ—ये मुनिके भोजनके अन्तराय हैं ॥ ४८-५५ ॥

मतान्तरम्-दूसरे अन्तराय।

विण्मूत्राजिनरक्तमांसमदिरापूयास्थिवान्तीक्षणा-
दस्पृश्यान्त्यजभाषणश्रवणतास्वग्रामदाहेक्षणात्।
प्रत्याख्याननिषेवणात्परिहरेद्व्यो व्रती भोजनेऽ-
प्याहारं मृतजन्तुकेशकलितं जैनागमोक्तक्रमम्॥ ५६॥

विष्ठा, मूत्र, चमड़ा, खून, मांस, मदिरा, पीप, हड्डी और वमनके देखनेपर, अछूत जातिके मनुष्यकी आवाज सुनलेने पर अपने ग्राममें आग लग जानेपर, त्यक्त वस्तुके खा लेनेपर और भोजनमें मरे हुए प्राणी और केश निकल आनेपर, व्रती पुरुष आहार छोड़ दे—इस तरहकी विधि जैनागममें बताई है॥ ५६॥

अन्यत्—मूलाचारोक्त अन्तराय।

कागा मेज्झा छद्दी रोहण रुहिरं च अंसुपादं च।
जण्हू हेठा परिसं जण्हूवरिवदिक्कमो चेव॥ ५७॥

चलते हुए या खड़े हुए पर जो कौआ, बगुला, श्येन आदि जानवर वीठ कर देते हैं उसे काकान्तराय कहते हैं। विष्ठा, मूत्र आदि अपवित्र चीजोंका पैरोंसे लिपट जाना अमेध्यान्तराय है। यदि अपनेको वमन होजाय तो छर्दि नामका अन्तराय है। यदि कोई अपनेको रोक ले तो रोधन नामका अन्तराय है। यदि अपने या परायेके खून दीख पड़े तो रुधिर नामका अन्तराय है। च शब्दसे पीप आदिको भी समझना चाहिए। अपनेको या अपने समीपवर्ती दूसरेको कष्टके मारे आँसू आजांय तो वह अश्रुपात नामका अन्तराय है। जंघाके नीचे स्पर्श होना जान्वधो नामका अन्तराय है। जंघाके ऊपर स्पर्श होना जानुव्यतिक्रम नामका अन्तराय है। तथा—॥ ५७॥

णाहिअहोणिग्गमणं पच्चक्खिदसेवणा य जंतुवहो।
कागादिपिंडहरणं पाणीदो पिंडपडणं च॥ ५८॥

नाभिके नीचे तक सिर करके यदि गृहस्थके घरके दरवाजेमें होकर घरमें जाना पड़े तो नाभ्यधो-निर्गमन नामका अन्तराय है। त्यागकी हुई वस्तु यदि सेवन-खानेमें आजाय तो प्रत्याख्यातसेवन नामका अन्तराय है। अपने या दूसरेके सामने यदि जीववध किया जा रहा हो तो जीववध नामका अन्तराय है। कौआ आदि जानवर आहारको चौंचसे उठाकर लेजांय तो कागादिपिंडहरण नामका अन्तराय है। भोजन करते हुएके हाथमेंसे यदि ग्रास गिर पड़े तो पिंडपतन नामका अन्तराय है। तथा—॥ ५८॥

पाणिये जंतुवहे मंसादिदंसणे य उवसग्गे।
पादंतरपंचिंदिय संपादो भायणाणं च॥ ५९॥

भोजन करते हुएके हाथमें आकर यदि कोई जीव मर जाय तो पाणिजन्तुवध नामका अन्तराय है। यदि मरे हुए पंचेन्द्रिय जीवका शरीर-मांस आदि देखनेमें आजाय तो मांसादि दर्शन

१ "पादंतरम्मि जीवो" ऐसा भी पाठ है।

नामका अन्तराय है। यदि किसीके द्वारा कोई तरहका उपसर्ग हो जाय तो उपसर्ग नामका अन्तराय है। यदि मुनिके पैरोंके बीचमें होकर कोई पंचेन्द्रिय जीव निकल जाय तो पंचेन्द्रियगमन नामका अन्तराय है। यदि परोसनेवालेके हाथसे छूटकर वर्तन नीचे गिर पड़े तो भाजनसंपात नामका अन्तराय है। तथा—॥ ५९ ॥

उच्चारं पस्सवणं अभोजगिहपवेसणं तहा पडणं।
उववेसणं सदंसो भूमीसंफास णिट्ठवणं ॥ ६० ॥

यदि अपनेको टट्टीकी या मूत्रकी बाधा हो जाय तो उच्चार और प्रस्रवण नामके अन्तराय हैं। यदि आहारके लिए पर्यटन करते समय मुनिका चंडाल आदिके घरमें प्रवेश हो जाय तो अभोजनगृहप्रवेश नामका अन्तराय है। यदि मूर्च्छा आदिके कारण मुनि गिर पड़े तो पतन नामका अन्तराय है। यदि भोजन करते समय बैठ जाय तो उपवेशन नामका अन्तराय है। यदि चर्याके समय कुत्ता आदि जानवर अपनेको काट खाय तो सदंश नामका अन्तराय है। भोजनके समय सिद्धभक्ति कर चुकनेपर हाथसे भूमिका स्पर्श हो जाय तो भूमिस्पर्श नामका अन्तराय है। खकार आदि थूकना निष्ठीवन नामका अन्तराय है। तथा—॥ ६० ॥

उदरकिमिणिग्गमणं अदत्तगहणं पहार गामदाहो य।
पादेण किंचिग्गहणं करेण किंचि वा भूमीदो ॥ ६१ ॥

उदरसे यदि कृमि निकल आवे तो कृमिनिर्गमन नामका अन्तराय है। यदि विना दिया हुआ ग्रहण करले तो अदत्तग्रहण नामका अन्तराय है। अपने या परके ऊपर तलवार आदिका प्रहार हो तो प्रहार नामका अन्तराय है। यदि ग्राम जल रहा हो तो ग्रामदाह नामका अन्तराय है। पैरसे किसी चीजका उठाना पाद नामका अन्तराय है और हाथसे भूमिपरसे कुछ उठाना हस्त-नामका अन्तराय है। ये ऊपर कहे हुए भोजनके बत्तीस अन्तराय हैं ॥ ६१ ॥

चौदह मल।

णहरोमजंतुअत्थिकणकुंडयपूयरुहिरमंसचम्माणि।
बीयफलकंदमूला छिण्णमला चोद्दसा होंति ॥ ६२ ॥

नख, रोम, जन्तु (प्राणिरहित शरीर), हड्डी, तुष, कुण्ड (चावल) आदिका भीतरी सूक्ष्म अवयव, पीप, चर्म, रुधिर, मांस, बीज, फल, कंद और मूल—ये आठ प्रकारकी पिंडशुद्धिसे जुदे चौदह मल हैं ॥६२॥

इत्येवं मिलित्वा सर्वे पट्चत्वारिंशदात्मकाः।
अन्तराया मुने रम्याः सर्वजीवदयावहाः ॥ ६३ ॥

इस तरह बत्तीस और चौदह मिलाकर कुल छयालीस मुनिके भोजनके अन्तराय हैं, जो मुनिको सम्पूर्ण जीवोंपर दयाभाव करानेवाले हैं ॥ ६३ ॥

अन्तराया मता येषां न सन्ति तपस्विनः।
ज्ञेया भ्रष्टा दयातीताः श्वभ्रावासनिवासिनः ॥ ६४ ॥

जो मुनि इन अन्तरायोंको नहीं पालते वे भ्रष्ट मुनि हैं, करुणाभावसे रहित हैं और नरकगामी हैं ॥ ६४ ॥

येषां न सन्ति मूढानामन्तराया दुरात्मनाम् ।
क्व धर्मः क्व दया तेषां क्व पावित्र्यं क्व शुद्धता ॥ ६५ ॥

जो महामूढ़ दुरात्मा मुनि इन अन्तरायोंको नहीं पालते उनके धर्म कहां ? दया कहां ? आभ्यन्तर पवित्रता कहां और बाह्य शुद्धि कहां ? भावार्थ–जो अन्तरायोंको नहीं पालते उनके न धर्म है, न दया है और न बाह्य और आभ्यन्तर पवित्रता है ॥ ६५ ॥

शौचमूलो भवेद्धर्मः सर्वजीवदयापदः ।
पवित्रत्वदयाभ्यां तु मोक्षमार्गः प्रवर्तते ॥ ६६ ॥

जिसका मूल कारण शौच है वही धर्म सम्पूर्ण जीवोंपर दयाभाव करानेवाला है; क्योंकि पवित्रता और दयासे ही मोक्षमार्ग प्रवर्तता है ॥ ६६ ॥

मुनिके योग्य भोजन ।

यथालब्धं तु मध्याह्ने प्रासुकं निर्मलं परम् ।
भोक्तव्यं भोजनं देहधारणाय न भुक्तये ॥ ६७ ॥

मध्याह्नके समय, प्रासुक और शुद्ध जैसा मिले वैसा (चिकना या चूपड़ा, गर्म या ठंडा आदि) भोजन मुनियोंको अपनी शरीर–स्थितिके लिए करना चाहिए, न कि भोजनके लिए (स्वाद आदिके निमित्त) ॥ ६७ ॥

मनोवचनकायैश्च कृतकारितसम्मतैः ।
नवधा दोषसंयुक्तं भोक्तुं योग्यं न सन्मुनेः ॥ ६८ ॥

मन, वचन और काय, प्रत्येकके कृत कारित और अनुमोदना–इस तरह नव प्रकारके दोषोंसे युक्त भोजन मुनिके ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

मध्याह्नसमये योगे कृत्वा सामयिकं मुदा ।
पूर्वस्यां तु जिनं नत्वा ह्याहारार्थं व्रजेच्छनैः ॥ ६९ ॥
पिच्छं कमण्डलुं वामहस्ते स्कन्धे तु दक्षिणम् ।
हस्तं निधाय संदृष्ट्या स व्रजेच्छ्रावकालयम् ॥ ७० ॥
गत्वा गृहाङ्गणे तस्य तिष्ठेच्च मुनिरुत्तमः ।
नमस्कारपदान् पंच नववारं जपेच्छुचिः ॥ ७१ ॥

माध्यान्ह समयसम्बन्धी सामायिक क्रियाको करके पूर्व दिशाकी ओर जिनदेव या जिन-चैत्यालयको नमस्कार करके आहारके लिए धीरे धीरे गमन करे। पिच्छी और कमंडलुको बायें हाथमें ले ले और दाहिने हाथको कंधेपर रख ले। फिर धीरे धीरे ईर्यापथ-शुद्धिपूर्वक श्रावकके घरपर जावे । वहां श्रावकके पड़गाह लेनेके बाद उसके घरके आँगनमें जाकर खड़ा होवे और नौ वार पंचनमस्कारका जाप करे ॥ ६९–७१ ॥

भिक्षा देनेकी विधि ।

तं दृष्ट्वा शीघ्रतो भक्त्या प्रतिगृह्णाति भाक्तिकः ।
प्रासुकेन जलेनाङ्घ्री प्रक्षाल्य परिपूजयेत् ॥ ७२ ॥

मुनिको देखकर भक्त श्रावक भक्तिपूर्वक उन्हें पड़गाहे। बाद प्रासुक जलसे उनके चरणोंका प्रक्षालन कर उनकी पूजा करे। भावार्थ—नवधा भक्ति करे ॥ ७२ ॥

पट्चत्वारिंशद्दोषैश्च रहितं प्रासुकं वरम् ।
गृह्णीयाद्भोजनं गात्रधारणं तपसेऽपि च ॥ ७३ ॥

छयालीस दोषोंसे रहित प्रासुक और अच्छा आहार, शरीर स्थिति और तपश्चरणके निमित्त ग्रहण करे ॥ ७३ ॥

दोषान् संक्षेपतो वक्ष्ये यथाम्नायं गुरोर्मुखात् ।
दाता स्वर्गं व्रजेद्भोक्ता शिवसौख्याभिलाषुकः ॥ ७४ ॥

गुरुके मुखसे सुने हुए दोषोंको संक्षेपमें शास्त्रानुकूल कहता हूं। जिन्हें समझकर मोक्षसुखके चाहनेवाला भोक्ता और दाता स्वर्ग और क्रमसे मोक्षको जाते हैं ॥ ७४ ॥

छयालीस दोषोंके नाम।

उद्देशं साधिकं पूति मिश्रं प्राभृतिकं बलिम् ।
न्यस्तं प्रादुष्कृतं क्रीतं प्रामित्यं परिवर्तनम् ॥ ७५ ॥
निषिद्धाभिहितोद्भिन्ना आच्छाद्यं मालरोहणम् ।
धात्रीभृत्यनिमित्तं च वन्याजीवनकं तथा ॥ ७६ ॥
क्रोधो लोभः स्तुतिपूर्वं स्तुतिपश्चाच्च वैद्यकम् ।
मानं माया तथा विद्या मंत्रचूर्णं वशीकरम् ॥ ७७ ॥
शङ्कापिहितसंक्षिप्ता निक्षिप्तस्राविकौ तथा ।
परिणतसाधारणदायकलिप्तमिश्रकाः ॥ ७८ ॥
अङ्गारधूमसंयोज्या अप्रमाणास्तथा त्विमे ।
पट्चत्वारिंशद्दोषास्तु ह्येषणाशुद्धिघातकाः ॥ ७९ ॥

१ उद्देश, २ साधिक, ३ पूति, ४ मिश्र, ५ प्राभृतिक, ६ बलि, ७ न्यस्त, ८ प्रादुष्कृत, ९ क्रीत, १० प्रामित्य, ११ परिवर्तन, १२ निषिद्ध, १३ अभिहित, १४ उद्भिन्न, १५ आछाद्य, १६ मालारोहण, १७ धात्री, १८ भृत्य, १९ निमित्त, २० वनीपक, २१ जीवनक, २२ क्रोध, २३ लोभ, २४ पूर्वस्तुति, २५ पश्चात्स्तुति, २६ वैद्यक, २७ मान, २८ माया, २९ विद्या, ३० मंत्र, ३१ चूर्ण, ३२ वशीकरण, ३३ शंका, ३४ पिहित, ३५ संक्षिप्त, ३६ निक्षिप्त, ३७ स्राविक, ३८ अपरिणत, ३९ साधारण, ४० दायक, ४१ लिप्त, ४२ मिश्रक, ४३ अंगार, ४४ धूम, ४५ संयोज्य और ४६ अप्रमाण ये छयालीस दोष हैं जो एषणाशुद्धिके घातक हैं ॥ ७५–७९ ॥

औद्देशिक दोष।

नागादिदेवपाषण्डिदानाद्यर्थं च यत्कृतम् ।
अन्नं तदेव न ग्राह्यं यत उद्देशदोषभाक् ॥ ८० ॥

नाग, यक्ष आदि देवोंको, जैनधर्मसे बहिर्भूत पाखंडोंको, तथा दीन-पुरुषोंको देनेके उद्देशसे बनाये हुए आहारको औद्देशिक आहार कहते हैं। ऐसा आहार मुनीश्वरोंको ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥ ८० ॥

साधिक दोष।

संयतांश्च बहून् दृष्ट्वा भोज्यं यदधिकं खलु।
क्रियते सोऽधिको नाम दोषो धीमद्भिरुच्यते ॥ ८१ ॥

मुनियोंको आते देखकर उन्हें आहार देनेके लिए अपने लिए बनते हुए दाल भात आदि भोजनमें और दाल-भात छोड़ देना इसको बुद्धिमान् साधिक या अध्यधि दोष कहते हैं। भावार्थ—जिस पात्रमें अपने लिए दाल-भात पक रहे हों या जल गर्म हो रहा हो उसीमें, मुनियोंको आते देखकर उन्हें आहार देनेके लिए दालमें दाल, चांवलोंमें चांवल और पानीमें पानी और छोड़ देना साधिक दोष है ॥ ८१ ॥

पूति दोष।

रन्धन्यां भवराहारं पूतित्वं साधुहेतुकम्।
मार्जनं लेपनं चेति पञ्चधा पूतिदोषकः ॥ ८२ ॥

इस रसोईघरमें या वर्तनमें भोजन बनाकर पहले साधुओंको दूंगा, पश्चात् औरोंको दूंगा इसे पूति दोष कहते है। भावार्थ—इस श्लोकमें जो पांच प्रकारका पूतिदोष गिनाया है वह बराबर समझमें नहीं आया। अन्य ग्रन्थोंमें पूति दोषका कथन इस प्रकार है। जो आहार प्रासुक होते हुए भी उसका अप्रासुक-सचित्तताके साथ संबंध हो तो वह पूति दोषसे संयुक्त माना गया है। उसके पांच भेद हैं—रंधनी, उदूखल (ऊखल), दर्वी (कच्छी), भाजन और गंध। इस रसोईघरमें भोजन बनाकर पहले मुनियोंको दूंगा पश्चात् औरोंको दूंगा, यह रंधनी नामका पूतिदोष है। इस ऊखलमें कूटकर जबतक ऋषियोंको न दे लूंगा तब तक औरोंको भी न दूंगा, यह ऊखल नामका पूतिदोष है। इसी तरह दर्वी, भाजन और गंध दोषोंको समझना चाहिए। यद्यपि इस उद्देशमें भोजन प्रासुक है, परंतु वह अप्रासुकताका संबंध लिए हुए है अतः दोष है ॥ ८२ ॥

मिश्र दोष।

मुनीनां दानमुद्दिश्य पाषण्डिभिरमाजनैः।
सागारैरशनं यद्धि स मिश्रो दोष उच्यते ॥ ८३ ॥

जिस आहारमें पाखंडियों और गृहस्थोंके साथ साथ मुनियोंको देनेका उद्देश किया जाय वह प्रासुक बना हुआ आहार भी मिश्रदोषसे संयुक्त है ॥ ८३ ॥

प्राभृतिक दोष।

कालहीनं हि यद्दानं दीयते सानुरागतः।
कालातिक्रमतः सोऽयं दोषः प्राभृतिको यतः ॥ ८४ ॥

जिस समय या जिस दिन दान देना निश्चित किया जाय उससे पहले या पीछे दान देना प्राभृतिक दोष है। भावार्थ—प्राभृतिक दोषके दो भेद हैं-एक बादर और दूसरा सूक्ष्म। पुनः प्रत्येकके दो भेद हैं—कालहानि और कालवृद्धि। दिन, पक्ष, मास और वर्षमें हीनाधिकता कर

देना बादर प्राभृतिक दोष है। जैसे—शुक्ल अष्टमीको दान देनेका निश्चय कर शुक्ल पंचमीको दे देना, यह दिवसहानि है और शुक्ल पंचमीको दान देनेका निश्चय कर शुक्ल अष्टमीको देना यह दिवसवृद्धि है। चैत्रके शुक्लपक्षमें देनेका निश्चयकर उसके कृष्णपक्षमें देना यह पक्षहानि और चैत्रके कृष्णपक्षमें देनेका निश्चय कर उसके शुक्लपक्षमें देना यह पक्षवृद्धि। चैत्रमासमें देनेका निश्चय कर फाल्गुनमें देना यह मासहानि और फाल्गुनमें देनेका निश्चयकर चैत्रमें देना यह मासवृद्धि है। तथा आगेके वर्षमें देनेका निश्चयकर इसी वर्षमें दे देना यह वर्षहानि और इसी वर्ष देनेका निश्चयकर आगेके वर्षमें देना यह वर्षवृद्धि है। तथा भोजनके समयोंमें हीनाधिकता करना सूक्ष्मप्राभृतिक दोष है। जैसे—दोपहरको दान देनेका निश्चयकर सुबह ही देदेना अथवा शामका निश्चयकर दोपहरको देना यह समयहानि और सुबह देनेका निश्चयकर दोपहरको देना अथवा दोपहरका निश्चयकर शामको देना यह समयवृद्धि। इस तरह कालकी हानि-वृद्धिकर आहार देना प्राभृतिक दोष है। ऐसा करनेमें दाताको क्लेश होता है, बहुतसे जीवोंका विघात होता है और प्रचुर आरंभ करना पड़ता है; इसलिए यह दोष माना गया है॥ ८४॥

बलि दोष।

संयतानां प्रभूतानां गमनार्थं विशेषतः।
कृत्वा पूजादिकं चान्नं दीयते बलिदोषभाक्॥ ८५॥

संयत हमारे घरपर जावें इस अभिप्रायसे यक्षादि देवोंकी पूजा करके बाकी बचा हुआ आहार देना बलिदोष है॥ ८५॥

न्यस्त दोष।

सत्पात्रभाजनादन्नं स्थापितं चान्यभाजने।
न्यस्तदोषोऽयमुद्दिष्टः सद्भिरागमपारगैः॥ ८६॥

जिस पात्रमें भोजन बनाया गया हो उसमेंसे निकालकर दूसरे पात्रमें रखकर अपने ही घरमें या दूसरेके घरमें ले जाकर रख देनेको आगमके पारंगत पुरुष न्यस्त दोष कहते हैं। भावार्थ—इस तरहका भोजन मुनीश्वरोंको नहीं लेना चाहिए। क्योंकि आहार देनेवाला दाता ऐसी क्रिया दूसरेके भयसे करता है, अतः उसमें विरोधादि दोष देखे जाते हैं॥ ८६॥

प्रादुष्कार दोष।

आहारभाजनादीनामन्यस्माच्च प्रदेशतः।
अन्यत्र नयनं दीपप्रज्वालनमतोऽपि च॥ ८७॥
प्रादुष्किको मतो दोषो वर्जनीयः शुभार्थिभिः।

भोजनके वर्तनोंको एक स्थानसे उठाकर दूसरी जगह लेजाकर रखना प्रादुष्कार दोष है, तथा दीपक जलाना भी प्रादुष्कार दोष है। शुभ चाहनेवाले पुरुषोंको इस दोषका त्याग करना चाहिए। भावार्थ—प्रादुष्कार दोषके दो भेद हैं—एक संक्रमण और दूसरा प्रकाश। संयतोंको घरपर आते देखकर भोजनके पात्रोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाना संक्रम दोष है। तथा भस्मआदिसे वर्तनोंको मांजना, दीपक जलाना वर्तनोंको फैलाकर रखना आदि प्रकाश नामका दोष है॥ ८७॥

क्रीत-दोष ।

स्वान्यद्रव्येण यद्भोज्यं संगृहीतं यदा भवेत् ॥ ८८ ॥
विद्यामन्त्रेण वा दत्तं तत्क्रीतं दोष इत्यसौ ।

अपने और परके द्रव्यसे अथवा विद्या और मंत्र द्वारा लाई हुई भोजन-सामग्रीसे तैयार किया हुआ आहार क्रीत दोषकर संयुक्त है । भावार्थ—क्रीत दोषके दो भेद हैं-एक द्रव्यक्रीत और दूसरा भावक्रीत । मुनियोंको चर्यामार्ग द्वारा आते देखकर अपने अथवा परके गाय, बैल आदि सचित्त पदार्थोंको अथवा सुवर्ण आदि अचित्त द्रव्योंको बेचकर भोजन सामग्री लाना और उसका भोजन तैयारकर मुनीश्वरोंको देना द्रव्यक्रीत दोष है । तथा अपनी या परकी प्रज्ञप्ति आदि विद्याएं या चेटिका आदि मंत्र देकर भोजन सामग्री लाना और उसका भोजन बनाकर मुनीश्वरोंको देना भावक्रीत दोष है । ऐसा करनेसे दाताका मुनियोंपर करुणाभाव झलकता है, भक्तिभाव नहीं; अतः मुनिश्वरोंको क्रीतदोषसंयुक्त आहार नहीं लेना चाहिए ॥ ८८ ॥

प्रामित्य दोष ।

स्वकीयं परकीयं चेद्द्रव्यं यच्चेतनेतरत् ॥ ८९ ॥
दत्वाऽन्नानयनं पात्रे प्रामित्यं दोष एव सः ।

अपने या परके चेतन अथवा अचेतन द्रव्य गिरवी रखकर दाल चांवल आदि चीजें उधार लाना और उनका भोजन तैयार कर मुनियोंको देना प्रामित्य दोष है । भावार्थ—मुनियोंको चर्यामार्गमें प्रविष्ट देखकर दाता दूसरेके घरपर जाकर भक्तिपूर्वक याचना करे कि मैं तुम्हारे दाल चांवल आदि जितने ले जाऊंगा उनसे कुछ अधिक या उतनेके उतने वापिस दे जाऊंगा, तुम मुझे ये ये चीजें देओ-ऐसा कहकर भोजन सामग्री लाना और उसका आहार बनाकर देना ऋणसहित प्रामित्य दोष है । तथा चेतन-अचेतन द्रव्यको गिरवी रखकर भी भोजन-सामग्री लाना ऋणदोष है । ऐसा करनेसे दाताको क्लेश और परिश्रम उठाना पड़ता है; अतः मुनियोंको ऋणदोषसंयुक्त आहार नहीं लेना चाहिए ॥ ८९ ॥

परिवर्तन दोष ।

स्वान्नं दत्वाऽन्यगेहाद्वा यदानीयोत्तमं शुभम् ॥ ९० ॥
अन्नं ह्यादीयतेऽत्यर्थं परिवर्तनमुच्यते ।

अपना हलका अन्न देकर दूसरेके घरसे बढ़िया अन्न लाकर मुनियोंको देना परिवर्तन दोष है । भावार्थ—मेरे ब्रीही तुम लेलो और मुझे शाल्योदन देओ अथवा तुम मेरी यह चीज ले लो और तुम मुझे यह दे दो, मैं साधुओंको दूँगा-ऐसा कहकर मुनियोंके लिए आहार लाना परिवर्तन दोष है । ऐसा करनेसे दाताको क्लेश होता है; अतः मुनियोंको परिवर्तन दोषसंयुक्त आहार नहीं ग्रहण करना चाहिए ॥ ९० ॥

निषिद्ध दोष ।

मध्ये केनापि गृहिणा निषिद्धं भोजनादिकम् ॥ ९१ ॥
दातव्यं न मुनिभ्यश्च तथापि खलु गृह्यते ।
स निषिद्धो महादोषः परिपाट्या प्रकीर्तितः ॥ ९२ ॥

आहार देते हुएको बीचमें ही कोई रोक दे तो वह आहार मुनियोंको नहीं देना चाहिए। निषेध करनेपर भी यदि कोई दे तो वह आहार निषिद्धनामक महादोषसे संयुक्त माना गया है। भावार्थ—निषिद्ध आहारके व्यक्तेश्वर, अव्यक्तेश्वर, व्यक्ताव्यक्तेश्वर, व्यक्तानीश्वर, अव्यक्तानीश्वर, व्यक्ताव्यक्तानीश्वर—ऐसे छह भेद हैं। आहार देते हुएको इनमेंसे कोई रोक दे तो वह आहार निषिद्ध दोष कर संयुक्त है, ऐसा आहार मुनीश्वरोंको नहीं लेना चाहिए; क्योंकि इसमें विरोधादिक दोष देखे जाते हैं ॥ ९१–९२ ॥

अभिहित दोष।

यस्मात्कस्माद्विना पंक्त्या गृहादष्टमतः परम्।
आनीतं गृह्यते चान्नं तदेवाभिहितं मतम् ॥ ९३ ॥

पंक्ति स्वरूप तीन अथवा सात घरोंको छोड़कर जिस किसी घरसे आया हुआ भोजन अथवा पंक्तिरूप घरोंमें भी अष्टमादि घरोंसे आया हुआ भोजन अभिहित दोषयुक्त माना गया है। भावार्थ—जिस समय आहार ले रहे हों उस समय कोई दूसरा पुरुष भी अपने घरसे आहार लाकर भक्तिभावसे दे तो जिस घरमें आहार ले रहे हों उस घरसे पंक्तिरूप तीन अथवा सात घर तकका आया हुआ आहार मुनि ले सकते हैं इसमें कोई दोष नहीं है; परंतु पंक्तिरूप तीन या सात घरोंको छोड़कर अष्टमादि घरसे आया हुआ या विना ही पंक्तिके किसी भी घरसे आया हुआ अन्न अभिहित दोषसंयुक्त है। ऐसा अन्न मुनियोंको ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥ ९३ ॥

उद्भिन्न दोष।

घृतादिभोजनं सारं मुद्रितं कर्दमादिना।
उद्भिद्य दीयते दोष उद्भिन्नः परिपठ्यते ॥ ९४ ॥

मिट्टी, लाख आदिसे वर्तनका मुख मूंद दिया गया हो ऐसे वर्तनमेंसे उसपरकी मिट्टी लाख आदिको हटाकर घृत, गुड़, शक्कर आदि सार वस्तु निकाल कर देना उद्भिन्न दोष है ॥ ९४ ॥

आच्छाद्य दोष।

संयतान् परमान् दृष्ट्वा राजचोरादिभीतितः।
दानं ददाति स प्रोक्तो दोष आच्छाद्यनामकः ॥ ९५ ॥

राजा, चौर आदिके भयसे संयतोंको आहार देना आच्छाद्य नामका दोष है। भावार्थ—जब, राजा या राजासदृश कोई तेजस्वी अथवा चौरादि गृहस्थोंको या तो संयतोंको भिक्षाजन्यश्रम देखकर राजा या राजासदृश कोई तेजस्वी अथवा चौरादि गृहस्थोंको या तो तुम आये हुए मुनिगणको आहार दो नहीं तो हम तुम्हारा धन–माल छीन लेंगे या लूट लेंगे अथवा शहरसे बाहर निकाल देंगे, इस तरह डराकर आहार दिलावें तब आहार देना सो यह आच्छेद्यनामक दोष है ॥ ९५ ॥

मालारोहण दोष।

निःश्रेण्यादिकमारुह्य द्वितीयगृहभूमितः।
आदाय दीयते ह्यन्नं तन्मालारोहणं मतम् ॥ ९६ ॥

१ श्लोकका पाठान्तर ऐसा भी है:—
नृपादीनां भयं श्रुत्वा मुनीनां हतमौनतः। गुप्तवृत्त्या तु यद्दत्तं दोष आच्छाद्यनामकः ॥

निसैनी आदिपर चढ़कर घरके दूसरे तीसरे मंजिल परसे लाकर आहार देना मालारोहण दोष है। भावार्थ—आहार स्थानसे उपरकी मंजिलपर सीढ़ी निसैनी आदिपर चढ़कर वहांसे आहार लाकर देना मालारोहण दोष है। इसमें आहार दाताका गिर पड़ना आदि अपाय देखा जाता है; इसलिए यह दोष है। इस तरह सोलह उद्गम दोष कहे। आगे सोलह उत्पादन दोषोंको कहते हैं॥ ९६॥

धात्री दोष।

मज्जनं मण्डनं चैव क्षीरपानादिकारकं।
क्रीडनं तनुजां स्वाप विधिर्यः क्रियते ध्रुवं॥ ९७॥
गृहिणीमेव चोद्दिश्य यदुत्पादितमन्नकम्।
तद्धात्रीदोष इत्येष कीर्तनीयो मनीषिभिः॥ ९८॥

घरकी स्त्रियोंके करने योग्य बालकोंको स्नान कराना, आभूषण पहनाना, दुग्ध पिलाना, खेल खिलाना, सुलाना—इस तरहकी पांच क्रिया स्वयं करके या इन पांचोंका उपदेश देकर आहार लेना सो धात्री दोष है। भावार्थ—स्नानादि पांच प्रकारके धात्रीकर्मोंद्वारा आहार लेना धात्री दोष है॥ ९७-९८॥

भृत्य दोष।

स्वपरग्रामदेशादेरादेशं च निवेद्य च।
गृह्णाति किञ्चिदाहारं दोषस्तद्भृत्यसंज्ञकः॥ ९९॥

अपने ग्राम और देशके समाचार दूसरे ग्राम और दूसरे देशको ले जाकर आहार ग्रहण करना सो भृत्य या दूत नामका दोष है। भावार्थ—कोई साधु नाव आदि द्वारा जलमार्ग होकर या स्थलमार्ग होकर या आकाश मार्ग होकर परग्राम या परदेशको जा रहा हो, उसे जाते देख कोई गृहस्थ यह कहे कि, हे भट्टारक! मेरा एक संदेशा लेते जाना। उसके उस संदेशेको ले जाकर वह मुनि उसे कहे जिसके पास वह संदेश भेजा गया है। संदेशा सुनकर वह परग्राम या परदेश निवासी पुरुष परम संतुष्ट हुआ उस साधुको आहार दे और वह साधु उसके उस दिये हुए आहारको ले तो वह आहार दूत दोषसे युक्त माना गया है। अतः दूत कर्मद्वारा आहार उत्पन्न कर मुनियोंको नहीं लेना चाहिए। क्योंकि दूतकर्म द्वारा आहार लेनेसे जिनशासनमें मलिनता आती है॥ ९९॥

निमित्त दोष।

व्यञ्जनाङ्गस्वराच्छिन्नभौमान्तारिक्षलक्षणम्।
स्वप्नं चेत्यष्टनिमित्तं करोति तन्निमित्तकम्॥ १००॥

व्यंजन, अंग, स्वर, छेद, भौम, अंतरिक्ष, लक्षण और स्वप्न—इन आठ निमित्तोंद्वारा आहार उत्पन्न कर ग्रहण करना निमित्त दोष है। भावार्थ—तिल, मसा आदि व्यंजन कहे जाते हैं। शरीरके हाथ-पैर आदि अवयवोंको अंग कहते हैं। स्वर नाम आवाजका है। खड्ग आदिके घावको छेद कहते हैं। भूमिका फट जाना भौमनिमित्त है। सूर्य-चंद्रमा आदिके उदय और अस्तको अंतरिक्ष कहते हैं। नंदिकावर्त, पद्म, चक्र आदि लक्षण माने गये हैं। स्वप्नमें हाथीपर चढ़ना, विमानमें बैठना, महिष (भैंसा) पर चढ़ना आदिका देखना स्वप्न है। इन आठ निमित्तोंको देखकर दूसरेके शुभाशुभ

बताकर आहार लेना निमित्त-दोष माना गया है। यह दोष इसलिए है कि ऐसा करनेमें रसास्वादन, दीनता आदि दोष पाये जाते हैं ॥ १०० ॥

वनीपक-दोष ।

पाषंडिकृपणादीनामतिथीनां तु दानतः ।
पुण्यं भवेदिति प्रोच्य भवाद्दरवनीपकम् ॥ १०१ ॥

पाषंडी, कृपण आदि अतिथियोंको दान देनेसे पुण्य होता है ऐसा दान-दाताको कह कर आहार लेना वनीपक-दोष है। भावार्थ—किसी दाताने पूछा कि महाराज ! कुत्तोंको रोटी डालनेसे; अन्धे, लूले, लंगड़े आदि दुःखी जीवोंको भोजन करानेसे, मद्यमांसादि भक्षण करनेवाले ब्राह्मणोंको तथा दीक्षाद्वारा उपजीवी पाषंडियोंको आहार देनेसे तथा कौवोंको खिलानेसे पुण्य होता है या नहीं ? उत्तरमें वे साधु कहें कि होता है । इसका नाम वनीपक-दोष है। तात्पर्य यह है कि दानपतिके अनुकूल वचन कहकर आहार लेना वनीपक-दोष है; क्योंकि ऐसा कह कर आहार लेनेसे साधुओंमें दीनता झलकती है ॥ १०१ ॥

जीवनक-दोष ।

जातिं कुलं तपः शिल्पकर्म निर्दिश्य चात्मनः ।
जीवनं कुरुतेऽत्यर्थं दोषो जीवनसञ्ज्ञकः ॥ १०२ ॥

अपनी जातिशुद्धि, कुलशुद्धि, तपश्चरण और शिल्पकर्मका निर्देश कर आजीविका करना—आहार ग्रहण करना जीवनक नामका दोष है। ऐसा करनेमें वीर्य-निगूहन-शक्ति छिपाना, दीनता आदि दोष देखे जाते हैं; इसलिए यह दोष है ॥ १०२ ॥

क्रोधदोष और लोभदोष ।

क्रोधं कृत्वाऽशनं ग्राह्यं क्रोधदोषस्ततो मतः ।
क्वचिल्लोभं प्रदर्श्याप्ति लोभदोषः स कथ्यते ॥ १०३ ॥

क्रोध करके अपने लिए भिक्षा उत्पन्न करना क्रोधदोष है । तथा लोभ दिखाकर भिक्षा उत्पन्न करना लोभदोष है ॥ १०३ ॥

पूर्वस्तुति और पश्चात्स्तुति दोष ।

त्वमिन्द्र चन्द्र इत्युक्त्वा भुक्तेऽन्नं स्तुतिदोषभाक् ।
पूर्वं भुंक्ते स्तुयात्पश्चात्स्तुतिपश्चान्मलो मतः ॥ १०४ ॥

तुम बड़े इंद्र हो, चन्द्र हो इत्यादि प्रथम स्तुतिकर पश्चात् आहार ग्रहण करना पूर्वस्तुति दोष है। तथा प्रथम आहार लेकर पश्चात्स्तुति करना पश्चात्स्तुति दोष है। भावार्थ—दातासे दान ग्रहण करनेके पहले ही कहना कि तुम बड़े भारी दान-दाता हो, तुम यशोधर हो, तुम्हारी कीर्ति जगतमें चारों ओर सुनाई दे रही है सो यह पूर्वस्तुतिदोष है। तुम पहले भारी दान-दाता थे, अब तुम दान देना कैसे भूल गये—इस तरह संबोधित करके भी आहार लेना पूर्वस्तुतिदोष है। तथा दान लेकर पश्चात् गुण-गान करना कि तुम जगतमें विख्यात हो, भारी दानपति हो, तुम्हारा यश हमने सुन रक्खा है सो पश्चात् स्तुतिदोष है । ऐसा करना नग्नाचार्यके कर्तव्यमें दोष है। तथा इससे कृपणता मालूम पड़ती है; अतएव ये दोनों दोष हैं ॥ १०४ ॥

वैद्य, मान और मायादोष।

कृत्वा भेषजमत्यन्नं वैद्यदोषः स उच्यते।
आत्मपूजादिकं लोकान् प्रतिपाद्यातियत्नतः॥ १०५॥
उदरं पूरयत्येव मानदोषो विधीयते।
मायां कृत्वाऽन्नमादत्ते मायादोषः प्रकीर्तितः॥ १०६॥

बालचिकित्सा, तनुचिकित्सा, रसायनचिकित्सा, विषचिकित्सा, भूतचिकित्सा आदि आठ प्रकारके शास्त्रोंद्वारा औषधोपचार करके आहार ग्रहण करना वैद्यदोष है। जनसमूहके प्रति अपनी पूजा-प्रतिष्ठा आदिका कथन कर आहार ग्रहण करना मानदोष है। भावार्थ—गर्व करके अपने लिए भिक्षा उत्पन्न करना मानदोष है। तथा मायाचार करके आहार लेना मायादोष कहा गया है॥ १०५—१०६॥

विद्यादोष और मंत्रदोष।

कृत्वा विद्याचमत्कारं योऽत्ति विद्याख्यदोषकः।
मंत्रयन्त्रादिकं कृत्वा योऽत्ति वै मन्त्रदोषकः॥ १०७॥

विद्याका चमत्कार दिखाकर जो आहार ग्रहण करना है वह विद्या नामका दोष है। तथा आहारप्रद व्यन्तरादि देवोंको मंत्र यंत्र आदिद्वारा वशकर जो आहार ग्रहण करना है वह मंत्रदोष है॥ १०७॥

चूर्णदोष और वशीकरण दोष।

दत्वा चूर्णादिकं योऽत्ति चूर्णदोषः स इष्यते।
वशीकरणकं कृत्वा वशीकरणदोषकः॥ १०८॥

नेत्रांजन आदि देकर जो आहार ग्रहण करता है वह चूर्णदोषवाला है। तथा जो वशीभूत नहीं उनको वशमें करना वशीकरण-दोष है। यहांतक सोलह उत्पादन दोष कहे। आगे दश एषणा दोषोंका कथन करते हैं॥ १०८॥

शंका-दोष और पिहित-दोष।

अस्मदर्थं कृतं चान्नं न वा शङ्काख्यदोषकः।
सचित्तेनावृतं योऽत्ति पिहितो दोष उच्यते॥ १०९॥

यह आहार मेरे भक्षण करने योग्य है अथवा नहीं यह शंका नामका दोष है। तथा जो सचित्त कमल पत्रादिसे ढके हुए आहारको ग्रहण करता है वह पिहित-दोषयुक्त आहार करता है॥ १०९॥

संक्षिप्त-दोष।

स्निग्धेन वा स्वहस्तेन देयं वा भाजनेन वा।
संक्षिप्तदोषो निर्दिष्टो वर्जनीयो मनीषिभिः॥ ११०॥

घी, तैल आदिसे चिकने हाथोंसे अथवा कच्छी आदि वर्तनसे भोजन परोसना, सो संक्षिप्त-दोष है। ऐसे दोषका मुनियोंको त्याग करना चाहिए। इसमें संमूर्च्छनादि सूक्ष्म-दोष हैं; अतएव यह दोष है॥ ११०॥

निक्षिप्त-दोष।

सचित्तवारिभियाद्वि प्रसिच्यान्नं तु दीयते।
निक्षिप्तदोष इत्युक्तः सर्वथागमवर्जितः॥ १११॥

अप्रासुक जल, पृथिवी, अग्नि आदि पर रक्खा हुआ अन्न देना निक्षिप्त-दोष है। ऐसा आहार लेना आगममें सर्वथा वर्जनीय बताया है॥ १११॥

स्रावित-दोष।

घृततक्रादिकं चैव स्रवत्येवाशकं बहु।
तदन्नं गृह्यतेऽत्यर्थं स्रावितो दोष उच्यते॥ ११२॥

अत्यन्त झरता हुआ पतला तक्र (मठा-छाछ), घृत आदि भोजन लेना, सो स्रावित-दोष है; क्योंकि ऐसा अन्न हाथमें ठहर नहीं सकता। अतः वह हाथमेंसे नीचे जमीनपर गिर पड़ता है, जिससे जीवोंकी हिंसा होनेकी संभावना है। अतः ऐसा स्रावित आहार मुनियोंको नहीं लेना चाहिए॥ ११२॥

अपरिणत-दोष।

त्रिफलादिरजोभिश्च रसैश्चैव रसायनैः।
गृह्णात्यपरिणतं वै दोषोऽपरिणतः स्मृतः॥ ११३॥

त्रिफला आदि चूर्णोंद्वारा जिसका रस, वर्ण, गंध और स्वाद नहीं बदला है ऐसा जल ग्रहण करना अपरिणत दोष है। भावार्थ—तिल प्रक्षालित जल, चांवल धोया हुआ जल, तपाकर ठंढा किया गया ऐसा गर्म जल, चने धोया हुआ जल और तुष प्रक्षालित जल जिसके खास रंग, गंध और स्वाद नहीं बदल पाए हैं, तथा हरीतकी चूर्ण आदिके डालनेसे भी जिसके वर्ण, गंध और रस नहीं बदले हैं वह सब अपरिणत है। ऐसा जल मुनियोंको नहीं पीना चाहिए॥ ११३॥

साधारण-दोष।

गीतनृत्यादिकं मार्गे कुर्वन्नानीय चान्नकम्।
गृहे यद्दीयते दोषः स साधारणसञ्ज्ञकः॥ ११४॥

मार्गमें गीत गाते हुए, नृत्य आदि करते हुए आहार लाकर घरपर देना साधारण नामका दोष है॥ ११४॥

दायक-दोष।

रोगी नपुंसकः कुष्ठी उच्चार मूत्रलिप्तकः।
गर्भिणी ऋतुमत्येव स्त्री ददात्यन्नमुत्तमम्॥ ११५॥
आशौचाचारसंलीनः स दोषो दायकस्य वै।

रोगी, नपुंसक, कोढ़ी, टट्टी-पेशाब करके आया हुआ, गर्भिणी स्त्री और रजस्वला स्त्रीके हाथका प्रासुक भी आहार ग्रहण करना सो अशौचाचारयुक्त दायक-दोष है। ऐसे दाताओंके हाथका आहार नहीं लेना चाहिए। इनके अलावा इन दाताओंके हाथका भोजन भी नहीं लेना चाहिए—जो प्रसूति हो, मद्य-पान किए हुए हो, मुर्दा जलाकर आया हो अथवा मृतक-सूतकवाला हो,

वातादिसे उपहत हो, नग्न अर्थात् शरीरपर दुपट्टा आदि ओढ़े हुए न हो, बेहोश होकर उठा हो, वमन करके आया हो, जिसके खून चुचाता हो, जो वेश्या–दासी हो, आर्यिका हो, पंचश्रमणिका हो, तैल मालिश करनेवाली हो, अत्यंत बालक हो, अत्यंत वृद्ध हो, भोजन करती हुई हो, अंधी हो, भीत आदिके ओटमें खड़ी हो, बिलकुल पासमें बैठी हो, अपनेसे ऊंचे स्थानमें बैठी हो, जो अग्नि जला रही हो, अग्नि फूंक रही हो, भस्मसे अग्नि बुझा रही हो, लीप रही हो, स्नान कर रही हो, स्तनपान करते बालकको छोड़कर आई हो, तथा जो जातिच्युत हो। तात्पर्य—ऐसी स्त्री या पुरुषके हाथका आहार लेना दायक-दोष है ॥ ११५ ॥

लिप्त-दोष।

अप्रासुकेन लिप्तेन हस्तेनैव विशेषतः ॥ ११६ ॥
भाजनेन ददात्यन्नं लिप्तदोषः स कीर्तितः।

अप्रासुक जल आदिसे गीले हाथोंसे आहार देना तथा अप्रासुक चीजोंसे लिप्त वर्तनमें रखकर आहार देना लिप्त-दोष कहा गया है ॥ ११६ ॥

मिश्र-दोष।

आमपात्रादिके पात्रे सचित्तेनार्द्रं मिश्रितम् ॥ ११७ ॥
ददात्याहारकं भक्त्या मिश्रदोषः प्रकीर्तितः।

सचित्त मिट्टीके वर्तनमें रखकर तथा सचित्त जलादिकसे मिश्रित आहार देना मिश्र-दोष है। भावार्थ—सचित्त मिट्टी, सचित्त जव, गेहूं आदि बीज, सचित्त पत्ते, पुष्प, फल आदि तथा जिंदे या मृत द्वीन्द्रियादि त्रस जीवोंसे मिला हुआ आहार मिश्र-आहार कहलाता है ॥ ११७ ॥

अंगार-दोष।

गृध्या यो मूर्च्छितं ह्यन्नं भुङ्क्ते चाङ्गारदोषकः ॥ ११८ ॥

सुध–बुध न रखकर अत्यंत लंपटताके साथ आहार करना अंगार-दोष है ॥ ११८ ॥

धूम-दोष और संयोजन-दोष।

भोज्याद्यलाभे दातारं निन्दन्नत्ति स धूमकः।
शीतमुष्णेन संयुक्तं दोषः संयोजनाः स्मृतः ॥ ११९ ॥

मनोभिलषित आहार न मिलनेपर दाताकी निंदा करते हुए आहार ग्रहण करना धूम-दोष है। तथा गर्म आहारसे ठंडा आहार और ठंडेसे गर्म आहार मिलाना संयोजना-दोष है ॥ ११९ ॥

अप्रमाण-दोष।

प्रमाणतोऽन्नमत्यात्ति दोषश्चैषोऽप्रमाणकः।
इत्येवं कथिता दोषाः षट्चत्वारिंशदुक्तितः ॥ १२० ॥

प्रमाणसे अधिक आहार करना अप्रमाण-दोष है। भावार्थ—उदरके चार भाग करना, दो भागोंको आहारसे भरना, एकको जलसे भरना और चौथे भागको खाली रखना प्रमाणभूत आहार है। इस प्रमाणसे अधिक आहार ग्रहण करना अप्रमाण-दोष है। इस तरह यहांतक छयालीस दोष क कथन किया ॥ १२० ॥

इत्येवं कथितो धर्मो मुनीनां मुक्तिसाधकः।
संक्षेपतो मया ग्रन्थे वर्णाचारप्रसङ्गतः ॥ १२१ ॥

इस तरह मैंने वर्णाचारके प्रसंगको पाकर इस ग्रंथमें संक्षेपसे मुक्तिके साधक मुनिधर्मका वर्णन किया ॥ १२१ ॥

आदौ श्रीवर्णलाभः सुखकरकुलचर्या गृहाधीशता च।
सर्वेभ्यश्च प्रशान्तिर्मनसि कृतगृहत्यागता वा सुदीक्षा ॥
अध्यायेऽस्मिन्नरिष्टाः शिवसुखफलदा वर्णिता धर्मभेदा।
ये कुर्वन्तीह भव्याः सुरनरपतिभिस्ते लभन्ते सुपूजाम् ॥ १२२ ॥

इस बारहवें अध्यायमें मोक्ष-सुखरूप फल देनेवाली धर्मका भेद-स्वरूप वर्णलाभ, कुलचर्या, गृहीशिता, प्रशान्ति, गृहत्याग और दीक्षा—इन क्रियाओंका वर्णन किया। जो भव्य इन क्रियाओंको करता है वह इन्द्र और राजाओंके द्वारा पूजा जाता है ॥ १२२ ॥

धर्मोपदेशं प्रवदन्ति सन्तो धन्यास्तु ते ये सुचरन्ति भव्याः।
पूज्याः सुरैर्भूपतिभिश्च नित्यं तेषां गुणान् वाञ्छति सोमसेनः ॥ १२३ ॥

सज्जन पुरुष धर्मोपदेश करते हैं। वे पुरुष धन्य हैं जो उस उपदेशका आचरण करते हैं। तथा वे देवों और राजाओं द्वारा पूजे जाते हैं। उनके उन सद्गुणोंकी सोमसेनसूरि वाञ्छा करता है ॥ १२३ ॥

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारनिरूपणे भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते वर्णलाभादिपञ्चक्रियावर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्याय।

वन्दे तं शान्तिनाथं शिवसुखविधिदं सेवितं भव्यलोकै-
रादौ चक्रेण राज्यं सकलभरतजं साधितं येन पुण्यात्।
पश्चाद्दीक्षां समादाय तु कलिलमलं छिन्नकं ध्यानचक्रैः
शुद्धज्ञानेन भव्याः सुसमवसरणे बोधिता मोक्षहेतोः ॥ १ ॥

मैं ग्रन्थकर्त्ता भव्यजीवों कर सेवनीय मोक्ष-सुखको प्रदान करनेवाले उन शान्तिनाथ तीर्थंकरको नमस्कार करता हूं, जिन्होंने पूर्व भवोंमें उपार्जित पुण्यके उदयसे सबसे प्रथम चक्र-रत्नके द्वारा सारे भारतका राज्य साधन किया। पश्चात् दीक्षा धारण कर ध्यानचक्रके द्वारा घातियाकर्म-रूप पाप-मलको छिन्नभिन्न किया। अनन्तर शुद्ध केवलज्ञान प्राप्तकर उसके द्वारा समवशरणमें मोक्ष-सुखके अर्थ भव्य जीवोंको संबोधित किया।

कर्मकलंकविमुक्तं मुक्तिश्रीवल्लभं गुणैर्युक्तम्।
सिद्धं नत्वा वक्ष्ये द्विधा स्फुटं सूतकाध्यायम् ॥ २ ॥

कर्म-कलंकसे रहित, मुक्ति—लक्ष्मीके वल्लभ, सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे युक्त सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर मृतक-सूतक और जनन सूतकको प्रतिपादन करनेवाले तेरहवें अध्यायका प्रारंभ करता हूं ॥ २ ॥

क्षत्रियवैश्यविप्राणां सूतकाचरणं विना।
देवपूजादिकं कार्यं न स्यान्मोक्षप्रदायकम् ॥ ३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य दोनों तरहके सूतकका पालन करें। क्योंकि सूतक दूर किये विना उनके किये हुए देवपूजादि कार्य मोक्ष-प्रदायक नहीं होते ॥ ३ ॥

सूतकके भेद।

सूतकं स्याच्चतुर्भेदमार्तवं सौतिकं तथा।
मार्तं सत्संगजं चेति तत्रार्तवं निगद्यते ॥ ४ ॥

सूतकके चार भेद हैं—एक आर्तव-सूतक, दूसरा प्रसूति-सूतक, तीसरा मरण-सूतक और चौथा इन तीनोंके स्पर्शजन्य सूतक। उनमेंसे प्रथम आर्तव-सूतकको कहते हैं ॥ ४ ॥

आर्तव—सूतकके भेद।

रजः पुष्पं ऋतुश्चेति नामान्यस्यैव लोकतः।
द्विविधं तत्तु नारीणां प्रकृतं विकृतं भवेत् ॥ ५ ॥

स्त्रियोंके रजोधर्मको आर्तव-सूतक कहते हैं। उसके रज, पुष्प और ऋतु—ये नाम लोकमें प्रसिद्ध हैं। यह आर्तव-सूतक दो तरहका है—एक प्रकृत और दूसरा विकृत ॥ ५ ॥

प्रकृत और विकृत सूतकके लक्षण।

प्रकृतं जायते स्त्रीणां मासे मासे स्वभावतः।
अकाले द्रव्यरोगाद्युद्रेकात्तु विकृतं मतम् ॥ ६ ॥

स्त्रियोंके जो स्वभावसे ही महीने–महीनेमें रजस्राव होता है उसे प्राकृत रज कहते हैं। और जो असमयमें द्रव्य, रोग और आदि शब्दसे राग–इन तीनोंके उद्रेकसे जो रक्तस्राव होता है उसे विकृत रज कहते हैं। भावार्थ—कितनीही स्त्रियां एक माह पहले भी रजस्वला हो जाती हैं, उसमें द्रव्य, राग और रोग ऐसे तीन कारण हैं। इन तीनों कारणोंसे रजस्राव होनेको विकृत रजस्राव कहते हैं। इन तीन कारणजन्य रजकी संज्ञा रक्त है, रज नहीं। इन तीन कारणजन्य विकृत रजके तीन भेद हो जाते हैं–रोगज, रागज और द्रव्यज। संतति उत्पन्न होनेके पहले मज्जाके बढ़ जानेसे जो स्त्रियोंके रक्त बहने लगता है वह रोगज रज है। पित्त आदि दोषोंकी विषमतासे जो पुनः पुनः रक्त बहता है वह रागज रज है। और जो धातुओंकी विषमतासे उत्पन्न होता है वह द्रव्यज रज है। तथा महीने बाद जो रजस्राव होता है वह कालज है और प्राकृत है ॥ ६ ॥

अकाले यदि चेत् स्त्रीणां तद्रजो नैव दुष्यति।
पञ्चाशद्वर्षादूर्ध्वं तु अकाल इति भाषितः ॥ ७ ॥

स्त्रियोंके जो अकालमें रजस्राव होता है उससे वे दूषित (अशुद्ध) नहीं हैं या वह रज दूषित रज नहीं है। पचास वर्षसे ऊपरका काल भी अकाल कहा गया है ॥ ७ ॥

रजसो दर्शनात्स्त्रीणामशौचं दिवसत्रयम्।
कालजे चार्द्धरात्राच्चेत्पूर्वं तत्कस्यचिन्मतम् ॥ ८ ॥

रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदेति वै रविः ॥ ९ ॥

रात्रेः कुर्यात्त्रिभागं तु द्वौ भागौ पूर्ववासरे।
ऋतौ सूते मृते चैव ज्ञेयोऽन्त्यांशः परेऽहनि ॥ १० ॥

रजोदर्शनके समयसे लेकर तीन दिन तक स्त्रियां अशुद्ध रहती हैं—वे चौथे दिन गृहकार्योंके योग्य होती हैं। आधी रातसे पहले यदि स्त्री रजस्वला हो, या कोई मर जाय, या प्रसूति हो तो उस रातको पहले दिनमें ही गिनना चाहिए। अथवा तीनों कार्य रात्रिमें किसी भी समय हों, जब तक सूर्य न उगे तबतक उस सारी रातको पहले दिनमें ही शुमार करना चाहिए। अथवा रात्रिके तीन भाग करे। उनमेंसे पहलेके दो भागोंमें ये तीनों कार्य हों तो उन दोनों भागोंको पहले दिनमें और अन्तके तीसरे भागको आगेके दिनमें गिनना चाहिए। इस तरह इस विषयमें तीन मत हैं ॥८-१०॥

ऋतुकाले व्यतीते तु यदि नारी रजस्वला।
तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यादष्टादशदिनात्पुरा ॥ ११ ॥

ऋतुकालके बीत जानेपर अठारह दिनसे पहले यदि कोई स्त्री रजस्वला हो जाय तो वह सिर्फ स्नान कर लेनेपर शुद्ध है; उसे पुनः तीन दिन तक आशौच पालनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ११ ॥

दूसरा मत।

दिनाच्चेत् षोडशादर्वाङ्नारी या चातियौवना ।
पुना रजस्वलाऽपि स्याच्छुद्धिः स्नानेन केचन ॥ १२ ॥

जो कोई अत्यन्त यौवन स्त्री सोलह दिनोंसे पहले पुनः रजस्वला हो जाती है उसकी स्नान मात्रसे शुद्धि होती है। भावार्थ-रजस्वला होकर सोलह दिन पहले यदि फिर रजस्वला हो जाय तो उसे पुनः तीन दिन तक आशौच धारण करनेकी आवश्यता नहीं-वह सिर्फ स्नान करलेनेसे ही शुद्ध मानी गई है, ऐसा दूसरा मत है ॥ १२ ॥

रजस्वलायाः पुनरेव चेद्रजः प्राग्दृश्यतेऽष्टादशवासराच्छुचिः ।
अष्टादशाहे यदि चेद्दिनद्वयादेकोनविंशे त्रिदिनात्ततः परम् ॥ १३ ॥

यदि किसी रजस्वला स्त्रीके अठारह दिनसे पहले पुनः रजोदर्शन हो जाय तो वह शुद्ध है। परन्तु यदि वह अठारहवें दिन रजस्वला हो तो वह दो दिनसे शुद्ध होती है-दो दिन बीत जानेपर स्नानकर पवित्र होती है। और यदि उन्नीसवें आदि दिनोंमें रजस्वला हो तो तीन दिनसे शुद्ध होती है ॥ १३ ॥

रजोयुताष्टादशवासरे पुनः प्रायेण या यौवनशालिनी वधूः ।
त्र्यहेण सा शुद्ध्यति देवपित्र्ययो रजोनियुक्ताशुचिरार्तवे सति ॥ १४ ॥

जो भर-यौवन स्त्री अठारहवें दिन पुनः रजस्वला होती है वह यद्यपि दो दिन आशौच धारण कर शुद्ध हो जाती है, तो भी देवकर्म और पित्र्यकर्मके योग्य वह तीसरे दिन होती है। क्योंकि रजस्राव होते हुए वह रजोयुक्त है; अतः अशुचि-अशुद्ध है ॥ १४ ॥

रजस्वला यदि स्नाता पुनरेव रजस्वला ।
अष्टादशदिनादर्वागशुचित्वं न निगद्यते ॥ १५ ॥

यदि कोई स्त्री चतुर्थ स्नानकर अठारह दिनसे पहले पुनः रजस्वला हो जाय तो वह अपवित्र नहीं कही जाती। यह तीसरा ही मत है ॥ १५ ॥

रजस्वलाका आचरण।

काले ऋतुमती नारी कुशासने स्वपेत्सती ।
एकांतस्थानके स्वस्था जनस्पर्शनवर्जिता ॥ १६ ॥
मौनयुक्ताऽथवा देवधर्मवार्ताविवर्जिता ।
मालतीमाधवीवल्लीकुन्दादिलतिकाकरा ॥ १७ ॥
रक्षेच्छीलं दिनत्रयं चैकभक्तं विगोरसम् ।
अञ्जनाभ्यङ्गस्रग्गन्धलेपनमण्डनोज्झिता ॥ १८ ॥
देवं गुरुं नृपं स्वस्य रूपं च दर्पणेऽपि वा ।
न पश्येत्कुलदेवं च नैव भाषेत तैः समम् ॥ १९ ॥

वृक्षमूले स्वपेन्नैव खट्वाशय्यासने दिने ।
मन्त्रपञ्चनमस्कारं जिनस्मृतिं स्मरेद्धृदि ॥ २० ॥
अञ्जलावश्नीयात्पर्णपात्रे ताम्रे च पैत्तले ।
भुक्तं चेत्कांस्यजे पात्रे तत्तु शुद्ध्यति वह्निना ॥ २१ ॥

नियत समयमें ऋतुमती हुई स्त्री डाभके आसनपर सोवे, निर्जन एकान्त स्थानमें रहे, किसी स्त्री-पुरुष आदिको न छूवे, मौन-युक्त रहे, देव-धर्मसंबंधी चर्चा न करे; मालती, माधवी, कुंद आदिकी बेल हाथमें रक्खे; शीलकी पूरी पूरी रक्षा करे, तीन दिनतक एक बार भोजन करे, गोरस-दूध, दही, घी न खावे; आंखोंमें अंजन (कज्जल) न आंजे, शरीरमें तैलकी मालिश और गंध-लेपन न करे, पुष्पमाला न पहने, शृंगार न करे, देवको गुरुको और राजाको न देखे, दर्पणमें अपना रूप न निरखे, कुल-देवताका दर्शन न करे; उनसे, भाषण भी न करे, वृक्षके नीचे न सोवे, पलंगपर न सोवे, दिनमें भी न सोवे, पंचनमस्कारमंत्रका हृदयमें स्मरण करती रहे (मुखसे उच्चारण न करे), हथेलीमें या पत्तलमें या तांबे-पीतलकी थालीमें भोजन करे; कांसेकी थालीमें भोजन न करे, यदि कर ले तो वह थाली अग्निपर तपानेसे शुद्ध होती है ॥ १६-२१ ॥

रजस्वलाकी शुद्धि ।

चतुर्थे दिवसे स्नायात्प्रातर्गोसर्गतः पुरा ।
पूर्वाह्णे घटिकाषट्कं गोसर्ग इति भाषितः ॥ २२ ॥

चौथे दिन प्रातःकाल ही गोसर्गसे पहले स्नान करे। प्रातःकालके छह घड़ी कालको गोसर्ग-काल कहते हैं अर्थात् सूर्योदयसे तीन घड़ी पहलेके और तीन घड़ी पीछेके कालको गोसर्ग-काल कहते हैं। यह समय गायोंको चरनेके लिए जंगलमें छोड़नेका है अतः इसे गोसर्ग-काल कहते हैं ॥ २२ ॥

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि भोजने रन्धनेऽपि वा ।
देवपूजागुरूपास्तिहोमसेवासु पञ्चमे ॥ २३ ॥

वह रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करलेनेपर भोजन-पान बनाने योग्य शुद्ध हो जाती है, पर देवपूजा, गुरुकी उपासना और होम-सेवाके योग्य पांचवें दिन होती है ॥ २३ ॥

उदक्ये यदि संलापं कुर्वाते उभयोस्तयोः ।
अतिमात्रमघं तस्माद्वर्ज्यं सम्भाषणादिकम् ॥ २४ ॥

दो रजस्वला स्त्रियां यदि परस्परमें बातचीत करें तो भारी पाप लगता है; इसलिए रजस्व-लाएं परस्पर बातचीत न करें ॥ २४ ॥

संलापे तु तयोः शुद्धिं कुर्यादेकोपवासतः ।
तद्वद्द्वयात्सहसंवासे तत्त्रयात्पंक्तिभोजने ॥ २५ ॥

अगर दो रजस्वला स्त्रियां मिलकर परस्पर बातचीत करें तो उनका प्रायश्चित्त एक एक उपवास है-एक एक उपवास करनेसे वे उस पापसे उन्मुक्त होती हैं। यदि दोनों एक साथ रहें

तो दो उपवाससे और एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करें तो तीन उपवाससे शुद्ध होती है। यह प्रायश्चित्त सजाति रजस्वलाओंके विषयमें समझना चाहिए; क्योंकि विजातियोंके विषयमें आगे कहते हैं। दो सजाति स्त्रियोंके परस्पर स्पर्श करनेका प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

पुप्फवदी पुप्फवदीए सजादिए जदि छिवंति अण्णोण्णं।
दोण्हाणं पि विसोही ण्हाणं खवणं च गंधुदयं ॥ १ ॥

अर्थात् एक पुष्पवती दूसरी सजाति पुष्पवतीसे छू जाय तो दोनोंकी शुद्धि स्नान करना, उपवास करना और गंधोदक लेना है ॥ २५ ॥

ऋतुमत्योर्विजात्योस्तु संलापादि भवेद्यदि।
तदाधिकायाः शुद्धिः प्रागुक्तादेकाधिकाद्भवेत् ॥ २६ ॥

भिन्न भिन्न जाति (वर्ण) की रजस्वला स्त्रियां यदि परस्पर बातचीत करें, एक साथ बैठें-उठें, और एक पंक्तिमें भोजन करें तो ऊंची जातिवालीकी शुद्धि ऊपर कहे हुए प्रायश्चित्तसे एक अधिक उपवाससे होती है। भावार्थ—रजस्वला ब्राह्मणी रजस्वला क्षत्रियाणीसे या रजस्वला क्षत्रियाणी रजस्वला वैश्यासे या रजस्वला वैश्या रजस्वला शूद्रासे बातचीत करें तो ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी और बनियानीकी शुद्धि दो उपवास करनेसे होती है। एक साथ रहनेकी शुद्धि तीन उपवाससे और पंक्ति-भोजन करनेकी शुद्धि चार उपवाससे होती है ॥ २६ ॥

अन्यस्यास्तु विशुद्धिः स्यात्पूर्वोक्तादानतोऽपि वा।
यदि समं तयोर्गोत्रं तदा शुद्धिस्तु पूर्ववत् ॥ २७ ॥

परंतु हीन जातिकी स्त्रीकी विशुद्धि एक, दो, तीन उपवाससे और दान देनेसे होती है। और यदि दोनों रजस्वलाओंका गोत्र एक हो तो उनकी शुद्धि पूर्ववत्-एक, दो और तीन उपवास करनेसे होती है। भावार्थ—ऊंची जातिकी और नीची जातिकी रजस्वलाएं परस्परमें छू जांय तो ऊंची जातिकी स्त्रीके लिए उपरके श्लोकमें प्रायश्चित्त बताया गया है। इस श्लोकके पूर्वार्धमें नीची जातिकी स्त्रीके लिए और उत्तरार्धमें समान गोत्रवालियोंके लिए प्रायश्चित्त बताया गया है। वर्णक्रमसे परस्पर छूनेका प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

बंभणखत्तियमहिला रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं।
तो पढमद्धकिरिच्छं पादकिरिच्छं परा चरइ ॥ २ ॥

रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला क्षत्रियाणी यदि परस्पर छू जांय तो ब्राह्मणी दो उपवास करे और क्षत्राणी एक उपवास करे।

बंभणवणिमहिलाओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं।
तो पादूणं पढमा पादकिरिच्छं परा चरइ ॥ ३ ॥

रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला वैश्या यदि परस्परमें छू जांय तो ब्राह्मणी तीन उपवास करे और वैश्या एक उपवास करे।

---

१ पुष्पवती पुष्पवत्या सजात्या यदि स्पृशति अन्योन्यं। द्वयोरपि विशुद्धिः स्नानं क्षमणं च गन्धोदकं ॥
२ ब्राह्मणक्षत्रियमहिले रजःस्वले स्पृशतः अन्योन्यं। तदा प्रथमा अर्धकृच्छ्रं पादकृच्छ्रं परा चरति ॥
३ ब्राह्मणवणिग्महिले रजःस्वले स्पृशतः अन्योन्यं। तदा पादोनं प्रथमा पादकृच्छ्रं परा चरति ॥

बंभणसुद्दीत्थीओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं।
पढमा सव्वकिरिच्छं चरेइ इदरा च दाणादि ॥ ३ ॥

रजस्वला ब्राह्मणी और रजस्वला शूद्राणी यदि परस्परमें छू जांय तो ब्राह्मणी चार उपवास करे और शूद्राणी दान आदि दे।

खत्तियवाणिमहिलाओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं।
तो पढमद्धकिरिच्छं पादकिरिच्छं परा चरइ ॥ ४ ॥

रजस्वला क्षत्राणी और रजस्वला बनियाइन यदि परस्परमें छू जांय तो क्षत्राणी दो उपवास करे और बनियाइन एक उपवास करे।

खत्तियसुद्दित्थीओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं।
तो पादूणं पढमा पादकिरिच्छं परा चरइ॥ ५ ॥

रजस्वला क्षत्राणी और रजस्वला शूद्रा यदि परस्परमें छू जांय तो क्षत्रियाणी तीन उपवास करे और शूद्रा एक उपवास करे।

वाणियसुद्दित्थीओ रयस्सलाओ छिवंति अण्णोण्णं।
तो खवणतियं पढमा चरइ परा खमणमेगं तु ॥ ६ ॥

रजस्वला वैश्या और रजस्वला शूद्रा यदि परस्परमें छू जांय तो वैश्या तीन उपवास करे और शूद्रा एक उपवास करे ॥ २७ ॥

सूतकं मेतकं वाऽधमन्त्यस्पर्शनमेव वा।
मध्ये रजसि जातं चेत्स्नात्वा भुञ्जीत पुष्पिणी ॥ २८ ॥

रजस्वला होते हुए भी जननाशौच या मरणाशौच हो जाय अथवा चांडाल आदि नीच जातिका स्पर्श हो जाय तो वह रजस्वला स्नान करके भोजन करे ॥ २८ ॥

आर्तवं भुक्तिकाले चेदन्नं त्यक्त्वाऽऽस्यगं च तत्।
स्नात्वा भुञ्जीत शङ्का चेत्परं स्नानेन शुद्ध्यति ॥ २९ ॥
मध्ये स्नानं तु कार्यं चेत्तद्भवेदुद्धृतैर्जलैः।
नावगाहनमेतस्यास्तडागादौ जले तदा ॥ ३० ॥

भोजन करते समय यदि रजस्वला हो जाय तो मुखके ग्रासको उसी समय थूक दे और स्नान कर भोजन करे। रजस्वला होनेकी आशंका हो जाय तो भी स्नान करनेसे शुद्ध होती है। बीचमें ही स्नान करना हो तो कुआ, बावड़ी, तालाब आदिसे जल पृथक लेकर स्नान करे। उस समय वह रजस्वला तालाब वगैरहमें स्नान न करे॥ २९-३० ॥

---

१ ब्राह्मणशूद्रस्त्रियौ रजःस्वले स्पृशतः अन्योन्यं। प्रथमा सर्वकृच्छ्रं चरति इतरा च दानादिकं ॥

२ क्षत्रियवणिग्महिले रजःस्वले स्पृशतः अन्योन्यं। तर्हि प्रथमा अर्धकृच्छ्रं पादकृच्छ्रं परा चरति ॥

३ क्षत्रियशूद्रस्त्रियौ रजःस्वले स्पृशतः अन्योन्यं। तदा पादोनं प्रथमा पादकृच्छ्रं परा चरति ॥

४ वणिक्शूद्रस्त्रियौ रजःस्वले स्पृशतः अन्योन्यं। तदा क्षमणत्रिकं प्रथमा चरति परा क्षमणमेकं तु ॥

सूतके प्रेतकाशौचे पुष्पं चेत् सिञ्चयेज्जलम् ।
शिरस्यमृतमन्त्रेण पूतं द्विजकरच्युतम् ॥ ३१ ॥

जननाशौच या मरणाशौचके होते हुए स्त्री (प्रथम) रजस्वला हो जाय तो उसके मस्तकपर पुरोहितजीके हाथसे जल सिञ्चन करावे ॥ ३१ ॥

कुर्याद्दानं च पात्राय मध्यमाय यथोचितम् ।
कुर्यादेकत्र भुक्त्यादि पुष्पिणी तत्र तत्र च ॥ ३२ ॥

अनन्तर मध्यमपात्रोंको यथोचित दान दे और वह रजस्वला पूर्ववत् एक ही स्थानमें भोजन आदि करे। भावार्थ-साधारण रजस्वलाके लिए जो विधि बताई गई है उसीके अनुसार यह प्रथम रजस्वला हुई स्त्री भी अपना बर्ताव करे ॥ ३२ ॥

अज्ञानाद्दस्त्रंग पुष्पे स्पृष्टं यद्यत्तया नरा ।
हस्तादर्वाक् स्थितं चापि तत्सर्वं दूषितं भवेत् ॥ ३३ ॥

जिस स्त्रीको रजस्वलापनका ज्ञान न हो ऐसी हालतमें वह जिन जिन चीजोंका स्पर्श करे वे चीजें तथा उसके पास रक्खी हुई एक हाथ दूर तककी अन्य सब चीजें भी दूषित हो जाती हैं ॥ ३३ ॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि तत्पाणिदत्तभोजनम् ।
अन्यद्वा योऽत्ति नाश्नीयादसावेकाद्विवासरम् ॥ ३४ ॥

अज्ञानवश किंवा मिथ्याज्ञान या जानबूझकर भी यदि कोई उस रजस्वलाके हाथका दिया हुआ भोजन अथवा और कोई चीज खा ले तो वह एक दिन या दो दिन भोजन न करे अर्थात् एक या दो उपवास करे ॥ ३४ ॥

यामादर्वाक्तदभ्यर्णे पल्यङ्कासनवस्त्रके ।
कुड्यादिसंयुते पंक्त्यासने स्नायात्सचेलकम् ॥ ३५ ॥

रजस्वलाके समीप पलंग, दरी, वस्त्र वगैरह एक प्रहरसे भी कम समय तक रखे रह जांय तो वे सब अशुद्ध हो जाते हैं। तथा जिस दीवाल आदिसे चिपटकर रजस्वला बैठी हो उसी दिवालसे उसी लाइनमें जो कोई टिककर बैठे तो वह अपने सब वस्त्र धोवे और स्नान करे ॥ ३५ ॥

रजस्युपरते तस्य क्षालनं स्नानमेव च ।
रजः प्रवर्तते यावत्तावदाशौचमेव हि ॥ ३६ ॥

जब रज बंद हो जाय तब वह अपने पासकी सब चीजोंको धो डाले और स्नान कर ले; क्योंकि जबतक रजःप्रवाह शुरू रहता है तबतक अशौच-अपवित्रता बनी रहती है ॥ ३६ ॥

ऋतुमत्या कृता यत्र भुक्तिः सुप्तिः स्थितिस्त्रिरम् ।
निषद्या च तदुद्देशं मृज्याद्द्विर्गोमयैर्जलैः ॥ ३७ ॥

ऋतुमती स्त्री तीन दिन तक जिस स्थानमें सोवे, बैठे-उठे और भोजन करे उस स्थानको गोबर और पानीसे दो बार लीपे। भावार्थ—ऊपर यह कह आये हैं कि रजस्वला स्त्री तीन दिन तक एक स्थानमें सोना, बैठना, उठना, खाना, पीना आदि कार्य करे। वह जिस स्थानमें तीन दिन तक ये कार्य करे उस स्थानको गोबर और पानीसे दो बार लीप डालना चाहिए ॥ ३७ ॥

तया सह तद्बालस्तु ष्टः स्नानेन शुद्ध्यति।
तां स्पृशन् स्तनपायी वा प्रोक्षणेनैव शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥

रजस्वला स्त्रीके साथ रहनेवाला उसका सोलह वर्ष तकका बालक स्नान करनेसे शुद्ध होता है परंतु स्तन-पान करनेवाला मंत्रित जलके छींटे डालनेसे ही शुद्ध हो जाता है ॥ ३८ ॥

तद्भुक्तपात्रे भुञ्जानोऽन्नमथान्नादसंस्कृते।
उपवासद्वयं कुर्यात्सचेलस्नानपूर्वकम् ॥ ३९ ॥

रजस्वला स्त्री जिस वर्तनमें भोजन करे उस वर्तनको आंचमें अंगाये (गर्म किये) विना उसमें यदि कोई भोजन करले तो अपने बदनपरके सब कपड़े धोवे और स्नान तथा दो उपवास करे ॥३९॥

यदि स्पृशति तत्पात्रं तद्वस्त्रं तत्प्रदेशकम्।
तदा स्नात्वा जपेदष्टशतकृत्वोऽपराजितम् ॥ ४० ॥

जो कोई भी रजस्वलाका पात्र, उसका वस्त्र तथा उसके रहनेका स्थान छू ले तो वह उसी वक्त स्नान कर एक सौ आठ वार णमोकार मंत्र जपे ॥ ४० ॥

अनुक्तं यद्यदत्रैव तज्ज्ञेयं लोकवर्तनात्।
सूतकं प्रेतकाशौचं मिश्रं चाथ निरूप्यते ॥ ४१ ॥

रजस्वलाके सम्बंधमें जो कुछ न कहा गया हो उसे लोकव्यवहारसे जान लेना। अब जननाशौच, मरणाशौच और मिश्र-अशौचका निरूपण करते हैं ॥ ४१ ॥

जातकं मृतकं चेति सूतकं द्विविधं स्मृतम्।
स्रावः पातः प्रसूतिश्च त्रिविधं जातकस्य च ॥ ४२ ॥

सूतक दो तरहका होता है जातक और मृतक। जातकके तीन भेद हैं स्राव, पात और प्रसूति ॥ ४२ ॥

मासत्रये चतुर्थे च गर्भस्य स्राव उच्यते।
पातः स्यात्पञ्चमे षष्ठे प्रसूतिः सप्तमादिषु ॥ ४३ ॥

गर्भाधानके अनन्तर यदि तीसरे और चौथे महीनेमें वह गर्भ स्त्रीके पेटसे च्युत होकर बाहर आजाय तो उसे स्राव कहते हैं, पांचवें और छठे मासमें यह कार्य हो तो उसे पात कहते हैं, तथा सातवें आदि महीनोंमें हो तो प्रसूति कहते हैं ॥ ४३ ॥

गर्भस्रावका सूतक।

माससंख्यादिनं मातुः स्रावे सूतकमिष्यते।
स्नानेनैव तु शुद्ध्यन्ति सपिंडाश्चैव वै पिता ॥ ४४ ॥

स्रावमें जितने महीनेका स्राव हो उतने दिन तकका सूतक माताके लिए कहा गया है। तथा अन्य सपिंड-गोत्रके बंधुओं तथा पिताके लिए कोई सूतक नहीं है, वे सिर्फ स्नान करें ॥ ४४ ॥

गर्भपातका सूतक।

पाते मातुर्यथामासं तावदेव दिनं भवेत्।
सूतकं तु सपिण्डानां पितुश्चैकदिनं भवेत् ॥ ४५ ॥

पातमें भी जितने महीनेका पात हो उतने दिनों तकका सूतक माताके लिए है, तथा अन्य भाई-बंधुओं और पिताके लिए एक दिनका सूतक है । गर्भपात सूतकके अनन्तर सब लोग स्नान करें ॥ ४५ ॥

प्रसूति-सूतक ।

प्रसूतौ चैव निर्दोषं दशाहं सूतकं भवेत् ।
क्षत्रस्य द्वादशाहं सच्छूद्रस्य पक्षमात्रकम् ॥ ४६ ॥

निर्दोष प्रसूति-बालकोत्पत्तिका दश दिनका सूतक है परंतु क्षत्रियोंको बारह दिनका और प्रशस्त शूद्रोंको पंद्रह दिनका है । इतना विशेष समझना कि राजाके लिए सूतक नहीं है ॥ ४६ ॥

त्रिदिनं यत्र विप्राणां वैश्यानां स्याच्चतुर्दिनम् ।
क्षत्रियाणां पञ्चदिनं शूद्राणां च दिनाष्टकम् ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणोंको जहां तीन दिनका सूतक हो वहां वैश्योंको चार दिनका, क्षत्रियोंको पांच दिनका और शूद्रोंको आठ दिनका है । भावार्थ—आगे जहां सूतक विधान कहा जायगा वहां वह सब दश दिनके क्रमानुसार कहा जायगा उसमें यह व्यवस्था लगा लेनी चाहिए ॥ ४७ ॥

मरणाशौच ।

नाभिच्छेदनतः पूर्वं जीवन् यातो मृतो यदि ।
मातुः पूर्णमतोऽन्येषां पितुश्च त्रिदिनं समम् ॥ ४८ ॥

जीता उत्पन्न हुआ बालक, नाभिनालके छेदनसे पहले ही मर जाय तो उसका सूतक माताके लिए पूर्ण दश दिनका है । तथा बालकके पिता, भाई और अन्य चौथी पीढ़ी तकके सपिंडोंके लिए तीन दिनका है ॥ ४८ ॥

मृतस्य प्रसवे चैव नाभिच्छेदनतः परम् ।
मातुः पितुश्च सर्वेषां जातीनां पूर्णसूतकम् ॥ ४९ ॥

मरा हुआ ही बालक उत्पन्न हो या नाभिनालके छेदनेके पश्चात् मरणको प्राप्त हो तो उसके माता, पिता और सपिंड बांधवोंको पूरे दश दिनका सूतक है ॥ ४९ ॥

अनतीतदशाहस्य बालस्य मरणे सति ।
पित्रोर्दशाहमाशौचं तदपैति च सूतकात् ॥ ५० ॥

दश दिन न होने पावे उसके पहले ही यदि बालक मर जाय तो सबको उन्हीं दश दिनोंतकका सूतक है । भावार्थ—ऊपरके श्लोकमें नाभिनाल छेदनेके बाद मरणको प्राप्त हुए बालकका सूतक सब बांधवोंके लिए दश दिनका कहा गया है, उसके भी बाद यदि बालक मरणको प्राप्त हो तो उसका सूतक और भी अधिक होगा इस संदेहको दूर करते हुए ग्रंथकार कहते हैं कि दश दिनोंसे पहले पहले कभी भी मरे हुए बालकका सूतक दशवें दिनतक ही रहता है, दशवें दिनसे ऊपर नहीं ॥ ५० ॥

दशाहस्यांत्यदिवसे मृतादूर्ध्वं दिनद्वयम् ।
अग्रं ततः प्रभाते तु दिवसत्रितयं पुनः ॥ ५१ ॥

इस श्लोकका भाव बराबर समझमें नहीं आया है। पर तौभी ऐसा मालूम पड़ता है कि दशवें दिन बालक मरे तो दो दिनका सूतक, और दशवें दिनकी रात बीतकर सूर्योदयके पहले पहले मरे तो तीन दिनका सूतक है। यह श्लोक ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचारमें भी है। वहां इससे आगे एक श्लोक और है, जो दशवें दिनके बाद ग्यारवें आदि दिनोंमें मरे हुए बालकका सूतक माता-पिताके लिए दश दिनका करार देता है। अतः हमारी समझसे यह अर्थ उपयुक्त मालूम पड़ता है ॥ ५१ ॥

नाम्नः प्राक् प्रस्थिते बाले कर्तव्यं स्नानमेव च।
तिलोदकं तदूर्ध्वं तु तत्पिण्डश्च व्रतात्परम् ॥ ५२ ॥

नामकरणसे पहले बालक मरे तो स्नान करना चाहिए। नामकरण बाद मरे तो स्नान करें और तिलोदक देवें। तथा उपनयन संस्कारके बाद मरे तो स्नान करें, तिलोदक दें और पिंड दें॥५२॥

संस्कारः स्यान्निखननं नाम्नः प्राक् बालकस्य तु।
तदूर्ध्वमशनादर्वाग्भवेत्तद्दहनं च वा ॥ ५३ ॥

नामकरणसे पहले मरे हुए बालकका शरीर-संस्कार खनन अर्थात् जमीनमें गाड़ना है। नामकरणके बाद और अशनक्रियासे पहले मरे हुएका खनन अथवा दहन है। भावार्थ—नामकरणके पहले मरे तो जमीनमें गाड़ें। तथा नामकरणके बाद और अशनक्रियासे पहले मरे तो उसे जमीनमें गाड़ें या जलावें ॥ ५३ ॥

निखनने विधातव्ये संस्थितं बालकं तदा।
वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निक्षिपेत्काष्ठवद्भुवि ॥ ५४ ॥

मरे हुए बालकको जमीनमें गाड़ना हो तो उसे वस्त्र पहनाकर गढ़ा खोदकर उसमें लकड़ीकी तरह लंबा सुला दें ॥ ५४ ॥

दन्तादुपरि बालस्य दहनं संस्कृतिर्भवेत्।
तयोरन्यतरं वाऽऽहुर्नामोपनयनान्तरे ॥ ५५ ॥

दांत उग आने बाद बालक मरणको प्राप्त हो तो उसका दहन-संस्कार करें। अथवा नामकरण और उपनयनसे पहले मरे हुए बालकका संस्कार खनन और दहन इन दोनोंमेंसे एक करें। यद्यपि विकल्पमें यह बात कही गई है तोभी इसका निर्वाह इस तरह करना चाहिए कि तीसरे वर्ष जो चूलाकर्म होता है उस चूलाकर्मसे पहले और नामकरणके बाद अर्थात् कुछ कम दो वर्ष तक तो जमीनमें ही गाड़ें, पश्चात् तीन वर्ष पूर्ण न हों तबतक जमीनमें गाड़ें या जलावें—दोनोंमेंसे एक करें। तीन वर्षके बाद जमीनमें न गाड़ें किन्तु जलावें ॥ ५५ ॥

जातदन्तशिशोर्नाशे पित्रोर्भ्रातुर्दशाहकम्।
प्रत्यासन्नसपिण्डानामेकरात्रमघं भवेत् ॥ ५६ ॥
अप्रत्यासन्नबन्धूनां स्नानमेव तदोदितम्।
आचतुर्थात्समासन्ना अनासन्नास्ततः परे ॥ ५७ ॥
स्नपने भूषणे वाहे दहने चापि संस्थितम्।
संस्पृशेयुः समासन्ना न त्वनासन्नबान्धवाः ॥ ५८ ॥

दांत उगे हुए बालकके मरणका सूतक माता पिता और भाइयोंके लिए दश दिन तकका और प्रत्यासन्न (निकटवर्ती) बांधवोंके लिए एक दिनका है। तथा जो बंधु अप्रत्यासन्न हैं—निकटवर्ती नहीं हैं वे सिर्फ स्नान करें। चार पीढ़ी तकके बंधुओंको प्रत्यासन्न बंधु कहते हैं। मृत बालकको स्नान कराते समय, वस्त्र पहनाते समय, श्मशानको ले जाते समय और जलाते समय आसन्न बंधुही उसका स्पर्श करें, अप्रत्यासन्नबंधु स्पर्श न करें॥ ५६–५८॥

कृतचौलस्य बालस्य पितुर्भ्रातुश्च पूर्ववत्।
आसन्नेतरबन्धूनां पञ्चाहैकाहमिष्यते॥ ५९॥

चौल–संस्कार किये हुए बालकके मरणका सूतक माता, पिता और भाइयोंको दश दिन तकका आसन्नबंधुओंको पांच दिन तकका और अनासन्न बंधुओंको एक दिनका है॥ ५९॥

मरणे चोपनीतस्य पित्रादीनां तु पूर्ववत्।
आसन्नबांधवानां च तथैवाशौचमिष्यते॥ ६०॥
पञ्चमानां तु षड्रात्रं षष्ठानां तु चतुर्दिनम्।
सप्तमानां त्रिरात्रं स्यात्तदूर्ध्वं न (तु) प्लुवं मतम्॥ ६१॥

उपनयनसंस्कार किये हुए बालकके मरणका सूतक माता, पिता और भाइयोंको दश दिनका है और चौथी पीढ़ी तकके आसन्न बांधवोंकोभी दश दिनका है, तथा पांचवीं पीढ़ीवालोंको छह दिनका, छठीवालोंको चार दिनका और सातवीं वालोंको तीन दिनका है। तथा सातवीं पीढ़ीसे ऊपरके गोत्रज बांधव सिर्फ स्नान करें॥ ६०–६१॥

जननाशौच।

जननेऽप्येवमेवाघं मात्रादीनां तु सूतकम्।
तदा नाघं पितुर्भ्रातुर्नाभिकर्तनतः पुरा॥ ६२॥
पिता दद्यात्तदा स्वर्णताम्बूलवसनादिकम्।
अशुचिनस्तु नैव स्युर्जनास्तत्र परिग्रहे॥ ६३
तदात्व एव दानस्यानुपपत्तिर्भवेद्यदि।
तदहः सर्वमप्यत्र दानयोग्यमिति स्मृतम्॥ ६४॥

जननाशौचमें भी माता आदिको इसी तरहका सूतक है अर्थात् माता, पिता, भाई और आसन्न बंधुओंको दश दिनका, पांचवीं पीढ़ीवालोंको छह दिनका, सातवीं वालोंको तीन दिनका है; परंतु बालक उत्पन्न होनेपर नाभिकर्तनसे पहले पहले पिता और भाईको सूतक नहीं है इसलिए उस समय बालकका पिता और भाई सोना, तांबूल, वस्त्र आदिका दान देवें। उस दानके लेनेवाले भी अशुचि–सूतकी नहीं होते। यदि बालक उत्पन्न होनेके अनन्तर ही पिताके लिए सूतक मान लिया जाय या उस दानके लेनेवालोंको अशुचि मान लिया जाय तो दान देनेकी रिवाज ही नहीं बनेगी। इसलिए बालकोत्पत्तिका वह सारा ही दिन दान देने योग्य है॥ ६२–६४॥

तदा पुम्प्रसवे मातुर्दशाहमनिरीक्षणम्।
अन्यं त्रिंशतिरात्रं स्याद्धनाधिकारलक्षणम्॥ ६५॥

स्त्रीसूतौ तु तथैव स्यादनिरीक्षणलक्षणम्।
पश्चादनधिकारार्घं स्यात्रिंशद्दिवसं भवेत् ॥ ६६ ॥

पुत्र-जन्ममें दश दिन तकका माताको अनिरीक्षण सूतक है अर्थात् दश दिनतक प्रसूतिका कोई मुखावलोकन न करें। तथा बीस दिनतकका उसे अनधिकार सूतक है अर्थात् प्रसूति दिनसे बीस दिनतक वह घरके कोई कार्य न करे। इसी तरह पुत्री-जन्ममें दश दिनका अनिरीक्षण सूतक और तीस दिनतकका अनधिकार सूतक है ॥ ६५-६६ ॥

तया सहैकवासादिसंसर्गे पितुरप्यघम्।
अनिरीक्षणमसंसर्गे त्वस्पृश्यार्घं मनाग्भवेत् ॥ ६७ ॥

यदि बालकका पिता प्रसूतिके साथ एक स्थानमें रहना आदि संसर्ग करे तो उसको भी अनिरीक्षण सूतक है अर्थात् दश दिन तक उसका भी कोई मुख न देखें। यदि वह प्रसूतिके साथ तो रहे पर उसका स्पर्श वगैरह न करे तो उसे अस्पृश्य सूतक है अर्थात् दश दिन तक उसका कोई स्पर्श न करे ॥ ६७ ॥

मृतकं मृतकेनैव सूतकं सूतकेन च।
शावेन शुद्ध्यते सूतिः शावं सूत्या न शुद्ध्यति ॥ ६८ ॥

मृतक सूतककी मृतक सूतकसे, जातक सूतककी जातक सूतकसे और जातक सूतककी मृतक सूतकसे शुद्धि हो जाती है; परंतु मृतक सूतककी जातक सूतकसे शुद्धि नहीं होती। भावार्थ—एक मृतक सूतकके बाद दूसरा मृतक सूतक और एक जातक सूतकके बाद दूसरा जातक सूतक आ उपस्थित हो तो पहले सूतककी समाप्तिके दिन ही दूसरा सूतक पूर्ण हो जाता है तथा मृतक सूतकके बाद प्रसूति सूतक हुआ हो तो मृतक सूतककी पूर्णताके दिन जातक सूतक भी पूर्ण हो जाता है, परन्तु प्रसूति सूतकके बाद मृतक सूतक हुआ हो तो प्रसूति सूतककी पूर्णताके दिन मृतक सूतक पूर्ण नहीं होता ॥ ६८ ॥

अथ देशांतरलक्षणं—देशान्तरका लक्षण।

महानद्यन्तरे यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः।
वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥ ६९ ॥
त्रिंशद्योजनदूरं वा प्रत्येकं देशभेदतः।
प्रोक्तं मुनिभिराशौचं सपिण्डानामिदं भवेत् ॥ ७० ॥

जहांपर बोली बदलते हुए महानदी बीचमें पड़ती हो या बोली बदलते हुए ही पर्वत बीचमें पड़ता हो वह देशान्तर है अथवा तीस योजनसे ऊपरके देशको भी देशान्तर कहते हैं। अगर कोई सपिंड (चौथी पीढ़ीतकके) बांधव देशान्तरमें निवास करते हों तो उनको यह सूतक देश-भेदकी अपेक्षासे प्राप्त होता है। भावार्थ—चौथी पीढ़ीतकके सपिंड देशान्तरोंमें हों तो उन्हींको देशभेदसे सूतक लगता है, पुत्रको नहीं ॥ ६९-७० ॥

पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः।
श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य पुत्राणां दशरात्रकम् ॥ ७१ ॥

माता और पिता मरणको प्राप्त हो गये हों और पुत्र देशान्तरमें रहता हो तो वह जिस दिन उनकी मृत्युका संवाद सुने उस दिनसे लेकर दश दिन तकका सूतक पाले ॥ ७१ ॥

पत्न्या अपि तथाशौचं भवेदेव विनिश्चितम् ।
पत्न्याशौचं भवेद्भर्तुरित्येवं मुनिरब्रवीत् ॥ ७२ ॥
दूरस्था निधनं भर्तुर्दशाहाच्छ्रूयते यदि ।
भार्या कुर्यादघं पूर्णं पत्न्या अपि पतिस्तथा ॥ ७३ ॥

पत्नीको पतिके मरणका और पतिको पत्नीके मरणका सूतक भी दश दश दिनका है। तथा पत्नी दूर रहती हो वह अपने पतिका मरण दश दिन बाद सुने एवं पति दूर रहता हो वह अपनी पत्नीका मरण दश दिन बाद सुने तो दोनों, जिस दिन मृत्युका संवाद सुनें उस दिनसे लेकर दश दश दिन तकका सूतक पालें ॥ ७२-७३ ॥

मातापित्रोर्यथाशौचं दशाहं क्रियते सुतैः ।
अनेकेऽब्देऽपि दम्पत्योस्तथैव स्यात्परस्परम् ॥ ७४ ॥

अनेक वर्षों बाद भी माता-पिताका मरण सुनने पर जैसे पुत्र दश दिनतकका सूतक पालता है वैसे ही पति-पत्नीको भी परस्परमें दश दश दिनका सूतक पालना चाहिए ॥ ७४ ॥

पितुर्दशाहमध्ये चेन्माता यदि मृता तदा ।
दहेन्मन्त्राग्निना प्रेतं न कुर्यादुदकक्रियाम् ॥ ७५ ॥
पैतृकादूर्ध्वमेव स्यान्मात्राशौचं तु पक्षिणी ।
विधायोदकधारादि कुर्यान्मातुः क्रियां ततः ॥ ७६ ॥

पिताकी मृत्युके दश दिनोंमें ही यदि माताका मरण हो जाय तो उसके मृतक शरीरका तो मंत्राग्निसे दहन करे परन्तु उसकी उदकक्रिया न करे। पिताके दश दिनोंके पश्चात् माताका पक्षिणी (डेढ़ दिनका) आशौच आता है उस समय उदकक्रिया आदि करके पश्चात् माताकी सब क्रियाएं करे ॥ ७५-७६ ॥

मातुर्दशाहमध्ये तु मृतः स्याद्यदि वै पिता ।
पितुर्मरणमारभ्य दशाहं शावकं भवेत् ॥ ७७ ॥

माताकी मृत्युके दश दिनोंमें ही यदि पिताका मरण हो जाय तो पिताकी मृत्युके दिनसे लेकर दश दिन तक उसके मरणका अशौच रहता है। भावार्थ-"मृतकं मृतकेनैव" इस श्लोकके अनुसार जैसे पिताकी मृत्युके दश दिनोंमें माताका मरण हो जानेपर माताका मरणाशौच पिताके दश-दिनोंमें ही समाप्त हो जाता है वैसे ही उसी श्लोकके अनुसार माताकी मृत्युके दश दिनोंमें पिताका मरण हो जानेपर पिताका मरणाशौच भी माताके दश दिनोंमें ही समाप्त हो जाना चाहिए। परंतु यहां यह नियम नहीं है। "मातुर्दशाहमध्ये" इत्यादि श्लोक "मृतकं मृतके नैव" इत्यादि श्लोकके विषयको बाधा पहुंचाता है। इसका कारण यह "कि समत्वे गुरुणा लघु बाध्यते लघुना गुरु न बाध्यते" अर्थात् समान सूतकमें गुरु सूतकद्वारा लघुसूतक बाधित हो जाता है परंतु लघुद्वारा गुरु बाधित नहीं

होता। अतएव पिताका पूर्ववर्ती आशौच तो माताके पश्चात् होनेवाले अशौचको बाधित कर देता है परंतु माताका पूर्ववर्ती आशौच पिताके पश्चात् होनेवाले आशौचको बाधित नहीं करता। यही कारण है कि पिताके आशौचकी समाप्तिके दिन माताका आशौच समाप्त होजाता है परंतु माताके आशौचके दिन बाद होनेवाला भी पिताका अशौच उस दिन समाप्त नहीं होता ॥ ७७ ॥

एकमेव पितुश्राद्धं कुर्याद्देशे दशाहनि।
ततो वै मातृकं श्राद्धं कुर्यादाद्यादि षोडश ॥ ७८ ॥

ऐसे समयमें पिताकी मृत्युके दशवें दिन प्रथम पिताका एक श्राद्ध करे। उसके बाद माताके प्रथम श्राद्धसे लेकर सोलह श्राद्ध करे। अनंतर पिताके सब श्राद्ध करे ॥ ७८ ॥

एकस्मिन्नेव काले चेन्मरणं श्रूयते तयोः।
दूरगोऽप्याचरेत्पुत्रो ह्याशौचमुभयोः समम् ॥ ७९ ॥

यदि पुत्र, माता और पिता दोनोंका मरण एक ही दिन सुने तो दूर देश रहते हुए भी वह दोनोंका बराबर अशौच पालन करे ॥७९॥

दूरदेशं गते वार्ता दूरतः श्रूयते न चेत्।
यदि पूर्ववयस्कस्य यावत्स्यादष्टविंशतिः ॥ ८० ॥
तथा मध्यवयस्कस्य ह्यब्दाः पञ्चदशैव तत्।
तथाऽपूर्ववयस्कस्य स्याद् द्वादशवत्सरम् ॥ ८१ ॥
अत ऊर्ध्वं प्रेतकर्म कार्यं तस्य विधानतः।
श्राद्धं कृत्वा षडब्दं तु प्रायश्चित्तं स्वशक्तितः ॥ ८२ ॥
प्रेतकार्ये कृते तस्य यदि चेत्पुनरागतः।
घृतकुम्भेन संस्नाप्य सर्वौषधिभिरप्यथ ॥ ८३ ॥
संस्कारान् सकलान् कृत्वा मौञ्जीबन्धनमाचरेत्।
पूर्वपत्न्या सहैवास्य विवाहः कार्य एव हि ॥ ८४ ॥

अपने कुटुंबका कोई व्यक्ति देशान्तरको चला जाय और उसका कोई समाचार न आवे तो ऐसी दशामें वह पूर्व वय (तरुण अवस्थाकी पूर्व अवस्था)का हो तो अट्ठाईस वर्ष तक, मध्यम वयका हो तो पंद्रह वर्षतक और अपूर्व वय (मध्यम वयके बादकी अवस्था) का हो तो बारह वर्षतक उसके आनेकी राह देखी जाय। अनन्तर विधि-पूर्वक उसकी प्रेतक्रिया करनी चाहिए। उसका श्राद्ध कर छह वर्षतकका अपनी शक्तिके अनुसार प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए और यदि प्रेत कार्य करनेपर वह आजाय तो उसका सर्वौषधि रससे और घृतसे अभिषेक करें, उसके सब जातकर्म संस्कार करें, नवीन यज्ञोपवीत संस्कार करें और यदि उसका पहले विवाह हुआ हो और वह पूर्व पत्नी जीती हो तो उसीके साथ पुनः विवाह-कार्य किया जाय ॥ ८०-८४ ॥

शुद्धिके दिन रोगीकी स्नानविधि।

आतुरे तु समुत्पन्ने दशवारमनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनमातुरः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

घरका कोई मनुष्य बीमार हो या वह और किसी रोगसे ग्रसित हो अतः सूतक-शुद्धिके दिन वह स्नान न कर सकता हो तो दूसरा नीरोग मनुष्य स्नान कर उसका स्पर्श करे फिर स्नान कर स्पर्श करे एवं दशवार स्नान कर करके उसका स्पर्श करे ऐसा करनेसे वह रोगी मनुष्य शुद्ध हो जाता है ॥ ८५ ॥

ज्वर-ग्रसित रजस्वलाकी शुद्धि।

ज्वराभिभूता या नारी रजसा चेत्परिप्लुता।
कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥ ८६ ॥
चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम्।
स्नात्वा चैव पुनस्तां वै स्पृशेत् स्नात्वा पुनः पुनः ॥ ८७ ॥
दशद्वादशकृत्वो वा ह्याचमेच्च पुनः पुनः।
अन्त्ये च वाससां त्यागं स्नाता शुद्धा भवेत्तु सा ॥ ८८ ॥

कोई ज्वरसे पीड़ित स्त्री रजस्वला हो जाय तो उसकी शुद्धि कैसे हो ? कैसी क्रिया करनेसे वह शुद्ध हो सकती है ? यह एक भारी कठिन समस्या है अतः इसका उपाय यह है कि चौथे दिन दूसरी स्त्री स्नानकर उस रजस्वलाका स्पर्श करे, फिर स्नान कर स्पर्श करे, फिर स्नान कर स्पर्श करे, इस तरह दश-बारह बार स्नान कर स्पर्श करे, और प्रत्येक स्नानमें आचमन करे। अन्तमें वह स्पर्श करनेवाली स्त्री अपने कपड़े भी उतार दे और उस रजस्वलाके कपड़े भी उतार दे और स्नान करले। ऐसा करनेसे ज्वर-पीड़ित रजस्वला शुद्ध होजाती है ॥ ८६-८८ ॥

रजस्वला-मरण।

पंचभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेता रजस्वला।
वस्त्रान्तरकृतां कृत्वा तां दहेद्विधिपूर्वकम् ॥ ८९ ॥

रजस्वला स्त्री मर जाय तो उसे पंच गव्यसे स्नान कराकर और दूसरे वस्त्र पहनाकर विधिपूर्वक उसका दहन करे ॥ ८९ ॥

प्रसूति-मरण।

सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः।
कुम्भे सलिलमादाय पंचगव्यं तथैव च ॥ ९० ॥
पुण्याहवाचनैर्मन्त्रैः सिक्त्वा शुद्धिं लभेत्तु सा।
तेनापि स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥ ९१ ॥

प्रसूति स्त्री मर जाय तो याज्ञिक पुरुष कैसा करें ? इसकी विधि यह है कि एक कलशमें जल और पंच गव्य भरकर पुण्याहवाचन मंत्रोंद्वारा उसका अभिषेक करें। ऐसा करनेसे प्रसूति शुद्धिको प्राप्त होती है। अनन्तर विधिपूर्वक उसके शवका दाह करें ॥ ९०-९१ ॥

अन्य-विधि।

दशाहाभ्यन्तरे चैव म्रियते चेत्प्रसूतिका।
कथं तस्या भवेच्छुद्धिर्दाहकर्म कथं भवेत् ॥ ९२ ॥

शूर्पेण स्नापयेद्देही दशवारं ततो जलैः ।
पञ्चपल्लवसंकल्पैः पञ्चगव्यैः कुशोदकैः ॥ ९३ ॥
कारयित्वा ततः स्नानमभिषिञ्चेत्कुशोदकैः ।
दाहयित्वा विधानेन मन्त्रवत्पैतृमेधिकम् ॥ ९४ ॥

प्रसूति स्त्री दश दिनके भीतर भीतर यदि मर जाय तो उसकी शुद्धि कैसे हो और कैसे उसकी दाह-क्रिया की जाय? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि गृहस्थ पुरुष उस मृत प्रसूताको सूप में जल भर भरकर दश स्नान करावे। अनन्तर शुद्ध (केवल) जलसे, पांच पत्तोंके जलसे, पंचगव्यसे और कुशोदकसे क्रमसे स्नान कराकर पुनः कुशोदकसे उसका अभिषेक करे। पश्चात् उसकी विधिपूर्वक दाहक्रिया करे॥ ९३–९४॥

गर्भिणी-मरण।

प्रवक्ष्यामि क्रमेणैव शौचं हि गृहमेधिनाम् ।
गर्भिण्यां तु मृतायां तु कथं कुर्वन्ति मानवाः ॥ ९५ ॥
गर्भिण्यां मरणे मासे षण्मासाभ्यन्तरे यदि ।
सहैव दहनं कुर्याद्गर्भच्छेदं न कारयेत् ॥ ९६ ॥
प्रेता स्मशानं नीत्वाथ भर्ता पुत्रः पितापि वा ।
छेदयेदूर्ध्वं षण्मासाज्ज्येष्ठभ्रातापि वोदरम् ॥ ९७ ॥
नाभेरधो वामभागे गर्भच्छेदो विधीयते ।
ततः पुण्याहमन्त्रेण सेचयेद्बालकान्विताम् ॥ ९८ ॥
जीवन्तं बालकं नीत्वा पोषणाय प्रदापयेत् ।
उदरं चाव्रणं कृत्वा पृषदाज्येन पूरयेत् ॥ ९९ ॥
मृद्भस्मकुशगन्धोदैः पंचगव्यैः सुमन्त्रितैः ।
स्नापयित्वा पिधायान्यद्वस्त्रं तच्चाथ तां दहेत् ॥ १०० ॥

गृहस्थोंकी शुद्धि क्रमसे कहेंगे। गर्भिणी स्त्री मर जाय तो दाह-विधि कैसे की जाय? प्रथम इसी प्रश्नका उत्तर देते हैं कि गर्भवती स्त्री गर्भके छह महीनोंके पहले पहले मर जाय तो उसका गर्भ-सहित ही दहन करें, गर्भच्छेद न करें। यदि गर्भ छह महीनोंसे ऊपरका हो तो उस मृत गर्भिणीको स्मशानमें ले जावें, वहां लेजाकर उसका पति या पुत्र या पिता या बड़ा भाई इनमेंसे कोई उसके नाभिसे नीचेके बायें भागकी तरफके उदरको चीरकर बच्चेको बाहर निकालें। अनन्तर पुण्याहवाचन मंत्रद्वारा बालकसहित उसका अभिषेचन करें। यदि बालक जीता हो तो उसे पालन-पोषणके लिए दे देवें। उदरके छेदमें दही-घृत भरकर मूंद दें। अनन्तर मंत्रित किये हुए मृत्तिका, भस्म, दर्भ और चंदनमिश्रित जलसे और पंचगव्यसे स्नान कराकर दूसरे वस्त्र पहनाकर उसकी दाहक्रिया करें॥ ९५–१००॥

मृते पत्यौ दशाहे स्त्री सूयते च रजस्वला ।
भूत्वा शुद्धा यथाकालं स्नात्वा चाभरणं त्यजेत् ॥ १०१ ॥

पति मरनेपर दशवें दिन यदि स्त्री प्रसूति हो जाय या रजस्वला हो जाय तो वह अपने नियत समयपर शुद्ध होकर और स्नानकर वस्त्राभरणोंका त्याग करे। यहांतक स्त्रियोंके विषयमें विचार किया। आगे दुर्मरण आदिका विचार करते हैं ॥ १०१ ॥

दुर्मरण।

विद्युत्तोयाग्निचाण्डालसर्पपाशद्विजादपि।
वृक्षव्याघ्रपशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ १०२ ॥

बिजली, जल, अग्नि, चांडाल, सर्प, व्याध, पक्षी, वृक्ष, व्याघ्र, तथा अन्य पशु इत्यादिके द्वारा पापियोंका मरण होता है ॥ १०२ ॥

आत्मानं घातयेद्यस्तु विषशस्त्राग्निना यदि।
स्वेच्छया मृत्युमाप्नोति स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १०३ ॥
देशकालभयाद्वापि संस्कर्तुं नैव शक्यते।
नृपाद्याज्ञां समादाय कर्तव्या प्रेतसत्क्रिया ॥ १०४ ॥
वर्षादूर्ध्वं भवेत्तस्य प्रायश्चित्तं विधानतः।
शान्तिकादिविधिं कृत्वा प्रोषधादिकसत्तपः ॥ १०५ ॥
मृतस्यानिच्छया सद्यः कर्तव्या प्रेतसत्क्रिया।
प्रायश्चित्तविधिं कृत्वा नैव कुर्यान्मृतस्य तु ॥ १०६ ॥
शस्त्रादिना हते सप्तदिनादर्वाक् मृतो यदि।
भवेद्दुर्मरणं प्राहुरित्येवं पूर्वसूरयः ॥ १०७ ॥

जो विष, शस्त्र, अग्नि आदिके द्वारा आत्मघात कर स्वेच्छासे मरणको प्राप्त होता है वह सीधा नरकको जाता है। ऐसे मनुष्यका देश और कालके भयसे दाह-संस्कार नहीं कर सकते हों तो राजा आदिकी आज्ञा लेकर उसकी दाहक्रिया करना चाहिए। एक वर्ष बाद शांतिविधि करके उसका विधिपूर्वक उपवास आदि प्रायश्चित्त ग्रहण करे। यदि वह अपनी अनिच्छासे विषादि द्वारा मरणको प्राप्त हुआ हो तो उसका दाह-संस्कार तत्काल करे। उसके इस अनिच्छा मरणका प्रायश्चित्त नहीं भी ले। शस्त्र आदिका प्रहार होनेपर सात दिनके पहले यदि उसका मरण हो जाय तो वह दुर्मरण है, ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं ॥ १३०-१०७ ॥

अथ पुत्रीप्रसंगः—कन्यामरणका आशौच।

कन्यानां मरणे चौलात्प्राग्बन्धोः स्नानमिष्यते।
व्रतात्प्रागघमेकाहं विवाहात्प्राग्दिनत्रयम् ॥ १०८ ॥
ऊढानां मरणे पित्रोराशौचं पक्षिणी मतम्।
ज्ञातीनां त्वाप्लवो भर्तुः पूर्णं पक्षस्य चोदितम् ॥ १०९ ॥

चौल-संस्कारसे पहले कन्याका मरण हो तो बंधुओंको सिर्फ स्नान कहा है—वे स्नानकर लेनेसे ही शुद्ध हो जाते है। व्रतबंधसे पहले मरण हो तो एक दिनका सूतक मनावें और विवाहसे

पहले मरण हो तो तीन दिनका सूतक धारण करें। विवाहिताका पतिके घरपर मरण हो तो उसके माता-पिता पक्षिणी आशौच मनावें। बंधुवर्ग स्नान करें। तथा उसके पति पक्षवाले पूर्ण दश दिनका सूतक पालें ॥ १०८-१०९ ॥

पक्षिणीलक्षणं-पक्षिणी आदिका लक्षण।

द्विदिवा रात्रिरेका च पक्षिणीत्यभिधीयते।
अहोरात्रमिति प्रोक्तं नैशिकीत्यभिधीयते ॥ ११० ॥

आसायमहरेव स्यात्सद्यस्तत्काल उच्यते।
एवं विचार्य निर्णीतमाशौचे तु मनीषिभिः ॥ १११ ॥

दो दिन और एक रातको पक्षिणी कहते हैं। एक दिन और एक रातको नैशिकी-रात्रि कहते हैं। सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्ततकके कालको दिन कहते हैं और सद्य तत्कालको कहते हैं। इस तरह इस आशौच प्रकरणमें मनीषियों (बुद्धिमानों) ने कालका निर्णय किया है ॥ ११० १११॥

प्रसूतास्वथवा तासु मृतासु पितृसद्मनि।
मात्रादीनां त्रिरात्रं स्यात्तत्पक्षस्यैकवासरम् ॥ ११२ ॥

पिताके घर पर प्रसूति हो या मरणको प्राप्त हो तो उसके मातापिता तीन रातका और उनके बंधुवर्ग एक दिनका आशौच पालें ॥ ११२ ॥

पुत्रीके लिए आशौच।

पुत्रीगृहेऽथवान्यत्र प्रमृतौ पितरौ यदि।
दशाहाभ्यन्तरे पुत्र्यास्त्रिरात्रं शावसूतकम् ॥ ११३ ॥

पुत्रीके घरपर या अन्यत्र उसके माता-पिता मरणको प्राप्त हों तो दश दिनके भीतर भीतर जब कभी मालूम हो तभी उसके लिए तीन रातका मृतक सूतक है ॥ ११३ ॥

स्वसुर्गृहे मृतो भ्राता भ्रातुर्वाथ गृहे स्वसा।
आशौचं त्रिदिनं तत्र पक्षिण्यौ वा परत्र तु ॥ ११४ ॥

बहनके घरपर भाई या भाईके घरपर बहन मरणको प्राप्त हो तो दोनोंके लिए तीन तीन दिनका सूतक है और यदि इनका कहीं अन्यत्र मरण हो तो दोनोंके लिए एक एक पक्षिणी (एक दिन, एक रात और एक दिन एवं डेढ़ दिनका) सूतक है ॥ ११४ ॥

भगिनीसूतकं चैव भ्रातुश्चैवाथ सूतकम्।
नैव स्याद्भ्रातृपत्न्याश्च तथा च भगिनीपतेः ॥ ११५ ॥

भगिनीका सूतक भ्रातृपत्नीको और भाईका सूतक भगिनीपतीको नहीं है। भावार्थ—ननँदका सूतक उसकी भावीको और सालेका सूतक उसके बहनोईको नहीं लगता। किन्तु—॥११५॥

परस्परं श्रुते मृत्यौ स्वस्वभ्रात्रोस्तदा तयोः।
पत्न्याः पत्युर्भवेत्स्नानं कुटुम्बिनामपि स्मृतम् ॥ ११६ ॥

भ्रातृपत्नी-भाबी अपनी ननँदका और भगिनीपति-बहनोई अपने शालेका जिस समय मरण सुनें उस समय वे स्नान अवश्य करें तथा कुटुंबके लोग भी स्नान करें ॥ ११६ ॥

मातामहो मातुलश्च म्रियते वाथ तत्स्त्रियः ।
दौहित्रो भागिनेयश्च पित्रोर्वै म्रियते स्वसा ॥ ११७ ॥
स्वगृहे त्र्यहमाशौचं परत्र स्यात्तु पक्षिणी ।
श्रुतं बहिर्दशाहाच्चेत्स्नानेनैव च शुद्ध्यति ॥ ११८॥

मातामह–माताका पिता, मातुल–माताका भाई, उनकी स्त्रियां, दोहिता–पुत्रीका लड़का, भागिनेय–बहनका लड़का और माता पिताकी बहिनें, ये सब अपने घरपर मरें तो तीन दिनका आशौच है और अपने घरसे अन्यत्र मरें तो पक्षिणी आशौच है। तथा दश दिन बाद इनका मरण सुनें तो स्नान मात्रसे शुद्धि है। भावार्थ—नाना और नानी, मामा और मामी, दोहिता और भानजा तथा मौसी और भुआका अपने घरपर मरनेका तीन दिन आशौच है और अन्यत्र मरनेका पक्षिणी आशौच है। तथा दशदिनसे ऊपर मरण सुने तो स्नानमात्रसे शुद्धि है ॥ ११७–११८ ॥

व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ११९॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ।
श्राद्धत्यागविहीनस्य पण्ढपाषण्डपापिनाम् ॥ १२० ॥
पतितस्य च दुष्टस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ।
यदि दग्धं शरीरं चेत्सूतकं तु दिनत्रयम् ॥ १२१ ॥

महारोगसे पीड़ित, कदर्य (कंजूस), कर्जदार, आचरणहीन, मूर्ख, स्त्रीके वशीभूत, व्यसनी, पराधीन, श्राद्धत्यागी, दान न देनेवाला, नपुंसक, पाषंडी, पापी, जातिच्युत और दुष्ट, इनके मरणका सूतक, भस्मान्त–जबतक शरीर दग्ध न हो तब तक है। यदि इनके शरीरका दग्ध स्वयं करे तो तीन दिनका सूतक है। भावार्थ–व्याधित, कदर्य, ऋणग्रस्त आदि ये शब्द साधारण हैं; अतः साधारण अवस्थामें भी इनका प्रयोग देखा जाता है और विशेष विशेष अवस्थाओंमें भी इन्हींका प्रयोग होता है। ऐसी दशामें जिन्हें आगम-वाक्यका श्रद्धान नहीं, जो सूतक जैसे विषयोंको मानना ही नहीं चाहते वे इन शब्दोंको मामूलीसे मामूली हालतोंपर घटित करने लग जाते हैं अतः बुद्धिमानोंका कर्तव्य है कि वे इन शब्दोंकी योजना खास खास स्थलोंमें करें ॥ ११९–१२१ ॥

व्रतिनां दीक्षितानां च याज्ञिकब्रह्मचारिणाम् ।
नैवाशौचं भवेत्तेषां पितुश्च मरणं विना ॥ १२२ ॥

व्रती, दीक्षित, याज्ञिक और ब्रह्मचारी, इनको पिता-मरणको छोड़कर सूतक नहीं है ॥ १२२ ॥

श्रोत्रियाचार्यशिष्यर्षिशास्त्राध्यायाश्च वै गुरुः ।
मित्रं धर्मी सहाध्यायी मरणे स्नानमादिशेत् ॥ १२३ ॥

श्रोत्रिय, आचार्य, शिष्य, ऋषि, शास्त्र–पाठक, गुरु, मित्र, साधर्मी और सहाध्यायी (साथ पढ़नेवाला) इनकी मृत्यु होनेपर स्नान करना चाहिए ॥ १२३ ॥

समारब्धेषु वा यज्ञमहन्यासादिकर्मसु ।
बहुद्रव्यविनाशे तु सद्यः शौचं विधीयते ॥ १२४ ॥

यज्ञ, महान्यास जैसे बड़े बड़े धार्मिक प्रभावनाके कार्योंका समारंभ कर दिया हो और अपने प्रचुर द्रव्यका विनाश होता हो, ऐसी दशामें किसी कुटुंबीका मरण हो जाय तो सद्य-तत्काल शुद्धि कही गई है। भावार्थ—ऐसी दशामें स्नान मात्र कर लेनेपर शुद्ध है ॥ १२४ ॥

संन्यासविधिना धीमान् मृतश्चेद्धार्मिकस्तदा ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च देहसंस्कार इष्यते ॥ १२५ ॥
कायमाने गृहाद्बाह्ये शवं प्रक्षाल्य नूतनैः ।
वसनैर्गन्धपुष्पाद्यैरलंकुर्याद्यथोचितम् ॥ १२६ ॥
अथ संस्कृतये तस्य लौकिकाग्निं यथाविधि ।
आदाय प्रयते देशे कुर्यादौपासनानलम् ॥ १२७ ॥

कोई बुद्धिमान् धर्मात्मा ब्रह्मचारी और गृहस्थ यदि सन्यास-विधिसे मरणको प्राप्त हो तो उसके देहका संस्कार इस तरह कहा गया है कि उसके मृतशरीरको घरसे बाहर लावें, वहां उसका जलसे प्रक्षालन करें और नवीन वस्त्रोंसे तथा गन्ध, पुष्प आदिसे यथोचित अलंकृत करें। अनन्तर जहां उसके शरीरका संस्कार करना हो वहां संस्कारके लिए विधिपूर्वक लौकिक अग्नि (चूल्हेकी अग्नि) को औपासन अग्नि बनावें ॥१२५-१२७॥

विद्वद्विशिष्टपुरुषशवसंस्करणाय वै ।
एष औपासनोऽग्निः स्यादन्येषां लौकिको भवेत् ॥ १२८ ॥

विशेष बुद्धिमान् पुरुषोंके शवसंस्कारके लिए यह औपासन अग्नि काममें लेनी चाहिए, और सर्वसाधारणके लिए लौकिक अग्नि ॥ १२८॥

कन्याया विधवायाश्च सन्तापाग्निरिहेष्यते ।
अन्यासां वनितानां स्यादन्वग्निरिह कर्मणि ॥ १२९ ॥

कन्या और विधवाके शरीर-संस्कारार्थ संतापाग्नि कही गई है और अन्य स्त्रियोंके लिए अन्वग्नि ॥ १२९ ॥

लौकिक अग्निका ग्रहण और उसका लक्षण।

द्विजातिव्यतिरिक्तानां सर्वेषां लौकिको भवेत् ।
गृहे पाकादिकार्यार्थं प्रयुक्तो लौकिकोऽनलः ॥ १३० ॥

द्विजन्मोंको (जिनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ हो उनको) छोड़कर अन्य सबके शव-संस्कार के लिए लौकिक अग्नि मानी गई है। घरमें भोजन बनानेके लिए जो चूल्हेकी अग्नि होती है उसे लौकिक अग्नि कहते हैं ॥ १३० ॥

औपासन-अग्निका लक्षण।

योग्यप्रदेशे संस्थाप्य द्रव्यैस्तैः शास्त्रचोदितैः ।
हुत्वा संस्कृत्य चाह्याग्निरौपासन इति स्मृतः ॥ १३१ ॥

योग्य स्थानमें लौकिक अग्निको रखकर उसमें शास्त्रोंमें बताये हुए द्रव्योंका हवनकर संस्कार करना सो औपासन अग्नि है। भावार्थ—कुंडमें अथवा मिट्टीके चौकोन चबूतरेपर लौकिक अग्निको स्थापन करें, उसमें शास्त्रोंमें बताये हुए द्रव्योंका हवन करें। ऐसा करनेसे लौकिक अग्नि औपासन अग्नि हो जाती है॥ १३१॥

संतापाग्नि।

दर्भैर्दर्भैरिति पञ्चकृत्वः सन्तापयेत्ततः।
काष्ठौघैर्बोधितो वन्हिः सन्तापाग्निरितीरितः॥ १३२॥

प्रथम अग्निको पांच वार दर्भ डाल डालकर संतापित करे, अनन्तर उसे लकड़ियोंमें लगाकर प्रज्वलित करे; इसीको संतापाग्नि कहते हैं॥ १३२॥

अन्वग्नि।

चुल्यामग्निं समुज्वाल्य न्यस्य स्थालीं तदूध्र्वतः।
तत्र स्थितः करीषाद्यैर्बोधितोऽन्वग्निरिष्यते॥ १३३॥

चूल्हेमें अग्नि जलाकर, उसे किसी पात्रमें रखकर ऊपरसे कंडे आदि रखकर जलाना अन्वग्नि है। भावार्थ—चुल्हेकी अग्निको मिट्टीकी हांडि या अन्य किसी वर्तनमें रखकर उसके ऊपर कंडे जलाना सो अन्वग्नि है॥ १३३॥

तत्तच्छरीरसंस्कारे यस्तु योग्य इतीष्यते।
अग्निं तमेव काष्ठाद्यैरुखायां प्रतिबोधयेत्॥ १३४॥

जिन जिन शरीरोंके संस्कारमें जो जो अग्नि योग्य कही गई है उसी उसी अग्निको हांडिमें काष्ट आदिसे प्रज्वलित करे॥ १३४॥

वोढारश्चाथ चत्वारः कल्पनीयाः सजातयः।
त एव योज्या भूषायां वाहे दाहे शवस्य हि॥ १३५॥

मृतक शरीरको उठाकर ले जानेवाले चार सजाति पुरुष होना चाहिए। वे ही चारों उस मृतक-शरीरको स्नान करावें, आभूषण पहनावें, उठाकर ले जावें और चितामें रख कर जलावें॥ १३५॥

शोभमाने विमाने च शाययित्वा शवं दृढम्।
मुखाद्यङ्गं समाच्छाद्य वस्त्रैः स्रग्भिस्तदूर्ध्वतः॥ १३६॥
तद्विमानं समाधृत्य शनैर्ग्रामाभिमस्तकः।
वोढारस्ते नयेयुस्तं नयेदेक उखानलम्॥ १३७॥
विमानस्य पुरोदेशे गच्छेयुर्ज्ञातयस्ततः।
शवानुगमनं कुर्युः शेषाः सर्वे स्त्रियोऽपि च॥ १३८॥

एक अच्छा विमान (ठठरी) बनाकर उसमें शवको मजबूतीके साथ सुलावें। उसके मुख आदि सब अंगको वस्त्रसे ढांकें। ऊपर पुष्पमालाएं लपेटें। चार जने उस विमानको धीरेसे उठाकर कंधेपर

रखकर ले जावें, शवका मस्तक ग्रामकी तरफ रक्खें। एक मनुष्य उखानल लेकर (हांडिमें अग्नि रखकर) चले। कुटुंबीजन विमानके आगे चलें। अन्य सब लोग और स्त्रियां भी विमानके पीछे पीछे गमन करें॥ १३६--१३८॥

विमानमवरोह्याथ मार्गस्यार्धे निवेश्य च।
विहृत्य तन्मुखं स्वीयो मुहुस्तोयैस्तु सिञ्चयेत्॥ १३९॥
प्रमादपरिहारार्थं परीक्ष्यैवं प्रयत्नतः।
स्मशानाभिमुखं पश्चान्नीत्वा तत्रावरोह्य च॥ १४०॥
ततः संस्थितमुद्धृत्य चितायां पूर्वदिङ्मुखम्।
उपवेश्योत्तरास्यं वा मुखरन्ध्रेषु सप्तसु॥ १४१॥
सुवर्णेनोद्धृतं सर्पिर्दधि च स्पर्शयेत्ततः।
अक्षताँश्च तिलाँश्चापि मस्तके प्रक्षिपेदनु॥ १४२॥

आधी दूर चले जानेपर विमानको कंधपरसे उतारकर नीचे रक्खें। वहां उसका कोई आत्मीय पुरुष उसके मुखपरका वस्त्र हटाकर मुखमें थोड़ासा पानी सींचे। अनन्तर सावधानीके साथ देख-भालकर विमान उठावें। इस समय मृतकका सिर स्मशानकी ओर करें। वहां उसे लेजाकर नीचे उतारें, विमानमें स्थित उस शवको उठाकर चितामें बैठावें, पूर्व दिशाकी ओर या उत्तर दिशाकी ओर उसका मुख करें। दोनों आंखें, नासिकाके दोनों विवर और मुख एवं सात छेदोंमें सुवर्णकी सलाईसे उठाकर घृत और दहीका स्पर्श करावें। अनन्तर उसके मस्तकपर अक्षत और तिल क्षेपें॥१३९-१४२॥

एकवारं जलं सव्यधारया पातयेत्ततः।
द्विवारमपसव्येन सनालकलशात् स्वकः॥ १४३॥
ततोऽपि सर्वबन्धूनां पर्ययास्तु त्रयो मताः।
पूर्वान्त्यौ सव्यवृत्त्यैव मध्यमस्त्वपसव्यतः॥ १४४॥
मुक्तकेशाः कनिष्ठा ये प्रलम्बितकरद्वयाः।
पर्ययद्वितयं कुर्युस्तृतीयं वृद्धपूर्वकाः॥ १४५॥

इसके बाद वही आत्मीय बंधु, नाळदार कलश (भृंगार--झारी)से एक बार बायें हाथसे जल सींचे और दो बार दाहिने हाथसे सींचे। फिर उपस्थित सब बंधुओंका तीन पर्यय (पार्टी) बनाया जाय। पहली पार्टी और तीसरी पार्टीके बंधु बायें हाथसे और दूसरी पार्टीवाले दाहिने हाथसे जलधारा दें। पहली पार्टी छोटे छोटे बालकोंकी बनावे, वे अपने सिरके बाल खुले रक्खें। दूसरी पार्टी मध्यम वयवालोंकी बनावे, ये अपने दोनों हाथ लंबे लटकाकर रक्खें तथा तीसरी पार्टी वृद्धपुरुषोंकी बनावे॥ १४३--१४५॥

ततः प्रदक्षिणीकुर्याच्चितापार्श्वे परिस्तरम्।
खादिरैरिन्धनैरन्यैरथवा हस्तविस्तृतम्॥ १४६॥

बाद सब मिलकर उसके प्रदक्षिणा दें तथा वहीं चिताके पास खैर या अन्य लकडियोंका एक हाथ लंबा एक परिस्तर (स्थंडिल–चबूतरासा) बनावें ॥ १४६ ॥

उखावह्निं समुद्दीप्य सकृदाज्यं प्रयोज्य च ।
पर्युक्ष्य निक्षिपेत्पश्चाच्छनैस्तत्र परिस्तरे ॥ १४७ ॥
ततः समन्तात्तस्योर्ध्वं निदध्यात्काष्ठसञ्चयम् ।
सर्वतोऽग्निं समुज्वाल्य संप्लुष्यात्तत्कलेवरम् ॥ १४८ ॥

अनन्तर उखाग्निको प्रज्वलित करे, उसमें एक वार घृतकी आहुति दे और चारों तरफ जल सिंचन करे। बाद उस अग्निको उठाकर परिस्तरपर क्षेपण करे, उसके ऊपर लकडियां रक्खे, अनन्तर चिताके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर उस शवको दग्ध करे ॥ १४७–१४८ ॥

चिता रचने आदिके मंत्र ।

मंत्र—ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठसञ्चयं करोमि स्वाहा ।

इस मंत्रको पढ़कर चिता बनावे।

मंत्र—ॐ ह्रीं ह्रौं झ्रौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा । इति मंत्रेण पञ्चामृतैरभिषिञ्च्य तत्पुत्रादयो वा त्रिःप्रदक्षिणां कृत्वा काष्ठे शवं स्थापयेयुः ।

इस मंत्रको पढ़कर शवका पांच अमृतोंसे अभिषेक करे । उसके पुत्रादि उसके तीन प्रदक्षिणा देकर उसे चितामें स्थापित करें ।

मंत्र—ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा । अनेनाग्निं सन्धुक्ष्य सर्पिरादिना प्रसिञ्च्य प्रज्वाल्य जलाशयं गत्वा स्नानं कुर्यात् ।

इस मंत्रका उच्चारण कर अग्नि जलावें, घृत आदिकी आहुति दें, चितामें अग्नि लगावें । अनन्तर जलाशयपर जाकर स्नान करें ।

अथोदकान्तमायान्तु सर्वे ते ज्ञातिभिः सह ।
वोढारस्तत्र कर्ता च यान्तु कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ १४९ ॥

अनन्तर वे सब जातीय बांधवोंके साथ साथ जलाशयके समीप जावें । परन्तु उनमेंसे विमान उठानेवाले और संस्कारकर्ता उस चिताकी प्रदक्षिणा देकर जावें ॥ १४९ ॥

तिथिवारर्क्षयोगेषु दुष्टेषु मरणं यदि ।
मृतस्योत्थापनं चैव दीर्घकालादभूयदि ॥ १५० ॥
तद्दोषपरिहारार्थं कर्ता कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
प्रांजलिः प्रार्थ्य गृण्हीयात्प्रायश्चित्तं विपश्चितः ॥ १५१ ॥
यथाशक्ति जिनेज्या च महायन्त्रस्य पूजनम् ।
शान्तिहोमयुतो जाप्यो महामन्त्रस्य तस्य वै ॥ १५२ ॥

आहारस्य प्रदानं च धार्मिकाणां शतस्य वा ।
तदर्धस्याथवा पंचविंशतेः प्रविधीयते ॥ १५३ ॥
तीर्थस्थानानि वन्धानि नव वा सप्त पंच वा ।
दुष्टतिथ्यादिमरणे प्रायश्चित्तमिदं भवेत् ॥ १५४ ॥

दुष्ट तिथि, वार, नक्षत्र और योगमें यदि किसीका मरण हो जाय और मृतक पुरुषको मरणके बाद बहुत देरसे जलानेके लिए ले जाय तो उस दोषके परिहारके लिए कर्ता हाथ जोड़ प्रदक्षिणा देकर विद्वानोंसे प्रार्थना करे और प्रायश्चित्त ले । यथाशक्ति जिनभगवान्‌की पूजा करे, महायंत्रकी पूजा करे, शान्तिविधान और होम करे, महामंत्र का जाप्य दे । सौ, पचास, किंवा पचीस धर्मात्माओंको आहार-दान दे । नौ, सात या पांच तीर्थोंकी वंदना करे । यह दुष्ट तिथि आदिमें मरनेका प्रायश्चित्त है ॥ १५०-१५४ ॥

अतिदुर्भिक्षशस्त्राग्निजलयात्रादिना मृते ।
प्रायश्चित्तं तु पुत्रादेस्तदानीमिदमिष्यते ॥ १५५ ॥
महायन्त्रं समाराध्य शान्तिहोमौ विधाय च ।
अष्टोत्तरसहस्रेण घटैरष्टशतेन वा ॥ १५६ ॥
जिनस्य स्नपनं कार्यं पूजा च महती तदा ।
दश तीर्थानि वन्धानि नव वा सप्त पञ्च वा ॥ १५७ ॥
गोदानं क्षेत्रदानं च तीर्थस्य विदुषामपि ।
पञ्चानां मिथुनानां तु अन्नदानं सधर्मिणाम् ॥ १५८ ॥
अब्दादर्वाग्विधायैवं पूजनीयो जिनोत्तमः ।
एवं कृते तु बन्धूनां स दोष उपशाम्यति ॥ १५९ ॥

अत्यंत दुर्भिक्ष, शस्त्र, अग्नि, जलयात्रा आदिके संबंधसे मरण हो तो उस समय उस मृतकके पुत्र आदिके लिए यह प्रायश्चित्त है । महायंत्रकी आराधना करे, शान्तिपाठ पढ़े, होम करे, एक हजार आठ या एक सौ आठ कलशोंसे जिनदेवका अभिषेक करे, उनकी अष्ट द्रव्योंसे पूजा करे, दश, नौ सात किंवा पांच तीर्थोंकी वंदना करे । तीर्थोंको तथा विद्वानोंको गोदान दे, क्षेत्रदान दे और पांच सधर्मी स्त्री-पुरुषके जोड़ेको आहार-दान दे । मरणसमयसे लेकर एक वर्षसे पहले पहले तक उक्त विधि करना चाहिए । ऐसा करनेपर बंधुओंके उक्त दोषको शान्ति होती है ॥ १५५-१५९ ॥

विद्वद्भिशिष्टपुरुषैः प्रायश्चित्तमिदं तदा ।
वक्तव्यं प्रकटं कृत्वा ग्राह्यं कर्त्रा यथाबलम् ॥ १६० ॥

उस समय विद्वान पुरुष उक्त प्रायश्चित्त प्रकट कर कहें और कर्त्ता यथाशक्ति उस प्रायश्चित्तको ग्रहण करे ॥ १६० ॥

क्षौर-विधि।

ततः कपालदहने जाते कर्ता च दाहकः ।
ज्ञातयश्च यथायोग्यं विदध्युर्वपनं तदा ॥ १६१ ॥
मातुः पितुः पितृव्यस्य मातुलस्याग्रजस्य च ।
श्वशुराचार्ययोरेषां पत्नीनां च पितृष्वसुः ॥ १६२ ॥
मातृष्वसुर्भगिन्याश्च ज्येष्ठाया मरणे सति ।
दृष्टे तदानीं वपनं श्रुते प्राङ्मासतो भवेत् ॥ १६३ ॥
मातरं पितरं ज्येष्ठमाचार्यं श्वशुरं विना ।
न कार्यं वपनं त्वन्यमृतौ गर्भवता तदा ॥ १६४ ॥

कपालका दहन हो जानेपर कर्ता, दाहक और अन्य बांधव यथायोग्य क्षौरकर्म-मुंडन करावें। माता, पिता, पितृव्य (चाचा) मामा, बड़ा भाई, श्वशुर, गृहस्थाचार्य, इन सबकी धर्म-पत्नियां, पिताकी बहिन-भुआ, माताकी बहिन-मौसी और अपनी बड़ी बहिन इनमेंसे कोई भी मरे तो क्षौरकर्म करावे। इनमेंसे किसीके मरणके समय वहीं हो तो उसी समय क्षौरकर्म करावे। अगर विदेशमें हो तो मरण दिनसे लेकर एक माह पहले मरण सुने तो जब सुने तभी करावे। एक माहसे ऊपर मरण सुने तो माता, पिता, बड़ा भाई गृहस्थाचार्य और श्वशुर इनको छोड़कर अन्यका मरण होनेपर क्षौरकर्म न करावे ॥ १६१-१६४ ॥

स्नान-विधि।

ततोऽवगाह्य सलिले कटिदघ्ने सचेलकम् ।
निमज्योत्थाय वारांस्त्रीन् स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ १६५ ॥
जलान्निर्गत्य तत्तीरे वस्त्रं निष्पीड्य तत्पुनः ।
धृत्वाऽऽचम्य ततः प्राणायामं कुर्यात्समन्त्रकम् ॥ १६६ ॥

अनन्तर कटिपर्यंत पानीमें तीन बार डुबकी लगाकर यथाविधि वस्त्रसहित स्नान करें। पश्चात् जलसे बाहर निकलकर उसकी तीरपर वस्त्रोंको निचोड़कर और अच्छी जगहपर रखकर आचमन करें और मंत्रपूर्वक प्राणायाम करें ॥ १६५-१६६ ॥

शिलास्थापन और ग्रामप्रवेश।

ततो मृतस्य तस्यास्य रत्नत्रयसमाश्रयम् ।
देहं विनष्टं सन्न्याससमाधिमृतिसाधनम् ॥ १६७ ॥
उत्कृष्टपरलोकस्य संप्राप्तेरपि कारणम् ।
मत्वेति धर्मवात्सल्याद्बन्धुवात्सल्यतोऽपि च ॥ १६८ ॥
तद्देहप्रतिबिम्बार्थं मण्डपे तद्विनाऽपि वा ।
स्थापयेदेकमश्मानं तीरे पिण्डादिदत्तये ॥ १६९ ॥

पिण्डं तिलोदकं चापि कर्ता दद्याच्छिलाग्रतः ।
सर्वेऽपि बन्धवो दद्युः स्नातास्तत्र तिलोदकम् ॥ १७० ॥
ततोऽपि स्नानमाचार्यं निमज्जनसमन्वितम् ।
ततः कनिष्ठं कृत्वाऽग्रे सर्वे ग्रामं प्रयान्तु वै ॥ १७१ ॥

अनन्तर इस मृतक पुरुषका रत्नत्रयका आश्रय, सन्यासमरण और समाधिमरणका साधन तथा परमोत्कृष्ट परलोककी प्राप्तिका कारण शरीर नष्ट होगया ऐसा मान कर धर्मवात्सल्यसे और बंधुत्वके वात्सल्यसे भी उसके शरीरके प्रतिबिंबके लिए अर्थात् यह उसके शरीरकी स्मृतिका चिन्ह है ऐसा समझकर जलाशयकी तीरपर मंडपमें या विना ही मंडपके पिंडदानके लिए एक पत्थरकी स्थापना करे। उस शिलाके अग्रभागमें कर्ता पिंड और तिलोदक दे और अन्य सब बंधु भी स्नान कर तिलोदक देवें। अनन्तर सबके सब डुबकी लगाकर स्नान करें। पश्चात् एक छोटे बालकको आगे कर सब ग्रामकी ओर प्रयाण करें ॥१६७-१७१॥

द्वितीय दिनसे लेकर दशवें दिनतकके कृत्य।

परेद्युरपि पूर्वाह्ने योषितो ज्ञातयोऽपि वा ।
गत्वा स्मशानं तत्राग्नौ विदध्युः क्षीरसेचनम् ॥ १७२ ॥
तृतीये दिवसे कुर्यादग्निनिर्वापनं प्रगे ।
अस्थिसञ्चयनं तुर्ये पञ्चमे वेदिनिर्मितिम् ॥ १७३ ॥
तत्र पुष्पांजलिं षष्ठे सप्तमे वलिकर्म च ।
वृक्षस्य स्थापनं पश्चान्नवमे भस्मसंस्कृतिम् ॥ १७४ ॥
दशमे तु गृहामत्रवासःशुद्धिं विधाय च ।
स्नात्वा च स्नापयित्वा च दाहकं भोजयेद् गृहे ॥ १७५ ॥
एवं दशाहपर्यन्तमेतत्कर्म विधीयते ।
पिण्डं तिलोदकं चापि कर्ता दद्यात्तदाऽन्वहम् ॥ १७६ ॥

दूसरे दिन सुबहके समय, स्त्रियां या मृतकके बंधुओंमेंसे कोई पुरुष स्मशानमें जाकर उस अग्निमें दूध सींचें। तीसरे दिन सुबह अग्नि बुझावें। चौथे दिन अस्थिसंचय (नाखून आदि इकट्टे) करें। पांचवें दिन वहां एक वेदी (चबूतरा) बनावें। छठे दिन उसपर पुष्पांजली क्षेपण करें। सातवें दिन बलि (सीझा हुआ धान्य) चढ़ावें। आठवें दिन वृक्षकी स्थापना करें। दशवें दिन घर, बर्तन, कपड़े आदिकी शुद्धि करें। अनन्तर स्वयं स्नान करके व औरोंको कराके दाहकोंको अपने घरपर भोजन करावें। इस तरह दश दिनतक यह विधान करें। संस्कारकर्ता उस समय प्रतिदिन पिंड और तिलोदक देवे ॥ १७२-१७६ ॥

पिण्डप्रदानतः पूर्वमन्ते च स्नानमिष्यते ।
पिण्डः कपित्थमात्रश्च शाल्यन्धसा कृतः ॥ १७७ ॥

तत्पाकश्च बहिः कार्यस्तत्पात्रं च शिलापि च ।
कर्तुः संव्यानकं चापि बहिः स्थाप्यानि गोपिते ॥ १७८ ॥

पिंड देनेके पहले और पीछे स्नान करे । कैथकी बराबर, चावलोंका पिंड बनावे । चावलोंको घरसे बाहर पकावे, घरमें न पकावे । चांवल, पकानेका पात्र, पत्थर और अपने पहनने-ओढ़नेके दोनों वस्त्र, इन सबको वह पिंडदाता पहले ही घरसे बाहर किसी गुप्त स्थानमें रखदे, घरमेंसे न मंगवावे । भावार्थ--जिस समय पिंड बनानेके लिए पिंडदाता स्नान करे वह उसके पहले उक्त चीजोंको घरसे बाहर किसी गुप्तस्थानमें लेजाकर रखदे । अनन्तर स्नान कर उन चीजोंको वहांसे ले आवे किसीके हाथ न मंगवावे ॥ १७७–१७८ ॥

प्रेतदीक्षा ।

कर्तुः प्रेतादिपर्यन्तं न देवादिगृहाश्रमः ।
नाधीत्यध्यापनादीनि न ताम्बूलं न चन्दनम् ॥ १७९ ॥
न खट्वाशयनं चापि न सदस्युपवेशनम् ।
न क्षौरं न द्विभुक्तिश्च न क्षीरघृतसेवनम् ॥ १८० ॥
न देशान्तरयानं च नोत्सत्रागारभोजनम् ।
न योषासेवनं चापि नाभ्यङ्गस्नानमेव च ॥ १८१ ॥
न मृष्टभक्ष्यसेवा च नाक्षादिक्रीडनं तथा ।
नोष्णीषधारणं चैषा प्रेतदीक्षा भवेदिह ॥ १८२ ॥

मृतकक्रिया करनेवाला मरणदिनसे लेकर शुद्धिदिनपर्यंत देवपूजा आदि गृहस्थके षट्कर्म न करे, अध्ययन–अध्यापन न करे, तांबूल (पान-बीड़ा) न चावे, तिलक न करे, पलंगपर न सोवे, सभा–गोष्ठीमें न बैठे, क्षौरकर्म न करावे, दो वार भोजन न करे, (एकवार भोजन करे)। दूध-घी न खावे, अन्य देश–ग्रामको न जावे, ज्योंनारमें न जीमें (फ्रूटपार्टी आदिमें शामिल न होवे), स्त्रीसेवन न करे, तैलकी मालिश कर स्नान न करे, मिष्टान्न भक्षण न करे, पांसे आदिसे न खेले, चौपड़ सतरंज आदिके खेल न खेले और शिरपर पगड़ी साफा व टोपी वगैरह न लगावे । यह सब प्रेतदीक्षा है ॥ १७९–१८२ ॥

यावन्न क्रियते शेषक्रिया तावदिदं व्रतम् ।
आचार्यं कर्तुरेकस्य ज्ञातीनां त्वादशाहतः ॥ १८३ ॥

जब तक बारहवें दिनकी शेषक्रिया न करले तब तक दाहकर्ता उक्त व्रतोंका पालन करे । तथा अन्य कुटुंबी जन दशवें दिन तक इन व्रतोंको पालें ॥ १८३ ॥

कर्ताका निर्णय ।

कर्ता पुत्रश्च पौत्रश्च प्रपौत्रः सहजोथवा ।
तत्सन्तानः सपिण्डानां सन्तानो वा भवेदिह ॥ १८४ ॥

सर्वेषामप्यभावे तु भर्ता भार्या परस्परम् ।
तत्राप्यन्यतराभावे भवेदेकः सजातिकः ॥ १८५ ॥
उपनीतिविहीनोऽपि भवेत्कर्ता कथञ्चन ।
स चाचार्योक्तमन्त्रान्ते स्वाहाकारं प्रयोजयेत् ॥ १८६ ॥

मृतकक्रियाका कर्ता सबसे पहले पुत्र है। पुत्रके अभावमें पोता, पोतेके अभावमें भाई, भाईके अभावमें उसके लड़के, उनके भी अभावमें सपिंडों (जिनको दश दिन तकका सूतक लगता है ऐसे चौथी पीढ़ी तकके सगोत्री बांधवों) की संतान है। इन सभीका अभाव हो तो पति-पत्नी परस्पर एक दूसरेके संस्कारकर्ता हो सकते हैं। इनका भी अभाव हो अर्थात् पुरुषके पत्नी न हो और स्त्रीके पति न हो तो उनकी जातिका कोई एक पुरुष हो सकता है। जिसका उपनयन संस्कार नहीं हुआ हो वह भी कथंचित् कर्ता हो सकता हैं, परंतु सजाति होना चाहिए। वह जब आचार्य मंत्रोच्चारण करे उसके अंतमें सिर्फ 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करे-मंत्रोच्चारण न करे ॥ १८४-८६ ॥

शेषक्रियाका लक्षण और उसके करनेका समय।

प्रेतकायस्य पाश्चात्यक्रिया शेषक्रिया भवेत् ।
तस्याप्यघस्य संशुद्धिर्दशमे दिवसे भवेत् ॥ १८७ ॥
तदैव पिण्डपाषाणमुद्धृत्य सलिले क्षिपेत् ।
तदूर्ध्वं द्वादशाहं तु भवेच्छेषक्रियाक्रमः ॥ १८८ ॥

मरणाशौचकी सबसे अंतिम क्रियाको शेषक्रिया कहते हैं। उस आशौचकी शुद्धि भी दशवें दिन होजाती है—दश दिनसे ऊपर मरणाशौच नहीं रहता। जलाशयके तीरपर पिंड देनेके लिए जो पाषाण (शिला) स्थापित किया जाता है उसे उसी दिन (दशवें दिन ही) पानीमें फेंक दे। अनन्तर बारहवें दिन शेष क्रियाक्रम करे ॥१८७-१८८॥

अस्थिसंचय।

तदाऽस्थिसञ्चयश्चापि कुजवारे निषिध्यते ।
तथैव मन्दवारे च भार्गवादित्ययोरपि ॥ १८९ ॥
अस्थीनि तानि स्थाप्यानि पर्वतादिशिलाबिले ।
प्रकृत्यवधिखातोर्व्यामथवा पौरुषावटे ॥ १९० ॥

उस समय मृतककी अस्थियों (हड्डियों) का संचय भी करना चाहिए। मंगलवार, शनिवार, शुक्रवार और रविवारको अस्थिसंचय न करे, किन्तु सोमवार, बुधवार और बृहस्पतिवारको करे। उन अस्थियोंको लाकर पर्वत आदिकी शिलाके नीचे या जमीनमें पुरुषप्रमाण पांच हाथ या साढ़े तीन हाथ गहरा गढ़ा खोदकर उसमें रक्खे ॥ १८९-१९० ॥

ग्यारहवें दिनकी क्रिया।

एकादशेऽह्नि दहनभूपावहनकारकान् ।
इति षट्पुरुषान् स्नानभोजनैः परितर्पयेत् ॥ १९१ ॥

ग्यारहवें दिन, एक दहन करनेवालेको, एक वस्त्राभूषण पहनानेवालेको और चार कंधेपर उठाकर लेजानेवालोंको एवं छह पुरुषोंको स्नान कराकर भोजनसे तृप्त करे ॥ १९१ ॥

बारहवें दिनका कर्तव्य ।

द्वादशे दिवसे श्रीमज्जिनपूजापुरस्सरम् ।
मुनीनां बान्धवानां च श्राद्धं कुर्यात्समाहितः ॥ १९२ ॥
श्रद्धयाऽन्नप्रदानं तु सद्भ्यः श्राद्धमितीष्यते ।
मासे मासे भवेच्छ्राद्धं तद्दिने वत्सरावधि ॥ १९३ ॥
अत ऊर्ध्वं भवेदब्दश्राद्धं तु प्रतिवत्सरम् ।
आद्वादशाब्दमेवैतत्क्रियते प्रेतगोचरम् ॥ १९४ ॥

बारहवें दिन जिनभगवान्‌की पूजा करे, मुनियोंका और बांधवोंका श्राद्ध करे-उन्हें आहार दान दे । साधर्मी सज्जनोंके लिए श्रद्धापूर्वक आहार दान देनेको श्राद्ध कहते हैं । यह श्राद्ध एक वर्षपर्यंत मृतक तिथिके रोज प्रति माह करे । इसे मासिक श्राद्ध कहते हैं । अनन्तर बारह वर्ष तक प्रतिवर्ष श्राद्ध करे (इसे वार्षिक श्राद्ध कहते हैं) ॥ १९२-१९४ ॥

मृतबिंबकी स्थापना ।

सुप्रसिद्धे मृते पुंसि सन्यासध्यानयोगतः ।
तद्बिम्बं स्थापयेत् पुण्यप्रदेशे मण्डपादिके ॥ १९५ ॥

सन्यास विधिसे या ध्यान समाधिसे कोई प्रसिद्ध पुरुष मरे तो पुण्य-स्थानमें मंडप वगैरह बनवाकर उसमें उसके प्रतिबिंब (चरणपादुका वगैरह) की स्थापना करे ॥ १९५ ॥

वैधव्य-दीक्षा ।

मृते भर्तरि तज्जाया द्वादशाह्नि जलाशये ।
स्नात्वा वधूभ्यः पञ्चभ्यस्तत्र दद्यादुपायनम् ॥ १९६ ॥
भक्ष्यभोज्यफलैर्गन्धवस्त्रपुष्पपणैस्तथा ।
ताम्बूलैरवतंसैश्च तदा कल्प्यमुपायनम् ॥ १९७ ॥
विधवायास्ततो नार्या जिनदीक्षासमाश्रयः ।
श्रेयानुतस्विद्वैधव्यदीक्षा वा गृह्यते तदा ॥ १९८ ॥

पतिका परलोकवास हो जानेपर उसकी स्त्री बारहवें दिन जलाशयपर स्नानकर पांच स्त्रियोंको उपायन-भेंट दे । उत्तम भोजन, फल, गंध, वस्त्र, पुष्प, नकद रुपया-पैसा, तांबूल अवतंस वगैरह देना उपायन है । इसके अनन्तर यदि वह विधवा स्त्री जिन-दीक्षा—आर्यिका या क्षुल्लिकाके व्रत ग्रहण करे तो सबसे उत्तम है, अथवा नहीं तो वैधव्य-दीक्षा ग्रहण करे ॥ १९६-१९८ ॥

वैधव्य अवस्थाके कर्तव्य ।

तत्र वैधव्यदीक्षायां देशव्रतपरिग्रहः ।
कण्ठसूत्रपरित्यागः कर्णभूषणवर्जनम् ॥ १९९ ॥

शेषभूषानिवृत्तिश्च वस्त्रखण्डान्तरीयकम् ।
उत्तरीयेण वस्त्रेण मस्तकाच्छादनं तथा ॥ २०० ॥
खट्वाशय्याञ्जनालेपहारिद्रप्लववर्जनम् ।
शोकाक्रन्दनिवृत्तिश्च विकथानां विवर्जनम् ॥ २०१ ॥
प्रातःस्नानं तथा नित्यं जोपमाचमनं तथा ।
प्राणायामस्तर्पणार्घप्रदानं च यथोचितम् ॥ २०२ ॥
त्रिसन्ध्यं देवतास्तोत्रं जपः शास्त्रश्रुतिः स्मृतिः ।
भावना चानुप्रेक्षाणां तथात्मप्रतिभावना ॥ २०३ ॥
पात्रदानं यथाशक्ति चैकभक्तमगृद्धितः ।
ताम्बूलवर्जनं चैव सर्वमेतद्विधीयते ॥ २०४ ॥
यद्दिने वर्तते श्राद्धं तद्दिने तर्पणं जपः
पूर्वोक्तविधिना सर्वं कार्यं मन्त्रादिसंयुतम् ॥ २०५ ॥

उस वैधव्यदीक्षामें वह स्त्री देशव्रत ग्रहण करे, गलेमें पहननेके मंगल-सूत्रका त्याग करे, कानोंमें कोई तरहके आभूषण न पहने, बाकीके और और गहने भी न पहने, शरीरपर पहनने और ओढ़नेके दो वस्त्र रक्खे, पलंगपर न सोवे, आंखोंमें काजल न आंजे, हल्दी वगैरहका उबटनकर स्नान न करे, शोकपूर्ण रुदन न करे, विकथाओंका त्याग करे, निरंतर प्रातःकाल स्नान करे, आचमन, प्राणायाम, और तर्पण करे, अर्घ्य चढ़ावे, सुबह, दोपहर और शामको स्तोत्रोंका पाठ करे, जाप दे, शास्त्र सुने, उनका चिंतवन करे, बारह भावना भावे, आत्मभावना भावे, यथाशक्ति पात्रदान दे, लोलुपता-रहित एक बार भोजन करे, तांबूल—पान बीड़ा न चावे तथा जिस दिन श्राद्ध हो उस दिन पूर्वोक्तविधिके अनुसार मंत्रपूर्वक तर्पण करे और जाप दे ॥१९९–२०५॥

उपसंहार।

इत्येवं कथितं चतुर्विधियुतं सागारिणां सूतकं
पातः स्राव इतः प्रसूतिमरणे शौचाय मुक्त्यर्थिनाम् ।
श्राद्धपूर्वकमन्नदानकरणं श्राद्धं तथा निर्मलं
ये कुर्वन्ति नरास्त एव गुणिनः श्रीसोमसेनैः स्तुताः ॥ २०६ ॥

एवं मुक्ति चाहनेवाले गृहस्थोंकी शुद्धिके निमित्त पात, स्राव, प्रसूति और मरण ऐसे चार प्रकारके सूतकका कथन किया, तथा प्रसंग पाकर साथ साथमें श्रद्धापूर्वक आहारदान देनारूप निर्मल श्राद्धका भी कथन किया। जो भव्य पुरुष इन चारों तरहके सूतकोंका पालन करते हैं और श्राद्ध करते हैं वे बड़े सद्गुणी हैं और श्रीसोमसेनके द्वारा प्रशंसा किये जानेके पात्र हैं ॥ २०६ ॥

धर्मः सूर्यसमो दयादिनकरो मिथ्यातमोनाशको
नानाजन्मसमूहदुःखनिचयस्यापां निधेः शोषकः ।
सद्भव्याब्जविकासकः कुगतिकध्वांक्षादिविध्वंसकः
पायात्सर्वजनाँस्त्रिलोकमहितः श्रीवीतरागास्यगः ॥ २०७ ॥

धर्मरूपी सूर्य दयारूपी दिनको उत्पन्न करनेवाला है, मिथ्या-तमका विनाशक है, नाना जन्मोंमें उपार्जित पाप-समूहरूपी समुद्रका शोषण करनेवाला है, भव्य-कमलोंको प्रफुल्लित करने वाला है, चारों गतिरूप कौओंका विध्वंस करनेवाला है-ऐसा तीन लोककर पूज्य और वीतराग सर्वज्ञके मुखकमलसे निकला हुआ धर्म-सूर्य सब प्राणियोंकी पापोंसे रक्षा करे ॥ २०७ ॥

देवेन्द्रवृन्दसुमुखैः परिसेव्यपादो
मोक्षस्य सौख्यकथकः परमात्मरूपः ।
संसारवारिधितटोद्धृतसौख्यभारो ।
दद्यात्स वो जिनपतिः शिवसौख्यधाम ॥ २०८ ॥

देव और उनके स्वामी जिनके पैर पूजते हैं, जो मोक्षके सुखका उपाय बताते हैं, स्वयं परमात्मरूप हैं और संसाररूपी समुद्रके किनारेपर अनंतसुखको लादेनेवाले हैं-ऐसे श्रीजिनदेव आपको मोक्षसुखका स्थान देवें ॥ २०८ ॥

धर्मप्रभावेण भवन्ति सम्पदो मोक्षस्य सौख्यानि भवन्ति धर्मतः ।
जीवन्ति धर्माद्रणमूर्ध्नि मानवास्तस्मात्सदा साधय धर्मसाधनम् ॥ २०९ ॥

धर्मके प्रभावसे अनुपम संपत्तियां प्राप्त होती हैं, मोक्ष सुख मिलता है और रणाङ्गणमें मनुष्य जीवित रहते हैं । इसलिए हे भव्य-मनुष्यो ! सदा धर्म-साधन करो ॥ २०९ ॥

विमलधर्मबलेन सुवस्तुकं सकलजीवहितं सुखदायकम् ।
परममोक्षपदं भवनाशनं भवति राज्यपदं सुरसेवितम् ॥ २१० ॥

धर्मके बलसे संपूर्णजीवोंका हित करनेवाली सुख-सामग्री प्राप्त होती है, देवसमूह कर सेवनीय राज्यपद प्राप्त होता है और संसारका नाश करनेवाला मोक्ष-पद मिलता है ॥ २१० ॥

धर्मः प्राणिहितं करोति सततं धर्मो जनैर्गृह्यतां
धर्मेण प्रभवन्ति राज्यविभवा धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नश्यति पापसन्ततिकुलं धर्मस्य सौख्यं फलं
धर्मे देहि मनः प्रभौ वृषकरे भो धर्म मां रक्षय ॥ २११ ॥

धर्म सब प्राणियोंका हित करता है, भव्यजन प्रति-दिन धर्म सेवन करें । धर्मसे राज्य विभूति प्रकट होती है, उस धर्मके लिए नमस्कार है । धर्मसे पापोंकी संतति नष्ट होती है, धर्मका मुख्य फल सुख है, पुण्य संपादन करानेमें समर्थ धर्ममें मन लगाओ । हे धर्म ! मेरी रक्षा कर ॥ २११ ॥

संसारार्णवतारणाय सततं धर्मो जिनैर्भाषितो
धर्मो जीवसमूहरक्षणतया जायेत भव्यात्मनाम्।
धर्माद्राज्यपदं परत्र लभते स्वर्गोऽपि धर्माद्भवे-
द्धर्मं भो भज जीव मोक्षपददं जैनं सदा निर्मलम् ॥ २१२ ॥

हे जीव! तू सदा मोक्षपदप्रदान करनेवाले निर्मल जैनधर्मको सेवन कर; क्योंकि जिन भगवान कर कहा हुआ धर्म संसार-समुद्रसे तारनेवाला है। जीवसमूहकी रक्षा करनेसे भव्य जीवोंको ही यह धर्म प्राप्त होता है। धर्मसे इस भवमें राज्यपद और परभवमें स्वर्ग भी प्राप्त होता है ॥२१२॥

ग्रन्थकारकी प्रशस्ति।

श्रीमूलसङ्घे वरपुष्कराख्ये गच्छे सुजातो गुणभद्रसूरिः।
तस्यात्र पट्टे मुनिसोमसेनो भट्टारकोऽभूद्विदुषां वरेण्यः ॥ २१३ ॥

श्रीमूलसंघमें पुष्कर नामका गच्छ है। उसमें एक गुणभद्र नामके आचार्य हो गये हैं। उनके पट्टपर विद्वानोंमें श्रेष्ठ यह मुनि सोमसेन भट्टारक हुआ है ॥ २१३ ॥

धर्मार्थकामाय कृतं सुशास्त्रं श्रीसोमसेनेन शिवार्थिनापि।
गृहस्थधर्मेषु सदा रता ये कुर्वन्तु तेऽभ्यासमहो सुभव्याः ॥ २१४ ॥

मोक्षप्राप्तिके अभिलाषी होते हुए भी मुझ सोमसेनने धर्म, अर्थ और काम-इन तीन पुरुषार्थोंकी सिद्धिके निमित्त इस उत्तम शास्त्रकी रचना की है; इसलिए जो भव्य सदा गृहस्थ-धर्ममें अनुरक्त हैं वे इसका अभ्यास करें ॥ २१४ ॥

छन्दांसि जानामि न काव्यचातुरीं शब्दार्थशास्त्राणि न नाटकादिकम्।
तथापि शास्त्रं रचितं मया हि यद्धास्यं न कुर्याद्विबुधोत्तमोऽत्र मे ॥ २१५ ॥

मैं न छंदशास्त्र जानता हूं, न मेरेमें काव्य करनेकी चतुरता है, व्याकरणशास्त्र, अर्थशास्त्र और नाटकशास्त्र भी मैं नहीं जानता, तो भी मैंने इस शास्त्रकी रचना की है, इसलिए बुद्धिमान् मेरी हँसी न करें ॥ २१५ ॥

यद्यस्ति शास्त्रे मम शब्ददूषणं भव्योत्तमाः शोधयतां ? सुबुद्धिकाः।
कुर्वन्तु धर्माय कृता महीतले धात्रा सुबुद्ध्यात्र परोपकारिणः ॥ २१६ ॥

यदि मेरे इस शास्त्रमें व्याकरणसंबंधी आदि दूषण हो तो उत्तम बुद्धिके धारक भव्योत्तम धर्मदृष्टिसे उसे शुद्ध करें। क्योंकि विधाता (कर्म) ने पृथिवी-तलपर परोपकारियोंकी रचना ही इसीलिए की है (कि वे औरोंपर उपकार करें)। ॥ २१६ ॥

अब्दे तत्त्वरसर्तुचन्द्रकलिते श्रीविक्रमादित्यजे
मासे कार्तिकनामनीह धवले पक्षे शरत्सम्भवे।
वारे भास्वति सिद्धनामनि तथा योगे सुपूर्णातिथौ
नक्षत्रेऽश्विनि नाम्नि धर्मरसिको ग्रन्थश्च पूर्णीकृतः ॥ २१७ ॥

विक्रम संवत् १६६७ के कार्तिक महीनेकी शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथि, रविवार, सिद्ध योग और अश्विनी नक्षत्रमें यह धर्मरसिक नामका त्रैवर्णिकाचार शास्त्र पूर्ण किया जाता है ॥ २१७ ॥

श्लोका येऽत्र पुरातना विलिखिता अस्माभिरन्वर्थत-
स्ते दीपा इव सत्सु काव्यरचनामुद्दीपयन्ते परम् ।
नानाशास्त्रमतान्तरं यदि नवं प्रायोऽकरिष्यं त्वहं
काशाऽमाऽस्य महो तदेति सुधियः केचित्प्रयोगंवदाः ॥ २१८ ॥

इस शास्त्रमें हमने प्रकरणानुसार ज्योंके त्यों प्राचीन प्रसिद्ध श्लोक लिखे हैं। वे श्लोक सज्जन पुरुषोंके समक्ष दीपकके समान स्वयं प्रकाशमान हैं, जो काव्य-रचनाको उत्कृष्टताके साथ उद्दीपन करते हैं। यद्यपि मैंने अनेक शास्त्र और मतोंसे सार लेकर इस नवीन शास्त्रकी रचना की है, उनके सामने इसका प्रकाश पड़ेगा यह आशा नहीं, तो भी कितने ही बुद्धिमान् नवीन नवीन प्रयोगोंको पसंद करते हैं अतः उनका चित्त इससे अवश्य अनुरंजित होगा ॥ २१८ ॥

श्लोकानां यत्र संख्याऽस्ति शतानि सप्तविंशतिः ।
तद्धर्मरसिकं शास्त्रं वक्तुः श्रोतुः सुखप्रदम् ॥ २१९ ॥

जिसमें श्लोकोंकी संख्या दो हजार सात सौ २७०० है वह धर्मरसिक नामका शास्त्र वक्ता और श्रोताओंको सुख प्रदान करे ॥ २१९ ॥

१९७६ फाल्गुन—१९८० फाल्गुन।

इति श्रीधर्मरसिकशास्त्रे त्रिवर्णाचारप्ररूपणे भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते सूतकशुद्धिकथनीयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

